पहाड़ी भाषा
कुलुई के विशेष संदर्भ में

पहाड़ी भाषा

कुलुई के विशेष संदर्भ में

मौलूराम ठाकुर
एम० ए०
चीनी और तिब्बती भाषाओं में डिप्लोमा
(स्वर्णपदक विजेता)

सन्मार्ग प्रकाशन
16, यू० बी० बंगलो रोड दिल्ली 110007

आमुख

आज जब मैं निराशा और प्रतीक्षा के ताने-बाने में सजोए जीवन के बीते क्षणों को पीछे मुड़ कर देखता हूँ, तो स्मृति-पटल पर न जाने क्या-क्या स्पष्ट तथा धुंधले चित्र अंकित होने लगते हैं। आज से पूरे पन्द्रह वर्ष पूर्व आशातीत जीवन-पथ पर आज तक का पहला और अन्तिम मोड़ आया था। मैं कार्यालय के लिपिकीय धन्धे से किंचित विमुक्त हो कर अपनी इच्छा के अनुकूल पठन-लेखन व्यवसाय की ओर अग्रसर हुआ और 27 जनवरी, 1961 को भाषा विभाग, पंजाब में भरती हुआ। मैंने अपनी (औटर सिराज) और अन्द्रेटा (पालमपुर) के शान्त और बिलकुल ग्रामीण वातावरण से निकल कर तुरन्त पटियाला जैसे भीड़-भड़क्का और वर्तमान वैज्ञानिक साधनों से चका-चौंध शहरी माहौल में प्रवेश किया। सभी कुछ विचित्र था और नया था भाषा विभाग का परिवेश। परमादरणीय ज्ञानी लाल सिंह महा-निदेशक भाषा विभाग के शब्दों में चारों ओर से ऊँची और मजबूत दीवारों से घिरा किला चौक का महान भवन साहित्य तथा साहित्यकारों का गढ़ था। विभाग का मूल कार्य साहित्यिक गतिविधियों से परि-पूर्ण तो था ही, विभिन्न कर्मचारी-अधिकारी भी विभिन्न साहित्यिक रचनाओं में रत थे। उस समय तीन विद्वान वर्तमान हिमाचल के जन-जीवन के सम्बंध मे शोध-कार्य कर रहे थे—"कुलुई भाषा का संरचनात्मक अध्ययन", "मण्डियाली बोली का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन", तथा "क्योंथली भाषा और लोक साहित्य"। कुलुई मेरी मातृ बोली थी, और मण्डियाली और क्योंथली दोनों निकट पड़ौस की बोलियाँ। स्वाभाविकत मुझे इन तीनों का अच्छा व्यावहारिक ज्ञान था। मुझे नये वातावरण में सहानुभूतिक सहयोगियों की जरूरत थी, और मेरे आदरणीय तीनों विद्वानों को मुझ से तथा-कथित सामान्य बोल-चाल की आवश्यकता प्रत्यक्ष दीख पाई थी। फलत आरम्भ से ही सौभाग्य से अत्यंत सुखद, उपयुक्त और अनुकूल वातावरण मुझे प्राप्त हुआ।

एक दिन विचार विमर्श में तल्लीन हुए जब सर्वनामों के बारे में बात हो रही थी, मैं अनथक प्रयत्नों के बावजूद कुलुई में उत्तम-पुरुष सर्वनाम एवं वचन कर्तृ कारक में प्रयुक्त तीनों शब्दों 'हाऊँ', 'मूँ' और 'मैं' के प्रयोग के भेद को समझा न सका—हाऊँ रोटी खाआ सा 'मैं रोटी खाता हूँ', मूँ रोटी खाणी 'मैं रोटी खाऊँगा', मैं रोटी खाई 'मैंने रोटी खाई'। मेरे साथियों को बड़ी निराशा हुई, परंतु उनसे भी बड़ा दुःख मुझे हुआ।

उन्होंने अधिक सुरुचिपूर्ण दूसरे विषय लिए और उन पर पी-एच० डी० कर भी ली, परन्तु मुझे एक लम्बे संघर्ष के लिए विवश होना पड़ा। उसी दिन से भाषा और भाषा विज्ञान का अध्ययन मेरा एक मात्र प्रिय विषय रहा है। सभी ओर से ध्यान हटा कर मैंने भाषा के अध्ययन की ओर ही अपने प्रयत्न केन्द्रित किये। मैंने सबसे पहले डॉ० ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण खण्ड नौ, भाग चार को पढ़ा और कई बार पढ़ा। उस समय तक मैंने डा० ग्रियर्सन का नाम भी नहीं सुना था। मेरे हृदय में इन पहाड़ी भाषाओं पर किए डॉ० ग्रियर्सन के कार्य के लिए प्रशंसा के सिवाय कुछ न था। हाँ, स्थान-स्थान पर कुछ व्यावहारिक भूलें देख कर कभी कभी दुःख होते हुए भी रुचि बढ़ती गई। फलतः पहाड़ी भाषाओं की बोलियों पर छोटी-बड़ी रचना को मैंने शौक से पढ़ा। यही नहीं, भारत की अन्य भाषाओं पर लिखी जो भी रचना या पुस्तक मुझे मिलती उसे मैंने कभी छोड़ा नहीं।

इसी दौरान मुझे पड़ौस की दो महत्त्वपूर्ण विदेशी भाषाओं के अध्ययन का अवसर मिला—तिब्बती और चीनी भाषाएँ। उनके अध्ययन पर मैंने केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की पत्रिका "भाषा", अपने विभाग की पत्रिका "सप्त सिन्धु", तथा 'विश्व भारती' आदि अनेक पत्रिकाओं में तिब्बती और चीनी भाषाओं का हिन्दी के साथ तुलनात्मक अध्ययन पर तथा पहाड़ी की विभिन्न बोलियों पर अनेक लेख लिखे। इनका विद्वानों और पाठकों द्वारा न केवल स्वागत हुआ अपितु कई बार प्रशंसा से भरे पत्रों ने मेरे दुर्बल साहस को ढाढस बंधाया और मेरे आत्म विश्वास में वृद्धि की। परिणाम-स्वरूप आज पन्द्रह वर्ष के बाद जो कुछ साधना कर सका हूँ उसे पाठकों के समुख प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता तो हो ही रही है परन्तु साथ साथ भूलों के प्रति सजग होने के कारण भय भी प्रतीत हो रहा है। ऐसे वैज्ञानिक कार्य में, भूलें होना स्वाभाविक है। परंतु मेरी तुच्छ बुद्धि मुझे पुस्तक प्रकाशित करने के लिए विवश करती है, इसलिए कि मेरे पन्द्रह वर्षों के प्रयत्नों का जो श्रम हो रहा है, वह इस दिशा में कार्यरत असंख्य विद्वानों के लिए और अधिक सम्पूर्ण और श्रेष्ठतर कार्य के लिए सम्भवतः सहायक सिद्ध हो। मैं अपनी कमजोरियों और पुस्तक में त्रुटियों से अनभिज्ञ नहीं हूँ। परंतु मुझे पूर्ण आशा है कि इस सम्बन्ध में जो अनेक विद्वान कार्य कर रहे हैं, उन्हें मेरे इन प्रयत्नों से जरूर कुछ सामग्री प्राप्त होगी।

पहाड़ी भाषा इस समय अत्यंत विचित्र स्थिति से गुजर रही है। कुछ विद्वान इसे भाषा मानने को ही तैयार नहीं हैं। वे जानते हैं, हिमाचल की वास्तविक ग्राम्य-भाषा उन्हें समझ नहीं आती। वे आकाशवाणी शिमला द्वारा प्रसारित प्रादेशिक कार्य-क्रमों, विशेषतः पहाड़ी लोक गीतों के अधिकतर भाग को समझ भी नहीं पाते। परन्तु शहरों से बाहर हिमाचल के गाँवों की कोई भाषा है, इसे मानने को वे तैयार नहीं। ठीक इसके विपरीत ऐसे सज्जनों की बहुतायत है जो ठीक इस धारणा की प्रतिक्रिया में पहाड़ी भाषा के रूप को (कम-से-कम लिखित रूप को) ऐसा रंग देने में लगे हैं कि बाहर के पाठक तो दूर रहे स्वयं यहाँ के मूल निवासी भी पढ़ने में कठिनाई अनुभव करते हैं। यदि यही प्रवृत्ति रही तो पहाड़ी का लिखित रूप हिन्दी से बहुत-बहुत दूर तो जाएगा ही, साथ ही अन्य समस्याएँ भी तीव्र रूप धारण करेंगी। हिन्दी जगत हमेशा अस्पृश्यता

की भावना से ग्रस्त रहा है। उन्हें हर प्रादेशिक भाषाओं के विकास में हिन्दी की शत्रुता दीखती है। उन्हें भारत के जन-मानस की बोली हर समय हर मूल्य पर बाधक नज़र आती है। हिन्दी भाषा की अपनी मौलिक प्रवृत्ति अत्यंत विशाल-हृदय को अपनाए हुए है, परन्तु हिन्दी जगत के विद्वान हिन्दी से बाहर की भाषा को न केवल हीन समझते है, वरन उनसे अस्पृश्य रहने की धारणा लिए हुए है। वर्तमान भाषा समस्या का यही मुख्य कारण है। अन्यथा यह नितांत स्पष्ट तथा निर्विवाद तथ्य है कि प्रादेशिक भाषाओं के अपनाने मे मूल रूप म हिन्दी का अपना विकास निहित है। कम-से-कम मैं पहाडी भाषा के सम्बन्ध मे दावे से कह सकता हूँ कि यह हिन्दी की प्रतिद्वन्द्वी नही है, न हो सकती है, वरन यह हिन्दी के शब्दकोष और साहित्यिक प्रवृत्तियों को ऐसा मौलिक योगदान देगी कि इससे हिन्दी का खज़ाना समृद्ध और उज्जवल होगा। हिन्दी के समर्थकों की यदि हिन्दी भाषा की तरह विशाल और उदार भावना हो तो न केवल प्रादेशिक भाषाओं का सही अध्ययन और अनुशीलन होगा अपितु इन से हिन्दी को वह योगदान मिलेगा जो उसे विश्व की अद्वितीय भाषा होने के अभीष्ट लक्ष्य के लिए अत्यंत लाभदायक और सहायक सिद्ध होगा।

मेरा मूल उद्देश्य कुलुई का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन था। उसी प्रयोजन से मैंने कार्य आरम्भ किया था। परन्तु ज्यों-ज्यों अध्ययन और कार्यानुशीलन बढ़ता गया, मुझे लगा कि जब तक इस बोली के मूल उद्‌गम पर प्रकाश न डाला जाए, कुलुई का अध्ययन अधूरा रह जाएगा। कुलुई मे वे सभी प्रमुख विशिष्टताएँ हैं जो पहाडी की मूल प्रवृत्तियाँ हैं। कुलुई का पहाडी भाषा मे क्या स्थान है, इस बात का प्रमाण मैं डॉ० ग्रियर्सन के शब्दों द्वारा व्यक्त करना अधिक उचित समझता हूँ। उन्होंने कुलुई मे तीन प्रमुख गुण बताए हैं —

(1) कुलुई और क्योंथली-बघाटी (पश्चिमी) पहाडी की विशिष्ट बोलियाँ हैं और (पश्चिमी) पहाडी की जो प्रमुख विशेषताएँ उल्लिखित हैं, वे इन दोनों बोलियो पर आधारित हैं,

(2) मण्डियाली बोली दक्षिणी कुलुई का एक रूप है, जो आगे चल कर कांगडी-पजाबी मे विलीन हो जाती है, और

(3) चम्बयाली बोली कुलुई का वह रूप है जिसका बाद मे जम्मू की डोगरी और भद्रवाही के साथ विलयन हो जाता है।

स्पष्ट है कि मण्डियाली, कांगडी, चम्बयाली बोलियो का मूलाधार कुलुई है और कुलुई मे वे सब गुण हैं जो पहाडी को अन्य पडोसी भाषाओं से पृथक करते हैं। कुलुई मे पहाडी के सभी प्रमुख गुण विद्यमान हैं और उन्हें जान लेना पहाडी की विशेषताओं से पूर्णत अवगत हो जाना है। अत पुस्तक मे कुलुई के सभी शब्द भेदो पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, शब्द-निर्माण, अर्थ-भेद आदि सभी पहलुओं पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। यह सभी कुछ मैं पहाडी के बारे मे नहीं कर पा सका हूँ, जिस का मुख्य कारण पुस्तक का भारी आकार का भय था। फिर भी पहाडी के समस्त शब्द-भेदो से सम्बधित मुख्य विशेषताओं का पूर्ण अध्ययन किया गया

मूल रूप में पुस्तक का प्रथम भाग पहाडी भाषा के उद्भव से सम्बधित है, जो यथा स्थान शब्द-भेदो पर विवेचन करके अपने-आप मे सम्पूर्ण बन गया है। उच्चारण, संज्ञा शब्दो का परिवर्तन, सर्वनाम, विशेषण, क्रियापद तथा अव्यय से सम्बधित पहाडी की विभिन्न बोलियो की विशेषताओ को भी यथा-स्थान सोदाहरण प्रस्तुत करके मूल पहाड़ी का अध्ययन अपने-आप मे अनुकूल बन पाया है। परन्तु यह विषय इतना विशाल है कि इसकी सम्पूर्णता का दावा नही किया जा सकता। इसके लिए अधिक समय, अधिक साधन और अधिक शोध और सर्वेक्षण कार्य की अपेक्षा है। पुस्तक जैसे भी बन पाई है, पाठको और विद्वानो के सामने प्रस्तुत है। पहाडी भाषा के अध्ययन मे अभी बहुत कुछ किया जाना है। मुझे आशा है कि पाठक और विद्वान अपने अमूल्य सुझावो और त्रुटियो की कमी के निवारण के लिए अपने विचार दे कर मुझे कृतार्थ करेंगे। मैं ऐसे सुझावो और विचारो का हार्दिक स्वागत करूँगा।

पुस्तक की रचना में मैंने अनेक विद्वानो की पुस्तको का अध्ययन किया है और उनसे सहायता ली है। मैंने उन पुस्तको का यथा-स्थान पादटिप्पणी सहित उल्लेख किया है। जिनका इस प्रकार उल्लेख नही हो सका है, उन्हे सदर्भ-ग्रन्थ सूची मे दिखाया गया है। मैं इन सभी पुस्तको के लेखको के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट किए बिना नही रह सकता।

अपने विषय के वैज्ञानिक अध्ययन में मुझे श्रद्धेय पद्मभूषण डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा से बहुमूल्य मार्ग-दर्शन, सहायता और प्रोत्साहन मिला है। शिमला आने से पूर्व मैं चण्डीगढ में उनके चरणो में भाषा विज्ञान सम्बन्धी अनेक विषयो का अध्ययन करता रहा हूँ। मुझे यह लिखते हुए हर्ष और गर्व होता है कि शिमला आने पर भी वर्मा जी 7 अप्रैल, 1970 से वर्ष भर लगातार पत्रो द्वारा मुझे शिक्षा-दीक्षा देते रहे है, और समय-समय पर उत्पन्न सदेहो का निवारण करते रहे हैं। उनके पत्र मेरे लिए अमूल्य निधि है। उनके निकट सम्पर्क, गम्भीर ज्ञान तथा मेरे प्रति वैयक्तिक रुचि और शिक्षा के लिए कृतज्ञता प्रकट करना मैं परम सौभाग्य समझता हूँ।

मुझे यह लिखते हुए हार्दिक हर्ष होता है कि मुझे साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण कराने का श्रेय आदरणीय श्री हरिचन्द पराशर को है। ग्रामीण वातावरण से निकल कर पटियाला में श्री पराशर जी ने जिस हीन-भावना से निकाल कर मुझे लिखने के लिए प्रोत्साहित किया और समय समय पर साहित्यिक अभिरुचि को उभारने मे मेरी सहायता की, उसके लिए मैं उनके ऋण से मुक्त नही हो सकता। वर्तमान विषय के समापन में पराशर जी का बहुत बडा हाथ है। उनके साथ एक लम्बी अवधि का सह-योग रहा है और जब कभी मुझे अपने अध्ययन मे बाधा पडी है, मैं सर्वदा उनसे ही मार्ग दर्शन और समाधान प्राप्त करता रहा हूँ। इन सब के लिए मैं उनका हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

कृतज्ञता-प्रकट करने का यह परम कर्तव्य तब तक पूरा न होगा, जब तक मैं अपने परम-प्रिय सहयोगी और विद्वान मित्र डॉ० वंशीराम शर्मा के प्रति आभार प्रकट न करूँ। उन्होंने न केवल सारी पाण्डुलिपि को पढने का कष्ट किया है, वरन् स्थान-

स्थान पर परिवर्तन-परिवर्द्धन करके पुस्तक को वर्तमान रूप में ढाला है। डाक्टर साहिब "किन्नौरी लोक-साहित्य" पर शोध कार्य कर चुके हैं, जिसमें किन्नौरी भाषा पर उनका विशेष अध्ययन रहा है। मैंने उनके व्यक्तिगत मार्ग-दर्शन के अतिरिक्त उनके शोध-कार्य से अमूल्य सहायता ली है। उनके विद्वतापूर्ण व्यक्तित्व तथा सरल एव स्नेहपूर्ण स्वभाव और व्यवहार से मैंने जो कुछ प्रोत्साहन एव ज्ञान प्राप्त किया है, उसके प्रति जितना आभार प्रकट किया जाए, कम है। उनकी सहायता के बिना इस पुस्तक का प्रकाशन इतने शीघ्र सम्भव न होता।

मैं सन्मार्ग प्रकाशन तथा प्रिंट-आर्ट का भी हार्दिक आभारी हूँ। उन्ही के प्रयत्नो से ही यह पुस्तक साकार रूप धारण कर सकी है। भाषा विज्ञान के सकेतो तथा पहाडी भाषा के असाधारण शब्दो के कारण प्रेस को भारी कठिनाई हुई है, मैं इसके लिए प्रकाशक तथा प्रिंटरज का बडा कृतज्ञ हूँ।

अन्त में मैं हिमाचल कला, सस्कृति और भाषा अकादमी और उसके अध्यक्ष माननीय लालचद प्रार्थी, वन मन्त्री, हिमाचल प्रदेश के प्रति भी कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ। अकादमी प्रदेश के लेखकों और कलाकारो को प्रोत्साहित करने के पुण्य-कार्य को क्रियान्वित करने में तत्परता से तल्लीन है। अकादमी ने जो प्रोत्साहन मुझे प्रदान किया है, उसके लिए मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

मौलूराम ठाकुर

विषय-सूची

भाग-II

कुलुई

भाग I

पहाड़ी भाषा का उद्भव

अध्याय—1

प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ

भारत वर्ष मे भाषा का इतिहास जितना जटिल तथा पेचीदा है, उतना ही इसका अध्ययन अत्यन्त मनोरजक तथा रुचिकर भी है। ऐतिहासिक तथ्यो से अब यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि भारत मे आज जो भाषाए बोली जाती हैं, वे अधिकाशतया यहाँ के मूल निवासियो की भाषाएँ नही है, और भारत मे आज जो लोग रह रहे हैं, वे अधिकाशत: यहाँ के मूल निवासी नही है। भाषा-विशेषज्ञो के अनुसार भारत मे आज जो भाषाएँ बोली जाती है, लग-भग उन सबके मूलाधार मे वह भाषा है, जो आर्य लोग विभिन्न समूहो मे भारत मे प्रवेश करते हुए अपने साथ लाए।

कुछ विद्वानो के अनुसार भारत मे सब से पहले आने वाले विदेशी अफ्रीका के नीग्रो थे, परन्तु भारत के मूल निवासियो से निकृष्ट होने के कारण इनकी भाषा या सस्कृति यहाँ विकसित या स्थायी न रह सकी। सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डॉ॰ सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार, तत्पश्चात् भू मध्य सागर के आस-पास से प्रॉटो-ऑस्ट्रालाइड जाति के लोग भारत मे आए। सथाल, गोंड, भील, कोल और मुण्डा वर्ग की भाषाओं में इन की भाषाओ के प्रभाव अब भी विद्यमान है। डॉ॰ चटर्जी के अनुसार लाहुल और किन्नौरी आदि भाषाओ मे इस जाति की भाषा की कुछ विशेषताए विद्यमान हैं।[1] इस जाति के लोगों को बाद मे आर्यो ने निषाद कहा है। इनके बाद भारत मे आने वाले विदेशी भूमध्य सागर के तट के निवासी थे, जो यहाँ द्रविड कहलाए, और दक्षिण भारत के द्रविड भाषा भाषी इन्ही की सन्तान मानी जाती हैं। द्रविड लोग नीग्रो तथा प्रॉटो-ऑस्ट्रालाइड से अधिक सुसभ्य और विकसित थे। यह बात उनके स्थायी प्रभाव से प्रकट होती है। द्रविडो के बाद मगोल जाति के लोग भारत मे आए, जो चीनी-तिब्बती वर्ग की भाषा बोलते थे, परन्तु इनका प्रभाव उत्तर भारत के पर्वतीय क्षेत्र तक सीमित रहा।

1 डा॰ सुनीति कुमार चटर्जी इण्डो-आर्यन एण्ड हिन्दी, पृ॰ 40

इस प्रकार आर्यों के भारत मे आने पर उन्हे भारत के मूल निवासियो के साथ-साथ उपर्युक्त बाहर से आई जातियो की भाषाओ के साथ भी सम्पर्क स्थापित करना पडा। परन्तु आर्यों की भाषा अत्यन्त विस्तृत और समृद्ध थी, और परिणामस्वरूप वह अन्य सभी भाषाओं पर छा गई। परन्तु आर्यभाषा के सर्वव्यापी होने के बावजूद भी भारत भर की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे हर स्थान पर कुछ ऐसी विशेषताएँ है, जो हमे आर्य भाषा के किसी भी प्राचीन रूप मे उपलब्ध नही होती। द्रविड, मुण्डा, तिब्बती-बर्मी तथा आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार की भाषाएँ तो स्पष्ट रूप मे भारत की आदिवासियो की भाषा के भण्डार के रूप मे आज तक सुरक्षित, प्रचलित तथा विकसित होती चली आई हैं, जिन पर आर्य भाषा का प्रभुत्व अधिकार नही जमा सका है। परन्तु इन भाषाओ के अतिरिक्त, अन्य जिन आधुनिक भारतीय भाषाओ को आर्य भाषा का रूप माना जाता है उन मे भी कई ऐसी ध्वन्यात्मक, व्याकरणीय तथा शब्दकोशीय विशेषताएँ हैं जो आर्य भाषा मे उपलब्ध नहीं थी।

इसका कारण स्पष्ट है। समस्त भारत मे आर्यों के आगमन से पहले कई जनपद रहे होगे। उन जन-पदो की अपनी क्या बोली या भाषा थी, उसका हमे कोई ज्ञान नही है। उसका रग-रूप, नाम-सज्ञा कुछ भी हमारे सामने नही है। उसकी कोई कडी हम तक पहुँच नही पाई है। परन्तु इतिहास के इस लम्बे तथा अथाह समुद्र मे उसका अस्तित्व नष्ट हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। निस्सदेह उन जन-पदो की स्पष्ट भाषा अथवा बोली का अभिलेख प्राप्त नही है। परन्तु हर आधुनिक भारतीय भाषा मे कुछ ऐसी विशेषताएँ विद्यमान हैं, जिन का आधार हमे उन किसी भी प्राचीन या मध्यकालीन भाषाओ मे नही मिलता जिन से भाषा-विशेषज्ञ वर्तमान भाषाओं का आधार ढूँढते है। अतः जो विशेषताएं अत्यन्त पृथक तथा बिना आधार के लगती है उनका आधार स्पष्टत उन जन-पदो की बोली है जो आर्यो से पहले यहाँ रहते थे या जो यहाँ के मूल निवासी थे। ये विशिष्टताएँ विशेष महत्त्व की हैं, और विद्वानो की एक विचार-धारा स्पष्टत. इस सुदृढ निश्चय की है कि वर्तमान तथाकथित आर्य-भाषाओं का मूलाधार यही आदि जन-पदों की भाषा है। यही कारण है कि हिन्दी जैसी परिनिष्ठित तथा परिमार्जित भाषा मे इस प्रकार की ध्वन्यात्मक, व्याकरणीय तथा शाब्दिक विचित्र स्थितियो को देखते हुए ही श्री किशोरी दास तथा डॉ० रामविलास शर्मा प्रभृति विद्वानो का विचार है कि 'हिन्दी की अनेक विशेषताओं का सम्बन्ध न वैदिक सस्कृत से है, न लौकिक सस्कृत से, न अपभ्रश से। उनका सम्बन्ध खडी बोली क्षेत्र की किसी प्राचीन बोली से ही हो सकता है, और ये विशेषताएँ कुरू जन-पद की किसी प्राकृत मे रही होगी'।[1]

आर्यों के भारत मे आने पर उनका यहाँ के मूल निवासियो के साथ सघर्ष हुआ होगा, यह निश्चित है। आर्य विजयी हुए इस मे भी कोई सदेह नही। परन्तु उन्होंने मूल निवासियों की हर बात—रीति-रिवाज, धर्म-कर्म, भाषा-सस्कृति, बिलकुल जड से उखाड फेंकी हो, ऐसा विचार करना महान भूल होगी। उनकी सस्कृति एव सभ्यता मूल आदिवासियो मे अधिक विकसित और परिमार्जित थी, और विजयी होने के नाते उनका

1 डा० रामविलास शर्मा भाषा और समाज, पृ० 144

हर क्षेत्र में पलड़ा भारी रहना स्वाभाविक है। परन्तु आर्यों ने यहाँ के मूल आदिवासियों और उनकी भाषा, संस्कृति एवं सभ्यता को एकदम परिसमाप्त कर दिया हो, ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। मूल निवासियों तथा नव-आगंतुकों के बीच सम्बन्ध स्थापित हुआ और धीरे धीरे सुदृढ़ होता गया। सभी क्षेत्र में विजयी आर्यों का बोल-बाला और अन्तिम निर्णय रहा हो, ऐसी बात नहीं है। ऐसी स्थिति में आर्य लोग स्थानीय अनार्य जातियों के प्रभाव से सर्वदा मुक्त न रह सके। समाज में दैनिक जीवन, रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, धार्मिक प्रथाएं आदि परम्पराओं की तरह भाषायी क्षेत्र में भी आदान-प्रदान के आधार पर ही सामाजिक सगठन की व्यवस्था चलती रही है। विजयी होने के फलस्वरूप, निस्सन्देह अन्ततः आर्यों की ही सभ्यता और संस्कृति उभर आई परन्तु उसमें अनार्य जातियों के गुणों और विशेषताओं का असाधारण समावेश हुआ। और, यही कारण है कि आज की समस्त भारतीय भाषाओं और बोलियों में अनार्य अवशेष प्रकट होते हैं।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

आर्य लोग भारत में सबसे पहले कब आए ? यद्यपि इसके बारे में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह ठीक है कि वे कई समूहों में आए। विद्वानों का विचार है कि उनके आने का समय ईसा-पूर्व दो हजार वर्ष से 1500 वर्ष ईसा पूर्व रहा होगा। भारत आगमन पर आर्यों की संस्कृति और भाषा का यहाँ के मूल निवासियों की संस्कृति और भाषा के साथ संघर्ष स्वाभाविक था। अतः उन और उनकी संस्कृति का प्रसार सहजता और शीघ्रता से सम्पन्न न हुआ। उन्हें राजनैतिक, सामाजिक, भौगोलिक कई विरोधों का सामना करना पड़ा, और कई शताब्दियों के बाद ही स्थिरता एवं सामान्यता सम्भव हुई होगी। ऐसी परिस्थितियों में उनकी संस्कृति और भाषा का मूल रूप स्थिर न रह सका। ऐसा परिवर्तन स्वाभाविक था और अवश्य ही यह क्रमिक रूप में निष्पादित हुआ। इसी दृष्टि से प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का समय, मोटे रूप में, ईसा-पूर्व 1500 से लेकर 500 ईसा पूर्व तक माना जाता है, और विकास-क्रम के आधार पर इसे दो भागों में बाँटा जाता है —

(क) वैदिक संस्कृत, और

(ख) लौकिक संस्कृत।

वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम रूप 'ऋग्वेद' में मिलता है, जिसे संसार भर के विद्वान एकमत से संसार की सबसे प्राचीन रचना मानते हैं। परन्तु, वैदिक संस्कृत का साहित्य केवल ऋग्वेद तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक विस्तृत साहित्य है जिसे मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जाता है— (1) संहिता, (2) ब्राह्मण, तथा (3) उपनिषद्॥ संहिता भाग में ऋग्वेद का सर्वप्रथम स्थान है। इसमें देवताओं की पूजा के मंत्र हैं, जो आर्य-लोग अपने जन्म-स्थान से बहुमूल्य निधि के रूप में भारत में लाए थे और जिन्हें

के असाग्य उपासकों के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ था'।[1] सामवेद में अधिकांश सूक्त ऋग्वेद से लिए गए हैं जिन्हें गेय पदों में सवारा गया है। ये पूजन-विधि से सम्बन्धित हैं। यजुर्वेद में यज्ञों के कर्मकाण्ड से सम्बन्धित मंत्र संगृहीत हैं। जहाँ अन्य संहिताएँ प्रमुखत: पद्य में हैं, यजु संहिता में पद्य के साथ-साथ उस समय की भाषा के गद्य रूप का भी प्रदर्शन होता है। मूलत: उक्त तीनों संहिताओं की विषय-वस्तु लगभग समान है। चौथी संहिता अथर्ववेद में इन तीनों से कदरे भिन्न विषय-वस्तु है। इसमें जनसाधारण में प्रचलित मंत्र, तंत्र, टोने, टोटके संकलित हैं और महत्त्व की दृष्टि से यह ऋग्वेद के बाद दूसरे स्थान पर है, यद्यपि यह सबसे बाद में संकलित है, और बहुत देर तक इसे वेद के रूप में मान्यता प्राप्त न हो सकी। इस संहिता में भारत के मूल निवासियों द्वारा आर्यों से भिन्न असंख्य देवताओं की पूजन-विधि का आर्यों पर हुए प्रभाव का पूर्ण प्रमाण लक्षित होता है।

ब्राह्मण ग्रंथों में धार्मिक विधियों और कर्मकाण्ड का ब्यौरा है। प्रत्येक वेद का अपना अलग ब्राह्मण ग्रंथ है। ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक संस्कृत की गद्य शैली को प्रस्तुत करते हैं।

उपनिषद् भाग ब्राह्मणग्रन्थों के परिशिष्ट हैं। इनमें वैदिक ऋषियों के आध्यात्मिक चिंतन का समावेश है।

वेदों की भाषा एक होते हुए भी भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सर्वदा समरूप नहीं रही है। ऋग्वेद के आरम्भिक मंत्रों तथा बाद के मंत्रों में ही कुछ अंतर देखा जाता है। इस काल की भाषा को 'छान्दस' भी कहा गया है। ऋग्वेद की अधिकांश ऋचाओं की रचना भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में हुई मानी जाती है। इनकी रचना के मूल समय के बारे में निश्चय से नहीं कहा जा सकता। विद्वानों का विचार है कि वैदिक ऋचाएं लगभग तीसरी ईसवी शती तक मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती आई हैं। निस्सन्देह सभी वेदों की एक साथ रचना नहीं हुई है, परन्तु जो भाषा इन मंत्रों में है, वह निश्चित रूप से उस समय की या उससे भी पुरानी लोक भाषा है, जब उनका सम्पादन हुआ। परन्तु ज्यों ज्यों लोक-भाषा मंत्रों की भाषा से अलग होती गई त्यों त्यों इन्हें संगृहीत करने की आवश्यकता अधिक अनुभव होती गई। ऋग्वेद संहिता के सूक्तों की भाषा में ही कुछ भेद प्रकट होता है। प्रथम मण्डल के सूक्तों की भाषा कुछ बाद की लगती है। तत्पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और सूत्रग्रन्थों की भाषा क्रमशः विकसित होती गई है।

वैदिक भाषा की विशेषताएं

(1) वैदिक संस्कृत में 52 मूल ध्वनियां हैं, जिनमें से 13 स्वर तथा 39 व्यंजन हैं।

(2) स्वरों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ नौ मूल स्वर, तथा ए, ऐ, ओ, औ चार संयुक्त स्वर या 'सन्ध्यक्षर' कहे गए हैं। सन्ध्यक्षरों में भी ए, ओ को 'गुण' तथा ऐ, औ को 'वृद्धि' स्वर की संज्ञा दी गई है।

1. S Radnakrishnan · Indian Philosophy p. 64.

(3) व्यजनों मे 5 कठ्य (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्) 5 तालव्य (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्), 5 मूर्धन्य (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्), 5 दन्त्य (त्, थ्, द्, ध्, न्) 5 ओष्ठ्य (प्, फ्, ब्, भ्, म्) कुल 25 स्पर्श, 6 अन्तस्थ (य्, र्, ल्, ळ्, ळ्ह, व्), 3 अघोष ऊष्म (श्, ष्, स्), एक सघोष ऊष्म (ह), एक विसर्ग ( ), एक जिह्वामूलीय (ह्), एक उपध्मानीय (ह्), और एक अनुस्वार—कुल 39 व्यजन माने गए हैं।

(4) वैदिक मे स्वराघात (accent) का विशेष महत्व है। स्वर प्रधान ध्वनि को उदात्त (acute), स्वरहीन को अनुदात्त कहते हैं। इनके आदि, मध्य और अन्त मे होने पर आद्युदात्त, मध्योदात्त तथा अन्तोदात्त सज्ञा दी जाती है।

(5) पूर्व वैदिक काल में 'ऐ' और 'औ' का क्रमश 'आइ' और 'आउ' उच्चारण था। बाद मे इनका आदि दीर्घ स्वर ह्रस्व हो गया—अइ, अउ। इस प्रकार वैदिक काल में ए, ऐ, और ओ औ के बीच क्रमश ऍ और ऑ ध्वनि का भी सकेत मिलता है। उपरोक्त ध्वनियाँ पहाडी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं मे विद्यमान हैं।

(6) च-वर्ग की ध्वनियाँ आजकल की तरह स्पर्श सघर्षी नहीं थी। ये केवल स्पर्श थीं।

(7) त-वर्ग की ध्वनियाँ स्पष्टत दन्त्य न हो कर कदाचित वर्त्स्य थी।

(8) ल के साथ-साथ मूर्धन्य 'ळ' की भी अलग सत्ता थी। इसका महा-प्राण रूप 'ळ्ह' का भी प्रयोग था। दो स्वरों के बीच 'ड्' तथा 'ढ्' प्राय ळ तथा ळ्ह बन जाते थे।

(9) अन्तस्थ 'व' के अतिरिक्त इस से कदरे भिन्न अन्य ध्वनि भी थी जिसका उच्चारण दन्त्योष्ठ्य था।

(10) वैदिक सस्कृत मे मूर्धन्य ध्वनियों (ट, ठ, ड, ढ, ण, ळ, ळ्ह) की विशेष प्रधानता थी। कुछ विद्वानों का विचार है कि यह प्रधानता अनार्य जाति की भाषाओं के सम्पर्क का परिणाम है। इस परिवार की अन्य भाषाओं मे मूर्धन्य ध्वनियाँ नहीं हैं। अनार्य ध्वनियों की इस देन की इस बात से भी पुष्टि होती है कि ये ध्वनियाँ क्रमिक रूप से बढ़ती गई हैं। ऋग्वेद की पुरानी ऋचाओं मे इनका प्रयोग कम था, परन्तु यजुर्वेद तक इनकी बहुलता हो गई थी।

(11) कुछ विद्वानों ने इस सम्बन्ध मे ऋ, र, ल आदि के बाद आने वाले दन्त्य व्यजनों के मूर्धन्य हो जाने के सिद्धात का समर्थन किया है, जैसे—विकृत से विकट, सकृत से सकट, कर्त से काट, मृद से मुण्ड आदि, परन्तु इसमे कई अपवाद होने के कारण इसे सिद्धान्त रूप से माना नहीं जाता।

(12) मूर्धन्य ध्वनियों की तरह ही महाप्राण ध्वनियों का भी विशेष महत्त्व था। वर्तमान हिन्दी 'ह' का उच्चारण प्राय चार प्रकार का होता था—घोष 'ह', अघोष विसर्ग ( ), जिह्वामूलीय 'ह' (जैसे चीनी भाषा का H'aw मे H) तथा उपध्मानीय 'ह' जो 'फ' जैसा उच्चारण देता था।

(13) वैदिक भाषा मे तीन लिंग, तीन वचन और आठ कारक थे।

(14) वैदिक काल मे शब्दों के रूप दो भागो में विभक्त थे—(1) 'अजन्त',

जो स्वरान्त होते हैं, जिनमे दोनो ह्रस्व और दीर्घ स्वर होते थे, और (2) 'हलन्त' जो व्यजनात होते हैं।

(15) वैदिक काल मे धातु के विविध रूप देखने मे आते हैं। इसमे तीन वचन (एकवचन, द्विवचन, वहुवचन), तीन पुरुष (उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष), दो पद (आत्मनेपद तथा परस्मैपद), चार काल (वर्तमान या लट्, असम्पन्न या लड्, सामान्य या लुड् और सम्पन्न या लिट्), तथा पाँच भाव (निर्देश, अनुज्ञा, सम्भावक, अभिप्राय तथा निर्बंध) होते थे।

प्राचीन सस्कृत के दूसरे रूप लौकिक संस्कृत का समय मनु की धर्मसहिताओ से माना जाता है जो लगभग ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी से आरम्भ होता है। कुछ विद्वान लौकिक सस्कृत का आरम्भ ई० पू० आठवी शताब्दी से मानते हैं। इसे केवल 'सस्कृत', 'क्लासिकल सस्कृत', 'आदि भाषा' या 'देव भाषा' के नाम से भी पुकारा जाता है। पाणिनि ने इसी भाषा को लगभग ई० पू० पाँचवी सदी मे व्याकरणबद्ध किया, और सम्भवत उसी काल से ही इस भाषा का नाम सस्कृत पडा।

सस्कृत ससार की प्राचीनतम भाषाओ मे से एक है, और जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है ऋग्वेद ससार की सबसे प्राचीन रचना मानी जाती है। इसमे सभी पाश्चात्य तथा प्राच्य विद्वान सहमत हैं। परन्तु सस्कृत लोक भाषा रही हो, इसके बारे मे विद्वानो मे मतभेद है। हो सकता है कि सस्कृत किसी समय किसी आर्य-जाति विशेष की मातृ-भाषा रही हो, परन्तु जिस रूप मे वह लिखित साहित्य मे आज तक विद्यमान है, उसी रूप मे बोली जाती रही हो, इसमे भारी सदेह है। इस सन्देह को स्वय 'सस्कृत' शब्द से भी पुष्टि मिलती है। सस्कृत का अर्थ है 'परिष्कृत' या 'सस्कार की हुई'। स्पष्ट है कि उस समय कई लोक भाषाए प्रचलित थी, और उनका सस्कार करके जिस भाषा को व्याकरणादि नियमो मे ढाल दिया, वह 'सस्कृत' कहलाई। कम-से-कम जिस रूप मे पाणिनि न सस्कृत को ढाला, और जिन ठोस तथा कठोर नियमो मे इसका प्रसारण निर्धारित किया, उस रूप मे सम्भवतः कभी भी यह लोक भाषा न रही हो। पाणिनि के बाद सभी सस्कृत साहित्य उस द्वारा प्रतिपादित नियमो के अनुसार ही पूर्णत शासित रहा। पाणिनि का समय ई० पू० चार सौ वर्ष माना जाता है।

लौकिक सस्कृत मे वैदिक काल की ल, ल्ह, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियो को छोडकर शेष सभी ध्वनियाँ प्रचलित थी। ए तथा ओ का उच्चारण मूल रूप मे था, परन्तु ऐ औ का उच्चारण अइ, अउ सा हो गया था। इसके अतिरिक्त वैदिक सस्कृत मे स्वराघात का बहुत महत्व था। स्वराघात के परिवर्तन से अर्थभेद हो जाता है। लौकिक सस्कृत मे स्वराघात पूर्णत समाप्त हो गया था।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का काल ऋग्वेद के रचना-काल के कुछ समय पूर्व से पाणिनि के समय तक रहा है, अर्थात् 1500

ई० पू० से 500 ई० पू० तक वैदिक तथा लौकिक सस्कृत का समय माना जाता है। ई० पू० 500 वर्ष से मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओ ने जन्म लेना आरम्भ किया था। पाणिनि के कठोर तथा स्थिर नियमो का सीधा प्रभाव सस्कृत भाषा पर पडा। इन्होने सस्कृत के विकास को रोक दिया, और परिणाम-स्वरूप यह विद्वान-पण्डितो की रचनाओ तथा उच्च साहित्य तक सीमित हो गई। फलत पाणिनि के नियम से स्वतत्र लोक भाषाओ ने स्वच्छन्द रूप से विकसित होना आरम्भ किया।

प्राकृत

लोक भाषाए अबाध गति से विकसित होती रही, और इस विकास के फलस्वरूप जो भाषा सामने आई उसे 'प्राकृत' कहा गया, अर्थात् ऐसी भाषा जो मौलिक (प्राकृतिक), नैसर्गिक रूप से प्रचलित रही और विकसित हुई। मोटे रूप से प्राकृत का समय ईसा पूर्व 400-500 वर्ष से 1100—1200 ईसवी तक रहा माना जाता है, जिसे तीन कालो मे बाँटा जाता है—**प्रथम प्राकृत काल, द्वितीय प्राकृत काल तथा तृतीय प्राकृत काल**। प्रथम प्राकृत का रूप ई० पू० 250 वर्ष के लगभग अशोक के शिलालेखों तथा लगभग ई० पू० 150 वर्ष के पतजलि के ग्रन्थों मे मिलता है। अशोक का समय ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित है, और पूर्णत प्रचार के उद्देश्य से लिखी शिलालेखो की भाषा निस्सन्देह आम बोल-चाल की भाषा होगी, अन्यथा ऐसी भाषा के शिलालेखो का कोई लाभ न होता जिसे साधारण जनता न समझती। इनकी भाषा निश्चय ही व्याकरण के नियमो के आधार पर नही लिखी गई थी, वरन् यह उस समय की आम बोल-चाल की भाषा थी। प्रथम प्राकृत काल आरम्भ से ईसवी सन् तक माना जाता है। इसकी दो *विभाषाए पूर्वी तथा पश्चिमी प्राकृत थी, और इनमे से 'प्राच्य' (पूर्वी) प्राकृत को अशोक* के राज्यकाल मे राज-भाषा होने का सम्मान प्राप्त था। परन्तु शिलालेखो मे अशोक ने केवल प्राच्य प्राकृत का प्रयोग नही किया, बल्कि स्थान विशेष की विभाषा का प्रयोग किया गया। उदाहरणार्थ जयपुर-बैराट की धर्माज्ञा 'प्राच्य' मे, परन्तु गिरनार काठियावाड की 'सौराष्ट्री' मे तथा शाहबाजगढ की 'उदीच्य' मे हैं। गिरनार की सौराष्ट्री के बारे मे विद्वानो के विभिन्न मत है—वररुचि के व्याकरण मे इसे महाराष्ट्र की प्राकृत होने का आभास मिलता है, हार्नेल के अनुसार यह सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा थी, और मैक्समूलर इसे गगा यमुना के बीच के दोआब एव राजस्थान की लोकभाषा मानने का सकेत करते हैं।

पालि

प्रथम प्राकृत युग की सर्व प्रसिद्ध भाषा पालि है। बौद्ध धर्म के अधिकाश ग्रन्थ इसी भाषा मे हैं। बुद्ध की पवित्र वाणी का सकलन भी पालि मे ही किया गया था। परन्तु कुछ विद्वानो का विचार है कि पालि बुद्ध के जीवन काल (छठी सदी ई० पू०) की भाषा नही है। पालि साहित्य का मुख्य सम्बन्ध भगवान बुद्ध के प्रवचनो से है, जिन मे

का कुछ भाग भी पालि में है। पालि की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं—

(1) पालि भाषा अन्य प्राकृतों की अपेक्षा (संस्कृत से भी) वैदिक संस्कृत के अधिक निकट है। वैदिक काल की ळ और ळ्ह दो ध्वनियाँ संस्कृत में नहीं मिलती, परन्तु ये दोनों पालि में प्रचलित हैं।

(2) परन्तु फिर भी सरलता की ओर प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। वैदिक भाषा की कठिन ध्वनियाँ जैसे ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ, श, ष पालि में नहीं मिलती। श, ष तथा स के स्थान पर केवल स का प्रयोग होता था।

(3) वैदिक के चार प्रकार की 'ह्' की ध्वनियों में से केवल घोष 'ह्' ही स्थान प्राप्त किए हुए है। शेष लुप्त हो गई थी।

(4) ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' की स्पष्टतः अलग ध्वनियाँ बन गई थी। ऐ, औ के स्थान पर ए, ओ का ही प्रयोग होता था—ऐरावण > एरावण गौतम > गोतम।

(5) दो स्वरों के बीच के 'ड' और 'ढ' क्रमशः 'ळ' और 'ळ्ह' में बदल जाते थे।

(6) प्रायः अघोष व्यंजनों की सघोष व्यंजनों में बदलने की प्रवृत्ति थी, जैसे 'क' 'ग' में, 'च' 'ज' में, 'थ' 'ध' में प्रायः बदल जाते थे।

(7) संयुक्त व्यंजन केवल ह्रस्व स्वर के बाद ही प्रयुक्त होता था—मार्ग > मग्ग, आर्य > अय्य, कार्य > कय्य, पूर्ण > पुन्न, चूर्ण > चुण्ण। चूँकि संयुक्त व्यंजन केवल ह्रस्व स्वर के बाद आते हैं, अतः मैत्री > में त्ती, ओष्ठ > ओ ट्ठ जैसे उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि ए तथा ओ के ह्रस्व और दीर्घ दो-दो रूप थे।

(8) संस्कृत के हलन्त प्रातिपदिक लुप्त हो रहे थे। व्यंजनों के आगे स्वर जोड़े जाते थे, जैसे—आपद् > आपा, विद्युत > विज्जु आदि। विभिन्न कारकों और वचनों में इनके रूप स्वरान्त प्रातिपदिकों के समान निष्पन्न हुए।[1]

(9) वैदिक एवं संस्कृत के धातु रूपों की विविधता प्रायः सुरक्षित रही है। परन्तु आत्मनेपद धीरे-धीरे लुप्त हो रहा था।

द्वितीय प्राकृत

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, प्रथम प्राकृत का समय अनुमानतः पाँचवी सदी ई० पू० से ईसवी सदी तक माना जाता है। ईसवी सदी से दूसरा प्राकृत काल आरम्भ हुआ माना गया है तथा यह लगभग 500—600 ईसवी सन् तक चलता रहा है। जब प्राकृत का विकास बढ़ता गया तो स्थान के आधार पर यह कई भागों में विभक्त हो गई। पश्चिमी और पूर्वी रूप में तो यह पहले ही बंट चुकी थी। अब प्राकृत मुख्यतः पाँच रूपों में विकसित हुई—शौरसेनी प्राकृत, मागधी प्राकृत, अर्ध-मागधी प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत तथा पैशाची प्राकृत।

(1) शौरसेनी प्राकृत

उपर्युक्त पश्चिमी प्राकृत का प्रधान रूप 'शौरसेनी' था। जैसा कि नाम से ही

1. डा० उदयनारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० 81।

स्पष्ट है यह शूरसेन प्रदेश या मथुरा के आस पास के मध्य देश की भाषा थी और यह वह स्थान है जो वैदिक सस्कृत, लौकिक सस्कृत और पालि का गढ था। पालि के स्थानीय रूप से शौरसेनी प्राकृत विकसित हुई । और यह सस्कृत की समकक्ष परिनिष्ठित भाषा थी। व्याकरण तथा साहित्य के आधार पर यह उस समय की सबसे परिनिष्ठित भाषा मानी जाती है। इसके उदाहरण अश्वघोष नाटक, कर्पूरमजरी के गद्यभाग हैं। भास, कालिदास आदि सस्कृत नाटककारो के मध्यवर्गीय तथा स्त्री पात्र इसी प्राकृत का प्रयोग करते हैं। कुछ जैन ग्रन्थो मे भी जैन-धर्म का साहित्य शौरसेनी मे सुरक्षित है। गद्य क्षेत्र मे इसका विशेष महत्त्व है। मैक्समूलर के अनुसार जहाँ महाराष्ट्रीय प्राकृत का प्रयोग पद्य मे होता था, वहाँ शौरसेनी साहित्यिक गद्य की भाषा है । इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(1) कवर्ग, चवर्ग तथा तवर्ग के प्रथम तथा तृतीय वर्ण (क, ग, च, ज, त, द) प्राय स्वर म बदल जाते हैं या लुप्त हो जाते हैं—लोक>लोअ, नगर>णअर, रजत>रअद, भोजन>भोअण, रसातल>रसाअल, हृदय>हिअअ आदि।

(2) 'न' प्राय 'ण' मे बदल जाता है—जानाति>जाणादि, नाथ>णाध, नयन>णअण, निद्रा>णिद्दा ।

(3) दो स्वरो के बीच त' वर्ण 'द' मे तथा 'थ' वर्ण 'ध' मे बदल जाते हैं, जबकि द और ध ध्वनियो मे कोई परिवर्तन नही आता—गच्छति>गच्छदि, आगत >आगदो, कृत>कद, रजत>रअद, कथय>कधेहि, नाथ>णाध आदि।

(4) य को ज मे बदलने की प्रवृत्ति है—यथा>जधा, योग्य>जोग्ग, यम> जम, यात्रा>जात्रा।

(5) 'श' तथा 'ष' प्राय 'स' मे बदल जाते है—शब्द>सद्द, पाषाण>पासाण, शिक्षित>सिक्खित, सशक>ससक ।

(6) स्वरो के मध्य मे कवर्ग, तवर्ग, तथा पवर्ग के महा-प्राण वर्ण (ख, घ, थ, ध, फ, भ) प्राय 'ह' मे बदल जाते हैं—मुख>मुह, मेघ>मेह, रुधिर>रुहिर, नभ>नह, दधि>दहि, भवति>होदि ।

(7) प, व तथा व का कभी कभी लोप हो जाता है—भवति>होदि, रूप> रूअ, दिवस>दिअह ।

(8) 'क्ष' को 'क्ख' मे बदलने की प्रवृत्ति है—कुक्षि>कुक्खि, इक्षु>इक्खु, अक्षि>अक्खि, शिक्षित>सिक्खित ।

(9) स्वरो के मध्य मे ट तथा ठ प्राय ड तथा ढ मे बदल जाते हैं—पट>पड, पठन>पढण ।

(10) ष्ट और ष्ठ वर्ण ट्ठ में बदल जाते हैं—दृष्टि>दिट्ठि, मुष्ठ>मुट्ठ ।

(11) स्त, स्थ प्राय त्थ मे बदलते है—अस्ति>अत्थि, हस्त>हत्थ ।

(12) तवर्ग को चवर्ग या टवर्ग हो जाने की प्रवृत्ति है—तिष्ठिति>चिट्ठदि, सत्य>सच्च, अद्य>अज्ज, मध्य>मज्झ, मृत्तिका>मिट्टिअ, वृद्ध>बुड्ढ, पतित> पड्दि, प्रथम>पढम ।

(2) मागधी प्राकृत

पूर्व कथित प्रथम पूर्वी प्राकृत की प्रमुख भाषा 'मागधी' थी। यह बिहार के दक्षिण में मूलतः मगध प्रदेश और उसके आस-पास के क्षेत्र की भाषा थी। प्रसिद्ध प्राकृत वैयाकरण वररुचि तथा हेमचन्द्र के अनुसार मागधी प्राकृत शौरसेनी का परिवर्तित रूप है। पालि भाषा इसी का प्राचीन रूप है। भगवान बुद्ध ने मागधी में ही अपने उपदेश दिए। पूर्वी तथा उत्तरी भारत के शिलालेखों की भाषा प्रायः मागधी ही है। संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्रों की भाषा शौरसेनी की तरह मागधी भी है। मृच्छकटिक संस्कृत नाटक में निम्न पात्रों की भाषा में इसी का प्रयोग हुआ है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

(1) ष और स प्रायः 'श' में बदल जाते हैं—शुष्क>शुश्क, समर>शमल, सप्त>शत, पुरुष>पुलिश आदि।

(2) र के स्थान पर सर्वत्र ल का प्रयोग होता है—राजा>लाजा, पुरुष>पुलिश, समर>शमल।

(3) कहीं-कहीं शौरसेनी के उलट 'ज' को 'य' हो जाता है—जानाति>याणादि, जनपद>यणवद।

(4) 'झ' को 'य्ह' हो जाता है—झटिति>य्हति।

(5) स्थ और र्थ के स्थान पर प्रायः 'स्त' प्रयुक्त होता है—उपस्थित>उवस्तिद, अर्थवती>अस्तवदी।

(6) क्ष>श्क, जैसे—पक्ष>पश्क, प्रेक्षते>प्रेश्कदि।

(6) प्रथम कर्त्ताकारक एक वचन पुल्लिंग तथा नपुंसक में संस्कृत विसर्ग ( ) की जगह 'ए' का प्रयोग मिलता है—देव >देवे, स >शे।

(7) ण्य, न्य, ज्ञ या ञ्ज इन सबके स्थान पर ञ्ञ हो जाता है—पुण्य>पुञ्ञ, अन्य>अञ्ञ, राज्ञ >लञ्ञो, अञ्जलि>अञ्जलि।

(8) र्ज, र्य, द्य के स्थान पर प्रायः य्य का प्रयोग मिलता है—अर्जुन>अय्युण, आर्य>अय्य, अद्य >अय्य कार्य>कय्य।

(9) कर्त्ता-कारक पुल्लिंग की 'ए' विभक्ति चिह्न तथा 'र' के 'ल' में बदलने की प्रवृत्ति आरम्भ में मागधी को पहचानने के लिए पर्याप्त समझी जाती थी, परन्तु इसमें कुछ अपवाद भी हैं।

(10) च्छ प्रायः श्च में बदल जाता है—गच्छ>गश्च, पृच्छ>पुश्च।

(11) अधिकरण एक वचन में 'आहि' तथा सम्बन्ध कारक एक वचन में 'अह' (आह) प्रत्यय लगते हैं—प्रवहणे>पवहणाहि, चारुदत्तस्य>चालुदत्ताह।

(3) अर्ध मागधी

शूरसेन और मगध प्रदेश के मध्य में तटस्थ क्षेत्र की भाषा 'अर्ध मागधी' थी। अर्थात् शौरसेनी तथा मागधी प्राकृतों के बीच के भाग में दोनों की मिश्रित भाषा प्रचलित

थी, परन्तु जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है इसका अधिक झुकाव मागधी की ओर था। इसकी पश्चिमी सीमा वर्तमान इलाहाबाद के निकट थी, परन्तु पूर्वी सीमा के बारे में निश्चय से कहा नहीं जा सकता। जैन-धर्म के प्रवर्तक भगवान् महावीर ने अर्ध-मागधी में ही अपने उपदेश दिए थे। जैन ग्रन्थों की अधिकतर अर्ध-मागधी भाषा है। इसका प्राचीनतम रूप 'अश्वघोष' में मिलता है। मुद्राराक्षस में भी इसका प्रयोग मिलता है। इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(1) श तथा ष के स्थान पर 'स' मिलता है—राजेश्वर > रातीसर, श्रावक > सावक।

(2) स्वरों के बीच स्पर्श का अन्य प्राकृतों में लोप मिलता है, परन्तु अर्ध-मागधी में इसका लोप न होकर यह 'य' में बदल जाता है—सागर > सायर, स्थित > ठिय, कृत > कय। इसको य' श्रुति कहते हैं।

(3) अन्त तथा मध्य में कवर्ग प्राय तवर्ग में बदलने की प्रवृत्ति रखता है—आराधक > आराहत, नरकात > नरताती, अतिग > अतित, सामयिक > सामातित।

(4) इसी तरह मध्य तथा अन्त में चवर्ग को भी तवर्ग में बदलने की प्रवृत्ति है—प्रवचन > पावतण, पूजा > पूता, राजेश्वर > रातीसर चिकित्सा > तेइच्छा।

(5) शौरसेनी और मागधी की मिश्रित भाषा होने का प्रमाण दो बातों से स्पष्टत. मिल जाता है—प्रथम, इसमें 'ल' तथा 'र' दोनों ही ध्वनियां प्रचलित हैं, दूसरे कर्ताकारक एक वचन का रूप कहीं शौरसेनी की तरह ओकारान्त होता है और कहीं मागधी की तरह एकारान्त।

(6) पूर्वकालीन (जैसे पालि) प्राकृतों के संयुक्ताक्षरों की प्रधानता कम होती जा रही थी। अर्ध-मागधी में संयुक्ताक्षर से पूर्व का स्वर जो ह्रस्व होता था, दीर्घ हो जाता है और संयुक्ताक्षर असंयुक्ताक्षर हो जाता है। जैसे—वर्ष > वस्स > वास, कर्तुम > काउं।

(4) महाराष्ट्री प्राकृत

प्राचीन वैयाकरण वररुचि ने प्राकृतों में महाराष्ट्रीय को सबसे परिनिष्ठित बताया है। जैसाकि पहले भी संकेत किया गया है, इसके मूलस्थान तथा सीमाक्षेत्र के बारे में मतभेद है, परन्तु इसे प्राय महाराष्ट्र की भाषा ही अधिकतया माना जाता है। साहित्यिक प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत ही सबसे उत्कृष्ट, अप्रतिम तथा सर्वाधिक विकसित भाषा थी। गाथासप्तशती (गाहासत्तसई), रावणवहो, वज्जालग्ग, गउडवहो आदि ग्रन्थ इसकी महान रचनाएँ हैं। डा० ग्रियर्सन इसे अर्ध-मागधी के निकट की मानते हैं, परन्तु डा० मनमोहन घोष इसे शौरसेनी की उत्तर-कालीन शाखा मानते हैं। यह आरम्भ से ही पद्य की भाषा रही है, और इसमें काव्य के सभी रूप रचे मिलते हैं। कालिदास तथा हर्ष आदि के नाटकों के गीतों की भाषा प्राय महाराष्ट्री ही है। पाँचवी और छटी सदी में इसमें गद्य भी अधिक मात्रा में लिखा मिलता है। इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

(1) दो स्वरों के बीच आने वाला अल्पप्राण स्पर्श (क, त, प, ग, द, ब) प्राय

लुप्त हो जाता है अथवा स्वर में बदल जाता है—प्राकृत > पाउअ, गच्छति > गच्छई, लोकस्मिन > लोअंस्मि।

(2) इसी तरह दो स्वरों के बीच यदि महाप्राण स्पर्श हों (ख, घ, थ, ध, फ, भ) तो उनका 'ह' हो जाता है—क्रोध > कोहो, कथयति > कहेइ, प्राभृत > पाहुइ।

(3) ऊष्म ध्वनियाँ (श, ष, स) प्राय 'ह' में बदल जाती हैं—पाषाण > पाहाण, तस्य > ताह, अनुदिवस > अनुदिअह।

(4) अपादान एकवचन में प्राय 'अहि' प्रत्यय लगता है—दुरात > दूराहि।

(5) क्रिया के कर्मवाच्य का 'य' प्रत्यय 'इज्ज' में बदलता है—गम्यते > गमिज्जइ, पृच्छ्यते > पुच्छिज्जइ।

(6) अधिकरण एक वचन के रूप 'म्मि' या 'ए' में बनते हैं— लोकस्मिन > लोअम्मि।

(7) आत्मन्' का प्रतिरूप महाराष्ट्री में 'अप्प' हुआ है।

(5) पैशाची प्राकृत

डा० ग्रियर्सन के अनुसार पैशाची अविभाजित भारत के पश्चिम-उत्तर प्रदेश में अफगानिस्तान तथा बलोचिस्तान के निकट ईरानी भाषाओं की सीमा के साथ-साथ बोली जाती थी। वे इसे सिन्धु नदी के तट पर बोली जाने वाली प्राचीन संस्कृत से विकसित हुई मानते हैं। यह पिशाच जाति की भाषा थी। पिशाच जाति को महाभारत काल से ही समाज में निकृष्ट स्थान प्राप्त है। महाभारत के शान्ति पर्व में उन्हे म्लेच्छ कहा गया है। इन्हें राक्षस, भूत, प्रेत का दर्जा दिया जाता था। इसीलिए भाम्मट जैसे विद्वानो ने इस भाषा को भूतभाषा या भूतवचन, भूतभाषित भी कहा है। वररुचि इसका आधार संस्कृत मानते है, तथा शौरसेनी को पैशाची का मूल कहते है। पुरुषोत्तम देव इसे संस्कृत तथा शौरसेनी का विकृत रूप मानते है। हार्नेल के अनुसार यह एक द्रविड़ भाषा है। मैक्समूलर के अनुसार पैशाची वास्तव में कोई भाषा नहीं है बल्कि बर्बर जातियो के अशुद्ध उच्चारण के कारण प्राकृत का ही एक अपभ्रष्ट रूप है। इस भाषा का सर्वोत्तम रूप महाकवि गुणाढ्य (विक्रमी दूसरी शती के आस-पास) की बृहत्कथा (बड्डकहा) में मिलता है। 'हम्मीरमर्दन', 'मोहराज पराजय' आदि नाटकों के कुछ पात्र पैशाची प्राकृत का ही प्रयोग करते हैं। इसकी मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :—

(1) पैशाच में स्वरों के बीच स्पर्श घोष व्यंजन प्राय अघोष में बदल जाते हैं— नगर > नकर, राजा > राच, गगन > गकन, मेघ > मेखो माधव > माथवो।

(2) लकार को लकार हो जाता है, विशेषत स्वरो के मध्य में—शील > सील, कुल > कुळ, जल > जळ।

(3) बहुत से प्राकृतो में 'न' का लोप हो जाता है या, कम से कम, 'ण' की अपेक्षा इसका प्रयोग बहुत कम होता है, परन्तु पैशाची में 'न' सुरक्षित है, तथा इसका प्रयोग भी अधिक है, बल्कि 'ण' को 'न' में बदलने की प्रवृत्ति है—गुण > गुन, तरुणी > तलुनी आदि।

(4) 'द' के स्थान पर अधिकतर 'त' का प्रयोग होता है—दामोदर > तामोतर, कन्दर्प > कतप्प, सद् > सत, मदन > मतन, वदन > वतन।

(5) 'श' प्राय 'स' म तथा 'ष' प्राय 'श' या 'स' मे बदल जाता है—विषम > विसमो, तिष्ठति > चिश्तदि, क्षेपु > केसु, परिहृतेषु > परिहितेसु।

(6) एक अन्य दृष्टि से भी पैशाची दूसरी प्राकृतो से बिल्कुल भिन्न है। कई प्राकृतो मे, जैसा कि पीछे देखा जा चुका है, स्वरो के बीच स्पर्श व्यजन लुप्त होते हैं, ऐसी प्रवृत्ति पैशाची मे देखने को नही मिलती।

(7) 'ल' प्राय अपना स्थान 'र' या 'ड' म बदलता है—अगुलि > आगुड, विडाल > वराड।

(8) 'ष्ट' प्राय 'ट्ठ' या 'सट' मे बदलता है—दृष्ट—तिट्ठ, नष्टव > नट्ठना, परन्तु, नष्ट > नसट।

(9) पूर्वकालिक प्राकृत भाषाओ मे सयुक्त अक्षरा की बहुलता है। जब सयुक्त अक्षर साधारण हो जाते हैं तो प्राय उनमे पूर्व का ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है। परन्तु पैशाची मे इस तरह का दीर्घीकरण प्राय नही होता (यद्यपि उदाहरण मिल सकते हैं), जैसे—उष्ट्र > उट, कुक्कुट > कुकुड, अष्ट > अठ, सप्त > सत आदि।

(10) 'स्न' प्राय 'सन' बन जाता है—स्नात > सिनात।

(11) पैशाची की बहुत सी बोलियो मे मूर्धन्य और दन्त्य स्पर्श व्यजनो मे स्पष्ट भेद नही होता। लिखित साहित्य मे एक ही शब्द को विभिन्न लेखक कभी दन्त्य म लिखते हैं और कभी मूर्धन्य व्यजन मे।[1] वास्तव मे मूल ध्वनि दोनो के बीच की है। यह स्थिति किसी हद तक चीनी भाषा मे भी है।

(12) पैशाची म 'ज्ञ', ण्य, तथा न्य प्राय ञ्ञ मे बदल जाते हैं, जैसे प्रज्ञा > पञ्ञा, सज्ञा > सञ्ञा, सर्वज्ञ > सव्वञ्ञ, ज्ञान > ञान, पुण्य > पुञ्ञ, कन्यका > कञ्ञका।

(13) दरद पैशाची मे सघोष महाप्राण (घ, झ, ढ, ध, भ) व्यजन नही है।[2] (परन्तु हेमचन्द्र ने जिस चूलिका पैशाची का वर्णन किया है, उसमे उन्होंने इन व्यजनो का उल्लेख किया है)।

(14) दूसरी प्राकृतो मे 'य' प्राय 'ज' मे बदलता है, परन्तु पैशाची मे 'य' व्यजन 'ज' म नहीं बदलता—यदि > यति, हृदय > हितयक।

अन्तिम चरण की प्राकृतें जो मूल प्राकृतो अर्थात् प्रथम तथा दूसरे काल की प्राकृतो मे बहुत भिन्न थी, अपभ्रश कहलाई थी। उन पर विचार करने से पूर्व प्रथम दो चरणो के मुख्य तथा समान गुणो की ओर सकेत करना उचित होगा। चाहे प्राकृतो का आरम्भ, जैसा कि विभिन्न विद्वानो मे मतभेद है, 600 ई० पू० से हो या 500 ई० पू०, 300 ई० पू० या कुछ विद्वानो के अनुसार एक सदी ई० पूर्व मे, एक बात स्पष्ट है कि इनका आरम्भ आकस्मिक नही हुआ। जब वैदिक तथा पाणिनीय सस्कृत का बोल-बाला था, तब भी प्राकृतो का कोई न कोई रूप स्थान विशेष पर अवश्य था। चाहे केन्द्रीय

1. डा० ग्रियर्सन पिशाच लग्वेजिज आफ नार्थ वेस्टर्न इण्डिया, पृ० 18.
2. वही, पृ० 17

स्थानों पर तथा शिक्षित वर्ग म वैदिक और पाणिनीय स स्कृत बोलचाल की भाषा थी, परन्तु केन्द्र से दूर साधारण जनता मे आम बोलचाल की भाषा वैदिक तथा पाणिनीय सस्कृत से भिन्न थी, वे धीरे-धीरे पनप रही थीं, और अपना वास्तविक रूप उन्होंने तभी दिखाया जब पाणिनि ने स स्कृत को व्याकरण के सिद्धान्तों मे जकड़कर इसकी प्रगति को रोक दिया, इसे आम जनता स अलग कर दिया और केवल शिक्षित वर्ग तक सीमित कर दिया।

यह स्थिति ठीक ऐसी ही थी जो वर्तमान हिमाचल प्रदेश की है। शहरो मे (या तथा-कथित शहरो म) हिन्दी का आम प्रयोग है, और यदि शहरो तक की भाषा का रूप निर्धारण सीमित हो तो हिन्दी हिमाचल की भाषा मानन म कठिनाई नहीं। परन्तु वास्तविक स्थिति बिल्कुल भिन्न है। ज्योंही शहरो से कदम छोड़कर देहातों म प्रवेश करें उन्हीं हिन्दी भाषा भाषियों को अपना मुंह बदलना पड़ता है और उन लोगों की भाषा का सहारा लेना पड़ता है जिनके साथ सम्बन्ध पड़ता है। इस बात पर आगे उचित स्थान पर विचार किया जाएगा। यहा केवल इतना स्पष्ट करन का उद्देश्य है कि प्राकृतो के विकास को समझने मे हिमाचल की उपभाषाओ से स्पष्ट सहायता मिलती है।

सभी प्राकृतो की विभेदक विशेषताओं के अतिरिक्त इनमे कुछ सामान्य लक्षण थे, जिन्ह सक्षेप म नीचे प्रस्तुत किया जाता है —

(1) सभी प्राकृतों मे तीन प्रकार के शब्दो का मिश्रण मिलता है। इस सम्बन्ध म भरत-नाट्यशास्त्र म लिखा है 'समान शब्द विभ्रष्ट देशीगतमथापि च"। समान से अभिप्राय यहाँ तत्सम तथा विभ्रष्ट स तद्भव शब्दो से है। इस प्रकार प्राकृतो मे सस्कृत तत्सम, तद्भव तथा देशी शब्दो का प्रयोग है।

(2) आरम्भिक अवस्था मे प्राकृत भाषाए सश्लिष्ट थी और कठोर सयुक्त व्यजनो की इन म प्रधानता थी। दूसरे चरण म भाषा सश्लिष्ट ही रही परन्तु सन्ध्यक्षरो तथा कठोर सयुक्त व्यजनो का प्रयोग कम था। अन्तिम अवस्था में स्वरो की अधिकता थी, कठोर सयुक्त अक्षरो का अभाव हो गया। इस अवस्था तक प्राकृत केवल स्वरो का सग्रह मात्र रह गई थी।

(3) एक बार फिर सश्लिष्ट से विश्लिष्ट की ओर प्रवाह हुआ। सयुक्त अक्षर पुन प्रयोग मे आए, परन्तु अब यह निर्माण इतना कठोर नही था।

(4) प्राकृतिक काल मे वैदिक तथा लौकिक सस्कृत की सयोगात्मक विशेषता वियोगात्मक म बदल गई। स स्कृत की विभक्तिया के स्थान पर कारक चिह्नों और प्रत्ययो का प्रयोग होने लगा। इन कारक चिह्नों की अलग सत्ता बन गई।

(5) सस्कृत मे क्रियाओ की अधिकता थी, परन्तु प्राकृत म सहायक क्रियाओ का प्रयोग आ गया और यह सहायक क्रियाओ की प्रवृति आधुनिक भाषाओ तक तेजी से बढ़ती गई।

(6) धातु रूपो म आत्मनेपद धीरे धीरे समाप्त हो गया।

(7) लकारों की सख्या कम होती जा रही थी। लड्, लिट् तथा लुड् के रूप समाप्त हो गए।

(8) वचन केवल दो रह गए। द्विवचन का प्राय लोप हो गया।

(9) चतुर्थी विभक्ति का प्राय लोप हो गया। वररुचि का कहना है "चतुर्थ्या सर्वशब्देषु षष्ठ्यादेश प्रयुज्यते"—इस प्रकार चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग होने लगा और वर्तमान समय तक (जैसे हिन्दी मे) चौथी तथा दूसरी विभक्तियाँ साधारणत समान हो गईं। पहाडी की विभाषाओ मे तो प्राय दोनो के लिए एक ही प्रत्यय हैं।

(10) प्राकृत युग म श्रुति का विशेष महत्त्व हो गया। उच्चारण की तीव्रता के कारण प्राकृत के अन्तिम काल मे दो स्वरो के बीच य—व श्रुतियो का समावेश हो गया। प्राकृतो मे दो स्वरो के बीच स्पर्श व्यजनो का लोप इसी का सकेत है। पहाडी भाषा मे यह प्रवृत्ति और बल पकड गई है। इसे आगे 'कुलुई' के अन्तर्गत श्रुति के अधीन देखा जाएगा।

(11) भरत मुनि के नाट्यशास्त्र म उल्लिखित है कि प्राकृत मे ऐ, औ, विसर्ग( ), श, ष, ङ, ञ तथा न लुप्त हैं। परन्तु इसम कुछ अपवाद हैं। प्राकृतो मे ऐ, औ, विसर्ग ( ), प्राय लुप्त हैं, परन्तु जैसा कि पिछले पृष्ठो से स्पष्ट है श, ष सभी प्राकृतो में लुप्त नहीं हैं, ञ का प्रयोग भी मिलता है। पैशाची प्राकृत म 'न' का प्रयोग भी बहुलता से होता है।

(12) प्राकृतो मे ऋ, ॠ, लृ, का प्रयोग नही मिलता। इसी तरह 'क्ष' का भी लोप हो गया था।

(13) य, र, ल के प्रयोग म भी समान सिद्धान्त नही है। ये आपस म बदलते रहते है। 'य' प्राय सभी प्राकृतो मे 'ज' म बदल जाता है।

(14) प्राकृतो मे ऊपर का र् (रेफ) नही होता।

(15) महाप्राण स्पर्श प्राय 'ह' मे बदल जाते हैं।

(16) मध्य भारतीय आर्य भाषा के समान्तिकाल (२०० ई० पू० से ३०० ई) मे **स्वरमध्यग** अघोष स्पर्श व्यजन सघोष होने लगे थे। तब क—ख, ट—ठ, त—थ, प—फ क्रमश ग—घ, ड—ढ, द—ध, ब—भ मे बदलने लगे। यह प्रवृत्ति बढती गई और यही बदले हुए सघोष व्यजन धीरे-धीरे प्राण-ध्वनि मे बदल गए, यद्यपि लिखित रूप मे इनका अलग चिह्न न था, परन्तु ये ऊष्म ध्वनि की ओर तेजी से बदलते गए, और इनमे इतनी शिथिलता आ गई कि वे प्राय लुप्त हो गए या स्वर मे बदल गए —

[1]शुक = सुग = सुग = सुअ
मुख = मुघ = मुघ = मुह
हित = हिद = हिद = हिअ
कथा = कधा = कधा = कहा
अपर = अबर = अवर = अअर

1 मैक्समूलर भाषा विज्ञान, अनु० —डा० उदयनारायण तिवारी, पृ० 429.

(17) इसी तरह व्यजनो के समान ही धातु-रूपो मे भी सरलीकरण हो गया। सस्कृत मे अ कारान्त, इ-कारान्त, ई-कारान्त, उ-कारान्त आदि स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुसकलिंग के भिन्न भिन्न विभक्ति रूप बनते थे। शब्दरूपो की ये विभिन्नताए धीरे-धीरे समाप्त होती गई, और प्राकृतो के उत्तरकाल मे सभी शब्दो के रूप प्राय अकारान्त शब्द के समान निष्पन्न होने लगे।

(3) तृतीय प्राकृत अर्थात् अपभ्रंश

प्राकृतो का आरम्भ बडे स्वाभाविक तथा प्राकृतिक रूप मे हुआ था, और यह क्रमिक विकास आम जनता की बोल-चाल मे प्रवाहित हुआ था, परन्तु ज्यों ही यह भाषा आम बोल-चाल से लेखनी के अधीन आयी और इस म साहित्य लिखा जाने लगा, तो प्राकृतो को भी वैदिक एव पाणिनीय सस्कृत के भाग्य का सामना करना पडा। वे भी अपनी पूर्वजो की तरह व्याकरण के सिद्धान्तो मे जकडने लगी। परिणामस्वरूप उन्ही का एक अलग रूप साहित्यिक तथा व्याकरणीय धारणाओ मे दूर पनपता रहा, जिसके सरक्षक थे अशिक्षित वर्ग। उनकी भाषा प्राकृत से भिन्न **'अपभ्रंश'** कहलाने लगी। इसे अपभ्रंश का नाम भी शिक्षितो की ही देन थी जो इसे व्याकरणीय सिद्धान्तो से पथभ्रष्ट अर्थात् अपभ्रष्ट कहने लगे। अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ 'बिगडा हुआ', 'गिरा हुआ' है, और भाषाई क्षेत्र म इसका तात्पर्य असाधु भाषा से है। वास्तव मे अपभ्रंश शब्द वही हैं जो सस्कृत प्राकृत आदि से आए हैं परन्तु उनका रूप बिगड गया है। महाभाष्य मे एक स्थान पर लिखा है—**'एकैकस्य गोशब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिका इत्येव बहवोऽपभ्रंशा"** अर्थात् एक ही 'गो' शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि बहुत से अपभ्रंश शब्द हैं। इस दृष्टि से सस्कृत शब्द का बिगडा रूप अपभ्रंश कहलाया। सम्भवत चण्ड पहला वैयाकरण था जिस ने भाषा के रूप मे अपभ्रंश का प्रयोग किया। परन्तु सर्वप्रथम हेमचन्द्र ने ही इसे व्याकरण के नियमों मे ढाला। हेमचन्द्र के अनुसार प्राकृतो के अतिरिक्त एक और भाषा भी थी जो भारत के विभिन्न अचलो मे बोली जाती थी, जिसे उसने अपभ्रंश नाम दिया। इन बोलियो मे उल्लेखनीय थी—आभीरी, बाह्लिका, पजाबी, शौरसेनी, पश्चिमी हिन्दी, मागधी या प्राच्य, पूर्वी हिन्दी, औड्री, गोडी, दाक्षिणत्य अथवा वैदर्भिका तथा पैप्पाली। चूंकि इस सूची मे शौरसेनी आदि का नाम है, इस लिए यह स्पष्ट है कि प्राकृतो के ही बोल चाल के रूप मे भारी परिवर्तन आने पर वही अपभ्रंश कहलाई। हेमचन्द्र का समय बारहवी शती ईसवी का माना जाता है। उसके समय तक यह भाषा मृतक हो चुकी थी या हो रही थी। उसने अपने व्याकरण के लिए 'आभीरी' को मानक बनाया जो गुजरात तथा राजस्थान मे मुख्यत बोली जाती थी। चण्ड के लिए भी यही भाषा अपभ्रंश रूप की थी, उसने इस 'आभीरादिगीर' कहा है। अपभ्रंश का समय 500/600 ईसवी से 1100/1200 ई० तक माना जाता है। अपभ्रंश का साहित्यिक रूप नागर अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध है। भरत के नाट्य शास्त्र म अपभ्रंश के कुछ रूप मिलते हैं। कालिदासकृत 'विक्रमोर्वशीय' नाटक के कुछ दोहो मे अपभ्रंश के रूप मिलते हैं।

विद्वानों ने अपभ्रंश के कई भेद गिनाए हैं। नमि साधु ने उपनागर, आभीर, और ग्राम्य तीन भेद बताए है। मार्कण्डेय भी तीन भेद मानते हैं, परन्तु उनका नामकरण अलग है—नागर, ब्राचड और उपनागर। मार्कण्डेय का ही कहना है कि लोग अपभ्रंश के ब्राचड, लाट, नागर, उपनागर, पाँचाल, टाक्क, गोर्जर, आभीर आदि 27 रूप मानते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने क्षेत्र की दृष्टि से अपभ्रंश के पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी भेद भी किए हैं। कुछ भी हो इसमें संदेह नहीं कि प्राकृतों के बाद अपभ्रंश कई रूपों में विकसित हुई और इन्हीं विभिन्न रूपों से आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म हुआ। वास्तव में अपभ्रंश भाषा प्राकृत और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच सेतु का काम करती है। यदि द्वितीय प्राकृत काल में उल्लिखित पाँच प्राकृतों के बाद के अर्थात् तृतीय काल के रूपों को अपभ्रंश माना जाए, जैसा कि प्राय माना जाता है, तो उनमें तथा कुछ आधुनिक अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म प्रकट हो जाता है। सभी अपभ्रंशों में से केवल नागर अपभ्रंश में साहित्यिक रचना हुई है। परन्तु प्राकृत वैयाकरणों में विभिन्न अपभ्रंशों के नमूने मिलते हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वेक्षण में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म जिन अपभ्रंशों से माना है, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है —

(1) **ब्राचड**—सिन्धु नदी के निचले प्रदेश की अपभ्रंश। इससे **सिन्धी और लहन्दी** निकली, परन्तु इन पर दरदीय भाषा का प्रभाव है,

(2) **वैदर्भ** या दाक्षिणात्य—नर्मदा नदी के दक्षिण में अरब सागर से उड़ीसा तक की विभिन्न विभाषाएं। विदर्भ प्रदेश (आधुनिक बरार) इन का केन्द्र था, और इन से इस प्रकार आधुनिक भाषाएं उत्पन्न हुईं —

(क) महाराष्ट्री से मराठी

(ख) ओड्र या औत्कल से **उड़िया**

(3) **मागधी**—ओड्र के उत्तर में वर्तमान छोटानागपुर तथा बिहार में बनारस तक। **बिहारी** भाषाओं का प्रादुर्भाव इसी से हुआ।

(4) **गौड़** या प्राच्य—मागधी के पूर्व में वर्तमान मालदा के आस-पास। इसकी दक्षिण तथा दक्षिण पूर्वी शाखा ने **बंगला** को और उत्तर तथा उत्तर पूर्वी शाखा ने आसामी को जन्म दिया।

(5) **अर्धमागधी**—पूर्वी तथा पश्चिमी प्राकृतों के बीच मध्यवर्ती प्राकृत का अपभ्रंश रूप। इस से अवध, बघेलखण्ड, छत्तीसगढ़ क्षेत्र में पूर्व में बनारस तथा पश्चिम में इलाहाबाद तक बोली जाने वाली **पूर्वी हिन्दी** का जन्म हुआ।

(6) **नागर अपभ्रंश**—मूल रूप में गुजरात तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र की भाषा थी जहाँ अब भी नागर ब्राह्मणों का समाज में मुख्य स्थान है। परन्तु इसकी दूरस्थ क्षेत्रों तक कई विभाषाएं रही हैं —

(क) **शौरसेनी**—गंगा के मध्य दोआब की अपभ्रंश जो **पश्चिमी** हिन्दी की जननी है।

(ख) **टक्क** एवं उपनागर—पंजाब की विभिन्न बोलियों की जननी।

(ग) आवन्त्य—उज्जैन के आस पास की अपभ्रश। इस से राजस्थानी का जन्म हुआ

(घ) गार्जर—वर्तमान गुजराती की जननी।

इनके अतिरिक्त डॉ० ग्रियर्सन पहाडी भाषाओं का विकास भी इसी नागर अपभ्रश की किसी शाखा से हुआ मानते है, और विशेष रूप से इनकी उत्पत्ति आवन्त्य अपभ्रश से जोडते है।

अपभ्रंश की विशेषताएं

अपभ्र श की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित है —

(1) वैदिक सस्कृत तथा लौकिक सस्कृत सयोगात्मक भाषाए थी। प्राकृत मे वियोगात्मकता की ओर लक्षण दिखाई देते थे, परन्तु अपभ्र श मे भाषा पूर्णत वियोगात्मक हुई।

(2) वियोगात्मकता के मुख्य लक्षणो के अन्तर्गत सस्कृत की विभक्तियो का लोप था। अब विभक्तियो के स्थान पर कारक परसर्गों का प्रयोग आम हो गया। 'मज्झ' (मे, बीच मे), सहु (मे), केर, कर (का, के आदि) कारक चिह्नो की अलग सत्ता अस्तित्व मे आई और यह प्रवृत्ति आगे वढती गई।

(3) यही नही कुछ विभक्तियो का लोप ही हो गया। उनका काम अन्य साझे कारक चिह्नो से ही चलने लगा। इस तरह कारको की सख्या कम हो गई। कर्म कारक तथा सम्प्रदान के लिए एक से कारक चिह्न प्रयुक्त हो गए जैसा कि आज भी 'को' और 'के लिए' प्राय एक दूसर के स्थान पर प्रयुक्त होते है। इसी तरह षष्ठी विभक्ति का भी लोप हो गया। कर्त्ता और कर्म के एक वचन और बहुवचन की विभक्तिया नष्ट हो गईं। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द्र लिखता हैं ' स्यम्जस शसा लुक ।'' विभक्तियो के केवल तीन समूह बन गए—(1) तृतीय-सप्तमी, (2) चतुर्थी-पचमी-षष्ठी, और (3) प्रथम-द्वितीय और सम्बोधन।

(4) सहायक क्रियाओ का प्रयोग, जो प्राकृत मे आरम्भ हो गया था, अपभ्र श मे पूरा जोर पकड गया। भाषा क्रिया-विषयक (Verbal) से नाम-विषयक (nominal) की ओर आने लगी। क्रियाए कम तथा सज्ञा शब्द अधिक प्रयुक्त होने लगे। सज्ञा शब्दो के साथ सहायक क्रिया लगाकर मूल क्रियाओ का ह्रास हो गया।

(5) सस्कृत के लिंग सम्बन्धी कठोर नियम प्राय शिथिल हो गए। नपुसक लिंग प्राय समाप्त हो गया।

(6) उकार शब्दो का प्रयोग अधिक हो गया। यही कारण है कि अपभ्र श को 'उकार बहुला भाषा' कहा जाता है।

(7) तत्सम, तद्भव तथा देश्य शब्दो म से अन्तिम श्रेणी के शब्दो की प्रधानता हो गई। यद्यपि देश्य शब्द भी सस्कृत प्राकृत से ही आए थे, परन्तु इनका रूप इतना विकृत हो गया था कि इनका तत्सम्बन्धी सस्कृत शब्दो स रूप जोडना आसान न था।

(8) जो स्वर प्राकृत मे लुप्त थे, वे अपभ्र श मे भी लुप्त रहे—ऋ, ॠ, ऌ, ॡ

का लोप हो गया।

(9) ए और ओ की ह्रस्व रूप ध्वनियां स्थापित हो चुकी थीं, परन्तु लिखित रूप में उनके लिए अलग अक्षर नहीं था। कहीं इनका प्रयोग ए, ओ से कहीं इ, उ से और कहीं ऐ, औ से होता पाया गया है।

(10) श तथा ष के स्थान पर प्राय केवल 'स' का प्रयोग होता था।

(11) प्राकृत 'ल' का प्रयोग अब कुछ सीमित हो गया। केवल महाराष्ट्री में ही इसका पूर्ववत प्रयोग रहा।

(12) मूर्धन्य ध्वनियों का प्रयोग अधिक होने लगा। इनमें से भी 'ड' विशेषत अग्रसर था और इसीसे मिलती दूसरी ध्वनि 'ड' भी अस्तित्व में आई।

(13) सस्कृत एवं प्राकृत से प्राप्त अन्त्य स्वरो का लोप हो गया। शब्द का अन्तिम स्वर प्राकृत में ही शिथिल हो रहा था। अपभ्रंश में आकर इसका ह्रास ही हो गया—जैसे स० उत्पद्यते > प्रा० उपज्जई > अप० उपज्ज > हिन्दी उपज, स० अवश्या > प्रा० ओस्सा > अप० ओस, स० मसूरिका > प्रा० मसूर > अप० मसूर, स० लाला > प्रा० लाला > अप० लार > कु० लाल (मुह की लार), स० वरयात्रा > प्रा० वरआत > अप० वरात।

(14) अपभ्रंश में 'म' प्राय 'व' में बदलता है—कमल > कवल, चमर > चवर।

(15) सयुक्त रेफ का लोप हो गया।

(16) सस्कृत 'क्ष' प्राय 'क्ख' में बदल जाता है—चोक्ष > चोक्खा, पक्षी > पक्खी।

(17) उपान्त्य स्वरों की मात्रा सुरक्षित रही—गभीर > गहिर, अन्धकार > अन्धअर आदि।

(18) आद्य अक्षर में क्षतिपूरक दीर्घीकरण द्वारा द्वित्वव्यंजन के स्थान पर एक व्यंजन का प्रयोग हो गया।

(19) अपभ्रंश की व्यंजन ध्वनियों की मुख्य विशेषता स्वर-मध्यम व्यंजनों का लोप है, जिनमें प्रमुखत महाप्राण व्यंजनों का 'ह' में बदलना है, जैसे—परकीया > पराइया, योगिन > जोगी > जोई, सखि > सहि, कथा > कहा, दीर्घ > दीह, दधि > दही आदि।

अध्याय 2

भारत की आधुनिक भाषाएँ

आर्यों के भारत मे आगमन के सम्बन्ध मे विद्वानों का मत है कि ये लोग भारत मे कम से कम मुख्य दो दलो मे आए। एक दल ईरान और काबुल से होता हुआ सिन्धु घाटी मे पहुँचा, और दूसरे दल ने गिलगित और चित्राल होते हुए मध्यदेश मे प्रवेश किया। प्रथम दल ने स्वत अथवा दूसरे दल के प्रभाव से मध्यदेश मे बाहर-बाहर ही क्रमश पूर्व, दक्षिण और पश्चिम की ओर फैलना आरम्भ किया और वे इस तरह पहले पजाब, सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र और फिर उडीसा, बगाल तथा आसाम तक फैल गए। दूसरा दल मध्यदेश के विभिन्न भागो मे फैल गया, जिसकी सीमाए प्राय उत्तर मे हिमालय पर्वत, दक्षिण मे विध्य-पर्वत, पश्चिम मे सरहिंद तथा पूर्व मे गगा-यमुना के अन्तिम क्षेत्र थे।

आर्यों के इस दो दलीय प्रवेश एव फैलाव के आधार पर डॉ० हार्नले ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ के मुख्यत दो भाग माने, (1) बाहरी और (2) भीतरी शाखा। बाद मे डॉ० ग्रियर्सन ने डॉ० हार्नले के साथ सहमति प्रकट करते हुए इसकी पुष्टि में अनेक सिद्धान्त, प्रमाण और तर्क प्रस्तुत किए। इस धारणा को आधार मानते हुए डॉ० ग्रियर्सन ने समस्त भारतीय भाषाओ का सर्वेक्षण किया, और अपने परिणाम 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' मे प्रकाशित किए। [इस भाषा सर्वेक्षण मे डॉ० ग्रियर्सन ने भारत की 179 भाषाओ तथा 544 बोलियो का उल्लेख किया है, परन्तु इनम मद्रास तथा बर्मा के प्रदेश और उस समय के हैदराबाद एव मैसूर राज्य की भाषाओ और बोलियो का ब्योरा शामिल नही है, क्योंकि उनके अनुसार ये उनके कार्यक्षेत्र से बाहर पडती थी। सर्वेक्षण मे डॉ० ग्रियर्सन ने हार्नले के उपर्युक्त दो वर्गों के अतिरिक्त एक मध्यवर्ती भाग भी माना, और इस तरह आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया :—

(क) बाहरी उप-शाखा

(i) उत्तर-पश्चिम श्रेणी—

1. लहदा,
2. सिंधी,

(ii) दक्षिणी श्रेणी—

3 मराठी,

(iii) पूर्वी श्रेणी—

4 उड़िया,

5 बिहारी,

6. बंगला,

7. असमिया,

(ख) मध्यवर्ती उप-शाखा

8 पूर्वी हिन्दी

(ग) भीतरी उप-शाखा

(i) केन्द्रीय श्रेणी—

9 पश्चिमी हिन्दी

10 पंजाबी

11. राजस्थानी

12 गुजराती

13 भीली

14 खानदेशी

(ii) पहाड़ी श्रेणी—

15 पूर्वी पहाड़ी या नेपाली

16 मध्य पहाड़ी

17 पश्चिमी पहाड़ी

डॉ० ग्रियर्सन ने उपर्युक्त वर्गीकरण का मुख्य आधार व्याकरण की भिन्नताएं बताया है। परन्तु प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने व्याकरण के हर पहलु को लेकर डॉ० ग्रियर्सन के उक्त वर्गीकरण की आलोचना की, और भाषा शास्त्रीय आधार पर इसका खण्डन करते हुए इसे अवैज्ञानिक सिद्ध किया। उन्हें बाहरी और भीतरी शाखाओं में वर्गीकरण पर आपत्ति थी। डॉ० ग्रियर्सन के सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए डॉ० चटर्जी ने भाषाओं की विकास परम्पराओं को दृष्टि में रखते हुए आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का निम्नलिखित रूप से वर्गीकरण किया—

(क) उदीच्य (उत्तरी)

1 सिन्धी 2 लहंदी 3 पूर्वी पंजाबी

(ख) प्रतीच्य (पश्चिमी)

4 गुजराती 5 राजस्थानी

(ग) मध्यदेशीय

6 पश्चिमी हिन्दी

(घ) प्राच्य (पूर्वी)

10 बगला 11. असमिया

(ट) दाक्षिणात्य (दक्षिणी)

12. मराठी

डॉ० चटर्जी कश्मीरी को दरदीय भाषा मानते हैं और पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी पहाडी को खस अथवा दरदी से प्रसूत मानते हैं। इस विवरण से स्पष्ट है कि डॉ० चटर्जी मूलत वर्गीकरण के आधार से सहमत नही हुए है। उदाहरणो सहित उन्होंने ग्रियर्सन के वर्गीकरण को पूर्णत खण्डित किया है। हा, भाषाओ के बारे मे उनके विचार डॉ० ग्रियर्सन से अधिक भिन्न नही हैं।

नीचे भारत की आधुनिक सभी भाषाओ (आर्य एव अनार्य) का सक्षेप मे परिचय दिया जा रहा है —

1 द्रविड़ परिवार

द्रविड भाषाओ का मूल स्थान दक्षिण भारत है। उत्तर म इसकी सीमा मध्यप्रदेश का चादा जिला है और पश्चिम मे कोल्हापुर के दक्षिण-पश्चिम से दक्षिण का भाग द्रविड भाषाओं का क्षेत्र है। मैसूर, आन्ध्र, तामिल नाडू और केरल द्रविड भाषाओं के केन्द्र हैं। कन्नड, तेलुगू, तमिल और मलयालम इस परिवार की मुख्य भाषाए है। कुर्ग की कोडगु, नीलगिरि के जगली कबीलो की 'तोडा' और 'कोटा' बोलिया भी द्रविड परिवार से ही हैं। इनके अतिरिक्त, मध्यप्रदेश एव बरार की 'गोडी', बिहार की 'ओरॉव, उडीसा की 'कन्धी' भी इस परिवार की उल्लेखनीय बोलियाँ हैं।

द्रविड भाषाओ मे तमिल का मुख्य स्थान है। यह तमिल-नाडु राज्य तथा लका के उत्तरी भाग मे बोली जाती है। शेन और कोडुन इसकी मुख्य बोलियाँ है।

मलयालम को तमिल की शाखा माना जाता है। भारत के सुदूर दक्षिणी-पश्चिमी कोना, जिसमे मुख्यत केरल राज्य है, मलयालम का क्षेत्र है।

कन्नड मैसूर राज्य की भाषा है। इसकी कई बोलियाँ हैं, जिनमे से बडग, कुरुम्ब, तथा गोलरी प्रधान हैं। कन्नड, भाषा मे तमिल से और लिपि मे तेलुगू से मिलती है।

तेलुगू आध्र प्रदेश की भाषा है, द्रविड भाषाओं मे तेलुगू बोलने वालो की सख्या सबसे अधिक है। यह अत्यन्त श्रुति मधुर और सुरीली भाषा है। रोमटाउ, सालेवारी, बेरडी, वडरी, कामाठी इसकी मुख्य बोलियाँ हैं।

(1) द्रविड भाषाओ की मुख्य विशेषता इनका सयोगात्मक स्वरूप है। मूल शब्द म एक के बाद दूसरे प्रत्यय लगते जाते है।

(2) द्रविड भाषाओं मे प्राय तीन लिंग हैं। परन्तु पुल्लिग और स्त्रीलिंग का भेद केवल प्राणिवाचक सज्ञा और सर्वनाम तक सीमित है। यहाँ भी यदि सजीव सज्ञा मे तर्क से पुल्लिग और स्त्रीलिंग का भेद स्पष्टत प्रकट न होता हो, तो निर्जीव सज्ञाओ की भावना रहती है जो सभी नपुसक लिंग है।

(3) वचन दो होते हैं—एक वचन, बहु-वचन। परन्तु नपुसक सज्ञापदो के बहु-

वचन के रूप बहुत कम मिलते हैं।

(4) द्रविड भाषाओं में हिन्दी भाषा के ए ऐ और ओ-औ के बीच की ध्वनियाँ भी विद्यमान हैं। इन ह्रस्व ए और ओ की ध्वनि हमारी पहाडी भाषा के एँ और ओँ से बहुत मिलती जुलती है।

(5) द्रविड भाषाओं में टवर्गीय ध्वनियों की प्रधानता है।

(6) दन्त्य 'ल' के साथ-साथ मूर्धन्य ळ बहुप्रचलित वर्ण है।

(7) अघोष वर्ण शब्द के आदि में नहीं आते या वे आदि में द्वित्त रूप में होते हैं या अनुस्वार के पश्चात होते हैं। परन्तु अन्यत्र वे सघोष हो जाते हैं।

(8) द्रविड में व्यंजनांत शब्दों के स्वरांत होने की प्रवृत्ति है, ऐसे ही जैसे हिमाचल की शिमला के उत्तर की विभाषाओं में ये औकारान्त हो जाते हैं।

(9) संस्कृत में संज्ञा शब्दों की तरह विशेषण शब्दों के रूप भी सम्पन्न होते हैं, परन्तु द्रविड भाषाओं में विशेषणों के कारक-सम्बन्धी रूप नहीं होते।

(10) द्रविड भाषाओं में भाव-वाचक संज्ञा अथवा विशेषण के बदले में क्रिया के सम्बन्धवाची कृदन्तीय पदों का प्रयोग होता है।

2 आस्ट्रिक परिवार

भारत की भाषाओं का दूसरा वर्ग आस्ट्रिक परिवार है। इस परिवार की भाषाओं के मुख्य तीन वर्ग हैं —

(क) **कोल या मुंडा**—मध्य प्रदेश मुंडा भाषाओं का केन्द्र है और छोटा नागपुर में यह विशेष रूप से बोली जाती है। वैसे पश्चिमी बंगाल, बिहार की दक्षिणी पहाड़ियों, *उडीसा के कुछ जंगली क्षेत्र, तथा मद्रास के गंजाम जिले की भाषा भी यही है।* इसे पहले कोल भाषा कहा जाता था। मक्समूलर ने सर्वप्रथम इन्हें मुण्डा नाम दिया। खेरवारी इस भाषा की प्रतिनिधि है, इसका मुख्य स्थान मध्य भारत पठार का उत्तर-पूर्वी छोर, विन्ध्याचल का पूर्वी भाग है। इसमें भी अधिक महत्वपूर्ण बोलियाँ 'संताली', 'मुंडारी' तथा 'हो' हैं। संताली (या सथाली) बोली बिहार, उडीसा और असम के कुछ भागों में बोली जाती है। मुंडारी मुख्यतः बिहार में राँची के आस-पास बोली जाती है, और 'हो' का क्षेत्र सिंहभूमि जिला है। इनके अतिरिक्त मध्य प्रदेश के पश्चिमी जिलों, मालवा के आस-पास तथा मेवाड की भाषा भी मुंडा है। इसे स्थानीय भाषा में कूर्कू कहते हैं। खेरवारी क्षेत्र के आस-पास खड़िया (छोटा नागपुर का राची क्षेत्र), जुआंग (उडीसा में भूतपूर्व केंवझर तथा ढोंकानाल रियासतों के जुआंग लोग) सवर और गदबा (उत्तर-पूर्वी मद्रास आंध्र की सीमा पर) बोलियों में मुण्डा के सभी गुण समाविष्ट हैं।

(ख) **खासी**—इस उप-परिवार में मोनख्मेर, पलाग, वा, खासी आदि प्रमुख भाषाएं आती हैं। इनमें मोन ख्मेर, पलाग, वा बर्मा तथा हिन्द चीन की भाषाएं हैं। भारतवर्ष में इस भाषा का क्षेत्र असम प्रदेश के खासी एवं जयन्तिया के पर्वत हैं। अपने सीमान्त बर्मी भाषा से यह कदरे भिन्न है। पास-पडोस की तिब्बती-बर्मी तथा भारतीय

10 वगला 11 असमिया

(ड) दाक्षिणात्य (दक्षिणी)

12. मराठी

डॉ० चटर्जी कश्मीरी को दरदीय भाषा मानते हैं और पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी पहाडी को खस अथवा दरदी से प्रसून मानते हैं। इस विवरण से स्पष्ट है कि डॉ० चटर्जी मूलत वर्गीकरण के आधार से सहमत नही हुए हैं। उदाहरणो सहित उन्होंने ग्रियर्सन के वर्गीकरण को पूर्णत खण्डित किया है। हा, भाषाओ के बारे मे उनके विचार डॉ० ग्रियर्सन से अधिक भिन्न नही हैं।

नीचे भारत की आधुनिक सभी भाषाओ (आर्य एव अनार्य) का सक्षेप मे परिचय दिया जा रहा है —

1 द्रविड़ परिवार

द्रविड भाषाओ का मूल स्थान दक्षिण भारत है। उत्तर मे इसकी सीमा मध्य-प्रदेश का चादा जिला है और पश्चिम मे कोल्हापुर के दक्षिण-पश्चिम मे दक्षिण का भाग द्रविड भाषाओ का क्षेत्र है। मैसूर, आन्ध्र, तामिल-नाडु और केरल द्रविड भाषाओ के केन्द्र है। कन्नड, तेलुगू, तमिल और मलयालम इस परिवार की मुख्य भाषाए हैं। कुर्ग की कोडगु, नीलगिरि के जगली कबीलो की 'तोडा' और 'कोटा' बोलिया भी द्रविड परिवार से ही हैं। इनके अतिरिक्त, मध्यप्रदेश एव बरार की 'गोडी', बिहार की 'ओरॉव', उडीसा की 'कन्धो' भी इस परिवार की उल्लेखनीय बोलियाँ हैं।

द्रविड भाषाओ मे तमिल का मुख्य स्थान है। यह तमिल-नाडु राज्य तथा लका के उत्तरी भाग मे बोली जाती है। शेन और कोडुन इसकी मुख्य बोलियाँ हैं।

मलयालम को तमिल की शाखा माना जाता है। भारत के सुदूर दक्षिणी-पश्चिमी कोना, जिसमे मुख्यत केरल राज्य है, मलयालम का क्षेत्र है।

कन्नड मैसूर राज्य की भाषा है। इसकी कई बोलियाँ हैं, जिनमे से बडग, कुरुम्ब, तथा गोलरी प्रधान हैं। कन्नड, भाषा मे तमिल से और लिपि मे तेलुगू से मिलती है।

तेलुगू आध्र प्रदेश की भाषा है, द्रविड भाषाओ मे तेलुगू बोलने वालो की सख्या सबसे अधिक है। यह अत्यन्त श्रुति मधुर और सुरीली भाषा है। रोमटाउ, सालेवारी, बेरडी, वडरी, कामाठी इसकी मुख्य बोलियाँ है।

(1) द्रविड भाषाओ की मुख्य विशेषता इनका सयोगात्मक स्वरूप है। मूल शब्द मे एक के बाद दूसरे प्रत्यय लगते जाते है।

(2) द्रविड भाषाओ मे प्राय तीन लिंग हैं। परन्तु पुल्लिंग और स्त्रीलिंग का भेद केवल प्राणिवाचक सज्ञा और सर्वनाम तक सीमित है। यहाँ भी यदि सजीव सज्ञा मे तर्क से पुल्लिंग और स्त्रीलिंग का भेद स्पष्टत प्रकट न होता हो, तो निर्जीव सज्ञाओ की भावना रहती है जो सभी नपुसक लिंग हैं।

(3) वचन दो होते है—एक-वचन, बहु-वचन। परन्तु नपुसक सज्ञापदो के बहु-

वचन के रूप बहुत कम मिलते हैं।

(4) द्रविड भाषाओं मे हिन्दी भाषा के ए-ऐ और ओ-औ के बीच की ध्वनियाँ भी विद्यमान हैं। इन ह्रस्व ए और ओ की ध्वनि हमारी पहाड़ी भाषा के ऍ और ऑ से बहुत मिलती जुलती है।

(5) द्रविड भाषाओं मे टवर्गीय ध्वनियों की प्रधानता है।

(6) दन्त्य 'ल' के साथ-साथ मूर्धन्य ल बहुप्रचलित वर्ण है।

(7) अघोष वर्ण शब्द के आदि मे नही आते या वे आदि मे द्वित्त रूप मे होते हैं या अनुस्वार के पश्चात होते हैं। परन्तु अन्यत्र वे सघोष हो जाते हैं।

(8) द्रविड में व्यजनात शब्दों के स्वरात होने की प्रवृत्ति है, ऐसे ही जैसे हिमाचल की शिमला के उत्तर की विभाषाओं मे ये औकारान्त हो जाते हैं।

(9) सस्कृत मे सज्ञा शब्दो की तरह विशेषण शब्दो के रूप भी सम्पन्न होते हैं, परन्तु द्रविड भाषाओ मे विशेषणो के कारक-सम्बन्धी रूप नही होते।

(10) द्रविड भाषाओं म भाव-वाचक सज्ञा अथवा विशेषण के बदले मे त्रिया के सम्बन्धवाची कृदन्तीय पदो का प्रयोग होता है।

2 आस्ट्रिक परिवार

भारत की भाषाओं का दूसरा वर्ग आस्ट्रिक परिवार है। इस परिवार की भाषाओं के मुख्य तीन वर्ग हैं —

(क) कोल या मुडा—मध्य प्रदेश मुडा भाषाओं का केन्द्र है और छोटा नागपुर में यह विशेष रूप से बोली जाती है। वैसे पश्चिमी बगाल, बिहार की दक्षिणी पहाड़ियो, उडीसा के कुछ जगली क्षेत्र, तथा मद्रास के गजाम जिले की भाषा भी यही है। इसे पहले कोल भाषा कहा जाता था। मक्समूलर ने सर्वप्रथम इन्हें मुण्डा नाम दिया। खेरवारी इस भाषा की प्रतिनिधि है, इसका मुख्य स्थान मध्य भारत पठार का उत्तर-पूर्वी छोर, विन्ध्याचल का पूर्वी भाग है। इसमें भी अधिक महत्वपूर्ण बोलियाँ 'सताली', 'मुडारी' तथा 'हो' हैं। सताली (या सथाली) बोली बिहार, उडीसा और असम के कुछ भागो मे बोली जाती है। मुडारी मुख्यत बिहार म राँची के आस-पास बोली जाती है, और 'हो' का क्षेत्र सिहभूमि जिला है। इनके अतिरिक्त मध्य प्रदेश के पश्चिमी जिलों, मालवा के आस पास तथा मेवाड की भाषा भी मुडा है। इसे स्थानीय भाषा मे कुर्कू कहते हैं। खेरवारी क्षेत्र के आस-पास खडिया (छोटा नागपुर का राची क्षेत्र), जुआग (उडीसा म भूतपूर्व केंवयर तथा धोकानाल रियासतो के जुआग लोग) सवर और गदबा (उत्तर पूर्वी मद्रास आध्र की सीमा पर) बोलियो मे मुण्डा के सभी गुण समाविष्ट हैं।

(ख) खासी—इस उप-परिवार म मौनख्मेर, पलाग, वा, खासी आदि प्रमुख भाषाए आती हैं। इनमे मौन ख्मेर, पलाग, वा वर्मा तथा हिन्द चीन की भाषाए हैं। भारतवर्ष मे इस भाषा का क्षेत्र असम प्रदेश के खासी एव जयन्तिया के पर्वत हैं। अपने सीमान्त वर्मी भाषा से यह कदरे भिन्न है। पास-पडौस की तिब्बती-वर्मी तथा भारतीय

मुडा-भाषाओं से भी यह अछूती रही है। लिमम, सिटेंग तथा थार इसकी स्थानीय उप-भाषाओं के नाम हैं। इस भाषा की मुख्य विशेषता यह है कि हिन्दी की तरह इसमें भी व्याकरणीय लिंग भेद वर्तमान है।

(ग) नीकोबारी—नीकोबार द्वीप में बोली जाने वाली भाषा भी इसी परिवार में आती है।

भारत में आस्ट्रिक परिवार की भाषाओं में मुडा भाषा की ही अधिक प्रधानता है। मुडा भाषा के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं —

(1) मुडा भाषाएं योगात्मक परिवार से हैं और इस दिशा में वे तुर्की भाषा के बहुत निकट है। तुर्की की भाँति इनका योग भी बड़ा सरल और स्पष्ट है। शब्द निर्माण में प्रत्यय पर प्रत्यय जुडते रहते हैं और इस तरह शब्द के असाधारण बडे आकार को देखकर आश्चर्य नही होना चाहिए।

(2) तिब्बती-चीनी भाषाओं की कतिपय विशेषताएँ, मुण्डा भाषा में भी विद्यमान हैं। तिब्बती चीनी में शब्द का अन्तिम व्यजन उच्चरित नही होता, या उसका उच्चारण बहुत धीमा होता है—जैसे दुग (है) के लिए दु। यह प्रवृति मुण्डा भाषाओं में भी है। इस भाषा की मौन-ख्मेर और खासी बोलियो म यह लक्षण तिब्बती-हिन्द-चीनी भाषाओं का गहरा सम्पर्क होगा।

(3) इसी तरह चीनी की तरह ही इस भाषा मे भी एक ही शब्द एक ही रूप में सज्ञा, क्रिया और विशेषण आदि का काम देता है। विभिन्न स्थितियो में प्रयोग होने के लिए मूल शब्दाकार मे परिवर्तन नही आता।

(4) सस्कृत की तरह इस भाषा में भी वचन तीन होते हैं—एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन। सज्ञा में अन्य पुरुष सर्वनाम के द्विवचन तथा बहुवचन के रूप जोडने से द्विवचन और बहुवचन बन जाते हैं—जैसे, हाड=आदमी, हाडकीन=दो आदमी, हाडको=कई आदमी।

(5) उत्तम पुरुष सर्वनाम के द्विवचन तथा बहुवचन के दो दो रूप होते हैं—अले और अबोन। 'अले' का अर्थ केवल कहने वालों के लिए 'हम' से है। जब 'अबोन' कहा जाएगा तो कहने वाले के साथ सुनने वाला भी शामिल होगा। "हम (अले) पढ़ेंगे" का अर्थ है कि केवल हम पढ़ेंगे, परन्तु 'हम (अबोन) पढेंगे' का भाव है कि हमारे साथ सुनने वाला/ले भी पढ़ेंगे।

(6) सम्बन्ध वाचक सर्वनाम के स्थान पर क्रिया के कृदन्तीय रूपों का ही प्रयोग होता है—"सेब जिसे तुमने खाया, कच्चा था" के स्थान पर 'तुम्हारे द्वारा खाया हुआ सेब कच्चा था" होगा। पहाड़ी भाषाओं में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है "सेऊ जो ते खाऊ, काचा थी" की बजाय 'ते खाऊ हुँदा सेउ काचा थी' ही कहा जाता है।

(7) इन भाषाओं में सख्या केवल बीस तक या दस तक गिनी जाती है। उसके बाद दस और एक (ग्यारह), दस और-दो (अर्थात् बारह) इस तरह गिना जाता है। उदाहरणार्थ दस के लिए 'गैल' तथा चार के लिए 'पोनेआ' शब्द है—गैल-खन-पोनेआ

का अर्थ हुआ दस-और-चार अर्थात् चौदह। या घटा कर अभिव्यक्ति की जाती है—जैसे 'इसी' बीस के लिए शब्द है, 'वारेआ' दो के लिए, अतएव 'वारेआ कम इसी' का अर्थ 20 कम 2 (20—2) अर्थात् अठारह हुआ।

(8) ज़ोर देने के लिए शब्द की पुनरावृत्ति की जाती है, उदाहरणार्थ दल = मारना, दल-दल = बार-बार मारना, ददल = खूब मारना।

(9) प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाने का बडा सहज ढग है। मूल धातु मे 'ओची' जोडने से प्रेरणार्थक क्रिया बन जाती है।

(10) लिंग दो होते है। स्त्रीवाचक और पुरुषवाचक शब्द जोडने से लिंग भेद प्रकट होते है—जैसे, आडिया-कूल 'बाघ' और एगा-कूल 'बाघिन'। कुछ अवस्थाओ मे हिन्दी की तरह 'आ' और 'ई' जोड कर भी लिंग भेद होता है।

(11) महाप्राण ध्वनियो मे हिन्दी की अपेक्षा महाप्राणत्व अधिक होना है।

3 करेन तथा मन परिवार

तीसरा परिवार करेन तथा मन भाषाओ का है। वैसे ये दोनो भाषाए वर्तमान भारत से बाहर की है। करेन दक्षिणी बर्मा तथा स्याम के समीपवर्ती भागो मे बोली जाती है। कुछ विद्वान इसे चीनी की पूर्ववर्ती भाषा मानते हैं। चीनी भाषा मे 'मन' का अर्थ 'दक्षिण' के लोग है, और यह शब्द प्राय हिन्द-चीन के क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। इन भाषाओ का भारत से कुछ भी सम्बन्ध नही बताया गया है। परन्तु ऐसा सकेत है कि हिमाचल के किन्नौर ज़िले की किराती भाषा से इसका कुछ साम्य हो, परन्तु सामग्री के अभाव मे अभी इस सम्बन्ध मे निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता।

4. तिब्बती-चीनी परिवार

भारत की भाषाओ मे तिब्बती-चीनी परिवार का भी विशेष महत्त्व है। ये भाषाए भारत के उत्तर मे हिमालय के अवरुनी तथा दामन मे पश्चिम से पूर्व की ओर स्याम तक बोली जाती है। इन भाषाओ के मुख्य दो उप-परिवार है—(क) तिब्बती-बर्मी भाषाए, तथा (ख) स्यामी-चीनी भाषाए।

सभी स्यामी-चीनी भाषाए लगभग भारतवर्ष से बाहर बोली जाती है। तिब्बती-बर्मी उप परिवार की भी दो मुख्य शाखाए मानी गई है—(i) तिब्बती-हिमालयवर्ती तथा (ii) असम-बर्मी। तिब्बती-हिमालय-शाखा की सर्वाधिक प्रतिनिधि भाषा 'तिब्बती' है, और असम बर्मी की प्रतिनिधि 'बर्मी' है। बीच मे तिब्बती-बर्मी की विभिन्न उप-भाषाए आती है। मूल तिब्बती तथा मूल बर्मी भाषा का वर्तमान भारत से कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि मूल रूप मे ये दोनो भारत के किसी भाग मे नही बोली जाती।

भारत मे बोली जाने वाली उपर्युक्त तिब्बती-हिमालयवर्ती वर्ग की भाषाओ को 'भोटिया या 'भोटी' कहा जाता है। इसकी भी दो शाखाए है —

(1) पूर्वी शाखा—इसम भूटान की ल्होके, सिक्किम की डा-जागका, नेपाल की शर्पा एव कागते, तथा कुमाऊ और गढवाल मे बोली जाने वाली छोटी-छोटी बोलिया है,

मुडा-भाषाओं से भी यह अछूती रही है। लिंगम, सिटेंग तथा वार इसकी स्थानीय उप-भाषाओं के नाम है। इस भाषा की मुख्य विशेषता यह है कि हिन्दी की तरह इसमें भी व्याकरणीय लिंग-भेद वर्तमान है।

(ग) नीकोबारी—नीकोबार द्वीप में बोली जाने वाली भाषा भी इसी परिवार में आती है।

भारत में आस्ट्रिक परिवार की भाषाओं में मुडा भाषा की ही अधिक प्रधानता है। मुडा भाषा के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं —

(1) मुडा भाषाएं योगात्मक परिवार से है और इस दिशा में वे तुर्की भाषा के बहुत निकट हैं। तुर्की की भांति इनका योग भी बड़ा सरल और स्पष्ट है। शब्द निर्माण में प्रत्यय पर प्रत्यय जुडते रहते हैं और इस तरह शब्द के असाधारण बड़े आकार को देखकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

(2) तिब्बती-चीनी भाषाओं की कतिपय विशेषताएँ, मुण्डा भाषा में भी विद्यमान है। तिब्बती-चीनी में शब्द का अन्तिम व्यंजन उच्चरित नहीं होता, या उसका उच्चारण बहुत धीमा होता है—जैसे दुग (है) के लिए दु। यह प्रवृति मुण्डा भाषाओं में भी है। इस भाषा की मौन-ख्मेर और खासी बोलियों में यह लक्षण तिब्बती-हिन्द-चीनी भाषाओं का गहरा सम्पर्क होगा।

(3) इसी तरह चीनी की तरह ही इस भाषा में भी एक ही शब्द एक ही रूप में संज्ञा, क्रिया और विशेषण आदि का काम देता है। विभिन्न स्थितियों में प्रयोग होने के लिए मूल शब्दाकार में परिवर्तन नहीं आता।

(4) संस्कृत की तरह इस भाषा में भी वचन तीन होते हैं—एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन। संज्ञा में अन्य पुरुष सर्वनाम के द्विवचन तथा बहुवचन के रूप जोडने से द्विवचन और बहुवचन बन जाते हैं—जैसे, हाड=आदमी, हाडकीन=दो आदमी, हाडको=कई आदमी।

(5) उत्तम पुरुष सर्वनाम के द्विवचन तथा बहुवचन के दो-दो रूप होते हैं—अले और अबोन। 'अले' का अर्थ केवल कहने वालों के लिए 'हम' से है। जब 'अबोन' कहा जाएगा तो कहने वाले के साथ सुनने वाला भी शामिल होगा। "हम (अले) पढ़ेंगे" का अर्थ है कि केवल हम पढेंगे, परन्तु 'हम (अबोन) पढेंग' का भाव है कि हमारे साथ सुनने वाला/ते भी पढ़ेंगे।

(6) सम्बन्ध वाचक सर्वनाम के स्थान पर क्रिया के कृदन्तीय रूपों का ही प्रयोग होता है—"सेब जिसे तुमने खाया, कच्चा था" के स्थान पर "तुम्हारे द्वारा खाया हुआ सेब कच्चा था" होगा। पहाड़ी भाषाओं में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है "सेऊ जो तें खाऊ, काचा थी" की बजाय 'तें खाऊ हुंदा सेउ काचा थी' ही कहा जाता है।

(7) इन भाषाओं में संख्या केवल बीस तक या दस तक गिनी जाती है। उसके बाद दस-और एक (ग्यारह), दस और-दो (अर्थात् बारह) इस तरह गिना जाता है। उदाहरणार्थ दस के लिए "गैल" तथा चार के लिए 'पोनेआ' शब्द है—गैल-खन-पोनेआ

का अर्थ हुआ दस-और-चार अर्थात् चौदह। या घटा कर अभिव्यक्ति की जाती है—जैसे 'इसी' बीस के लिए शब्द है, 'वारेआ' दो के लिए, अतएव 'बारेआ कम इसी' का अर्थ 20 कम 2 (20—2) अर्थात् अठारह हुआ।

(8) जोर देने के लिए शब्द की पुनरावृत्ति की जाती है, उदाहरणार्थ दल = मारना, दल-दल = बार-बार मारना, ददल = खूब मारना।

(9) प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाने का बड़ा सहज ढंग है। मूल धातु मे 'ओची' जोड़ने से प्रेरणार्थक क्रिया बन जाती है।

(10) लिंग दो होते हैं। स्त्रीवाचक और पुरुषवाचक शब्द जोड़ने से लिंग भेद प्रकट होते है—जैसे, आडिया-कूल 'बाघ' और एगा-कूल 'बाघिन'। कुछ अवस्थाओं मे हिन्दी की तरह 'आ' और 'ई' जोड़ कर भी लिंग भेद होता है।

(11) महाप्राण ध्वनियो मे हिन्दी की अपेक्षा महाप्राणत्व अधिक होता है।

3 करेन तथा मन परिवार

तीसरा परिवार करेन तथा मन भाषाओं का है। वैसे ये दोनो भाषाए वर्तमान भारत से बाहर की है। करेन दक्षिणी बर्मा तथा स्याम के समीपवर्ती भागों मे बोली जाती है। कुछ विद्वान इसे चीनी की पूर्ववर्ती भाषा मानते हैं। चीनी भाषा मे 'मन' का अर्थ 'दक्षिण' के लोग है, और यह शब्द प्राय हिन्द-चीन के क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। इन भाषाओं का भारत से कुछ भी सम्बन्ध नही बताया गया है। परन्तु ऐसा सकेत है कि हिमाचल के किन्नौर जिले की किराती भाषा से इसका कुछ साम्य हो, परन्तु सामग्री के अभाव मे अभी इस सम्बन्ध मे निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता।

4. तिब्बती-चीनी परिवार

भारत की भाषाओं मे तिब्बती-चीनी परिवार का भी विशेष महत्त्व है। ये भाषाए भारत के उत्तर मे हिमालय के अदरूनी तथा दामन मे पश्चिम से पूर्व की ओर स्याम तक बोली जाती हैं। इन भाषाओं के मुख्य दो उप-परिवार हैं—(क) तिब्बती-बर्मी भाषाए, तथा (ख) स्यामी-चीनी भाषाए।

सभी स्यामी-चीनी भाषाए लगभग भारतवर्ष से बाहर बोली जाती है। तिब्बती-बर्मी उप परिवार की भी दो मुख्य शाखाएं मानी गई हैं—(i) तिब्बती हिमालयवर्ती तथा (ii) असम बर्मी। तिब्बती-हिमालय शाखा की सर्वाधिक प्रतिनिधि भाषा 'तिब्बती' है, और असम-बर्मी की प्रतिनिधि 'बर्मी' है। बीच मे तिब्बती-बर्मी की विभिन्न उप-भाषाए आती हैं। मूल तिब्बती तथा मूल बर्मी भाषा का वर्तमान भारत से कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि मूल रूप म ये दोनो भारत के किसी भाग मे नही बोली जाती।

भारत मे बोली जाने वाली उपर्युक्त तिब्बती-हिमालयवर्ती वर्ग की भाषाओ को 'भोटिया' या 'भोटी' कहा जाता है। इसकी भी दो शाखाए है —

(1) पूर्वी शाखा—इसमे भूटान की ल्होके, सिक्किम की डा-जोगका, नेपाल की शर्पा एव कागते, तथा कुमाऊ और गढवाल मे बोली जाने वाली छोटी छोटी बोलिया है,

(2) पश्चिमी शाखा—इसका क्षेत्र बाल्तिस्तान तथा लद्दाख से आरम्भ होता है। ज़िला किन्नौर के सीमावर्ती क्षेत्र की किन्नौरी, स्पिति की स्पितियन, लाहुल की मचाटी, चम्बा लाहुली, बुनन तथा रंगोली इसी शाखा की बोलियाँ हैं। मलाणा की कनाशी बोली भी इसी शाखा से सम्बन्धित है।

हिमालयवर्ती वर्ग की भाषाए असम-बर्मी भाषाओ से एक दृष्टि से विशेष रूप मे भिन्न हैं। यह भिन्नता हिमालयवर्ती भाषाओ का मुडा भाषा से पूर्ण साम्य है। इन भाषाओं की मुडा भाषा से इतनी समानता है कि विद्वानो का विचार है कि इन दोनों भाषाओं के पूर्वज किसी समय एक जगह रहते थे और सम्भवत मुडा भाषी लोग हिमालय प्रदेश से दक्षिण की ओर गए हों।

तिब्बती-बर्मी उप-परिवार की दूसरी शाखा असम-बर्मी के अन्तर्गत बोडो, नागा, काचिन, कुकिचिन, बर्मा, लोलोमोसो तथा मक या लूई बोलिया आती हैं। इनम मे केवल बोडो और नागा बोलियाँ ही भारत से सम्बन्धित हैं। बोडो असम की अनार्य जातियों बोडो तथा बड की भाषा है। नागा भाषा नागा क्षेत्र तथा मनीपुर के कुछ भागो म बोली जाती है।

5. अवर्गीकृत भाषाएं

एक अन्य वर्ग म डॉ० ग्रियर्सन ने उन भाषाओ को रखा है, जो भारत की अन्य भाषाओं के किसी परिवार मे नही आती। इस वर्ग मे मुख्य तीन भाषाओं को रखा गया है और उनमे कुल मिलाकर लगभग बीस बोलियाँ या उप भाषाए हैं—

(1) जिप्सी—इसके अन्तर्गत तमिल की 'कोख' और 'कैकाडी' विभाषाए, कन्नड की 'कुरुम्बा' विभाषा, तथा तेलुगु की 'वडरी' विभाषा दिखाई गई है। इनके अतिरिक्त राजस्थानी की लभानी ककेरी, बहुरुपिया विभाषाए, गुजराती की तारीभूकी और घिसाडी तथा भीलो की बाओरी, चारणी, हबूड़ा, पारधी और सियालगिरी बोलियाँ भी इसी वर्ग में बताई गई है। परन्तु इन सब भाषाओ मे पिंडारियों की भाषा 'वेंढारी' को प्रतिनिधि के रूप म लिया गया है। यह न किसी जाति विशेष की भाषा है और न प्रचलित धर्म की। पिंडारी डाकुओं के गिरोह थे जिसमे हर जाति और हर धर्म के लोग शामिल थे, परन्तु इनकी भाषा अपने पास पडौस तथा अन्य भाषाओ से नितान्त भिन्न है। मध्य भारत इनका मुख्य केन्द्र है और ये ऐसी भाषा बोलते है जो किसी और की समझ मे नही आती। इसी तरह एक अपराधी जाति भाम्टा की 'भाम्टी' (मध्य भारत), भूमि खोदने वाले बलदारा (जैसलमेर, मध्य प्रान्त) की बेलदारी' तथा 'ओडकी', पान, सुपारी, तम्बाकू, भाँग आदि बेचने वाली लाड जाति की 'लाडो, सिन्ध मे निष्कासित कपूरथला (पजाब) म बसे चिड़ीमार जाति के लोगो की 'मछरिया', अपराधियो तथा कुख्यात लोगो की 'गुप्त जिप्सी बोलिया' (जैस योरुप म Thieves Latin 'चोरों की लेटिन' है), 'साँसी', 'कोल्हाटी', 'गाराडी', 'कजरी', 'नटी', 'डोम' आदि इसी तरह के गिरोहों की भाषाओं को भी जिप्सी मे ही गिनाया गया है।

(2) बुरुशास्की—यह सुदूर पश्चिमोत्तर प्रान्त के समीपवर्ती प्रदेश तथा

हुंजानगर के निवासी युद्धप्रिय लोगों की भाषा है। इस भाषा को समझना तो दरकिनार, विद्वान भाषाविद् भी इस भाषा के अध्ययन करने तथा किसी वर्ग विशेष मे लाने मे सफल नही हुए हैं। स्वय डा० ग्रियर्सन ने इस भाषा की सभी ज्ञात एशियाई भाषाओ से तुलना की है, परन्तु वे किसी निर्णय पर न पहुँच सके। ग्रियर्सन के अनुसार, हो सकता है कि इसका मुडा भाषा से कुछ सम्बन्ध हो, परन्तु निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता। बरुशासकी के कई नाम है। 'खजुना', 'यस्कुन' इसके स्थानीय नाम हैं। यारकदी इस 'कुजूती' कहते है। यासिन की बोली को 'वरशिक्वार' कहते है। कुछ विद्वानों ने इन भाषाओ को द्रविड तथा आस्ट्रिक परिवारो से मिलाने की भी असफल कोशिश की है।

(3) **अडमानी**—यह अडमन द्वीप समूह की भाषा है। डॉ० ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण क्षेत्र स बाहर होन के कारण इस भाषा पर विस्तार से विचार नही किया गया है। बाद के विद्वानो के अध्ययन के अनुसार अडमानी के प्रमुख दो भाग हैं—(1) **बडी अडमानी** जिसमे बा, चारी, कारा, येरू, जुवोई, केदे कोल, पुचिक्वर, बले, बेआ आदि बोलियाँ आती है, तथा (2) **छोटी अडमानी** जिसमे ओगे और यारवा दो मुख्य उप-भाषाए है। ये सभी सयोगात्मक भाषाए है जिनमे उपसर्गो का अधिक प्रयोग होता है। इनमे सघर्षी ध्वनियो स, ज़, फ़, व आदि का अभाव है।

इस परिवार की भाषाओं के सम्बन्ध मे अन्य भाषाविदो की राय डॉ० ग्रियर्सन स भिन्न है। केवल अन्तिम दो भाषाओ अर्थात् बुरुशासकी तथा अडमानी को ही इस वर्ग में निश्चय स रखा जा सकता है। शेष सभी भाषाए अन्य चार परिवारो की निकट-वर्ती भाषाओ के मिश्रण से बनी है। डॉ० ग्रियर्सन ने स्वय इस बात का सकेत किया है। कोरव तथा कंकाडी अपने निकटवर्ती अन्य तमिल उपभाषाओ से प्रभावित है, कुरम्बा बोली कन्नड तथा बडरी बोली तेलुगु से सम्बन्धित हैं। स्वय ग्रियर्सन के अनुसार 'ये सब आदि से अन्त तक द्रविड भाषाए हैं।'' इसी तरह लभानी, ककेरी तथा बहुरुपिया को राजस्थानी का ही एक रूप माना जाता है। और यही बात इस परिवार में दिखाई अन्य बोलियो के बारे म सिद्ध है और इस तरह केवल बरुशासकी और अडमानी विशुद्ध अवर्गीकृत भाषाएँ मानी जाती हैं।

5 भारोपीय परिवार

भारत की भाषाओ मे सब से बडा परिवार भारोपीय (Indo European) भाषाओं का है। यह नाम भौगोलिक आधार पर इन भाषाओं को दिया गया हैं, क्योकि इस परिवार की भाषाए भारत से लेकर यूरोप तक फैली हुई है और इस परिवार की भाषाओ को बोलने वालो की सख्या ससार मे सबसे अधिक हैं। इस **भारत हित्ती** नाम से भी पुकारा जाता है। इस परिवार को सर्वप्रथम मुख्य दो भागो मे विभक्त किया गया है —

(1) **केन्तुम्** (या कतम अथवा केण्टुम)—यह भारोपीय परिवार की पश्चिमी शाखा है, जिसमे मुख्यत लैटिन, ग्रीक, केल्टिक, इटेलियन, फ्रेंच, ब्रीटन, गेलिक, तोखारी,

ट्यूटानिक अथवा जर्मन भाषाएं शामिल हैं,

(2) सतम् (या शतम अथवा सतेम) यह भारोपीय परिवार की पूर्वी शाखा है। इस वर्ग की मुख्य भाषाएं अवेस्ता, संस्कृत, फारसी, हिन्दी, रूसी, बल्गेरियन, लिथुआनियन आदि है।

इन वर्गों का नामकरण वस्तुतः सौ (100 अक) के लिए कहे जाने वाले शब्द के आधार पर हुआ है। 'सतम्' वर्ग की विभिन्न भाषाओं मे इसके रूप शतम् (संस्कृत), सतम्(अवेस्ता), सदर (फारसी) स्तो (रूसी), सौ (हिन्दी) हैं, तथा 'केन्तुम्' वर्ग मे केन्तुम (लैटिन), केन्तो (इटैलियन) केन्त (फ्रेंच), कन्ध (तोखारी), कॅण्ट (ब्रिटेन), हैकटोन (ग्रीक) रूप प्रचलित है।

पूर्वी शाखा अर्थात् सतम् पुन पाच भागो मे विभक्त है —

(1) इलीरियन—*एड्रियाटिक सागर से इटली के दक्षिणी-पूर्वी भाग तक*,

(2) बाल्टिक—बाल्टिक तट पर विस्चुला और नीमेन नदियो के बीच का प्रदेश, आगे उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, तथा लेटिविया राज्य

(3) स्लैवोनिक—पूर्वी यूरोप के कुछ क्षेत्र,

(4) अर्मेनीय—इसमे यूरोप और एशिया की सीमा पर बोली जाने वाली फ्रिजीय भाषा भी है

(5) आर्य।

इनमे से भी पूर्वोक्त चार परिवारो की भाषाओं का भारत से कोई विशेष सम्बन्ध नही। अन्तिम 'आर्य' परिवार की भाषाओ के पुन तीन मुख्य वर्ग है —

(क) ईरानी,

(ख) दरद,

(ग) भारतीय,

(क) ईरानी

इसका मूल क्षेत्र ईरान है। इसका प्राचीन साहित्य 'अवेस्ता' के रूप मे मिलता है। ईरानी भाषा की पूर्वी सीमा सिन्धु नदी को माना जाता है। ईरानी की दो प्राचीन शाखाए है—**अवेस्ता और प्राचीन फारसी**। प्राचीन फारसी ने मध्यकालीन फारसी या पहलवी का जन्म दिया। पहलवी से आधुनिक फारसी निकली। आधुनिक फारसी की दो मुख्य भाषाए—बिलोचिस्तान की **बिलोची** तथा अफगानिस्तान की अफगानी या पश्तो है। बिलोची की पूर्वी सीमा सिन्धु नदी है। डेरा गाजीखा मे इस ओर की प्रतिनिधि बिलोची है। अविभाजित भारत मे पश्तो सिन्धु नदी के उभयतटवर्ती जिलो म दक्षिण की ओर डेरा इस्माइलखा तक बोली जाती थी। यूसुफजई, पेशावरी, बुनेर, बजौर, स्वात इसकी प्रमुख बोलिया है।

(ख) दरद या पैशाच

दरद भाषाओं का मूल क्षेत्र पामीर और पश्चिमोत्तर पजाब के बीच मे है।

पामीर मे गल्च भाषाए बोली जाती हैं जो मूल ईरानी हैं। इस ओर अर्ध-ईरानी दरदीय भाषाए बोली जाती हैं। कोह हिन्दुकुश दोनों भाषाओं को अलग-अलग करता है। दरद भाषाओं के क्षेत्र को दरदिस्तान कहते हैं। भारत के अन्य निवासी दरद भाषा-भाषी लोगों को बर्बर और नष्ट आर्य कहते थे। इन्हें क्रूर और मानवभक्षी मानते थे और इन्हें पिशाच (राक्षस) कहते थे। अत इस भाषा को पैशाची, दरद पैशाची या पैशाची प्राकृत भी कहते हैं। वर्तमान दरद-पैशाची के मुख्य स्थान गिलगित, कश्मीर, सिन्ध, स्वात कोहिस्तान, चित्राल और काफिरिस्तान हैं। इस प्रकार पैशाची भाषा के तीन वर्ग हैं—(1) खोवार, (2) काफिर और (3) दरद। दरद विशेष के पुन तीन भाग हैं —

(1) शीना—गिलगित क्षेत्र, तथा बाल्तिस्तान से तगीर नदी तक की सिन्धु घाटी,
(2) कश्मीरी—कश्मीर की घाटी और उसके दक्षिण पूर्व का निकटवर्ती क्षेत्र। कश्मीरी विशेष तथा कष्टवारी इसकी दो बोलिया हैं,
(3) कोहिस्तानी—मैया, गार्वी और तोरवाली इसकी बोलिया हैं। कडिया नदी, स्वात, पजकोर तथा कुनार नदियों के क्षेत्र इसके मूल स्थान हैं।

गठन की दृष्टि से जहा पश्तो ईरानी की ओर झुकी है, वहा दरद भाषा का झुकाव भारत की ओर है। मराठी, सिंधी, पजाबी से यह प्रभावित है, और इसका इन पर प्रभाव है। डा० ग्रियर्सन के अनुसार चम्बा से लेकर नेपाल तक हिमालय के निराई प्रदेश की भारतीय आर्य भाषाओं मे स्पष्ट रूप से दरद भाषा के अवशेष मिलते हैं। उनके अनुसार खश लोग दरद वशीय थे, और इस क्षेत्र म खश लोगों की आबादी अधिक है।

(ग) भारतीय

आर्य परिवार की भारतीय वर्ग की भाषाएँ भारतीय-आर्य शाखा मे आती हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का उल्लेख इस से पूर्व अध्याय (अध्याय 1) मे किया गया है। यहाँ केवल आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्णन किया जाएगा। इन भाषाओं को मुख्यत तीन उप शाखाओं मे बाँटा जाता है—

(i) बाहरी उप-शाखा,
(ii) मध्य उप-शाखा,
(iii) भीतरी उप-शाखा।

(i) बाहरी उप-शाखा

इस उप-शाखा के अन्तर्गत पश्चिमी पजाब तथा सिन्ध के क्षेत्र से द्रविड भाषा की उत्तरी सीमा से आसाम तक की भारतीय आर्य-भाषाएँ आती हैं। यह आर्य भाषाओं का बाहरी भाग है। इस उप-शाखा मे मुख्यत निम्नलिखित भाषाएँ हैं —

(1) लहँदी—डॉ० ग्रियर्सन ने इसका नाम लहँदा रखा था। लहँदा का अर्थ पश्चिम है। यह पूर्वी-पजाब के पश्चिम की ओर पश्चिमी पजाब तथा पूर्वी पश्चिमोत्तर

(दोनो अब पाकिस्तान मे) प्रदेश की भाषा है। इसके अन्य नाम पश्चिमी पजाबी, जटकी, उच्ची, डिलाही, हिंदकी भी है। डॉ० ग्रियर्सन के सर्वेक्षण मे इसकी प्राय बाईस विभाषाओं का वर्णन है, जिन मे मुख्य लहदा विशेष, मुलतानी, खेतरानी, जाफिरी, थली, पोठवारी (पोठोहारी) विभाली और पूछी हैं। इसकी अपनी लिपि लडा है परन्तु यह फारसी मे भी लिखी जाती रही है।

(2) सिन्धी—यह भारत विभाजन से पूर्व सिन्ध प्रदेश की भाषा है। अब यह पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त, भारत के कच्छ, अजमेर, बम्बई तथा दिल्ली के कुछ क्षेत्रों मे बोली जाती है। इसकी विचोली, सिराइकी, थरेली, लासी, लाडी तथा कच्छी (गुजराती) छ बोलियाँ हैं। इसकी अपनी लिपि लडा है, परन्तु यह फारसी, देवनागरी तथा गुरमुखी मे भी लिखी जाती रही है। इसमे 'त' मे 'ट' तथा 'द' मे 'ड' बदलने की मुख्य विशेषता है।

(3) मराठी—यह महाराष्ट्र की भाषा है। सर्वेक्षण म मराठी की उन्तालीस बोलियों का उल्लेख है। परन्तु इसकी कोंकणी (डमन तथा रत्नागिरी के उत्तरी भाग तथा गोआ के निकटवर्ती क्षेत्र), देशी मराठी (पूना के आस पास), बाँगोटी (मुसलमानों की), कुणबी (जाति विशेष), कोली (बम्बई शहर, थाना, कोलाबा, जजीरा के कोली लोगों की), बरारी (बरार, मध्य प्रदेश, निज़ाम क्षेत्र), नागपुरी, और हलबी मुख्य उपभाषाएँ है। इन विभाषाओं मे च और ज की दो दो ध्वनियाँ है। इनम से कोंकणी को कुछ विद्वान बिल्कुल अलग भाषा मानने लगे है। मराठी के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग होता है।

(4) उडिया—वर्तमान उडीसा प्रान्त की भाषा है, तथा पडौसी प्रान्तों के सीमावर्ती क्षेत्र मे भी बोली जाती है। इस की कई बोलिया है परन्तु मुख्य बोली एक ही है 'भत्री'। परिनिष्ठित उडिया कटक के आस पास की है, जिस कटकी कहा जाता है। आंध्र सीमा पर इस की एक बोली का नाम गजामी है। उडिया पर अन्य पडौसी भाषाओं की अपेक्षा बगला का सर्वाधिक प्रभाव पडा है। इसकी अनक मिश्रित बोलियाँ आधी उडिया और आधी बगला हैं। उडिया को बगला की भगिनी माना जाता है, पुत्री नही। उडिया की अपनी लिपि है जो ब्राह्मी पर आधारित है, परन्तु इस पर तेलुगु लिपि का भी प्रभाव है।

(5) बिहारी—यह प्रमुखत बिहार प्रदेश की भाषा है, परन्तु उत्तर प्रदेश के बलिया, गाज़ीपुर, पूर्वी फैजाबाद, पूर्वी जौनपुर, आज़मगढ, बनारस, देवरिया गोरखपुर आदि जिलो की भाषा भी प्राय बिहारी है। बिहारी का झुकाव उत्तर प्रदेश की ओर अधिक रहा है, बगाल की ओर कम, फिर भी डॉ० ग्रियर्सन बिहारी को बगला की बहिन मानते हैं। मूल रूप मे बिहारी तीन भाषाओ—मैथिली, मगही और भोजपुरी—का मिश्रण है, जिन्हे बिहारी की मुख्य बोलियाँ माना जाता है। प्रत्येक की फिर कई बोलियाँ हैं। मैथिली अपने शुद्ध रूप मे दरभगा जिले की बोली है, परन्तु इसका क्षेत्र पूर्वी मुंगेर, भागलपुर भी है। मगही विभाषा दक्षिणी बिहार तथा हज़ारीबाग क्षेत्र मे बोली जाती है, तथा भोजपूरी मुख्यत भोजपुर की भाषा है। बिहारी 'कैथी' लिपि मे लिखी जाती है।

(6) बंगला—प्रमुखत बगाल (पूर्वी और पश्चिमी) की भाषा है। इसका प्राचीन तथा आधुनिक साहित्य बहुत धनी है। डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार दैनिक तथा साहित्यिक बगला भाषा में इतना अधिक अन्तर है जितना किसी और भारतीय भाषा में नही। इस लिए इसकी बोलियाँ असख्य हैं। यह भाषा अत्यन्त ध्वनिमधुर है। बगला मागधी प्राकृत से निकली है। इसमे 'स' को 'श' म और 'अ' को 'ओ' मे बदलने की प्रवृति है। इसी तरह 'क्ष' को 'छ' या 'क्ख' मे तथा 'ह्य' को 'ज्झ' मे आम परिवर्तन हैं। इसकी अपनी लिपि है जो नागरी का ही उप-रूप है। वंगला मे 'व' का कोई चिह्न नही है।

(7) आसामी—डॉ० ग्रियर्सन के विभाजन के अनुसार आसामी (असमियाँ) भारतीय आर्य भाषा की बाहरी शाखा की अन्तिम भाषा है। यह मुख्यात असम घाटी तथा उसके आस पास के क्षेत्र की भाषा है। पश्चिमी भाग को छोड कर यह शेष तीनो ओर से हिन्द-चीनी तथा आस्ट्रिक भाषाओं से घिरी है, फिर भी इसका भारतीय-आर्य रूप पूर्णत सुरक्षित है। मनीपुर तथा सिलहट और कछार की बोली 'मयाँग' या 'विश्नपुरिया' इसकी उपभाषा है, परन्तु यह बगला के भी इतन ही निकट है। गारा पर्वत माला की तलहटी मे 'झरवी' नाम की एक और बोली है जो बगला, गारो तथा आसामी का मिश्रण है। उडिया की तरह आसामी को भी बगला की बहन माना गया है। आसामी मे 'अ' को 'ओ' और 'औ' मे बदलने की प्रवृति है। च, छ, ज की ध्वनियाँ दो तरह से मिलती हैं। आसामी लिपि बगलालिपि से मेल खाते हुए भी स्पष्टत इससे अलग है यद्यपि यह भी नागरी से विकसित हुई है।

(ii) मध्य उप-शाखा

बाहरी और भीतरी उप शाखाओ के बीच मध्य उप-शाखा की भारतीय आर्य भाषाए आती हैं।

पूर्वी हिन्दी—इस शाखा की मुख्यत एक ही प्रमुख भाषा है, जिसे पूर्वी हिन्दी कहा जाता है। यह अर्द्ध मागधी अपभ्रंश से विकसित हुई है। इसका मूल क्षेत्र पश्चिमी हिन्दी, नेपाली, बिहारी, उडिया, तेलुगु, मराठी, तथा राजस्थानी के बीच मे है, जिस म मुख्यत उत्तर प्रदेश, बघेलखण्ड, छोटा नागपुर तथा मध्य प्रदेश के कुछ भाग आते हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने इसकी तीन विभाषाए मानी है—अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी। परन्तु वास्तव मे बघेली तथा अवधी मे कोई विशेष अन्तर नही है। अवधी-बघेली का मूल क्षेत्र उत्तर प्रदेश, बघेलखण्ड, चगमकार, मडला जिला तथा जबलपुर है। शेष भागो मे विशेषत उदयपुर, कोरिया, सरगुजा क्षेत्र, जयपुर तथा छत्तीसगढ के अधिकांश भाग म छत्तीसगढी बोली जाती है। साहित्यिक दृष्टि स इन तीनो विभाषाओ म केवल अवधी का ही विशेष महत्त्व प्राप्त है। पूर्वी हिन्दी क्षेत्र मे प्रधानत नागरी लिपि का प्रयोग होता है।

(iii) भीतरी उप-शाखा

भारतीय आर्य भाषाओं की भीतरी उप शाखा की भाषाए प्रधानत दो समुदायो

में विभक्त हैं—**केन्द्रीय तथा पहाड़ी**। केन्द्रीय समुदाय के अन्तर्गत पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, भीली और खान देशी तथा पहाड़ी के अधीन पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी पहाड़ी भाषाएँ आती हैं।

(1) **पश्चिमी हिन्दी**—यह पंजाब में सरहिंद तथा उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के मध्यवर्ती क्षेत्र की भाषा है। शौरसेनी अपभ्रंश में इसका विकास हुआ है। इसकी कई स्वीकृत बोलियाँ है, जिनमें पांच मुख्य हैं—(क) **ब्रज**—मथुरा इसका केन्द्र है। यमुना के दक्षिण तथा पश्चिम में यह गुड़गांव भरतपुर आगरा, अलीगढ़ एवं ग्वालियर में भी बोली जाती है, (ख) **कनौजी** इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई, पीलीभीत तथा कानपुर के कुछ भाग में बोली जाती है। व्याकरण की तुलना से यह स्वतंत्र भाषा नहीं लगती और डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इसे ब्रजभाषा का ही रूप मानते हैं, (ग) **बुन्देली** बुन्देलखण्ड तथा उसके आस-पास के क्षेत्र में बोली जाती है। पवारी, लोधान्ती, खटोला, भदावरी, सहेरिया और किनारवी इसकी उप बोलियाँ हैं (घ) **बांगरू** हरियाणा की मुख्य बोलियों में से है जो रोहतक, हिसार जीन्द, तथा पंजाब के पटियाला और नाभा के कुछ क्षेत्र में बोली जाती है। इसे हरियानी, जाटू नाम से भी पुकारा जाता है, (ङ) **खड़ी बोली** मुख्यतः दिल्ली-मेरठ के आस पास बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर में बोली जाती है। इसे कौरवी, हिन्दुस्तानी, या सरहिन्दी नाम से भी पुकारा जाता रहा है।

(2) **पंजाबी**—ग्रियर्सन के अनुसार इसका क्षेत्र राजस्थान की भूतपूर्व बीकानेर रियासत के उत्तरी भाग से भूतपूर्व जम्मू रियासत के दक्षिण भाग तक है। वर्तमान काल में इसका मूल क्षेत्र पंजाब राज्य है, यद्यपि यह इसके समीपवर्ती भागों में भी बोली जाती है, तथा पश्चिमी पहाड़ी, बागरू, बागडी, **बीकानेरी** तथा लहँदी से घिरी है। डॉ० ग्रियर्सन ने इसकी मुख्य केवल एक बोली मानी है 'डोगरी' जो जम्मू क्षेत्र में बोली जाती है। सम्प्रति डोगरी ने साहित्य अकादमी से अलग मान्यता प्राप्त करली है। डोगरी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है, जबकि पंजाबी की अपनी लिपि गुरमुखी है।

(3) **राजस्थानी**—मुख्यतः राजस्थान की भाषा है, परन्तु इस का क्षेत्र मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग, सिन्ध तथा हरियाणा के निकटवर्ती भागों तक फैला है। राजस्थानी की कई बोलियाँ हैं। ग्रियर्सन के अनुसार केवल भूतपूर्व जयपुर राज्य में ही इस की कम से कम पन्द्रह बोलियाँ है। परन्तु साधारण स्थानीय भेदों को छोड़ भी दिया जाए तो भी इसकी बीस वास्तविक विभाषाएँ हैं। डा० ग्रियर्सन के अनुसार इन में से मुख्य विभाषाएँ इस प्रकार है—**मारवाड़ी** (पश्चिमी राजस्थानी—मारवाड़, मेवाड़ बीकानेर तथा जैसलमेर), **जयपुरी** (मध्यपूर्वीय—जयपुर, बूँदी तथा कोटा की हाड़ौती), **पूर्वोत्तरी** (अलवर की मेवाती, दिल्ली के दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम की बोली अहीरवाटी) **मालवी** (इन्दौर तथा उसके आस-पास), **निमाड़ी** (निमाड़ तथा उसके आस-पास)। डॉ० चटर्जी ग्रियर्सन के उपर्युक्त वर्गीकरण से सहमत नहीं। वे पश्चिमी राजस्थानी (प्रमुखतः मारवाड़ी) और मध्य पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी, किशनगढ़ी, हाड़ती, अजमेरी) को ही मुख्य राजस्थानी मानते हैं। मेवाड़ी, मालवी, अहीरवाटी, मेवाती को वे निश्चय

रूप से राजस्थानी नही मानते। परन्तु डा० भोलानाथ तिवारी के अनुसार ये विभाषाएँ पश्चिमी हिन्दी के निकट होते हुए भी राजस्थानी ही हैं।

(4) **गुजराती**—मूलत गुजरात राज्य की भाषा है, जो शौरसेनी अपभ्रंश के दक्षिण-पश्चिम रूप से विकसित हुई मानी जाती है, और आरम्भ में यह गूजर लोगों की बोली थी। अत इसे गूजरी भी कहते थे। यह सिन्धी, मराठी तथा राजस्थानी भाषाओं से घिरी हुई है, परन्तु राजस्थानी से इसका बडा निकट सम्बन्ध है। गुजराती के उच्चारण में सबसे बडी विशेषता 'स' को 'ह' मे बदलना है। सिन्धी और राजस्थानी की भाँति गुजराती म दन्त्य वर्णों की अपेक्षा मूर्धन्य वर्णों की अधिक प्रधानता है—दन्त्य प्राय मूर्धन्य मे ही बदल जाते हैं। गुजराती की कई उपबोलियाँ हैं, जिनमें से नागरी, चरोतरी, ववइया, गामडिया, सुरती, अनावला, पाटीदारी, वडोदरी, सोरठी, हालादी आदि हैं। गुजराती की अपनी लिपि है, जो प्राचीन नागरी लिपि से विकसित हुई है। इस में देवनागरी के अन्य अक्षरो के साथ-साथ मूर्धन्य 'ल' भी है।

(5) **भीली तथा खानदेशी**—अजमेर तथा आबू की पहाडियो के मध्य भाग म बोली जाने वाली **भीली** और खानदेश तथा उसके आस-पास की **खानदेशी** को डॉ० ग्रियर्सन ने अलग भाषाए माना है, परन्तु डा० चटर्जी भीली को गुजराती की एक बोली मानते हैं। यह भीली जाति के लोगो की भाषा है। खानदेशी प्राय नैकी, ढोडिया, गामटी, चौधरी जातियो के लोगो की भाषा है। इन दोना पर द्रविड और मुडा भाषाओ का भी प्रभाव है।

(6) **पहाडी**—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है हिमालय की निचली पर्वतमालाओं में पूर्व मे नेपाल स लेकर पश्चिम म भद्रवाह तक बोली जाने वाली भाषाओ को पहाडी का नाम दिया गया है। पहाडा मे बोली जाने के कारण ही उसे ऐसा नाम दिया गया है। डा० ग्रियर्सन के अनुसार पहाड के आदिम-निवासी तथा आधुनिक मुण्डा भाषी लोगो के पूर्वज एक ही परिवार स थे और समान भाषा का प्रयोग करते थे। डॉ० चटर्जी भी पहाडी भाषाओ का मूलाधार पैशाची, दरद या खस प्राकृत मानते हैं। परन्तु बहुत स अन्य विद्वानो का विचार है कि पहाडी भाषाओ का मूल स्रोत शौरसेनी प्राकृत है। भौगोलिक आधार पर पहाडी भाषाओं के मुख्य तीन वर्ग हैं —

(क) **पूर्वी पहाडी**—सुदूर पूर्व मे पूर्वी पहाडी है जिसमें नेपाली की प्रधानता है, इसी कारण इसे केवल नेपाली के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इसे 'खसकुरा', 'गोरखाली' या 'खसकुरा' भी कहते हैं।

(ख) **मध्य पहाडी**—नेपाली से पश्चिम की ओर कुमाऊँ और गढवाल का क्षेत्र है, जहाँ की भाषा को मध्यपहाडी का नाम दिया गया है। इसमें मुख्य दो बोलियाँ हैं—कुमाउँनी तथा गढवाली।

(ग) **पश्चिमी पहाडी**—उत्तर प्रदेश के जौनसर-बावर से लेकर जम्मू-कश्मीर के भद्रवाह तक की बोलियो को सामूहिक रूप से पश्चिमी पहाडी का नाम दिया गया है।

अध्याय—3

पहाड़ी भाषा—उद्भव और स्वरूप

जैसा कि हम पिछले दो अध्यायो म देख चुके हैं भारत म भाषा विकास का क्रम, विश्व की अन्य सभी भाषाओ की तरह एक बहुत लम्बे समय स चलता रहा हैं, और इस लम्बी अवधि मे भाषा-विकास क्रम को कई परिस्थितियों स गुजरना पडा हैं। आन्तरिक, भौगोलिक सामाजिक तथा सास्कृतिक विभिन्नताओं के सह-सम्बन्धो के अतिरिक्त बाहरी आक्रमण-कर्ताओं की भाषाओ की रेल-पेल के परिणाम स्वरूप भारतीय भाषाओ के रूप और स्वभाव म समय की गति के साथ-साथ क्रमिक परिवतन आता रहा हैं। भाषा विकास के इस लम्बे इतिहास मे दो धारणाओ का स्पष्टत लगातार सघर्ष लक्षित होता हैं। यह सघर्ष एक ओर साहित्यिक भाषा तथा दूसरी ओर आम बोल-चाल की भाषा के बीच था। जब आरम्भिक काल मे वेदो की रचना की भाषा वैदिक सस्कृत थी, तो आम लोगो मे लौकिक सस्कृत प्रचलित थी। जनता की शक्ति का रूप चाहे कुछ भी हो, अन्ततोगत्वा यह विजयी रहती हैं। वैदिक सस्कृत पर लौकिक सस्कृत प्रभुत्व-सम्पन्न हुई। प्रभावी होनेके कारण इसम भी साहित्य रचना आरम्भ हुई और जब लौकिक सस्कृत के विकसित साहित्यिक रूप को पाणिनि ने व्याकरण के कडे और कठोर नियमो मे जकड दिया, तो इस वैयाकरणिक तथा साहित्यिक भाषा का उसीके आम बोल-चाल के रूप से सघर्ष रहा जो प्राकृत कहलाया। सस्कार किए रूप से स्वाभाविक प्राकृत रूप जूझता रहा, और विजयी होकर प्राकृत का बोल बाला हो गया। जब प्राकृत ने भी साहित्यिक रूप धारण किया तो आम लोगों की बोली अपभ्रश अर्थात् असाधु भाषा कहलाई परतु असाधु भाषा ने साधु भाषा को किनार लगा कर जनता मे प्रभुत्व जमाया। वैदिक, लौकिक सस्कृत का काल लगभग 1500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक रहा। लगभग 500 ई० पू० से 500 ईसवी सदी तक प्राकृत भाषाओ का समय माना जाता है, तथा 500 ईसवी से लगभग 1000 तक अपभ्रश भाषाओ का प्रयोग रहा। कुछ विद्वान इसका समय 1100 या 1200 ई० तक भी मानते है।

इस समय मे आकर साहित्यिक तथा बोल चाल की भाषा के सघर्ष मे एक तीसरी भाषा न पदार्पण किया। वह कोर्ट भाषा थी। इसे दरबारी भाषा या प्रशासनिक भाषा भी कह सकते हैं। चाहे यह भाषा फारसी रही हो या अग्रेजी, भाषा के विकास

मे इसका विशेष महत्त्व रहा है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दो मे "समस्त मुसलमान शासकों ने, चाहे वे किसी भी वर्ग के क्यों न हों फारसी को ही दरबारी तथा साहित्यिक भाषा की तरह अपना रखा था।"[1] दरबारी या प्रशासनिक भाषा को राज-सत्ता का प्राधिकार तथा प्रोत्साहन प्राप्त था। ऐसी भाषा द्वारा अन्य भाषा को दबाने के प्राय प्रयत्न रहते हैं। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी आम लोगो की बोल-चाल की भाषा फलती-फूलती रहती है। भाषा के क्षेत्र मे कितने ही गतिरोध हो इन से भाषा के रूप-रग मे अन्तर तो अवश्य आता है, पर जनता की बोल-चाल की भाषा प्राकृतिक-प्रवाह से आगे बढती है। बाहरी प्रभाव को वह केवल उसी सीमा तक अपनाती है जिस वह मुख-साध्य के अनुसार अपन-आप मे आत्मसात कर लेती है। कुछ भी हो जब फारसी, अग्रेजी आदि दरबारी एव प्रशासनिक भाषाएँ थी तो भी जनसमुदाय की अपनी भाषा ब्रज, अवधि, उडिया, तेलुगू मराठी, राजस्थानी, गुजराती, बिहारी, बगाली अबाध रूप स विकसित होती रही, और अपने स्वाभाविक रूप म हम तक पहुँची।

परन्तु एक बात अवश्य है कि जो भाषा आज हम विभिन्न क्षेत्रो म बोलते हैं, उसका रूप इस कदर बदल चुका है कि आज आसानी से यह कहना कठिन है कि अमुक भाषा किस प्राचीन भाषा से प्रसूत हुई है, इसके शब्द किसी एक भाषा परिवार से है और ध्वनि किसी दूसरे परिवार से। शब्द का एक अक्षर किसी अन्य भाषा का है तथा दूसरा अक्षर दूसरी ही भाषा का पदार्पण कर चुका है। परिणामस्वरूप आज कितने ही शब्दो की व्युत्पत्ति निश्चित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। चाहे विद्वान कितनी ही घसीटा-तानी क्यो न करें, कुछ शब्दो की व्युत्पत्ति के बार मे सन्देह बना रहता है, अन्य कितने ही शब्दो का स्रोत ढूँढना आज असम्भव सा लगता है। विशेषत पहाडी भाषा के बारे मे यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जो भाषा आदि काल से आज तक अनन्त दौरो से गुजरी हो और साथ ही एक सरक्षण-शील समाज की थाती हो, उसके मूल रूप को पहचानना अत्यन्त कठिन है। ऐस सभी शब्दो की सूची यहाँ देना सम्भव नही है, परन्तु यदि हम उदाहरण के लिए केवल मानव शरीर के अगो के नाम ही लें तो आश्चर्यचकित हुए बिना नही रहा जाता कि आखिर ये शब्द कहाँ से आए है और कैसे बने हैं—यथा, टेंडा (आँख), चोढा (सिर के बाल), खाख (मुँह, गाल) मुयू (गर्दन), टुटू (हाथ), थोयर (गाल), ठुह्डा (पैर), फौफू (कधा) ठार (टाँग का घुटने से नीचे का भाग) आदि। ऐसी परिस्थितियो मे तथा भाषा के वर्तमान रूप की दृष्टि मे विकास दिशा-निर्धारण का कार्य निस्सन्देह बहुत कठिन है। परन्तु फिर भी भाषा विज्ञान मे ऐसे सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर भाषा का अध्ययन किया जाता है, और यह कार्य इतना कठिन नही जितना प्राय साधारण रूप मे समझा जाता है।

उद्भव सम्बन्धी मतभेद

पहाडी भाषाओ की उत्पत्ति के बारे मे विद्वानो मे मतभेद है। मुख्यत इसके सम्बन्ध मे विद्वानो की दो धारणाएँ हैं—कुछ विद्वान पहाडी भाषाओ का सम्बन्ध दरद-

1. धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० 71-72

पैशाची से मानते है, अन्य इनकी उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृत से मानते हैं। प्रथम धारणा के विद्वानों मे प्रमुख स्थान डॉ० ग्रियर्सन का है। डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार यद्यपि पहाड़ी भाषाओ के ठीक दक्षिण मे पजाबी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी और बिहारी का क्षेत्र है, परन्तु पहाड़ी भाषाओं का इनके साथ कोई सम्बन्ध नही है।[1] वे पहाड़ी भाषाओं का आधार दरद-पैशाची भाषाएँ मानते है। ऐसी स्थापना वे इस आधार पर करते हैं कि वर्तमान पहाड़ी भाषा क्षेत्र मे सर्वप्रथम आने वाले विदेशी खश थे जो मध्य एशिया से भारत के उत्तरी भाग मे आए, और इनके कुछ समय बाद गुर्जर जाति के लोग विदेश से इन्ही क्षेत्रों मे पहुँचे। खश और गुर्जर आर्य भाषा बोलते थे परन्तु यह भारतीय आर्य भाषा नही थी। उत्तरी भारत के वर्तमान कनैत और खश लोग इन्हीं खशों की सन्तान हैं, तथा राव राजपूत और वर्तमान गूजर उस समय की आगतुक गुर्जर जाति से सम्बन्धित हैं। और खश-भाषा को वे उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के निवासी पिशाचों की भाषा 'पैशाची' से सम्बन्धित मानते हैं।[2] इसके साथ ही, पैशाची को वे 'शीना' (अर्थात् दरद) जाति की भाषा भी मानते हैं, जिनका मूल केन्द्र स्थान कश्मीर के उत्तर मे गिलगित है।[3] इस प्रकार डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार पहाड़ी भाषाओ का मूलाधार दरद-पैशाची है।

डॉ० ग्रियर्सन के भारतीय आर्य भाषा के वर्गीकरण से प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी सहमत नही हुए। उन्होने बाद मे भारतीय आर्य-भाषाओं का वर्गीकरण अपने ढग से किया। परन्तु पहाड़ी भाषाओं के बारे मे उनका मत डॉ० ग्रियर्सन के विचार से अधिक भिन्न नही था। उन्होंने उदीच्य, प्रतीच्य, मध्यदेशीय, दाक्षिणात्य और प्राच्य नाम स किए भारतीय आर्य भाषाओ के वर्गीकरण मे पहाड़ी भाषाओं को कोई स्थान नही दिया, बल्कि उनका अलग स हवाला दे कर खश अथवा दरद-पैशाची को मूलाधार बताया और उस पर राजस्थानी का प्रभाव लक्षित करते हुए उसकी शाखा बताया। उनके अनुसार पहाड़ी बोलियाँ पैशाची, दरद, या खश अपभ्रश मे सम्बन्धित है और प्राय राजस्थानी के रूपान्तर है।

डॉ० ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के बाद हिन्दी के विद्वानो का भारतीय भाषाओं के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान गया है, परन्तु पहाड़ी बोलियों के बारे मे विद्वानो मे स्पष्ट एकमत या पर्याप्त सहमति नही है। इसके कारण स्पष्ट है। प्रथम तो इन बोलियो पर अधिक शोध-कार्य नहीं हुआ है, और दूसरे इनमे पर्याप्त लिखित साहित्य और भाषा के रूप उपलब्ध नहीं है, जिन पर अध्ययन कार्य आधारित होता। फिर भी जिन विद्वानो ने अन्य भारतीय भाषाओ के अध्ययन करते समय पहाड़ी बोलियो के बारे मे उल्लेख किया है, उनके विचार विशेष महत्त्व के हैं। इस सम्बन्ध मे डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० उदय नारायण तिवारी, डॉ० भोलानाथ तिवारी, डॉ० हरदेव बाहरी, डॉ० गोविन्द चातक और डॉ० कृष्णलाल हस के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

1. लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, खण्ड 9 भाग 4, पृ०, 2.
2. वही पृ०, 14
3 डा० ग्रियर्सन पिशाच लैंग्वेजिज आफ नार्थ वेस्टर्न इण्डिया, पृ० 2-3

ॉ० चटर्जी के भौगोलिक वर्गीकरण के आधार पर ही भारतीय आर्य भाषाओ का श्रेणी-रण करते है, जिसमे वे पहाडी भाषाओ को स्पष्टत किसी वर्ग मे नही रखते, परन्तु न्होने अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा का इतिहास' मे पहाडी भाषाओ का सम्बन्ध शौरसेनी पभ्र श से स्थापित किया है। इसी तरह 'ब्रजभाषा' के अध्ययन मे भी उन्होने ऐसे ही वचार व्यक्त किए है। डॉ० उदय नारायण तिवारी ने भी भोजपुरी भाषा का अध्ययन करते हुए पहाडी बोलियो को शौरसेनी से प्रसूत माना है।[1] डॉ० भोला नाथ तिवारी हाडी को परिचमी पहाडी और माध्यमिक पहाडी दो वर्गो मे रखकर इसे हिन्दी की पाच उप-भाषाओं मे से एक उपभाषा मानते हैं, परन्तु उत्पत्ति के आधार पर पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती के साथ शौरसेनी से प्रसूत मानते हैं।[2] डॉ० हरदेव बाहरी को डॉ० ग्रियर्सन और डॉ० चटर्जी, दोनो के भाषा वर्गीकरण पर आपत्ति है। वे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ को 'हिन्दी' और 'अहिन्दी' दो वर्गो मे रखकर उनका विभाजन करने है। इस विभाजन म वे पूर्वी पहाडी अर्थात् नेपाली को स्पष्टत अहिन्दी वर्ग में रखते है, और मध्य पहाडी को हिन्दी वर्ग मे। मध्यपहाडी का विशेष रूप से उल्लेख करके वे इसे हिन्दी की पाँच उप-भाषाओ मे से एक उप-भाषा मानते है। लेकिन पश्चिमी पहाडी का कही उल्लेख नही करते।[3] इस प्रकार वे हिमालय की तराई की भाषाओ के पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी वर्ग को तो मानते हुए दिखाई देते है, परन्तु इनमें से केवल दो का वर्णन करके पश्चिमी वर्ग का हवाला नही देते। जब वे समस्त भारतीय भाषाओं के हिन्दी और अहिन्दी मे विभाजन करते हैं और पश्चिमी पहाडी को इनमे कही नही रखते, तो सम्भवत वे इसे भारतीय नही समझते। इस विचार-धारा के समर्थकों मे डॉ० गोविन्द चातक का नाम भी उल्लेखनीय है। 'मध्य पहाडी का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन' के नाम पर उन्होने "गढवाली बोली" का विशेष अध्ययन किया है। डॉ० ग्रियर्सन और डॉ० चटर्जी की धारणा का विरोध करते हुए वे पहाडी भाषाओ का मूलाधार दरद, खश या पैशाची प्राकृत होने का खण्डन करते है। वे मध्य पहाडी क्षेत्र का शक, गुर्जर तथा आभीरादि जातियो से सम्बन्ध मानते है और पहाडी भाषाओ पर दरद या पैशाची के प्रभाव को पूर्णत अस्वीकार भी नही करते तथा साथ ही इन बोलियो के उकार बहुलता के साक्ष्य को ध्यान मे रखते हुए मध्य पहाडी का सम्बन्ध अपभ्र श से भी मानते हैं, परन्तु यह अपभ्र श व्राचड या पैशाची रही होगी, वे यह स्वीकार नही करते। उनके अनुसार मध्य पहाडी (गढवाली) का अगर किसी के साथ सीधा सम्बन्ध प्रकट होता है, तो वह शौरसेनी अपभ्र श मे है।[4] उनके अनुसार उत्तर भारत की सभी भाषाओं और बोलियों का उद्गम स्थल **मध्यदेश** ही है। इस प्रकार डॉ० चातक पहाडी भाषाओ का मूलाधार खश या दरदपैशाची न मानकर शौरसेनी अपभ्र श मानते है वास्तव मे वे शौरसेनी का क्षेत्र बहुत विस्तृत मानते है और लिखते हैं कि शौरसेनी-पैशाची की तरह ही शौरसेनी का कोई और पर्वतीय रूप भी रहा होगा, जो पहाडी बोलियो का मूलाधार हो।

1 डा० उदय नारायण तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ० 17
2 डा० भोलानाथ तिवारी भाषा विज्ञान कोश, पृ० 736 तथा 89.
3 डा० हरदेव बाहरी हिन्दी उद्भव, विकास और रूप, पृ० 85 और आगे।
4 डा० गोविन्द चातक मध्य पहाडी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, पृ० 37, 34

पहाडी भाषाओं के बारे मे सभी विद्वान एक बात पर सहमत हैं कि उनका सीधा सम्बन्ध राजस्थानी से है। इस बात को उपर्युक्त दोनो धारणाओ के समर्थक एक मत से स्वीकार करते हैं, और इसका मूल कारण दोनो भाषा-भाषी निवासियो के खश तथा गुर्जर समान पूर्वज होने की धारणा है। इसी साम्य को दृष्टि मे रखते हुए डॉ० चातक का विचार है कि वास्तव मे राजस्थानी का उद्गम जिस शौरसेनी मे खोजा जाता है, उसी का एक पर्वतीय रूप मध्य पहाडी का स्रोत भी है। इसी बात का समर्थन डॉ० कृष्णलाल हस के विचारो से होता है। वे लिखते हैं "शौरसेनी अपभ्रश से पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और पहाडी भाषाओ का विकास हुआ। इनमे राजस्थानी, गुजराती तथा पहाडी भाषाए नागर अपभ्रश से सम्बन्धित है।"[1] इन भाषाओं का एक बार शौरसेनी अपभ्र श से विकास तथा दूसरी बार नागर अपभ्र श से सम्बन्ध जतलाने का अर्थ सम्भवत यह है कि वे एक को दूसरे की उप-शाखा मानते हैं, और यह ठीक भी है।

वास्तव मे पहाडी बोलियो के आधार और उद्भव के बारे मे इस कदर अनिश्चितता और भिन्नता का मुख्य कारण इन भाषाओ म विद्यमान भिन्न और, किसी सीमा तक, विपरीत भाषा-तत्त्वो की उपस्थिति है, जिनका विभिन्न आधार की भाषाओ से सम्बन्ध स्थापित होता है। पहाडी भाषा का शौरसेनी अपभ्र श से सम्बन्ध तो स्वय डॉ० ग्रियर्सन भी मानते हैं, परन्तु वे शौरसेनी को इसका मूलाधार नही मानते। भारतीय आधुनिक आर्य भाषाओ का मध्यकालीन आर्य भाषाओ से सम्बन्ध जोडते हुए डॉ० ग्रियर्सन पहाडी भाषाओ को नागर अपभ्रश की आवन्त्य शाखा स व्युत्पन्न होने का सकेत करते हैं। परन्तु वे इस निर्णय पर उस निश्चय से नही पहुँचते जिससे वे अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ के जन्म के बारे मे अपना मत व्यक्त करते हैं। वे स्वय लिखते हैं कि 'इस क्षेत्र की किसी विशिष्ट प्राकृत अथवा अपभ्रश का पता नही है। उनके विचार मे पजाब के उत्तर मे टक्क अपभ्र श ने उन पर अवश्य प्रभाव डाला था। दरदीय मूल की भाषाए बोलने वाली खश तथा अन्य जातियो के इधर कई आक्रमण हुए और मध्य एशिया से आने वाली गुर्जर जाति भी सम्भवत अपने साथ आर्य-भाषा ले आई थी। अन्तत यहा राजपूताने से भी निष्क्रमणकारी आये और इनकी भाषा पूर्वागत लोगो की भाषा से मिश्रित हो गई और मोटे तौर पर यही भाषा प्रसारित भी हुई।[2] पहाडी भाषाओ के मूलाधार के बारे मे ग्रियर्सन की सदिग्धता यही समाप्त नही होती। वे इन भाषाओ मे विभिन्न तत्त्वों के मिश्रण का हवाला देते हुए राजपुताने मे बोली जाने वाली भाषाओ से इनका सम्बन्ध जोडते है, और अन्तत इस निर्णय पर पहुँचने पर विवश होते है कि हो सकता है इनकी उत्पत्ति आवन्त्य अपभ्र श से हुई हो।

और आवन्त्य को वे नागर अपभ्र श की एक शाखा मानते है। नागर अपभ्र श गुजरात तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशो की अपभ्र श थी, जहा आज भी नागर ब्राह्मणो की बोलचाल की भाषा है। नागर अपभ्र श से प्रसूत वे कुछ अन्य शाखाए भी मानते है—

1. डा० कृष्णलाल हस निमाडी और उसका साहित्य पृ० 21.
2 'भारत का भाषा सर्वेक्षण'—डा० उदयनारायण तिवारी का अनुवाद, पृ० 249

जैसे उत्तरी मध्य पजाब की टक्क, दक्षिणी पजाब की उपनागर, गुजरात की गौर्जर तथा पश्चिमी हिन्दी की जननी शौरसेनी। इस प्रकार डॉ० ग्रियर्सन शौरसेनी तथा पहाडी के बीच दूर का रिश्ता मानने के लिए विवश होते प्रतीत होते हैं। परन्तु मूलरूप में वे पहाडी भाषाओं को दरद-पैशाची से प्रसूत समझते हैं और मध्यकाल मे इन्हें किसी समय राजस्थान की प्राकृत अथवा अपभ्रश से प्रभावित मानते हैं।

पहाड़ी से अभिप्राय

इस विषय को कुछ देर के लिए यहा स्थगित करना समीचीन होगा। पहाडी से क्या अभिप्राय है इस बात पर पहले अनुशीलन करना अधिक जरूरी होगा और इसके लिए यह उचित स्थान भी है। पहाडी का शाब्दिक अर्थ 'पहाडो से सम्बन्धित' है। इस अर्थ मे यह दो तरह से प्रयुक्त होता है—प्रथम, पहाड का रहने वाला अथवा पहाड का निवासी 'पहाडी', तथा दूसरे, पहाडी क्षेत्रो म बोली जाने वाली भाषा 'पहाडी'। जहा भाषा के रूप मे भारत के उत्तर मे हिमालय की तराई म पश्चिम म जम्मू-कश्मीर के भद्रवाह क्षेत्र मे पूर्व मे नेपाल तक की भाषा को भाषाई अध्ययन मे 'पहाडी' कहा गया है, वहा इस क्षेत्र के सभी निवासियो को 'पहाडी' नाम से प्राय पुकारा नही जाता। सुदूर पूर्व नेपाल के निवासी को नेपाली कहा जाता है या गोरखा। उन्हे पहाडी नाम स कभी सम्बोधित नही किया जाता। भारत के किसी भाग मे वे जाए वे नेपाली हैं या गोरखा कहे जाते हैं। इसी तरह मध्य भाग के निवासी को प्राय गढवाली ही कहा जाता है। चाहे वे कुमाऊ से हो या गढवाल से, उन्हे एक ही नाम 'गढवाली' से जाना और सम्बोधित किया जाता है। परन्तु पश्चिम पहाडो के निवासियो के लिए ऐसा कोई नाम नही। उन्हें मैदानो मे हिमाचली, शिमलवी, कागडी या कुलुई नही कहा जाता। ज्यो ही इन पहाडियो का निवासी पहाडी क्षेत्र से नीचे मैदानो मे उतरता है, उसकी वेशभूषा या बोली से तुरन्त उस 'पहाडी' या पहाडिया कहते हैं। आज की बात नही, आज तो पठानकोट, जालन्धर, अम्बाला मे पहुचते ही वह पहाडी है, अविभाजित भारत मे लाहौर म भी वह पहाडी था। अत स्पष्टतया निवासी के रूप मे पहाडी से अभिप्राय वे निवासी हैं जो पश्चिमी हिमालय की तराई मे रहते है, अथवा जो वर्तमान हिमाचल प्रदेश के निवासी हैं। चाहे वे कुल्लू के हैं, सिरमौर, शिमला, मण्डी, कागडा, चम्बा या बिलासपुर के, आपस म वे एक दूसरे के लिए भले ही मण्डयाल, सिरमौरी, कागडी, चम्बयाल जरूर हो, परन्तु अपने हिमाचल से बाहर उन सब के लिए केवल एक ही नाम सम्बोधित है और वह 'पहाडी' है। इस दृष्टि से जहां हिमालय के अन्दरूनी भाग के पूर्वी क्षेत्र के निवासी नेपाली या गोरखा हैं, और मध्य भाग के गढवाली हैं, वहां पश्चिमी पहाडी क्षेत्र के निवासी 'पहाडी' ही कहे जाते है, और उनके लिए यही नाम निर्धारित है।

जहा तक भाषा के रूप म 'पहाडी' शब्द का सम्बन्ध है हिमालय की पहाडियो में पश्चिम म कश्मीर के पूर्वी भाग भद्रवाह से लेकर नेपाल के पूर्व भाग तक की समस्त भाषा समूह को 'पहाडी' कहा गया है। ठीक भाषा के रूप म इस तरह का नाम सम्भवत सर्वप्रथम डॉ० ग्रियर्सन ने दिया है। और तत्पश्चात अन्य भाषा-वैज्ञानिको ने भी इसी

नाम को प्रचलित रखा और प्रयुक्त किया है। परन्तु डॉ० ग्रियसन ने किसी एक भाषा विशेष को 'पहाडी' नाम नही दिया था। वे उपर्युक्त क्षेत्र मे बोली जाने वाली विभिन्न भाषाओ के समूह को 'पहाडी' कहते है। उनकी दृष्टि मे 'पहाडी' कोई भाषा विशेष नही है, वल्कि वे हिमालय के दामन के साथ-साथ पूर्व मे पश्चिम की ओर बोली जानेवाली भाषाओ के वर्ग को 'पहाडी' कहते हैं। यहां उनके शब्दों को ही उद्धृत करना अधिक उचित होगा, जो उनके भाषा सर्वेक्षण के खण्ड 9 भाग 4 के प्रथम शब्द अथवा पक्तिया है —

> "The word 'Pahari' means 'of or belonging to the mountains', and is specially applied to the groups of languages spoken in the sub-Himalayan hills extending from the Bhadrawah, north of the Punjab to the eastern parts of Nepal"

स्पष्ट है कि 'पहाडी' मे उनका अभिप्राय 'भाषा-समूह' से है 'भाषा विशेष' से नही। और, उनका यह नाम भौगोलिक है, तथा भाषा के वर्गीकरण के लिए प्रयुक्त हुआ है। भाषा के भौगोलिक दृष्टि से वर्गीकरण को भाषा वैज्ञानिक अधिक युक्तिसगत भी नही समझते।[1] परन्तु फिर भी यदि भाषा के वर्गीकरण के लिए ऐसे नाम अपना भी लिए जाए, वे भाषा विशेष के लिए उचित नही हो सकते। भाषा के वर्गीकरण के लिए तो प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने उदीच्य, प्रतीच्य, मध्यदेशीय, प्राच्य, दाक्षिणात्य नाम भी दिए हैं, और उनके ये नाम सर्वमानीय है और कई अन्य विद्वानो ने इन नामो को अपनाया है। परन्तु इन नामों से किसी एक भाषा को सम्बोधित नही किया जाता है। उदाहरणार्थ **प्राच्य** के अन्तर्गत पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उडिया, असमिया और बगला म से किसी एक को प्राच्य नाम नही दिया जाता। उन सब का अपना-अपना नाम है, परन्तु सामूहिक रूप मे वे सब प्राच्य है। अत स्पष्ट है कि भाषा का नाम भौगोलिक होते हुए भी उसमे भाषा की मूलभूत विशेषताए भी अन्तर्निहित होनी चाहिए।

वर्गीकरण रूप मे भी स्वय डॉ० ग्रियर्सन ने पूर्वी पहाडी को नेपाली तथा मध्य पहाडी को कुमाउँनी गढवाली कहा है, परन्तु पश्चिमी पहाडी के लिये उन्होने कोई ऐसा नाम नही अपनाया है। और उनके अतिरिक्त अन्य विद्वानो ने भी पूर्वी पहाडी को 'नेपाली' तथा मध्य पहाडी को 'गढवाली के नाम से ही सम्बोधित किया है। सुदूर पूर्व मे नेपाली का ही प्रभुत्व है अत इस क्षेत्र की भाषाओ को 'नेपाली' कहना उचित है, और इसी नाम से इसका प्रयोग प्रचलित भी है। यही बात मध्य पहाडी के सम्बन्ध मे भी उपयुक्त सिद्ध होती है, वहा गढवाली प्रमुख भाषा है और इसी नाम से मध्य पहाडी को समझा तथा जाना जाता है। यह बात डॉ० गोविन्द चातक के शोध कार्य से भी स्पष्ट है। वे अपनी पुस्तक का नाम तो निस्सन्देह 'मध्य पहाडी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन' देते हैं, परन्तु उसके अन्तर्गत अध्ययन पूर्णत गढवाली भाषा का है। इस नाम

1 डा० भोलानाथ तिवारी भाषा विज्ञान कोश, पृ० 89.

के प्रयोग के कारण को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं "इसलिए 'मध्य पहाडी' का भाषा शास्त्रीय अध्ययन होते हुए भी इसे गढवाली बोली से ही सम्बद्ध अध्ययन माना जाना चाहिए। 'मध्य पहाडी' शब्द का प्रयोग हमने भाषा वैज्ञानिक सुविधा के कारण किया है। इसके साथ ही गढवाली और कुमाउंनी दोनो बोलियों की मौलिक एकता भी हमारे ध्यान में रही है।[1] भाषा की दृष्टि से उपर्युक्त विवेचन से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक यह कि 'पहाडी' शब्द किसी भाषा विशेष के लिए नहीं, परन्तु भाषाओं के समूह के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसमें पूर्वी पहाडी, मध्य पहाडी तथा पश्चिमी पहाडी भाषाओं का समावेश है। दूसरे यह कि पूर्वी पहाडी प्राय अब नेपाली नाम से पुकारी तथा समझी जाती है, और मध्य पहाडी गढवाली के नाम से। अत 'पहाडी' शब्द अब केवल पश्चिमी पहाडी के लिए सुरक्षित तथा सीमित रहा है।

पश्चिमी पहाड की बोलियों को 'पहाडी' नाम आज नहीं दिया गया है। उनके लिए यह नाम प्राचीन काल से चला आ रहा है और लिखित रूप में उन्हें यह नाम तब दिया गया है, जब अभी भाषाओं का अध्ययन उस दृष्टि से नहीं किया जाता था जिस ढंग से आज हुआ है। 1881 की जनगणना में डोगरी और कश्मीरी के साथ-साथ पहाडी का भी अलग भाषा के रूप में नाम आया है। उस समय की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार 'डोगरी विशेष जम्मू के डोगरा या राजपूत निवासियों की भाषा है और केवल जम्मू में बोली जाती है,' तथा 'पहाडी कागडा, कुल्लू, मण्डी, सुकेत और शिमला पहाडी रियासतों की भाषा है, जबकि कश्मीरी जेलम नदी की अपर वैली तक सीमित है।' इससे स्पष्ट है कि 1881 तक भाषा के रूप में 'पहाडी' नाम यदि कहीं प्रयुक्त होना था, तो केवल उन बोलियों के लिए जो उन क्षेत्रों में बोली जाती थी, जो आजकल हिमाचल प्रदेश का प्रमुख भाग है। और यह नाम किसी भाषा-वैज्ञानिक ने नहीं बल्कि उन लोगों ने अपनी बोली को दिया है, जो इन्हें बोलते थे, या जिनकी यह मातृ-भाषा थी। सम्भव है, इसी नाम के आधार पर डॉ० ग्रियर्सन ने उत्तरी भारत की पश्चिम से पूर्व तक की भाषाओं को पहाडी नाम दिया हो। डॉ० ग्रियर्सन के सामने वर्गीकरण के लिए भौगोलिक स्थिति तो अवश्य ही थी, और तभी वे समस्त भाषाओं को प्रमुखत बाहरी, मध्य और भीतरी उपशाखाओं में बाटते हैं। उप हिमालय पहाडी भाषा समूह की किसी अन्य बोली का 1881 की जनगणना में 'पहाडी' नाम नहीं दिया गया है। डॉ० ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के लिए प्रमुखत 1881 की जनगणना की सख्याएं मूल रूप से सामने थीं। हो सकता है, कुल्लू, कागडा, मण्डी, सुकेत और शिमला पहाडी रियासतों की 1881 जनगणना की भाषा के 'पहाडी' नाम ने डा० ग्रियर्सन को प्रभावित किया हो और उन्होंने इसका क्षेत्र समस्त उप हिमालय पहाडी क्षेत्र तक बढा दिया हो। कुछ भी हो यह स्पष्ट है कि इस भू-खण्ड की भाषा का नाम सन् 1881 से पहले से ही 'पहाडी' था और उस जनगणना में 'पहाडी' भाषा बोलने वालों की सख्या 6, 19, 468 थी।

उपर्युक्त विवेचन में दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—प्रथम यह कि वर्तमान हिमाचल प्रदेश के निवासियों को 'पहाडी' समझा और कहा जाता है। दूसरे यह कि

1 डा० गोविन्द चातक मध्य पहाडी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, पृ० 7

इसी क्षेत्र की भाषा को 'पहाडी' कहते हैं और यह नाम आज का नही पुराना है। चूकि यहा के निवासियो को पहाडी कहा जाता है, और उनकी भाषा का नाम पहाडी चला आता है, अत 'पहाड़ी' भाषा से अभिप्राय हिमाचल प्रदेश और उसके साथ लगते क्षेत्रो की आधुनिक भारतीय आर्य भाषा से है, जिसे डॉ० ग्रियर्सन ने पश्चिमी पहाडी का नाम दिया था।

भाषाओं के नामकरण की पद्धति से भी इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है। भाषा विशेष के लिए वही नाम निश्चित होता है, जिस नाम से उसके बोलने वाले इसे समझते है या जो उसका स्वरूप है, जैसे—सस्कृत, प्राकृत, पालि, मलयालम आदि। परन्तु जिस भाषा समूह का भाषा-वैज्ञानिको ने 'पहाडी' नाम दिया है, उसमे ऐसा कोई गुण नही है। कश्मीर के पश्चिम से लेकर नेपाल के पश्चिम तक के सभी लोग अपनी भाषा को 'पहाडी' नही कहते। पूर्वी भाग वाले अपनी भाषा को नेपाली तथा मध्य भाग वाले गढवाली कहते है। केवल पश्चिमी भाग वाले अपनी भाषा को पहाडी कहते है। या, भाषा का नाम सम्प्रदाय अथवा जाति विशेष के नाम पर सम्बोधित होता है, जैसे—अग्रेजों की अग्रेजी, आर्य लोगो की आर्य, इस दृष्टि से भी चूकि मैदानो मे पश्चिमी भाग के लोगों को पहाडी कहते है, अत केवल उनकी भाषा ही पहाडी कहलानी चाहिए। या फिर, भाषाए देश विशेष के नाम पर जानी जाती है, जैसे—जापान की जापानी, चीन की चीनी, बगाल की बगला, पजाब की पजाबी आदि। परन्तु इस स्थिति मे भी भाषायी तथा सास्कृतिक समता का होना अनिवार्य हैं। इस दृष्टि से भी कश्मीर से नेपाल तक का क्षेत्र भाषिक, सास्कृतिक तथा प्रशासनिक इकाई नही है। वास्तव मे किसी भी विद्वान ने पूर्व से पश्चिम तक की हिमालय की तराई की भाषाओं को भाषायी इकाई के रूप मे नही माना है। उन्होंने केवल वर्गीकरण की सुविधा और उद्देश्य से इन सभी भाषाओं को 'पहाडी' शाखा के अन्तर्गत रखा है, अन्यथा वे इन्हे अलग-अलग भाषाए मानते है।

इस सम्बन्ध मे सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी के विचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और निर्णायक है। उन्होने 1958 मे मद्रास मे प्रकाशित 'लैंग्वेजिज आफ इण्डिया' मे हिन्दी भाषा की व्याख्या और क्षेत्र का वर्णन करते हुए 'हिन्दी' नाम केवल ग्रियर्सन की 'पश्चिमी हिन्दी' की बोलियो के समूह को दिया है। शेष हिन्दी प्रदेश मे उन्होने निम्नलिखित स्वतत्र भाषाए मानी हैं—(1) मैथिली, (2) मगही, (3) भोजपुरी, (4) कोसली अर्थात् ग्रियर्सन की पूर्वी हिन्दी, (5) राजस्थानी, (६) भीली, (7) मध्य पहाडी, (8) पश्चिमी पहाडी, (9) हलबी अर्थात् बस्तर की भाषा।[1] यहा उन्होने 'पूर्वी पहाडी' को हिन्दी प्रदेश से निकाल दिया है, और मध्य पहाडी तथा 'पश्चिमी पहाडी' को नितान्त अलग-अलग भाषाएँ बताया है, बोलिया नही। स्पष्ट है कि उन्होंने 'पश्चिमी पहाडी' को पूर्वी पहाडी और मध्य पहाडी से स्वतत्र भाषा माना है, भले ही उन्होने इसका अलग नामकरण नही किया। और यह नामकरण क्षेत्र

1 डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास', द्वितीय भाग, हिन्दी साहित्य का विकास पृ० 24 पर उद्धृत।

विशेष के भाषा-भाषियों ने स्वयं कर दिया है, जब पूर्वी पहाड़ी वाले अपनी भाषा को नेपाली, मध्य पहाड़ी वाले गढ़वाली और पश्चिमी पहाड़ी वाले पहाड़ी कहते हैं।

इन सभी मान्यताओं तथा धारणाओं में अन्तर्गत केवल वर्तमान हिमाचल प्रदेश तथा उसके साथ लगते क्षेत्र की भाषा को ही 'पहाड़ी' कहना युक्तिसंगत तथा उचित होगा। इसी दृष्टि से वर्तमान पुस्तक की 'पहाड़ी' से अभिप्राय इसी भाषा से है।

पहाड़ी का स्वरूप

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, पहाड़ी भाषा की उत्पत्ति के बारे में भाषा-विद्वानों में मत-भेद है। विद्वानों का एक वर्ग इसकी उत्पत्ति खश, दरद-पैशाची से मानता है, और दूसरा वर्ग इसे शौरसेनी अपभ्रंश से प्रसूत समझता है। खशों का भारतीय साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। विष्णु-पुराण के अनुसार उन्हें यदवंश की सन्तान माना जाता है। कश्मीर उनसे सम्बन्धित माना जाता है। उसकी एक पत्नी खसा से यक्ष और राक्षस पैदा हुए। उनकी सन्तान खश ही कहलाई, और दूसरी पत्नी क्रोधवश से निशाचारी या पिशाच पैदा हुए। इस तरह खश और पिशाच दो भाई हुए। महाभारत के अनुसार वे शैलोदा नदी के आस पास के क्षेत्र के शासक थे और इन्होंने युधिष्ठिर को योगदान दिया था। शतद्रु (सतलुज), विपाशा (ब्यास), ईरावती (रावी), चन्द्रभागा (चनाव), वितस्ता (जेहलम), और सिन्धु नदियों के क्षेत्र के राजाओं में वाहिक लोग विपाशा नदी क्षेत्र के पिशाचों में से थे। भगवत्-पुराण में खशों का नाम उत्तर-पश्चिमी भारत के निवासियों में यवनों के साथ आया है। मार्कण्डेय-पुराण में उनका नाम शक जातियों के साथ पर्वतीय निवासियों के रूप में आया है। इन सभी सदर्भों में उन्हें म्लेच्छ बताया गया है, जिन्हें वेद-ज्ञान न था और ये प्राय मानव-भक्षी थे। इसके अतिरिक्त खशों का हवाला भरत के नाट्यशास्त्र, वराहमिहिर की बृहत्संहिता, कल्हण की राज-तरंगिणी में व्यापक रूप से आता है। इन सब सदर्भों से स्पष्ट होता है कि भारत का नितान्त उत्तर पश्चिमी क्षेत्र खशों का निवास-स्थान था जो प्राय हिन्दुकुश पर्वत के निकट माना जाता है। वे आर्य जाति के क्षत्रिय थे, परन्तु खान-पान और रहन-सहन में आर्य नियमों के त्यागने के कारण वे म्लेच्छ या भ्रष्ट कहलाए और इसी लिए उन्हें पिशाच भी कहा जाता है।

खशों के लिए ही दूसरा नाम दरद है। 'दरद' संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ 'पर्वत' है। निवास के आधार पर एक ही परिवार के खश वर्ग को कश्मीर (खशमीर) से तथा दूसरे वर्ग दरद को दरदिस्तान से सम्बन्धित माना जा सकता है। आजकल कश्मीर के उत्तर के प्रदेश को खशों का निवास स्थान माना जाता है। गिलगित इस प्रदेश का केन्द्र स्थान है। जहा शिन (शीना, शिणा) लोग रहते हैं। और काफिरिस्तान, चित्राल, कोहिस्तान स्वात, सिन्ध, कश्मीर तथा गिलगित इसके सीमा-क्षेत्र में आते हैं।[1] काफिर, खोवार, दरद इनकी भाषाओं के मूल वर्ग है। शीना, कश्मीरी, कोहिस्तानी दरद पैशाची की मुख्य भाषाए है, और लहदा तथा सिन्धी स्पष्टत इन पर आधारित हैं। यहीं से खश

1. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन पिशाच लेंग्वेजिज़ आफ नार्थ-वैस्टर्न इण्डिया, पृष्ठ 2

लोग भारत के विभिन्न भागो मे फैले, परन्तु उनका प्रसार अधिकतर उत्तर मे हिमालय के साथ-साथ पश्चिम से पूर्व की ओर अधिक माना जाता है। सामीप्य की दृष्टि से दरद पैशाची का प्रभाव पूर्व की अपेक्षा पश्चिमी भाग मे अधिक माना जाना युक्तिसंगत होगा, परन्तु पहाडी भाषा का आधार दरद-पैशाची हो, ऐसा मानना कठिन है। वास्तव मे पहाडी भाषा की प्रकृति इस प्रकार की है कि इसके आधार के बारे मे किसी निश्चित निर्णय पर पहुचना बडा कठिन है। इसके ध्वनि-तत्वों, वैयाकरणिक रूपो तथा शब्दावली मे विभिन्न प्रकार की भाषाओ के गुण छुपे है, और इनमे इतने विचित्र लक्षण विद्यमान है कि जहा एक ओर ठीक शौरसेनी प्राकृत की ध्वनियाँ देखने मे आती है, वहाँ दूसरी ओर ऐसी ध्वनिया भी है जो केवल पैशाची से ही सम्बन्धित हैं और साथ ही ऐसी ध्वनियों की भी कमी नही जिनका सम्बन्ध तिब्बती-बर्मन भाषा से ही जोडा जा सकता है। इस प्रकार जहा एक ओर वैदिक तथा संस्कृत तत्सम एव तद्भव शब्दो की बहुलता है वहाँ दूसरी ओर ऐसे शब्दो की भी कमी नही जिन्हे किसी भी प्राकृत या अपभ्रंश मे ढूढा नही जा सकता। वास्तव मे, पहाडी भाषा मे इस तरह की भिन्नता तथा विषमता का मुख्य कारण यह है कि यह विभिन्न आधारों की भाषाओं मे घिरी हुई है। जहाँ यह पूर्व मे एक ओर गढवाली से सम्बद्ध है, वहाँ उसके आगे दक्षिण की ओर पश्चिमी हिन्दी इसकी पडौसिन है, ठीक उससे आगे दक्षिण मे पंजाबी भाषा-भाषी क्षेत्र पडता है और इसी क्रम मे पश्चिम मे यह डोगरी तथा कश्मीरी भाषा से घिरी है जो दरद-पैशाची भाषा-भाषी क्षेत्र है और उत्तर मे तिब्बती-बर्मन भाषाए इससे सम्बद्ध हैं। इस प्रकार विभिन्न आधार की भाषाओ से घिरी होने के कारण उनके प्रभाव से पहाडी भाषा की प्रकृति मे विभिन्नता तथा विचित्रता का होना स्वाभाविक है। परन्तु, इन सभी प्रभावों के होते हुए भी पहाडी भाषा मे कुछ ऐसे गुण है, जो पूर्णत उसके अपने मौलिक लक्षण है और जिनका प्रभुत्व इसका आधार निश्चित करने मे अधिक सहायक सिद्ध होता है।

पहाड़ी और दरद पैशाची

पहाडी भाषा मे सबसे अधिक विशिष्टता ध्वनि समूह के क्षेत्र मे है। इसमे कुछ ध्वनियाँ ऐसी है, जिनका स्पष्ट सम्बन्ध किसी प्राकृत-अपभ्रंश भाषा से जोडना कठिन है। इन ध्वनियो मे मुख्यत तालव्य च वर्ग (च, छ, ज, झ) ध्वनियो के साथ-साथ च, छ ज, झ ध्वनियाँ है। इनमे से 'ज' ध्वनि भारत की कई भाषाओं मे विद्यमान है। च, छ आदि राजस्थानी मे भी पाए जाते हैं परन्तु वहाँ ये स्वतन्त्र ध्वनियाँ न होकर केवल च, छ, ज के विकृत उच्चारण लगते हैं, स्वतंत्र ध्वनियाँ नही है। परन्तु पहाडी भाषा मे इनका अपना अलग अस्तित्व है। चाम्बडा (पनीला) परन्तु चावडा (चमडा), मौछो (मक्खी) परन्तु मौछी (मछली), जाथा (मतान) परन्तु जाथा (जाए), झौड (एक लम्बा परन्तु तग खेत) परन्तु झोड (गिर जा) आदि शब्दो द्वारा तालव्य चवर्ग से चवर्ग ध्वनि की अलग सत्ता स्पष्ट हो जाती है। च, छ, ज, झ क्रमश च, छ, ज, झ की सध्वनियाँ नहीं हैं, परन्तु ये स्वतंत्र अलग ध्वनियाँ हैं। इस तरह की अलग स्वतंत्र ध्वनियाँ दरद पैशाची

भाषा मे विद्यमान हैं। ग्रियर्सन ने पैशाची मे इन्हे तालव्य ही माना है। इस सम्बन्ध मे वे जर्मन विद्वानों के विपरीत 'ग्रे' का अनुसरण करते है। इनमें तथा मूल चवर्ग ध्वनियों मे अन्तर वे केवल यह मानते हैं कि च, छ, ज क्रमश च, छ, ज के स्पर्श-संघर्षो के रूप हैं। परन्तु पहाडी भाषा की बोलियों मे इन्हे चवर्ग के स्पर्श-संघर्षी रूप नही कहा जा सकता। यद्यपि इनका उच्चारण स्थान-विशेष मे भिन्न है और कही ये मूर्धन्य और कही वर्त्स्य लगती हैं, परन्तु अधिक झुकाव वर्त्स की ओर है और इन्हे वर्त्स्य ही माना जाना चाहिए। पैशाची की अपेक्षा इनका उच्चारण तिब्बती भाषा के अधिक निकट है। तिब्बती मे चवर्ग और चवर्ग अलग-अलग ध्वनि-समूह है, और पहाडी की चवर्ग ध्वनियों का उच्चारण तिब्बती-बर्मी की इन ध्वनियों के अधिक निकट है।

एक अन्य ध्वनि जिसमे तिब्बती बर्मी का प्रभाव स्पष्टत दिखाई देता है, अनुनासिक के सम्बन्ध मे है। पहाडी भाषाओं मे अनुनासिक्य तथा मौखिक नासिक्य दोनो रूप मिलते हैं, और यही तिब्बती-बर्मी का अधिक प्रभाव है—पहाड़ी भाषाओं पर तिब्बती-बर्मी का प्रभाव तो डा० ग्रियर्सन भी मानते हैं, जिसके कारण के रूप मे वे लिखते है कि 'इनके बोलने वालो की अधिकाश जनसख्या का आधार तिब्बती-बर्मी जातिया थी, जो बाद के युगों मे आर्यो से मिश्रित हो गई।

परन्तु चवर्ग की ध्वनियो मे से सघोष महाप्राण 'झ' तिब्बती मे नही है। वहा सघोष महाप्राण किसी भी वर्ग का विद्यमान नही है। यह ध्वनि दरद-पैशाची मे अवश्य है और डा० ग्रियर्सन इसे इसकी अन्य वर्गीय ध्वनियो की तरह स्पर्श सघर्षी मानते हैं। दरद पैशाची के कुछ और प्रभाव भी मिलते हैं। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द्र के अनुसार पैशाची में सस्कृत 'ऋ' प्राय 'इ' मे बदल जाता है। यह प्रवृत्ति पहाडी भाषा मे भी है, जैसे—घृत>घिउ, शृगाल>शियाल (या सियाल), शृग>शिग (या सिग) आदि। इसी तरह पैशाची की 'श' को 'स' मे बदलने की प्रवृत्ति पहाडी (विशेषत बाहरी पहाडी) में प्रचलित है—शका>सका, शख>सख, श्राद्ध>सराध, शुभ>सुभ आदि। इसी प्रकार 'ष्ट' को 'सट' (कष्ट>कसट, नष्ट>नसट), 'स्न' को 'सन' (स्नान>असनान), 'ल' को 'र' (चावल>चौर, नारियल>नरेल, दाल>दाल) तथा 'घ' को 'च' मे बदलने की प्रवृत्तियाँ सभी पैशाची प्रभाव के कारण है। मण्डियाली मे 'ल' का 'ड' म बदलने का स्वभाव भी पैशाची का प्रभाव प्रकट करता है। हिमालय की तराई मे खश आर्यो के प्रभाव का उल्लेख करते हुए श्री लालचन्द प्रार्थी इस बात का सकेत करते हैं कि 'पति' के लिए 'खसम', 'जेब' के लिए 'खीसा', 'धोती' के लिए 'खेराडी', 'खुरदुरा' के लिए खशखशा (या खसरा) आदि शब्द न केवल दरद भाषा का प्रभाव प्रकट करते है बल्कि खश जाति की सभ्यता पर भी प्रकाश डालते है।[1] परन्तु इन सबके होते हुए भी पहाडी भाषा को न तो तिब्बती-बर्मी भाषा पर आधारित किया जा सकता है, और न ही दरद पैशाची को इस का मूलाधार माना जा सकता है। तिब्बती-बर्मी भाषा का उच्चारण के अतिरिक्त और कोई प्रभाव स्पष्टत दिखाई नही देता। जहा तक दरद-पैशाची का सम्बन्ध है, कुछ ऐसे मौलिक लक्षण हैं जिनके आधार पर पहाडी भाषा को दरद या पैशाची से प्रसूत नही

1. श्री लालचन्द प्रार्थी कुलूत देश की कहानी, पृ० 197—202

माना जा सकता ।

दरद-पैशाची परिवार की किसी भी भाषा मे सघोष महाप्राण (घ, झ, ढ, ध, भ) व्यजनो मे से कोई भी ध्वनि नही है। दूसरी भाषाओ से आए शब्दो मे भी ऐसे व्यजन सर्वदा अल्पप्राण हो जाते हैं और उन का घोषत्व पूर्णत समाप्त हो जाता है।[1] परन्तु पहाडी भाषा की सभी बोलियो मे सघोष-महाप्राण ध्वनियो की प्रधानता है, और ये इनकी मौलिक ध्वनियो मे से है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, पैशाची मे 'ल' को 'ल' उच्चरित किया जाता है परन्तु यह केवल प्रवृत्ति है और 'ल' केवल 'ल' का विकृत उच्चारण है। परन्तु ठीक इसके विपरीत पहाडी मे 'ल' और 'ल' बिलकुल अलग अलग ध्वनिया हैं। यह ठीक है कि यहा भी प्राय 'ल' को 'ल' मे बदलने की प्रवृति भी है। परन्तु यह स्थिति प्रवृत्ति तक सीमित नही है, पहाडी मे 'ल' और ल' सध्वनिया(allophone) न होकर स्वतत्र ध्वनिया (phonemes) है। काली (काली माता) परन्तु काली (काला रग की), लाला परन्तु लाला (राल) शौल (आवल) परन्तु शौल (दराड) आदि शब्द युग्मो से यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि जिस भाषा म इस कदर पहाडो की मौलिक ध्वनिया (घ, झ, ढ, ध, भ, ल) का पूर्णत- अभाव हो वह उसकी जननी नही हो सकती।

दरद-पैशाची म जहा एक ओर पहाडी की मौलिक ध्वनिया नही है वहा दूसरी और इसमें कुछ ऐसी ध्वनिया है जो पहाडी मे प्राय प्रचलित नही है। इनमे फारसी की ख (खे), ग (गैन), फ (फे) ध्वनियाँ है। पहाडी म ख, ग और फ ध्वनिया किसी भी बोली मे विद्यमान नही है और न ही ऐसी ध्वनिया उसकी प्रकृति के अनुकूल है। दूसरी भाषाओ मे आए शब्दो म भी ख, ग, फ पहाडी म क्रमश ख, ग, फ बन जाते हैं— खरगोश >खरगोश, गौर >गौर फर्ज>फरज आदि। स्पष्ट है कि दरद-पैशाची और पहाडी की आधार-भूत मूल ध्वनिया मे ही बहुत अन्तर है।

अब जरा प्रवृत्ति की बात लीजिए। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है दरद-पैशाची मे सघोष महाप्राण तो है ही नही, साथ ही अन्य सघोष व्यजन भी अघोष म बदल जाते है।[2] पहाडी मे सघोष व्यजन सुरक्षित हैं। जहाँ तक प्रवृत्ति का सम्बन्ध है कागडी, मण्डियाली, सिरमौरी और कहलूरी को छोड कर जहाँ सघोष महाप्राण किसी हद तक सघोप अल्पप्राण की ओर झुकता है शेष सभी बोलियो म ये पूर्णत मूल रूप मे उच्च-रित होते हैं। कागडी सिरमौरी और कहलूरी मे भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ पजाबी और डोगरी मे सघोष-महाप्राण अघोष अल्पप्राण की ओर प्रवृत होता है, (जैसे घर=कहर, ढोल=टहोल) वहाँ पहाडी की इन बोलियो मे सघोष-महाप्राण प्राय अघोष अल्पाण की ओर नही वरन् सघोष-अल्पप्राण की ओर झुकता है— घर=गहर, झगडा=जहगडा, धोती=दहोती आदि।[3] देखने की बात है कि पहाडी मे घोपत्व को हानि नही पहुँचती, केवल प्राणत्व को क्षति पहुँचती है।

1 ग्रियसन पिशाच लग्वजिज्र आफ नार्थवेस्टन इण्डिया, पृ० 2
2 उदाहरण के लिए देखिए इसी पुस्तक मे 'प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के अन्तर्गत 'पैशाची प्राकृत" भाषा।
3 जिला विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित 'शोध पत्रावली पृष्ठ 59 60

स्पष्टत पहाडी मे यह तो प्राणत्व के बदलने की प्रवृत्ति है, घोषत्व की नही। घोषत्व तो पहाडी मे स्थिर रहता है, जबकि पैशाची अघोष व्यजनों को अधिमानता देती है और दो स्वरों के बीच तो क्या आदि में भी इस अधिमानता के अधीन सघोष प्राय अघोष मे बदल जाता है—दामोदर>तामोतर। परन्तु पहाडी मे इसके विपरीत प्राय अघोष व्यजन सघोष में बदलते है।[1] जैसे दन्त>दाँद या दद, पचम्>पाँज या पज, पोंज, कटक>कडा, कांडा, बाप>बाव, शुक>शुगा। यहाँ कठोर व्यजन क, च, ट, त, प क्रमश कोमल व्यजन ग, ज, ड, द, व मे बदल गए है, जबकि पैशाची मे कोमल व्यजन कठोर हो जाते है।

पैशाची मे 'ण' की अपेक्षा 'न' की प्रधानता है। इसी प्रधानता प्रयोग के कारण मूर्धन्य 'ण' सर्वदा दन्त्य 'न' मे बदलता है, जैसे गुण>गुन, तरुणी>तलूनी। यह सम्भवत इसलिए भी है कि पैशाची मे मूर्धन्य और दन्त्य मे स्पष्ट भेद नही है। परन्तु यह प्रवृत्ति पहाडी मे बिलकुल उलट है। यहाँ 'न' की बजाय 'ण' की प्रधानता है। 'ण' की पहाडी मे अत्यधिक प्रधानता है।

पैशाची मे 'ज्ञ, ण्य और न्य को ञ्ञ हो जाता है—प्रज्ञा>पञ्ञा, पुण्य<पुञ्ञ, कन्यका>कञ्ञका आदि। परन्तु पहाडी मे इस तरह के परिवर्तन का भी नियम नही है। यहाँ 'ज्ञ' प्राय 'गिय' का उच्चारण देता है—ज्ञान>गियान, और ण्य तथा न्य प्राय न का—पुण्य>पुन या पून।

पैशाची मे 'य' सुरक्षित रहता है। प्राकृत भाषाओ मे सम्कृत 'य' प्राय 'ज' मे बदल गया था। यह प्रवृति पहाडी की सभी बोलियो मे विद्यमान है—योगी>जोगी, यजमान>जजमान, यज्ञ>जग आदि। पैशाची मे 'य' का 'ज' मे न बदलना मुख्य विशेषताओ मे से एक है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पैशाची की बहुत सी प्रवृतियाँ पहाडी के अनुकूल नही हैं बल्कि कई प्रवृत्तियाँ इसके बिलकुल प्रतिकूल है। इसमें सन्देह नही कि पहाडी भाषा मे दरद-पैशाची के साथ कुछ साम्य है, और इस तरह इस पर तिब्बती-बर्मी, दरद या पैशाची के प्रभाव को सहसा अस्वीकार नही किया जा सकता, परन्तु ये प्रभाव इतन निर्णायक नही हैं कि पहाडी भाष को आर्य-भाषा परिवार से अलग किया जा सके। वास्तव मे प्रभाव भी इतने कम है कि इनकी बिना पर दरद पैशाची या तिब्बती बर्मी मे इसका आधार नही खोजा जा सकता। जिन भाषाओं मे पहाडी की मूल ध्वनियाँ भी पूर्णत विद्यमान न हों और साथ ही जिनमे ऐसी ध्वनियाँ मौलिक तथा प्रधान रूप से प्रचलित हों जो पहाडी मे विद्यमान नहो है, वे पहाडी की जननी नही हो सकती।

पहाड़ी तथा प्राकृते

विपरीत इसके पहाडी मे ध्वनिया तथा शब्दावली की अपनी मौलिक विशेषताए हैं, जिनको दृष्टि में रखते हुए पहाडी भाषा का मूलाधार तिब्बती, बर्मी, खश, दरद या पैशाची मे न माना जाकर मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के किसी रूप मे ढढा

1 वही पृष्ठ 60

जाना चाहिए, क्योकि प्राकृत के सभी गुण पहाडी भाषा मे विद्यमान हैं। सस्कृत विभक्तियो का पूर्ण अभाव, उनकी जगह स्वतत्र कारक-चिह्नो का प्रयोग, एक मे अधिक कारको के लिए समान कारक-प्रत्ययो का प्रयोग, श्रुति का विशेष महत्व, स्वराघात की विशिष्ट सत्ता, यहा तक कि श्रुति और स्वराघात का स्वतत्र ध्वनिग्राम के रूप मे अस्तित्व ऐसे लक्षण हैं जो पहाडी भाषा का प्राकृतो से विशेष सम्बन्ध जोडते हैं। जहा तक ध्वनियो का सम्बन्ध है, प्राकृतो मे जो स्वरध्वनिया हैं वे प्राय सभी पहाडी भाषा मे विद्यमान है। प्राकृतो मे ऋ, ॠ लृ स्वर लुप्त हो चुके थे। पहाडी में भी इनका प्रयोग नही है। प्राकृतो मे स्वरो-सम्बन्धी मुख्य विशेषता ए और ओ के ह्रस्व रूप हैं, परन्तु इन्हे प्राय विशेष लिपि चिह्न से अभिव्यक्त नही किया जाता है। पहाडी भाषा मे ए-ऐ और ओ-औ के अतिरिक्त इनके मेल की स्वरध्वनिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन्हे एँ तथा ओँ से व्यक्त किया जा सकता है। एँ का प्रतिनिधि रूप कर्म-कारक के विभक्ति रूप मे विशेषत देखा जा सकता है—मूख, मूखेँ, मूबेँ। पहाडी भाषा को जब देवनागरी मे लिखा जाता है तो देवनागरी मे ऐसा ध्वनिचिह्न न होकर विभिन्न लेखको ने इस ध्वनि को कई तरह से लिखा है—मूख—मूखे—मूखैं (मुझे), ताखे—ताखे—ताखैं (तुझे) मूबे—मूबे—मूबैं (मुझे) आदि। इसी तरह सूलैं, सूले, बुहेँ, घोरालेँ आदि शब्दो मे इस ध्वनि का रूप देखा जा सकता है। इसी तरह 'ओँ' ध्वनि का भी अस्तित्व है। इसे भी वर्तमान लेखक उपर्युक्त अनिश्चितता मे ही क—को—कौ तीन तरह से लिख रहे है। ये दोनो स्वरध्वनिया (शौरसेनी) प्राकृत की देन कही जा सकती हैं।

पहाडी मे 'ल' और 'ल्ह' स्वतत्र ध्वनिया है। पालि आदि प्राकृतो मे ये दोनो उच्चारण मिलते है और इस तरह पहाडी की ये ध्वनिया प्राकृतो से ही आई हैं।

चवर्ग वर्णों का उच्चारण वैदिक काल से ही समय-समय पर बदलता रहा है। वैदिक काल मे ये केवल स्पर्शी थी, आजकल स्पर्श सघर्षी है। हो सकता है इनका मूर्धन्य और वर्त्स्य रूप भी रहा होगा। वैदिक काल मे तवर्ग ध्वनिया कदाचित् वर्त्स्य ही थी। पहाडी भाषा की वतमान चवर्ग ध्वनिया इन्ही ध्वनियो के रेल-पेल का परिणाम है। प्रारम्भ मे ये केवल सध्वनिया रही हागी और आज तक पहुचते-पहुचते स्वतत्र ध्वनियो बन गई। इन ध्वनिया की व्युत्पत्ति स ही इस बात की पुष्टि हो जाती है।[1] अत पहाडी भाषा की चवर्गीय ध्वनियो की उत्पत्ति तिब्बती-बर्मी या दरद पैशाची से न होकर भारतीय आर्य भाषाओ स स्पष्ट प्रतीत होती है। इनमे से ज और झ तो पूर्णत तथा स्पष्टत पूर्व वैदिक भाषा की ध्वनिया है ही।[2]

जहा तक ध्वनि परिवर्तन का सम्बन्ध है, प्राकृतो मे 'ऋ' का मूल उच्चारण प्राय समाप्त हो गया था। इसका उच्चारण 'रि' जैसा रह गया था या यह 'इ' अथवा 'उ' मे बदलता था। यही स्थिति वर्तमान पहाडी मे है। ऋषि, ऋण आदि शब्द पहाडी मे आम प्रयुक्त होते हैं, परन्तु इनका उच्चारण पूर्णत रिशी, रिण हो गया है। इसमे

1 देखिये इस पुस्तक के कुलुई भाग में 'व्यजनों की उत्पत्ति'।

2 तुलना करें—डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी 'इण्डोआर्यन एण्ड हिन्दी' पृ० 16, तथा डॉ० रामविलास शर्मा 'भाषा और समाज' पृ० 158

'इ' और 'उ' मे बदले प्रयोग भी मिलते हैं—ऋतु > रत, वृक्ष > रुख, पृच्छ > पुछ, गृध > गुद्ध, शृगाल > शियाल, पुत > धिऊ आदि।

परन्तु भारतीय भाषाओं के मध्यकालीन रूप तक पहुँचने से पहले उन्हें कई चरणों और विकासीय परिस्थितियों में से गुजरना पड़ा है। इसलिए किसी भाषा के वर्तमान रूप पर विचार करने से पूर्व उन प्राचीन भाषाओं तथा बीच के क्रम को भूला नहीं जा सकता। इन पर विचार करना अनिवार्य हो जाता है।

पहाड़ी का प्रागैतिहासिक रूप

भारत मे भाषा-अध्ययन का आरम्भ प्रायः आर्यों के आगमन से ही किया जाता है। आर्य लोग भारत मे एक-बार नही आए, बल्कि कई समूहों मे आए होंगे, इस बात पर सभी विद्वान सहमत हैं। जब आर्य लोग भारत मे आए तो यह निर्जन और गैर-आबाद क्षेत्र नही था। उनसे पूर्व भी लोग रहते थे। उनकी अपनी भाषा थी, रहन-सहन के अपने ढग थे। सामाजिक गतिविधियो के अपने नियम थे। प्रागैतिहासिक काल मे हिमालय के इस भूखण्ड मे यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव, पिशाच, नाग आदि जातियो के होने की कल्पना की जाती है। कल्पना ही क्यो, हमारे प्राचीन साहित्य मे स्थान-स्थान पर इनका उल्लेख मिलता है। पौराणिक अनुश्रुतियाँ विशेष रूप से इनसे सम्बन्धित हैं तथा विष्णु-पुराण, भागवतपुराण, मार्कण्डेयपुराण एव स्कन्दपुराण के संदर्भो मे इन जातियो को जिस क्षेत्र से सम्बन्धित बताया गया है, वह भारतवर्ष का हिमालयस्थित यही भूखण्ड है। 'पिशाच'', 'यक्ष' तथा "राक्षस" के सम्बन्ध मे पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। भाषा-विकास के क्रमिक इतिहास मे आर्य जाति की भाषा पर भारत के आदिवासियो अर्थात् अनार्यो की भाषा के प्रभाव का उल्लेख करते हुए प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने कहा है कि "अनुलोम, प्रतिलोम विवाह द्वारा प्राचीन भारत मे जहाँ एक ओर विभिन्न जातियो का सम्मिश्रण हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर आर्य तथा अनार्य भाषा एव सस्कृति का भी सगम हो रहा था।[1]

आर्यो के भारत मे आने पर इन पूर्व-आर्य जाति के लोगो की अपनी भाषा अवश्य थी, और आर्य तथा अनार्य लोगो के बीच आदान प्रदान मे दोनो की भाषाओ का स्पष्ट सपर्क रहा होगा। यह ठीक है कि सघर्ष मे विजयी की हर बात पराजित पर प्रभावी होती है। साथ ही विजयी म अवश्य पराजित से अधिक गुण होगे तभी बाहर से आए लोग मूल निवासियो को पराधीन कर सके। और, आर्य लोगो के अधिक सुसभ्य और शिष्ट होने म तो सदेह ही नही है। परन्तु इस सघर्ष म मूल निवासियो की भाषा पूर्णत निष्कासित हुई हो, ऐसी सम्भावना नही की जा सकती। भाषा तो क्या आदिवासियो के सामान्य दैनिक जीवन, पूजा पाठ के रिवाजो को भी आर्य लोग पूर्णत समाप्त न कर सके थे, प्रत्युत उनका आर्यो के रिवाजो के साथ ऐसा समावेश हुआ कि वे आर्य होकर ही प्रचलित रहे। स्पष्टत भाषा मे यहाँ के मूल निवासियो की बोलियाँ के अश

1 डा० उदयनारायण तिवारी द्वारा अपनी पुस्तक 'हिंदी भाषा का उद्भव और विकास' के पृष्ठ 209 पर उद्धृत।

समाविष्ट हुए और आज तक चले आए हैं, और इस लम्बे समय के सम्पर्क में आज उन्हें पृथक करना कठिन है। फिर भी पहाडी भाषा में यक्ष, दैत्य, दानव, पिशाच, डामर, वानर, चण्डाल, गन्धर्व, नाग आदि प्रागैतिहासिक जातियों की भाषा के अवशेषों से इन्कार नही किया जा सकता।[1] स्थानीय परम्पराओं के अनुसार मानव शरीर या घर गृह म पैठी प्रेतात्माओ, ओपरा को निकालने के लिए गूर, चेला, डलैंह्या (डाली चलाने वाला) या जादू-टोनक, टानगिरी जो भाषा बोलता है, वह सचमुच राक्षसों की भाषा से कम क्या होगी। प्रेतात्मा के निवारण के लिए गूर, चेला या डलैंह्या द्वारा प्रयुक्त भाषा न वेद-मत्र है, न बगाल का जादू, न बौद्धों, सिद्धो, गोरखनाथ पथियों की भाषा। वास्तव मे ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ एक गूर दूसरे गूर की अथवा एक चेला या डलैंह्या दूसरे की उस समय की भाषा को नही समझता, और ये लोग इसे 'प्रेत-भाखा' या 'राखस बोली' ही कहते है। यह कौन सी भाषा है, इसका ज्ञान अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। मूल अर्थ तो गूर चेलो को भी नही आते। ये उनके रटे-रटाये मत्र हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनके पास आज तक सुरक्षित हा रहे हैं, परन्तु इस भाषा का बहुत बडा भाग समाप्त हो गया है। इस को जानने वाल इसे अपनी सबस बहुमूल्य और गुप्त सम्पत्ति समझते हैं और किसी को किसी शत पर बताते नही हैं, केवल अपने एकाध चेलों-गूरों तक सीमित रखते हैं, जो प्राय उनके पुत्र या सग सम्बन्धी होते हैं। यक्ष, दैत्य, दानव, पिशाच, राक्षस, चण्डाल, आदि मानव जाति के रूप म हिमाचल प्रदेश मे आजकल कहीं विद्यमान नही, परन्तु यहाँ की प्राचीन परम्पराओं के ये बडी सामान्य एव जानी-बूझी आत्माएँ है, और दूत, दानू, घाघडा, पिशाच, राखस, चेट्ठ आदि कई नामो से ये अब डर की वस्तुएँ रह गई हैं। इन्हे अत्यन्त कष्टदायी शक्तियाँ समझा जाता है और इनकी पूजा भी की जाती है परन्तु केवल इसलिए कि ये अप्रसन्न न हा, या वे मानव शरीर अथवा आबादी से दूर रहें।

पहाड़ी और मुण्डा भाषा

इसी क्रम में भारत के आदिवासियो म से जिन जातियो का सम्बन्ध इस भूखण्ड स रहा है, उनमें स कोल, किरात और किन्नर का विशेष रूप से नाम लिया जा सकता है। यदि इनके साथ आजकल के स्थानीय नाम की दो जातियो को सम्मिलित किया जाए, तो यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वर्तमान हिमाचल प्रदेश मुख्यत पाच 'क' जातियो का क्षेत्र है और पहाडी भाषा इन्ही पाँच क-युक्त जातियों की बोलियो का सामूहिक रूप है जिस पर वैदिक सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश का आवरण चढ़ा है। य दो जातियाँ हैं—कनैत और कोली। इन पाँच कोल, किरात, किन्नर, कनैत और काली जन-समुदायों की मूल भाषा का पहाडी भाषा पर बडा गहरा और प्रमुख प्रभाव है। कोल भाषा भारत के विभिन्न स्थानो पर बोली जाती है, यद्यपि छोटा नागपुर इस का केन्द्र है। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार आर्यों स बहुत

1 इस सम्बन्ध मे सविस्तर विवरण के लिए देखिये श्री लाल चन्द्र प्रार्थी की पुस्तक 'कुलूत देश की कहानी, पृ 103-154

पहले जो अन्य जातियाँ भारत मे आई उनमे से प्रॉटो-आस्ट्रोलाइड दूसरी जाति थी।[1] इन्ही की एक शाखा आस्ट्रो-एशियाटिक कहलाई जिसकी सतान को बाद में आर्यों ने निषाद भी कहा है। वर्तमान कोल, भील, गोंड आदि इन्ही की सतान मानी जाती हैं। *किरात, किन्नर, कनैत और कोली मूल रूप मे हिमाचल प्रदेश के मूल निवासी हैं।* किरात से अभिप्राय 'पर्वतीय जाति' है, "किन्नर या किंपुरुष देवयोनि हैं"[2], जो देवलोक मे रहने वाले माने जाते हैं। हिमाचल प्रदेश का वर्तमान किन्नौर जिला इन्ही के नाम से अभिहित है। जिस प्राकृतिक-सौंदर्य स्थल मे किन्नौर जिला के लोग आज कल रहते हैं और जिस सगीत-नाट्य कुशलता को वे अपनाए हुए हैं, उसकी दृष्टि मे सस्कृत साहित्य के किन्नरो की हिमाचल प्रदेश मातृ-भूमि होने मे कोई सदेह नही है। इतिहास और साहित्य मे कोल, किरात, किन्नर लोगों का नाम साथ-साथ आता है। कोली लोग कोल जाति की ही एक शाखा से सम्बन्धित हैं, और आज कल प्राय डागी के नाम से भी सम्बोधित किए जाते हैं। कनैत को डॉ० ग्रियर्सन और कुन्निघम ने खश की एक शाखा माना है और उन्हे राठी तथा कागड़े के घिर्थों से सम्बन्धित कहा है। ये सभी लोग सारे हिमाचल मे भारी सख्या मे रहते हैं और इससे बाहर भी फैले हुए हैं, परन्तु किन्नर, किरात और कोल का मूल स्थान किन्नौर ज़िला, लाहुल स्पिति जिला और कुल्लू ज़िला का मलाणा गाँव है, और इन्ही स्थानो पर इनकी मूल भाषा अभी तक सुरक्षित रही है। इन क्षेत्रों से बाहर विशेषत कनैत (खश) और कोली अपनी प्राचीन भाषा भूल चुके हैं।

परन्तु किन्नौर, मलाणा और लाहुल-स्पिति मे इनकी मूल भाषा के गुण अभी विद्यमान हैं, यद्यपि उनमे एक ओर तिब्बती-बर्मी और दूसरी ओर भारतीय आर्य भाषाओं का भारी मिश्रण हो गया है। आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार की कोलादि भाषाओं को मुडा परिवार की भाषाएँ कहा जाता है और मुण्डा भाषा की बहुत सी विशेषताएँ किन्नौर जिला की **किन्नौरी**, मलाणा की **'कनाशी'** तथा लाहुल और स्पिति ज़िला की बोलियो मे विद्यमान है।

मुण्डा भाषा मे सर्वनामो की प्रधानता होने के कारण इसे सार्वनामिक भाषा कहा जाता है। यह विशेषता किन्नौर और लाहुल-स्पिति जिलो की भाषाओं मे व्यापक है। डॉ० बशी राम शर्मा के अनुसार **किनौरयानुस्कद** (किन्नौर की भाषा) मे सार्वनामिक गुण इतने विशिष्ट हैं कि इसमे तीन वचन होते हुए भी केवल सर्वनामो मे ही वचन-भेद स्पष्ट होते हैं, शेष स्थिति मे वचन-सम्बन्धी रूप समान रहते हैं—एक बैल घास खा रहा है > ई दामेस **घो जऊ दू**। (अधिक) बैल घास खा रहे हैं > दामा **घो जऊ दू**। यहाँ 'जऊ दू' शब्द दोनों 'रहा है' और 'रहे हैं' के लिए प्रयुक्त है, कोई अन्तर नही। परन्तु सर्वनामो मे यह भेद स्पष्टत लक्षित होते हैं—ग ब्योक (मैं गया), निशि-ब्योच (हम दो गए), निडो ब्योष (हम सब गए)।[3] यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि किन्नौरी

1 डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी इण्डो-आर्यन एण्ड हिन्दी पृ० 37.
2 श्री राहुल साकृत्यायन किन्नर देश, पृष्ठ 1
3 डॉ० बशी राम शर्मा राज्य भाषा सस्थान, शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'हिम-भारती' जून 1973 अक, पृष्ठ 7.

मे सर्वनामो के तीन-तीन वचन हैं—एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन। पडौस की भारतीय आर्य भाषाओ से यह एक विशिष्ट भिन्नता है। किन्नौरी के सर्वनामो मे द्विवचन का अस्तित्व इसकी सार्वनामिक सत्ता को पुष्ट करता है।

इन बोलियो मे मुण्डा भाषा की अन्य विशेषता बहुवचन रचना के सम्बन्ध मे है। आर्यभाषाओ की तरह इनमे प्रातिपदिकों के विकारी रूप से बहुवचन नही बनता, प्रत्युत मुण्डा भाषा की तरह स्वतत्र प्रत्ययों द्वारा वचन सम्बन्धी भेद प्रकट होता है। किनौरयानुस्कद मे बहुवचन प्रत्यय 'आ', 'ओ', गो', 'ए', 'नो', 'ओन' हैं।[1] लाहुल-स्पिति जिले की पटनी मे बहुवचन प्रत्यय रे, जे और दे, तथा तिनन मे रे और जे हैं।

ध्वनि से सम्बन्धित मुण्डा भाषा की एक मुख्य विशेषता भी इन भाषाओ मे पाई जाती है। यह कुछ अक्षरों के अर्ध-व्यजन होने की बात है। मुण्डा की तरह ही इनमे भी कुछ व्यजन श्रुत हो जाते हैं और इनकी पूर्ण ध्वनि सुनाई नही देती। उदाहरणार्थ तिब्बती दुग > किन्नौरी दू, तिनन और पटनी तो (है), तिब्बती 'डस' -(मैंने) > कि० 'ग' > पटनी 'गे', पुनन 'गी आदि।

इसके अतिरिक्त इन सभी भाषाओ मे केवल बीस तक गिनती की प्रथा है, बल्कि किनौरयानुस्कद मे तो केवल मूलत दस तक ही गिनती होती।[2]

आदिवासी कोल, किरात और किन्नर की मुण्डा भाषा का प्रभाव केवल किन्नौर, मलाणा, लाहुल और स्पिति तक ही सीमित नही, यहाँ तो यह काफी हद तक मूल भाषा है। वरन् इसका प्रभाव कोल, किरात तथा किन्नर के सगे-सम्बन्धी कनैत और कोली के माध्यम से समस्त हिमाचल को पहाडी भाषा तथा पडौस की भाषाओ पर भी पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है। वैसे तो मुण्डा भाषा का द्रविड तथा भारत की अन्य कई भाषाओ पर प्रभाव लक्षित होता है, परन्तु पहाडी भाषा मे इसका प्रभाव विशेष महत्त्व रखता है। मुण्डा भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ विशेषता उनकी योगात्मक शैली है। योगात्मकता मे भी मुण्डा भाषाए मध्ययोगी अश्लिष्ट[3] रूप लिए हुए हैं, अर्थात प्रत्यय प्राय प्रकृति के मध्य मे जोडा जाता है, जैसे 'दल' से 'दपल'। यदि इस प्रकार शब्द के मध्य मे अक्षर जोडने से ही योगात्मकता मुण्डा भाषाओ की विशेषता है, तो पहाडी भाषा मे अनेक उदाहरण प्राप्य हैं, जिनमे चिर्यों की बोली म, जरा (बुढापा) से जबरा (बाप), कोंक से कड़ोंक आदि विशेष रूप भी मिल सकते हैं। परन्तु यह योगात्मकता मुख्यत क्रियाओ के क्षेत्र मे होती है। कुछ विद्वानो के अनुसार मुण्डा मे क्रिया रूपो का बाहुल्य है, और विशेष बोलियो मे क्रिया की जटिलता मुण्डा के ही प्रभाव का परिणाम है।[4] और पहाडी भाषा मे क्रियाओ के अनेक रूप तथा उनकी जटिलता प्रमुख विशिष्टता है। यहाँ केवल कुलुई बोली के उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। कुलुई म प्रमुख धातुओ के चार-चार क्रिया रूप है—मूल क्रिया, उसका कर्म वाच्य रूप, प्रेरणार्थक क्रिया और प्रेरणार्थक

1 डा० बशी राम शर्मा वही पृ० 78

2 वही पृ० 12

3, डा० मनोजकुमार रोहरा भाषा एव हिन्दी भाषा, पृ० 81

4 हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास सपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 2

क्रिया का कर्मवाच्य रूप। इन रूपों को हम 'कुतुई बोली' के क्रियापद मे विस्तार से देंगे। यहाँ केवल कुछेक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—'पीणा' का अर्थ पीना है, इस मे कर्मवाच्य रूप 'पिइणा' बनता है जिसका अर्थ 'पिया जाना' है। पीना से 'पियाइणा' प्रेरणार्थक रूप बना जिसका अर्थ 'पिलाना' है। पियाणा का कर्मवाच्य रूप 'पियाणा' है जिसका अर्थ 'पिलाया जाना' है। इसी तरह खीणा (जीना), जिइणा (जिया जाना), जियाणा (जीवित करना), जियाइणा (जीवित किया जाना); सोणा (सोना), सोइणा (सोया जाना), सुयाणा (सुलाना), सुआइणा (सुलाया जाना) आदि। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि कुलुई मे धातु के मध्य मे आया 'इ' कर्मवाच्य का प्रत्यय है और अक्षरान्त के अनुसार 'या', 'आ' अथवा 'एर' प्रत्यय क्रिया को प्रेरणार्थक बनाते हैं—खाणा < खाना, खाइणा < खाया जाना, खियाणा < खिलाना, खियाइण < खिलाया जाना। इस तरह क्रियाओं के रूपों की विविधता पहाडी की प्राय सभी बोलियों म देखी जा सकती है,जैसे क्योंथली मे पीणो < पीना, पीइणो < पिया जाना, पियाणो < पिलाना, पियाइणो < पिलाया जाना, खाणो < खाना, खाइणो < खाया जाना, खयाणो < खिलाना, खयाइणो < खिलाया जाना।

इसी तरह मुण्डा भाषाओं की अन्य विशेषताए भी पहाडी भाषा मे विद्यमान हैं। शब्द के अन्तिम व्यजन के उच्चारण मे शिथिलता, गणना मे केवल बीस तक गिनने की पद्धति, सर्वनामीय गुणों मे पुरुषवाचक-प्रथमपुरुष के लिए स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के अलग-अलग रूप, सम्बन्धवाचक सर्वनाम के स्थान पर क्रिया के कृदन्तीय रूपों का प्रयोग पहाडी की अनेक बोलियों मे प्रचलित हैं। पहाडी भाषा पर मुण्डा का एक अन्य विशिष्ट प्रभाव महाप्राण के प्राणत्व मे शिथिलता की विशेषता सभी बोलियो मे प्रदर्शित होती है—गरआली < घरवाली, बिआह < विवाह, बई < भाई, ओला < होला < होगा, कुछ नी आ < कुछ नही है, तिन्ना < तिन्हा, ओआ < हुआ। महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राण की ओर झुकाव अधिक सिरमौरी, बघाटी तथा क्योंथली मे अन्य बोलियो की अपेक्षा ज्यादा है। इसी तरह पदविभाग सम्बन्धी मुण्डा भाषी विशेषता भी पहाडी का सामान्य गुण है। एक ही शब्द स्थान-स्थान पर सज्ञा, विशेषण और क्रिया का काम देता है—बैठेया माणू कजो छेडना (बैठे हुए आदमी को क्यो छेडें ?) मेरे ते बैठया नी जादा (मुझसे बैठा नही जाता), बाहुदा खरा सा (बीजाई अच्छी हुई है), बाहुदा छेत कुणीरा सा (बोया हुआ खेत किसका है), बाहण बाहुदा सा (बीज बोया हुआ है) आदि पहाडी के सामान्य प्रयोग है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि पहाडी पर मुण्डा भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव है। यो तो भारत की सभी भाषाओं मे आर्यों से पूर्व की भाषाओं के उदाहरण मिलते है परन्तु पहाडी भाषा के क्षेत्र मे आर्यों के आगमन से पूर्व के आदिवासियो की भाषा के अवशेष विशेष महत्त्व रखते हैं। इसका स्पष्ट कारण है कि इस पर्वतीय क्षेत्र मे अदरूनी पहाडी आदिवासी आर्यों के प्रभाव से अधिक देर तक सुरक्षित रहे। आर्यों का इन पहाडियो म धीरे-धीरे प्रवेश हुआ, और जैसे प्रवेश देर से हुआ वैसे ही उनकी भाषा का भी उस समय की स्थानीय भाषाओं पर प्रभाव धीरे-धीरे तथा कम मात्रा मे पडा। आर्यों के

भाषाओं मे इन भाषाओ का मिश्रण अधिक हुआ। यह स्थिति भारत भर की सभी भाषाओ के बारे मे समुचित है। जो क्षेत्र अधिक दुर्गम एव मैदानी भागो से दूरस्थ हैं, वहाँ आदिवासियो की मूल भाषा या सुरक्षित रही है या आर्य भाषा से कम प्रभावित हुई है। पहाडी भाषा का अभी कोई शब्दकोश तैयार नही हुआ है और न ही कोई प्राचीन अथवा अर्वाचीन साहित्य उपलब्ध है, और जो साहित्य हाल ही मे देखने मे आ रहा है वह इसकी वैज्ञानिक समीक्षा के लिए पर्याप्त नही है। परन्तु दैनिक प्रयोग की भाषा से यह निश्चय से कहा जा सकता है कि पहाडी के लगभग चालीस प्रतिशत शब्द ऐस है जिनका सीधा सम्बन्ध न स्पष्टत सस्कृत से जोडा जा सकता है, न प्राकृत अपभ्रश से, न दरद-पैशाच से। ज़ाहिर है कि इन शब्दो का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उस भाषा से है जो आर्यों के भारत म प्रवेश करने से पहले यहाँ के मूल निवासियो की आम बोलचाल की भाषा थी। वैदिक युग से पहले का साहित्य आज उपलब्ध नही है, यदि होता तो सम्भवत पहाडी भाषा की कई जटिल ध्वनियों और शब्दो के रहस्य से पर्दा उठ जाता। परन्तु न उस समय की भाषा का स्वरूप मिलता है और न आज की भाषा पर अभी कोई अध्ययन हुआ है। अत यह समस्या अभी खोज का विषय बनी रहगी। हिन्दी पर ठोस और गहन अध्ययन हुआ है परन्तु हिन्दी जैसी परिनिष्ठित भाषा के बारे मे श्री किशोरी दास वाजपेयी और डॉ० रामविलास शर्मा जैसे विद्वान जो विचार व्यक्त करते हैं कि 'हिन्दी की अनेक विशेषताओ का सम्बन्ध न वैदिक सस्कृत से है, न लौकिक सस्कृत से है, न अपभ्रश स। उनका सम्बन्ध खडी बोली की किसी प्राचीन बोली स ही हो सकता है,'[1] वह पहाडी भाषा के बारे मे न केवल शतश उचित है, बल्कि उसका पहाडी भाषा के क्षेत्र मे अधिक महत्त्व है। जिन प्राकृतो से आधुनिक आर्य भाषाओ का उद्भव माना जाता है उनम से किसी मे भी कुछेक विशेषताए दिखाई नही देती। परन्तु ये मौलिक विशेषताए अनायास नही आई हैं। ये जरूर इस भाषा के आदिवासियो की बोली के अवशेष है। उस बोली को चाहे हम कोल कहे, किरात, खश, मुण्डा या प्राकृत, परन्तु 'जिस किसी मे भी यह बात थी, उसका कोई रूप हमारे सामने नही है। कई कडिया टूटी हैं। कुछ भी हो, साहित्य मे उपलब्ध प्राकृतो मे से कोई भी ऐसी नही जिसे...उदगम माना जा सके।[2] अत जिन विशेषताओ का स्रोत वर्तमान भाषाओ अथवा उन प्राचीन भाषाओ मे जिनका साहित्य उपलब्ध है, नही मिलता उन्हे आदिवासियो की थाती समझना अधिक भूल नही है।

पहाडी तथा वैदिक एव लौकिक सस्कृत

बात विशेषताओ की है और विशेषताए एक नही अनेक हैं। तथा भाषा के सुदृढ होने का कारण उसकी विशेषताए हैं। जहा एक ओर कुछ समस्याओ का समाधान कही नही मिलता, वहाँ दूसरी ओर पहाडी भाषा की अनेक अन्य विशेषताए हैं जिन्हे वैदिक एव लौकिक सस्कृत से प्राप्त दाय होने का पहाडी भाषा को गर्व है। सामान्यत आर्य

1 डा० रामविलास शर्मा भाषा और समाज, पृ० 144

2 वही पृ० 145

लोगो का भारत वर्ष मे प्रवेश का समय लगभग ई० पू० 1500 वर्ष माना जाता है। भारतीय आर्य भाषा का प्रारम्भिक रूप वैदिक भाषा के रूप मे सुरक्षित है जिसकी वैदिक ऋचाए, ब्राह्मण और सूत्र तीन मुख्य आधार हैं। वैदिक ऋचाओ के मुख्य भाग की रचना भारत के उत्तर पश्चिम भाग मे हुई, इसमे सभी विद्वान सहमत हैं। इसी भाग मे वर्तमान पहाडी भाषा का क्षेत्र पडता है। जब वैदिक ऋचाए यहा रची गई तो निस्सन्देह उस समय या उसम पूर्व वैदिक भाषा यहा की लोक भाषा या बोलचाल का साधन अवश्य रहा होगा। इस बात की पुष्टि वर्तमान पहाडी भाषा की कुछ मुख्य विशेषताओ से स्पष्ट रूप से हो जाती है। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि पहाडी भाषा की ध्वन्यात्मक विशिष्टता मूल रूप म वैदिक भाषा से सम्बन्ध रखती है। पहाडी भाषा की प्रमुख च-वर्गीय ध्वनिया मे से 'ज' और 'झ' तो पूर्व वैदिक एव आर्य ध्वनियाँ स्पष्ट रूप मे निश्चित हो चुकी हैं—"यज्ञम्य—यजजस्य, पुरोहित—पुरजधितम, ऋत्विजम—ऋत्विजम्, भर्गो—भर्गज, धियो—धियज आदि रूपो मे, दूसरा रूप शुद्ध मूल आर्य माना गया था, और पहला रूप अनार्य-प्रभावित, या स्वत अपभ्रष्ट भारतीय रूप।"[1] जब 'ज' और 'झ' वैदिक अथवा आर्य ध्वनियाँ हैं तो इस वर्ग की 'च' और 'छ' ध्वनियाँ भी पूर्व-वैदिक आर्य रही होंगी, यद्यपि इनके उदाहरण अब प्राप्य नही हैं। पहाडी मे ये सभी उच्चारण स्वतत्र ध्वनिग्राम हैं, किसी दूसरी ध्वनि की सध्वनियाँ नही हैं।[2] जैसा कि हम आगे 'पहाडी भाषा की विशेषता' तथा 'कुलुई' की स्वर ध्वनियो मे स्पष्ट करेंगे, पहाडी भाषा की एक मुख्य विशेषता 'य' और 'व' के अतिरिक्त 'र' और 'ल' का श्रुति-परक होना है। यहा 'र' और 'ल' श्रुति के कारण स्वर मे बदल जाते हैं। और, यह विशेषता पहाडी भाषा का सम्बन्ध पूर्व वैदिक काल की सस्कृत भाषा से जोडती है क्योकि प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ० हरदेव बाहरी के अनुसार प्राग्वैदिक आर्य भाषा म 'र' और 'ल' भी अर्ध-स्वर थे।[3] इसीलिए आजतक नियमत य, र, ल, व को अन्तस्थ माना जाता है।

वैदिक भाषा की एक मुख्य विशेषता स्वराघात (accent) की है। स्वर परिवर्तन के कारण शब्दों के अर्थ तक मे परिवर्तन हो जाता है। आद्युदात्त 'ब्रह्मन' नपुसक लिंग है जिसका अर्थ 'प्रार्थना' है परन्तु यही शब्द अन्तोदात्त 'ब्रह्मन' होने पर पुंलिग होगा और अर्थ 'स्तोता' होगा।[4] अब पहाडी भाषा मे स्वराघात का विशेष महत्त्व है, जिसका आगे हम 'कुलुई' बोली के सदर्भ मे विस्तार से उल्लेख करेंगे। यहाँ इतना लिखना पर्याप्त होगा कि स्वराघात के कारण शब्दो का अर्थ-भेद तो होता ही है, परन्तु पहाडी मे प्रश्नवाचक वाक्य केवल आघात के बदलने मे ही होता है। मूल प्रश्नवाचक शब्दो का प्रयोग तो बहुत कम होता है—'रोटी खाई' मे जब 'खा' अनुदात्त हो तो साधारण अर्थ 'रोटी खा ली' है, परन्तु यदि 'खा' स्वरित हो तो इसका अर्थ है 'क्या रोटी खा ली

1 डॉ० रामविलास शर्मा भाषा और समाज, पृ० 158
2 उदाहरण तथा स्पष्टता के लिए, आगे 'कुलुई' मे देखिये।
3 डॉ० हरदेव बाहरी हिन्दी उदभव, विकास और रूप, पृ० 116
4 डॉ० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, पृ० 35

है।' इसी तरह 'पत्र लिखू<पत्र लिखा, परन्तु 'पत्र लिख <क्या पत्र लिखा' आदि। इस तरह ध्वनि के लय—तान के कारण शब्दार्थ भिन्न हो जाता है[1]—पार<पार, पा/र< पाहिर, पा्र<भार, सान<शान, सा/न<साण्ड, सा्न<एहसान, पराणा< पुराना, परा/णा<तलाश करना, भेड<भेड, भे/ड<खोल आदि। इसी तरह स्वरो मे ऐ, औ के अइ, अउ तथा आइ, आउ दोनो तरह के उच्चारण भी विद्यमान हैं।

व्यजन ध्वनियो मे 'ल' और 'ल्ह', विसर्ग ( ), जिह्वामूलीय 'ह्', तथा उपध्मानीय 'ह्' के विस्तृत प्रयोग पहाडी का सीधा सम्बन्ध वैदिक भाषा से जोडते हैं। यह पहले ही स्पष्ट किया गया है कि पहाडी मे 'ल' और ल्ह' दन्त्य 'ल' की सध्वनियाँ नही, वरन् स्वतन्त्र ध्वनिग्राम हैं। स्वर तथा दन्त्य वर्णो के बीच के 'ह्' की घोषत्व-महाप्राण ध्वनि शिथिल हो जाती है—बहिन<वै नी<वै णी, परोहित >परो त, विवाहने > विया ने >ब्या णे, पहले >पैं लैं, रहते >रौं दे, टहल >टौ ल >टैं ल आदि। इसी तरह ऊष्म वर्ण श, ष, स भी स्वरो के मध्य या शब्द के अन्त मे आने पर प्राय 'ह्' मे बदल जाते हैं परन्तु उनका उच्चारण शुद्ध घोषत्व-महाप्राण न होकर कोमल हो जाता है—घास >घाह्, श्वास >शाह् या साह्, विश्वास >बशाह् या बसाह, निश्चय >निह्चय, वर्ष >बरह्, बीस >बिह्, मास >माह् आदि।

शब्द तथा धातु रूपो म भी पहाडी का सस्कृत से कई पक्षो मे साम्य है जिनम मुख्य समानता क्रियाओ का तिडन्त रूप है। भीतरी पहाडी की सभी बोलियो मे वर्तमान काल की क्रियाएँ तिडन्त होती है, जिनम कर्त्ता के लिंगभेद के अनुसार कोई रूप परिवर्तन नही होता, उदाहरणार्थ—माऊँ सूतौ (लडका सोता है), माएँ सूतौ (लडकी सोती है), भाऊ खाणा खाओ, बेटी खाणा खाओ, मरद घौराबे जाआ सा, बेटडी घौराबे जाआसा आदि। स्पष्ट है वर्तमान काल म स्त्रीलिंग और पुल्लिग कर्त्ता के अनुसार क्रिया रूप नही बदलता बल्कि समान रहता है। इस दृष्टि से भीतरी पहाडी अपनी बहिनो हिन्दी, तथा पजाबी आदि से भिन्न है। हिन्दी म 'लडका सोता है' होता है और 'लडकी सोती है', 'पुरुष खाना खाता है परन्तु 'स्त्री खाना खाती है' आदि। परन्तु पहाडी मे ऐसा भेद नही है। पहाडी के भीतरी भाग मे लडका भी 'खाणा खाआ सा' और लडकी भी खाणा खाआ सा'। 'छोहट्ठ सूतौ' और 'छोहटी सूतौ' आदि। यहाँ यह रूप सस्कृत के समान है। सस्कृत मे भी लिंगभेद के अनुसार तिडन्त रूप मे अन्तर नही आता—'माता पठति' तथा 'पिता पठति'। पास-पडोस की भाषाओ से भिन्न यह रूप पहाडी की अपनी विशेषता है, जो इसे सस्कृत से प्राकृत के माध्यम द्वारा प्राप्त हुई है।

एक अन्य क्षेत्र जहाँ पहाडी भाषा अपनी पडोसी हिन्दी तथा पजाबी से भिन्न है, सर्वनाम के सम्बन्ध मे है। पहाडी भाषा की लगभग सभी बोलिया म पुरुषवाचक अन्य पुरुष मे पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग के लिए भिन्न भिन्न रूप है।[2] हिन्दी मे 'वह' तथा इस का तिर्यक रूप 'उस' स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग के लिए समान रूप से प्रयुक्त होता है।

---

1 डॉ० श्यामलाल कांगडी मे परसर्ग प्रक्रिया हिमभारती, मार्च 1969, पृ० 23

2 तुल० शिक्षा विभाग राज्य भाषा सस्थान, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित 'शोध पत्रावली' पृ० 63, 85, शोध पत्रावली [भाग 2] पृ० 21, 25, 27, 51, 83, 84

'उसने कहा' से स्पष्ट नहीं होता कि 'उस' से अभिप्राय 'पुरुष' से है अथवा 'स्त्री' से। परन्तु पहाड़ी मे 'तेइये बोलू' का अर्थ 'उस (पुरुष) ने कहा' है और 'तेसे बोलू' <उस (स्त्री) ने कहा'। इस दिशा मे भी पहाडी सस्कृत की प्रथा धारण किए हुए है।

जहाँ तक शब्द भण्डार का सम्बन्ध है, पहाडी भाषा मे अनेको सस्कृत शब्द मूल-रूप मे अथवा सामान्य विकृत रूप मे प्रचलित हैं। भाषा मे तत्सम शब्द प्राय साहित्य-कारो से आते हैं। कवि, लेखक अपनी रचना मे सस्कृत शब्दो का प्रयोग करते हैं जो समाज मे आकर आम बोलचाल का रूप धारण करते हैं। परन्तु पहाडी मे प्राचीन तथा हाल ही तक नवीन साहित्य तो देखने को भी नहीं मिलता। अत जो तत्सम और तद्भव शब्द पहाडी मे प्रचलित हैं वे जनता की प्राचीन निधियाँ हैं। वे कहीं से उधार नहीं लिए गए है, और न ही बाहरी प्रभाव के कारण उनका प्रवेश हुआ है। चूंकि वैदिक ऋचाएँ भारत के इसी भूखण्ड मे रची गई थी और चूंकि सस्कृत तत्सम तथा तद्भव शब्दो का आज की भाषा मे बहुत बडा अनुपात है, अत इसमे सस्कृत के किसी समय यहाँ की लोक-भाषा होने की सम्भावना को बल मिलता है। तद्भव शब्दो के बारे मे उल्लेख करते हुए जॉन बीमज़ लिखते हैं कि क्या कारण है कि सस्कृत के रात्रि, राग, नागरी, गज शब्दो का रूप हिन्दी मे रात, राग, नागरी, गज बना, जबकि प्राकृत मे उनका रूप क्रमश राइ, राअ, नाअरी, गअ था।[1] उनका कथन है कि जब सस्कृत और हिन्दी के बीच एक लम्बी अवधि मे प्राकृत और अपभ्रशो मे रात्रि, राग, नागरी, गज आदि का रूप राइ, राअ, नाअरी, गअ रहा और ये रूप कई शताब्दियो तक रहे और आधुनिक हिन्दी भाषा प्राकृत से ही बनी, तो क्या कारण हो सकता है कि वर्तमान समय मे हिन्दी वालो को यह विचार आया हो कि असल मे राइ, राअ, नाअरी, गअ का रूप रात्रि, राग, नागरी और गज है, तथा उन्होने तुरन्त इनके पूर्व रूपो के आधार पर पुन रात, राग, नागरी, गज रूप धारण कर लिया हो। अपने प्रश्न का उत्तर आप देते हुए बीमज लिखते हैं कि इसका कारण कुछ व्यक्तियो या व्यक्तियो के समूह का जाना-बूझा और साशय प्रयोजन है, जो इसके बारे मे जाग्रत थे और इस तरह का परिवर्तन लाना चाहते थे। और अपने कथन की पुष्टि मे वे बौद्ध धर्म के पतन पर ब्राह्मण-धर्म की सतर्कता और क्रियाशीलता का उल्लेख करते हैं, जिसके अन्तर्गत ब्राह्मण-धर्म के प्रचारको न इस तरह का आन्दोलन चलाया और सस्कृत को पुन जागृत किया। बीमज़ की उक्त धारणा ऐतिहासिक तथ्यो पर आधारित होती हुई भी पहाडी भाषा की स्थिति मे अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। कितने एक ब्राह्मण धर्म प्रचारक हुए होंग जिन्होंने इस पहाडी क्षेत्र मे शब्द रूपो का प्रचार किया होगा, यदि किया भी हो तो उनका कुछ अश पहाडी मे उपलब्ध भी तो हो। परन्तु कुछ प्राप्य नहीं है। और यदि ऐसा आन्दोलन रहा भी हो तो सस्कृत के मूल शब्दो का तद्भव रूप समान रहना चाहिए। फिर सस्कृत के 'क्षेत्र' शब्द का सिरमौरी मे 'खेत्र', कुलुई मे 'छेत' तथा मण्डी-कागडा मे 'खेतर' रूप कैसे बना ?

वास्तव मे भाषा का निर्माता स्वय उसका बोलने वाला जनमानस होता है, जिसके आगे मुख-सुख के सिवाय कुछ और नियम प्रभावी नहीं होते। स्थान विशेष की प्रकृति

1. जान बीमज. ए कम्पेरे टिवग्रामर आफ दी माडर्न आर्यन लेंग्वेजिज आफ इण्डिया, पृ० 14।

और जनमानस का वातावरण किसी शब्द विशेष का स्वय रूप बना लेता है। यदि नियम और प्रवृत्ति की ही बात होती तो जब 'क्षेत्र' से 'खेत' बनना है तो 'क्षण' से 'खण' बनना चाहिए परन्तु 'क्षण' पूर्णत 'क्षण' ही रहा। भाषा मे 'मुग-मुख' के अतिरिक्त और कोई कठोर नियम नही होते, जब तक कि किसी शब्द मे विशेष धार्मिक या सास्कारिक स्वीकृति निहित न हो या सम-रूप शब्दो मे बोध गम्यता स्पष्ट न हो। यही कारण है कि जहाँ एक ओर पहाडी मे मन, माया, धन, मन, काया, ताप, पाप, क्रोध, धर्म, कर्म, समेत रोष, दोष, अम्बर, बुद्धि, लग्न, पूजा-पाठ, दर्शन, शख, सगत, रूपा, तालु शुभ ग्रह, गुण, कथा, दान, दशा, धार, धूप, नरक, नाश, चिता, मल, द्वार आदि सस्कृत के मूल तत्सम शब्द प्रचलित रहे, वहाँ डड < दण्ड, गाँव < ग्राम, हिऊ < हिम, जनम < जन्म बिश < विष, गोत < गोत्र, भग्म < भ्रम, परचार < प्रचार, कीडा < कीटक, पुन < पुण्य, जेठा < ज्येष्ठ, गुर्भण < गर्भिणी (बिलासपुरी मे 'गब्भण' शब्द गर्भिणी से बन गया परन्तु इसका प्रयोग मादा-पशु के गर्भिणी होने की दशा मे किया जाने लगा। स्त्री के 'गर्भिणी' होने की दशा मे उसे 'भार-हत्थी' अर्थात् जिसका 'हाथ भारयुक्त हो' साकेतिक शब्द चल पडा), खीर < क्षीर, छार < क्षार, जान्हु < जानु, ऊन < ऊर्ण, भ्यास < अभ्यास, रीछ < रिक्ष, कन < कर्ण, ओक्ती < औषधि, पख < पक्ष, गिण < गण, दाख < द्राक्षा, सरग < स्वर्ग, पीठ < पृष्ठ, कछ < कक्ष, चतर < चतुर, सेउ < सेतु दन्द < दन्त, कोठा < कोष्ठ आदि सामान्य तद्भव शब्दो से लेकर भुजी < उद्भिद, मूछ < श्मश्रु, गुच्छा < गुत्सक, मल्हाणी < अम्लिमन, भियागा < अभ्यागम, भियाणसर < विहन् + सृ, छदा < निउदा < निमत्रण, धियाडा < दिहाडा < दिवस, बसा < वशा < विश्राम, जाइरू < जायरू < उत्स, जोण < ज्रोथ < ज्योत्स्ना जैसे अनेक तरह के शब्दो का प्रयोग मिलता है जिन्हे चाहे कठोर तद्भव कहो या देशज शब्द। भाव केवल इतना है कि पहाडी भाषा मे वैदिक एव लौकिक सस्कृत के ध्वनि, व्याकरण तथा शब्दावली क्षेत्र मे इतने लक्षण मिलते हैं कि पहाडी भाषा का सीधा सबध वैदिक और लौकिक सस्कृत से जुडता है।

निष्कर्ष

सस्कृत भाषा ने लगभग 500 ई० पू० मे प्राकृत भाषाओ को जन्म दिया। प्राकृत की तीन अवस्थाओ मे से अन्तिम अवस्था अपभ्रश कहलाई जो आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ की जननी है। वास्तव मे प्राकृत भाषा वर्तमान आर्य भाषा और प्राचीन भारतीय आर्य भाषा वैदिक एव सस्कृत के बीच सेतु का कार्य करती है। ऊपर वर्तमान पहाडी भाषा की कुछेक विशेषताओ का मुडा, वैदिक, लौकिक सस्कृत, दरद-पैशाची तथा प्राकृतो के साथ समानता एव विषमता के आधार पर कुछ विचार किया गया है। इस विवेचन के पश्चात् सम्भवत अब पहाडी भाषा के मूलाधार का निर्णय करना अधिक कठिन नही होगा। इस भूखण्ड मे रहने वाले कोल, किरात, खश आदि आदिवासियो की मूल भाषा का जब हमारे पास कोई अभिलेख, साहित्य या उदाहरण ही नही तो उनसे वर्तमान पहाडी का स्रोत ढूँढना निरर्थक है। किन्नौर, मलाणा, लाहुल-

स्पिति की थोडी-सी जनसख्या की भाषा से कुछ सम्बन्ध तो जोडा जा सकता है, उस के प्रभाव को भी ठुकराया नहीं जा सकता, परन्तु उसके साथ साम्य के कोई ऐसे लक्षण नही दीखते जिनसे यह अनुमान भी लगाया जा सके कि पहाडी भाषा उससे प्रसूत हुई है। कुछेक प्रभावों को छोडकर जिनका पीछे सकेत किया गया है, मुण्डा भाषा से कोई और सम्बन्ध नही जोडा जा सकता। मलाणा, किन्नौर, लाहुल-स्पिति की भाषा स्वय पूर्णत मुण्डा नहीं है। उसमे सस्कृत, तिब्बती-बर्मी और आर्य भाषाओ का पर्याप्त मिश्रण है। और इस मिश्रण का अनुपात स्थान स्थान पर भिन्न है। यह मुण्डा स प्रभावित है निस्सन्देह परन्तु इसका मूल स्रोत क्या है यह अपने आप मे अनुसधान का विषय है।

जहाँ तक वैदिक एव लौकिक सस्कृत भाषा का सम्बन्ध है, सस्कृत भारत ही क्या ससार की अनेक भाषाओं की जननी कही जाती है। सस्कृत का बाद की भाषाओ पर निरन्तर प्रभाव पडता रहा है। प्राकृतो का महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी कोई भी रूप रहा हो उन पर सस्कृत की पूर्ण छाप रही है यद्यपि सस्कृत के सरलीकरण की प्रवृत्ति सभी में विद्यमान रही है। सस्कृत के कडे और कठोर नियम स्वत सरल होते रहे हैं, परन्तु साथ ही सस्कृत के शब्द और ध्वनि भण्डार से सभी भाषाएँ अनायास प्रभावित होती रही हैं। भारत और भारत से बाहर चीन, तिब्बत, हिंदचीन, जापान, जावा, सुमात्रा आदि देशों की भाषाओं मे सस्कृत के भारी प्रभाव के कारण ही सम्भवत इसे देववाणी कहा जाता है। वैदिक भाषा के आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं पर प्रभाव के सम्बन्ध मे लिखते हुए डॉ० धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं—'यदि तद्भव रूपों की दृष्टि से देखा जाए, तब तो समस्त भारतीय आधुनिक भाषाओं का मूलाधार ऋग्वेद की ही भाषा है।[1] अत पहाडी तो वैदिक सस्कृत से उऋण कैसे हो सकती है।

दरद-पैशाची को पहाडी का आधार मानना महान भूल है, इस बात को पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है। पैशाची का क्षेत्र पश्चिम मे कश्मीर तक सीमित था, और कश्मीरी भाषा निस्सन्देह पैशाची से प्रसूत हुई है।[2] यहा पैशाची से अभिप्राय उस पैशाची प्राकृत से नहीं है, जिसका चण्ड, वररुचि, हेमचन्द्र आदि वैयाकरणो न उल्लेख किया है। वह वस्तुत प्राकृतो का ही एक रूप था, जिसे चूलिका पैशाची भी कहा गया है और कुछ विद्वानों ने इसे केकयपैशाची की सज्ञा भी दी है, जिसमे गुणाढ्य की बृहत्कथा लिखी गई थी। चूलिका पैशाची या केकयपैशाची का मूल स्थान भी कश्मीर का पश्चिमोत्तर प्रात है, किन्तु वास्तव में विद्वान इसका प्रभाव-क्षेत्र राजपूताना और मध्यभारत मानते हैं।[3] इसे कुछ विद्वान 'उदीच्य' नाम देते हैं, जिसमे अभिप्राय वह भाषा है जो पाणिनि यथा यास्क के समय मे उत्तर म बोली जाने वाली 'उदीच्या' अथवा 'उदीच्येषु' कहलाती थी। यहाँ पैशाची से अभिप्राय उस भाषा से है जिसका डॉ० ग्रियर्सन ने

---

1 डा० धीरेन्द्र वर्मा मध्य देश बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ० 24—डा० रामविलास शर्मा द्वारा 'भाषा और समाज' के पृ० 142—143 पर उद्धृत।
2 डा० शिबन कृष्ण रैणा कश्मीरी भाषा और साहित्य, पृ० 36
3 श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी पुरानी हिन्दी, पृ० 75

छा गई हो यह अधिक सम्भव नहा है। आखिर वे कितनी भारी सख्या मे आए होगे कि अपनी नई बसाई बस्तियो से बाहर भी भाषा-प्रभाव डालते। अत इस सभी विवेचन के आधार पर यह कहना कि पहाडी और राजस्थानी मे समानता गुर्जर और उनकी भाषा के कारण है, अधिक तर्कसगत नही है।

वास्तव मे पहाडी और राजस्थानी मे समानता का कारण अन्यत्र ढूंढना चाहिए, और इस 'अन्यत्र' की खोज मे हम वहाँ पहुँचते हैं जहाँ पहाडी भाषा का उद्गम स्रोत है, और जो अवश्य ही राजस्थानी का भी जन्मस्थान होगा। दूसरे शब्दो मे राजस्थानी और पहाडी भाषा की जननी एक ही भाषा होनी चाहिए, क्योकि इन दोनो के बीच अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट समानता है, जिससे इन दोनो के बीच काफी समय से घनिष्ट सम्बन्ध का पता चलता है। ध्वनि, व्याकरण और शब्दावली सभी क्षेत्र मे दोनो मे इतना निकट साम्य है, कि दोनो के बीच दो सगी बहिनो का रिश्ता स्पष्ट होता है। दोनो के बीच इस निकट सम्बन्ध को सभी विद्वान एकमत से स्वीकार करते हैं, यद्यपि इस समानता के लिए मुख्यत गुर्जर लोगो का प्रभाव ही दर्शाया जाता है। वास्तव मे दोनो के बीच समानता मे गुर्जर जाति का थोडा-बहुत प्रभाव अवश्य हो सकता है, परन्तु गुर्जर *लोग या गुर्जर भाषा इसका मुख्य कारण रहा हो, यह स्वीकार नही किया जा सकता।* राजस्थानी और पहाडी के बीच इस घनिष्ट सम्बन्ध का मुख्य कारण तो यही है कि ये दोनो भाषाए एक ही मूल भाषा मे प्रसूत हुई है। निस्सन्देह दोना क्षेत्रो के निवासियो मे *सजातीय सम्बन्ध की धारणा को भी सहसा ठुकराया नही जा सकता। यो लगता है कि* जहाँ तक पहाडी भाषा और राजस्थानी के बीच समानता के कारण मे दोनो भाषा-भाषियो के एकजातीय होने का सम्बन्ध है, तो वह गुर्जर नही, बल्कि आभीर जाति होना अधिक युक्तिसगत है। यह पहले लिखा जा चुका है कि ईसवी की छठी शताब्दी मे आई गुर्जर जाति इतना चमत्कार कदापि नही दिखा सकती थी कि उस से पूर्व बारह सौ वर्षों से विकसित हो रही भाषा का तुरन्त रूप बदल देती। परन्तु, इसके विपरीत आभीर जाति का भारतीय इतिहास मे बहुत प्राचीन समय से नाम आता है। महाभारत मे स्थान-स्थान पर उनका नाम आया है, और इन सभी स्थलो पर आभीरो को उसी क्षेत्र का बताया है, जिसमे यहाँ हमारा सम्बन्ध है। सभापर्व मे नकुल की दिग्विजय का वर्णन करते हुए उन्हे 'सिन्धुकूलाश्रित ग्रामणीय महाबली शूद्राभीरगण' कहकर मूलत सिंधु के पश्चिम मे रहने वाला बताया है, और उनका विस्तार सरस्वती नदी तक व्यक्त किया गया है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे अनेक राजाओ म से सिन्धुतट निवासी आहीर भी रत्नादि का उपहार लेकर आए थे। 'द्रोण के सुपर्ण व्यूह' मे उन्हे महान् योद्धा बताया गया है। महाभारत मे आभीरो के उल्लेख से दो बाते स्पष्ट होती है। एक यह कि उस समय आभीर योद्धा और शासको के रूप मे अधिकार-प्राप्त थे। दूसरे यह कि ये भारत के उत्तर-पश्चिम भाग मे सिंध से सरस्वती नदियो के क्षेत्र म बसे थे, और वर्तमान *राजस्थान की मरुभूमि तक फैले थे।* काठियावाड मे रुद्रभान का लगभग 191 ई० का अभिलेख मिला है जिसमे आभीर सेनापति रुद्रभूति के दान का उल्लेख है।[1] लगभग इसी

1 एफ मैक्समूलर साइंस आफ लैंग्वेज अनु० डा० उदयनारायण तिवारी, पृ० 439

समय के महाक्षत्रप ईश्वरदत्त के चाँदी के सिक्के मिले हैं, जिनमे उसके आभीर राजा होने का सकेत है। लगभग 360 ई० के समुद्रगुप्त के प्रयाग के स्तम्भलेख से आभीर जाति के प्राधिकार-क्षेत्र की सीमा मालवा राजस्थान, गुजरात आदि तक प्रतीत होती है। आभीरो सम्बन्धी ऐतिहासिक तथा साहित्यिक अभिलेखो से यह स्पष्ट हो जाता है कि आभीर लोग ईसा पूर्व दूसरी-तीसरी शताब्दी मे पश्चिमोत्तर भाग से भारत मे आए और ईसा दूसरी-तीसरी शताब्दी तक एक बहुत विस्तृत क्षेत्र मे अपना प्राधिकार जमा चुके थे, और पूर्ण शासक थे। उनका विस्तार-क्षेत्र सिंधु नदी से लेकर पचनद, सरस्वती तट, राजस्थान, गुजरात तथा सुदूर मगध तक फैला था। जो जाति इस कदर विशाल क्षेत्र म प्रमुत्व जमाए हो उसका लोक-भाषा पर प्रभाव होना बडा स्वाभाविक है। उनका समय गुर्जरो की तरह बहुत पीछे का नही है, बल्कि उनका प्रसार ठीक उसी काल का है जब सस्कृत से प्राकृत उभर रही थी, और उन्ही के प्रभाव-समय मे प्राकृत तीनो चरणो मे से गुजरी। निस्सन्देह उनका भाषा के रूप-निरूपण मे निर्णायक प्रभाव हो सकता है,और यह प्रभाव विद्वानो द्वारा स्पष्टत स्वीकार भी किया जाता है। वास्तव मे अपभ्रश के विकास के साथ आभीरो का विशेष रूप से सम्बन्ध जोडा जाता है।

पहाडी भाषा क्षेत्र से आभीरो के सम्बन्ध की पुष्टि एक अन्य पक्ष से भी होती है। भरत ने 'आभीरोक्ति' का उल्लेख करते हुए उसे 'उकार-बहुला' भाषा बताया है, यथा—मोरल्लउ, नच्चतउ आदि। इधर पहाडी भाषा निस्सदेह उकार-प्रधान है। पहाडी भाषा मे व्यक्तिवाचक सज्ञा शब्द प्राय उकारान्त या ऊकारान्त ही होते हैं—देवकू, कुजु, चचलू राझू, फुलमू, सन्तु, भगतु, नन्तु, शुकरू, हुकमु, वहादरू, भूरू, तुआरसू, शेतु, परीतु, आदि। जन्म-दिन के आधार पर नाम हो तो तुआरू, सुआरू, मगलू, बुधू, बरेस्तू, शुकरू। जन्म मास के अनुसार नामकरण हो तो चेतू, बशाखू, जेठू, शाहडू, वहादरू आदि।

इसी प्रकार सस्कृत-हिन्दी शब्द कई रूपो से 'उ' अथवा 'ऊ' मे बदल जाते हैं—जैसे 'म' से—हिऊ < हिम, नीउआ < नीमा, सीऊ < सीमा, कोउला < कोमल, नाऊ < नाम, गाऊ < ग्राम, क्षम > खेऊ, आदि। सस्कृत तथा हिन्दी के 'त' को भी 'उ' या 'ऊ' होना स्वाभाविक है, जैसे—सेउ < सेतु, घीउ < घृत, केरू < कृत, चउथा < चतुर्थ। 'व' भी 'उ' मे बदल दिया जाता है—दानु < दानव, माण्हु < मानव, साउला < सावला, जीउण < जीवन, कोरू < कौरव, पाडू < पाडव, साउण या शाउण < श्रावण, देउ < देव, लूण < लवण, देउर < देवर, घाउ < घाव आदि। इसी तरह अन्तिम 'क' भी कई वार 'ऊ' मे बदलता है—चेट्टू < चिटक, काठू < काष्ठक, सस्कृत 'ऋ' से बूटा < वृक्ष, वूता < वृत्तम्, माऊ < मातृ, भाऊ < भ्रातृ, माउली < मातृली, घुश < घृप, वुक्का < वृक्क आदि। ध्वनिपरिवर्तन के अतिरिक्त सामाजिक धारणाओ के आधार पर भी शब्दो मे उ ऊकार प्राधान्य की प्रवृत्ति लक्षित होती है। रिश्तेदारो के नाम जो हिन्दी आदि अन्य भाषाओ मे अ-आकारान्त होने हैं, पहाडी मे उ ऊकारान्त बन जाते हैं—चाचू < चाचा, मामू < मामा, दादू < दादा, भतीजू < भतीजा, नानू < नाना आदि। लघुता के आधार पर शब्द ईकार मे बदलने की बजाय ऊकार मे परिणत होते हैं

परन्तु लोटडू, किताब परन्तु कतावडू, नाला परन्तु नालू, बिंदी से बिंदू, पतली मे पतलू, थाली से थालू आदि, कपडो के नाम भी उ-ऊकारान्त होते हैं—कुरतू, टोपू, पट्टू, घाटू, थिपू, मुयणू चादरू, विशेषण शब्द अधिकत उकार बहुला होते हैं—जाह्लू, जाह्लू, ताह्लू, बोहू, इत्थु, तित्थु, किथु, जित्थु, कुत्थु आदि। वस्तुत पहाडी भाषा मे उ-ऊकार बहुलता कई दिशाओ मे प्रकट होती है। भरत के अनुसार भी यही क्षेत्र उकार—बहुला भाषा-भाषी है, क्योकि उन्होने नाट्यशास्त्र मे उकार—बहुला भाषा का प्रयोग हिमवत् सिन्धु, सौवीर और इनके आश्रितो के लिए किया है। आभीरादिकों की बोली को ही अपभ्रंश भाषा कहा गया है।

हिमाचल प्रदेश मे इस समय आभीर नाम से कोई जाति विद्यमान नही है, परन्तु राजस्थान मे आज भी अहीर नाम से इनकी भारी जनसख्या है। जिन्हे अधिकार प्राप्त हो उन्हे प्राय अधिकार का दुरुपयोग सक्रामक रोग की तरह छा जाता है। यही बात आभीरो के इतिहास से स्पष्ट हो जाती है। महाभारत मे ही उन्हे "लोभोपहतचेता पापकर्मा" भी बताया गया है। इसी लोभ-लालसा प्रवृत्ति और दुराचार के कारण वे समाज की नजरो से गिरे और उन्हे प्राय शूद्र कहा गया है। स्पष्ट है, इस सामाजिक निकृष्ट स्थिति के कारण आभीरो ने धीरे-धीरे अपने आपको आभीर बताने से सकोच किया हो और अन्तत उनकी अलग सत्ता समाप्त हो गई। "उच्चवर्ग के लोग क्षत्रिय-वैश्यवर्ग मे मिला लिए गए और शेष को शूद्रो मे स्थान मिला।"[1] अत हो सकता है कि वर्तमान निवासियो मे बहुत से आभीरो से सम्बन्धित हो, यद्यपि जाति रूप मे उनका स्थान समाज मे न रहा। इसके अतिरिक्त आभीरो का नाम 'गौ, भेड, बकरी, ऊटादि'। पशुपालक के रूप मे भी आता है। हिमाचल प्रदेश मे ऐसे लोगो की भारी जनसख्या है, जिनका धधा भेड-बकरी आदि पशुपालन है। इस सम्बन्ध मे गद्दियो का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। हो सकता है, इन लोगो म आभीर जाति के लोग भी हो। इतिहासकार गुर्जरो का सम्बन्ध भी आभीर जाति से जोडते हैं, और यह सम्भावना है कि गुर्जर भी आभीर जाति की कोई शाखा हो।[2] विशेषत पहाडी भाषा की स्थिति मे यह विवेचन अधिक युक्तिसगत है। अपभ्रंश के विकास मे आभीर के साथ गुर्जरो का नाम आता है, और यदि गुर्जरो को आभीर जाति की शाखा माना जाए, जैसा कि बहुत से विद्वान मानते है, तो पहाडी भाषा मे आभीर-गुर्जरो के प्रभाव को स्पष्टत स्वीकार किया जाना चाहिए। आभीरो स अलग रखकर पहाडी भाषा मे गुर्जरो का योगदान अधिक स्थापित नही होता।

हिमाचल और राजस्थान के बीच यहा के मूल निवासियो का आदान प्रदान आदिकाल से स्पष्टत लक्षित होता है, चाहे इन जन-जातियो के कुछ भी नाम हो। 'सपादलक्ष' मूलत राजपूतो का क्षेत्र रहा है। मुसलमानी आक्रमण पर मैदाना के कई राजपूत अपने सम्बन्धी पहाडी राजपूतो के साथ आ मिले और यही रहने लगे, और इस तरह आपसी रेल-पेल मे दो स्थानो की भाषायी समानता स्पष्ट रूप से विद्यमान रही,

1 डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव अपभ्रंश भाषा का अध्ययन पृ० 26 27

2 वही पृ० 29

ऐसी धारणा निर्मूल नही है।

इस प्रकार पहाडी और राजस्थानी की समानता के कारण मे मूलत राजपूत अथवा आभीर-गुर्जर जाति को रखते हुए, हम अधिक महत्त्वपूर्ण उक्ति अर्थात् पहाडी के उद्गम-स्थल की ओर अग्रसर होते हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि पहाडी भाषा मे वे सभी तत्त्व हैं जो राजस्थानी के उद्‌भव के सूचक हैं। इससे यह अनुमान लगाना कठिन नही है कि पहाडी और राजस्थानी मे दो बहिनो का रिश्ता है, और वे एक मा की पुत्रियां हैं। और वह जननी निस्सदेह मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा की अन्तिम चरण की प्राकृतो (अपभ्रश) मे से एक होनी चाहिए। प्राकृतो मे से दो का मुख्य स्थान रहा है—महाराष्ट्री प्राकृत और शौरसेनी प्राकृत। प्रसिद्ध वैयाकरण वररुचि ने महाराष्ट्री को प्रतिनिधि प्राकृत मानकर दूसरी प्राकृतो के केवल विशिष्ट लक्षणो का उल्लेख करके "शेषम् महाराष्ट्रीवत्" कहा है। इसके विपरीत प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द्र ने शौरसेनी को मूल रूप मानकर उसका विस्तार से उल्लेख किया और शेष अपभ्रशो की उससे तुलनामात्र की है। यह इनके प्रतिष्ठित स्वतत्र रूप की बात है। अन्यथा महाराष्ट्री केवल शौरसेनी का विकसित रूप है। महाराष्ट्री मूलत दक्षिण की भाषा थी। महाराष्ट्र इसका केन्द्र था और वर्तमान मराठी उसी का विकसित रूप है। इसका प्रभाव मुख्यत मध्य-भारत से दक्षिण की ओर ही रहा। शौरसेनी केन्द्रीय प्राकृत थी। इसका मूल स्थान शूरसेन प्रदेश अर्थात् मथुरा के आस-पास का क्षेत्र रहा है। साहित्यिक क्षेत्र म शौरसेनी प्राकृत का बहुत बडा स्थान रहा है। सस्कृत नाटको मे स्त्री, विदूषक तथा मध्यम वर्ग पात्रो की भाषा शौरसेनी ही है, वे इसी मे सम्भाषण करते हैं। अन्य प्राकृतो की अपेक्षा इसका प्रसार भी अधिक विकसित क्षेत्र मे था।

राजस्थानी पर अब तक पर्याप्त अध्ययन हो चुका है। इसके उद्‌भव के बारे में यद्यपि विद्वानो ने विभिन्न राय व्यक्त की हैं, परन्तु बहुमत इसी पक्ष में है कि राजस्थानी का जन्म शौरसेनी अपभ्रश से हुआ है।[1] जो विद्वान राजस्थानी को 'गुर्जरी अपभ्रश' (मारुगुर्जर) से प्रसूत मानते हैं, वास्तव में उनके मत के पीछे भी शौरसेनी ही है। शौरसेनी प्राकृत से दो अपभ्रशो का जन्म हुआ माना जाता है—शौरसेनी अपभ्रश और गुर्जरी अपभ्रश। विद्वानो की यह विचारधारा शौरसेनी अपभ्रश से हिन्दी का और गुर्जरी अपभ्रश से राजस्थानी का जन्म हुआ मानती है।[2] पहाडी भाषा पर निस्सदेह इस कदर अध्ययन नही हुआ है परन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पहाडी भाषा में वे सभी तत्त्व हैं जिनके आधार पर राजस्थानी को शौरसेनी अपभ्रश की पुत्री माना जाता है।

शौरसेनी प्राकृत मे मुख्य विशेषता स्वरमध्यग 'त' तथा 'थ' का क्रमश 'द' और 'ध' मे बदलना है। यह प्रवृत्ति पहाडी भाषा मे बडी व्यापक है, जैसे—पठति > पढदी, जानाति > जानदी, शृणोति > सुनदी, चतुर > चदरा, निमत्रण > निउदा। शौरसेनी की 'क्ष' को 'क्ख' म बदलने की प्रवृत्ति भी पहाडी मे विद्यमान है। परन्तु 'क्ख' सयुक्त रूप

1 डा० मोतीलाल शर्मा डिंगल साहित्य, पृ० 133
2 डा० मोतीलाल मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० 4-5

न रहकर केवल 'ख' मे परिणत हो गया है—अक्षर > अखर, अक्षि > हाखी, शिक्षा > सिखिया, चोक्ष > चोखा, पक्ष > पख, द्राक्षा > दाख, क्षीर > खीर। परन्तु क्ष के ख मे बदलने की प्रवृत्ति सब बोलियों मे समान रूप से प्रचलित नही है। कुछेक बोलियो मे क्ष प्राय छ मे बदलता है। या एक ही बोली मे भी कही 'क्ष' वर्ण 'ख' मे और कही 'छ' मे बदलता है, जैसे कुलुई मे क्षेत्र से छेत, परन्तु क्षेम मे खेउ व्युत्पन्न होते हैं। 'क्ष' की यह प्रवृत्ति प्राकृत मे भी प्रचलित थी। वहाँ भी 'क्ष' कभी 'ख', 'क्ख' मे, कभी 'च्छ' मे और कभी 'झ' मे बदलता था। जैसे शौरसेनी मे ही इसके तीनो रूप देखे जा सकते हैं—खत्तिअ < क्षत्रिय, परन्तु सारिच्छ < सादृक्ष और झीण < क्षीण। इसकी व्याख्या करते हुए पिशल का कहना है कि इन तीनो आदेशो के लिए 'क्ष' के भिन्न-भिन्न मूल माने जाते हैं—(1) मूल क्ष (अवस्ता ख् श्) को 'क्ख' आदेश, (2) श् ष से व्युत्पन्न क्ष (अवस्ता श) को 'च्छ' आदेश तथा (3) य् ज से व्युत्पन्न क्ष को 'ज्झ' आदेश होता है।[1] इसी तरह शौरसेनी के 'न' के 'ण' मे बदलने की प्रवृत्ति सभी बोलियो मे प्रचलित है। यदि यो कहा जाए कि पहाडी मे 'ण' की अपेक्षा 'न' का प्रयोग बहुत कम होता है तो अतिशयोक्ति न होगी। 'य' का 'ज' मे बदलना बिना अपवाद के सभी बोलियो मे सर्वत्र विद्यमान है—योगी > जोगी, योद्धा > जोधा, यजमान > जजमान, यात्रा > जातरा, यौवन > जोवन, यज्ञ > जग, यमराज > जमराज > जोराज़ा आदि। 'ष' का पहाडी मे पूर्णत लोप हो चुका है, परन्तु 'श' तथा 'स' का प्रयोग पूर्णत प्रचलित है। बाहरी पहाडी मे शौरसेनी के भान्ति 'श' के 'स' मे बदलने की प्रवृति है, जैसे—शक्त > सक, शख > सख, श्राप > सराप, शुभ > सुभ, शोभा > सोभा आदि। स्वरमध्यवर्ती ख, घ, थ, ध, फ, भ के 'ह' मे बदलने की प्रकृति के भी पहाडी मे उदाहरण मिलते हैं—वधू > बहू मुख > मुँह, नख > नँह सि० कु० न्हौर, मेघ > मेह, दधि > दही, भवति > होदी, शपथ > सोह > सोह, अधकार > अधेरा > का० न्हेरा > कु० निहारा।

प्राकृत मे महाप्राणत्व सम्बन्धी एक विशिष्ट लक्षण है। वह न, म, ल, ण का महाप्राण रूप है।[2] जैसे—ण्हाण < स्नान, म्हि < अस्मि आदि। ण, न, म, ल, र का महाप्राणत्व प्रयोग पहाडी भाषा मे प्रमुख विशेषता है, और सभी बोलियो मे समान रूप से इसका प्रचलन है, जैसे—म्हाचल < हिमाचल, म्हारा < हमारा, ल्हसण < लुशन, ल्हाणा < हिलाना, बून्ह < निम्न, टोल्ह < टीला, केल्हा < अकेला, न्हीठा < निकृष्ट, र्हान < हैरान। इसी तरह दन्त्य के स्थान पर तालव्य शब्दो का शौरसेनी का प्रयोग पहाडी म भी मिलता है, जैसे—द्वितीय > दूजा, तृतीय > तीजा, निद्रा > नीज, मुद्रा > मुज़रा, सध्या > सझ (सोझ), द्युति > जोन, यात्रा > जाच, क्षेत्र > खेच, विद्युत > बिजली, सत्य > सच, मूत्र > मूच आदि।

पहाडी भाषा की मुख्य विशेषताओ मे एक कठोर वर्णो को कोमल बनाने की प्रवृति है जैसे—वाप > दाप, दन्त > दन्द, कटक > कडा, चम्पा > चम्बा, जीता >

1 आल्फ्रेड सी० वूल्नर की रचना 'इण्ट्रोडक्शन टू प्राकृत, अनु० बनारसीदास जैन पृ० 28 पर उद्धृत।

2 वही पृ० 20

जीदा, भक्त > भगत, आदि। यह गुण भी पहाड़ी को शौरसेनी से प्राप्त हुआ है, क्योंकि शौरसेनी में भी स्वरमध्यग क्, त्, प् क्रमशः ग्, द्, ब् में बदलते थे।[1]

इसी प्रकार शौरसेनी प्राकृत में स्वरमध्यवर्ती महाप्राण वर्ण ख्, घ्, थ्, ध्, फ् और भ् प्रायः 'ह्' में बदल जाते थे, जैसे—सखी > सही, मेघ > मेह, रुधिर > रुहिर आदि। अब, पहाड़ी भाषा की सभी बोलियों में स्वरमध्यग महाप्राण वर्णों को 'ह्' में बदलने की मुख्य प्रवृत्ति है, बल्कि कई बार 'ह्' अधिक कोमल होकर प्रायः 'अ' रह जाता है—अन्धेरा > न्हेरा, मधुक > माहुँ, बधू > बहू > बूह, दधि > दही, अन्धा > अन्हा, कथनी > काहणी, नख > नँह, नि+भात > निहाल आदि।

पहाड़ी भाषा को शौरसेनी से उद्भूत मानने का एक और मुख्य कारण है और वह शब्द भण्डार के सम्बन्ध में है। ऊपर इस बात का कई बार उदाहरण सहित उल्लेख आ चुका है कि पहाड़ी भाषा में संस्कृत भाषा का बाहुल्य है। वैयाकरणिक दृष्टि से भी पहाड़ी में संस्कृत के मूल सिद्धान्त लक्षित होते हैं। और, यह विशेषता उस शौरसेनी से मिली है, क्योंकि 'शौरसेनी प्राकृत औरों (अन्य प्राकृतों) की अपेक्षा पाणिनीय संस्कृत से अधिक समानता रखती है'।[2]

ध्वनि तत्त्व के अतिरिक्त व्याकरण के क्षेत्र में भी पहाड़ी का शौरसेनी से आधारभूत सम्बन्ध लक्षित होता है। इस दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता कारक सम्बन्धी परसर्गों के बारे में है। वियोगात्मक प्रक्रिया के प्रभावाधीन संस्कृत की विभक्तियाँ शौरसेनी प्राकृत में से गुजरते हुए शौरसेनी अपभ्रंश तक घिसते घिसते लुप्त हो गई थी, और मुख्यतः केवल तीन कारक-परसर्ग रह गये थे—सम्बन्ध कारक के 'केरक, केर, केरा', अधिकरण के 'मांझ, महँ, उप्परि' और करण के 'सो, सजो, सहुँ'।[3] यह उल्लेखनीय बात है कि पहाड़ी भाषा में ये सभी परसर्ग मामूली परिवर्तन के साथ आज भी प्रचलित है। हिन्दी आदि कुछ भाषाओं में सम्बन्ध कारक के उपर्युक्त परसर्गों केरक-केर-केरा में से अन्तिम अक्षरों का लोप होकर केवल पूर्व अक्षर के रूप का-के-की रह गए हैं। इसके विपरीत पहाड़ी में इनके पूर्व अक्षर लुप्त होकर अन्तिम अक्षर के रा-रे-री रूप विद्यमान हैं, और कांगड़ी के थोड़े से क्षेत्र को छोड़कर शेष समस्त पहाड़ी क्षेत्र में रा-रे-री बिना किसी अपवाद के व्यापकतः प्रचलित हैं। शौरसेनी अपभ्रंश के अधिकरण का परसर्ग 'मांझ' पहाड़ी की सभी बोलियों उदाहरणतः मण्डियाली, बिलासपुरी में मझा,[4] भरमौरी तथा चुराही (चम्बयाली) में मझ, बघाटी में मांय या मांइ,[5] कहलूरी तथा कांगड़ी में 'ज' या 'च', सिरमौरी-महासूई में मांझे तथा कुलुई में मोंझे रूप में प्रचलित है। इसी तरह 'उप्परि' परसर्ग पहाड़ी में 'पुर', 'पर' या 'पाधे' के रूप में सर्वत्र विद्यमान है। करण-कारक में शौरसेनी अपभ्रंश के सहुँ सजो, सो, के विकसित रूप 'सोगे' 'सगे' पहाड़ी में

1 वही पृ० 17
2 वही पृ० 46, 48.
3 डा० उदयनारायण तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ० 49.
4 शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश शोध पत्रावली भाग 2, पृ० 38, 39.
5 वही पृ० 22

प्रचलित है। इसी तरह अपादान कारक के दो प्रत्यय पहाडी मे प्रचलित हैं—ने और दो। भीतरी पहाडी का 'दो' ठीक शौरसेनी प्राकृत का 'दो' है। शौरसेनी मे 'त्' को 'द्' मे बदलने की प्रवृत्ति थी, और उसी के परिणामस्वरूप 'दो' की व्युत्पत्ति हुई और शौरसेनी में 'पुतादो' (पुत्र से), मालादो (माला से) रूप प्रचलित थे।[1] सिरमौरी, महासुई, बघाटी बोलियो मे यह प्रत्यय इसी रूप में प्रचलित है, तथा कागडी, कहलूरी मे 'तें' रूप मे प्रयुक्त है।

इसी सम्बन्ध मे कर्मकारक का प्रत्यय 'जो' है, जो बाहरी पहाडी का सर्वव्यापक प्रत्यय है—मिजो 'मुझे', उसजो > उह्‌जो 'उसे', मुनुआजो 'लडके को' आदि। 'जो' की उत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के पुरुषवाचक सर्वनामो की सम्प्रदान विभक्ति के बहुवचन से हुई है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे कर्मकारक तथा सम्प्रदान कारक प्राय एक ही है। अत 'जो' की उत्पत्ति 'तुझ' और 'मुझ' रूप मे समझ लेनी चाहिए, यथा—स०मह्यम् > प्रा० मज्झ > हि० मुझ > पहाडी मुजो (या मिजो), स० तुभ्यम् > प्रा० तिज्झ > हि० तुझ > प० तुजो (या तिजो)। हिन्दी आदि मे 'मुझ' और 'तुझ' के 'झ' का रूप सज्ञादि प्रातिपदिको मे चल न पाया। परन्तु पहाडी मे सज्ञा शब्दो के साथ भी 'जो' प्रत्यय समान रूप से प्रचलित है—भाई जो, चाची जो, कुत्ते जो आदि। जैसा कि आगे शब्द रूप मे प्रकट किया जाएगा स्वरमध्यग 'ज' का लोप हो जाता है और यही 'जो' कुछ बोलियो मे 'ओ' मे बदल जाता है। कहलूरी और मडियाली बोली पहाडी की बाहरी और भीतरी उपशाखाओ के बीच सेतु का काम करती है और इन बोलियो मे 'जो' और 'ओ' साथ-साथ व्यवहृत होते हैं।[2] यही 'ओ' शौरसेनी प्राकृत मे कर्मकारक का प्रत्यय रहा है, जैसे—इमा (इदम) स्त्री० का 'इमाओ', अमु (अदस्) स्त्री० का 'अमुओ', 'भाणु (भानु) पु० का 'भाणओ, वाउ (वायु) पु० का 'वाउओ' आदि।

पहाडी की प्रमुख बोलियो में पुरुषवाचक अन्य पुरुष सर्वनामों में स्त्रीलिंग और पुल्लिग के अलग अलग रूप है। यह बात हिन्दी आदि कई आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे नहीं है। वहां अन्यपुरुष सर्वनामो के स्त्रीलिंग और पुलिंग अलग रूप नही है। यह प्रकृति भी पहाडी को सस्कृत से शौरसेनी के माध्यम से प्राप्त हुई है।

धातु रूपो मे भी कई दिशाओ मे पहाडी का उद्‌गम शौरसेनी से प्रकट होता है। पहाडी मे कर्मवाच्य का प्रत्यय प्रमुखत 'इ' है—सोइणा, खाइणा, धोइणा आदि। यह प्रत्यय सस्कृत का 'य' रूप है जो प्राकृत के 'इय' मे प्राप्त हुआ है—स० य > प्रा० या > शौ० इय > प० इ। इसी तरह पहाडी मे प्रेरणार्थक क्रिया का प्रत्यय 'आ' है, जैसे—सोणा से सुआणा, खाणा से खुआणा, धोणा से धुआणा आदि। यह प्रत्यय भी सस्कृत से शौरसेनी द्वारा प्राप्त हुआ है—प० आय > आव > आ।

अतीत काल के रूपो द्वारा भी पहाडी भाषा का शौरसेनी से निकट का सम्बन्ध -

---

1 Alfred C Woolner Introduction to Prakrit अनु बनारसीदास, पृ० 46-48

2. दे० राज्य भाषा सस्थान, शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित शोध पत्रावली भाग 2, पृ०49, 50 —ले० श्री मनसाराम शर्मा।

जुडना है। इस काल के रूप पहाडी की प्रमुख बोलियो मे इस प्रकार होते है—पढेया, मारेया, खादेया, तोडेया, सुनेया। ये सभी भूतकालिक कृदन्त के कर्मवाच्य रूप है जो सस्कृत से शौरसेनी द्वारा पहाडी में आए हैं। सस्कृत में भूतकालिक कृदन्त का रूप उदाहरणत 'मारित', 'चलित', 'पठित' होता है, जहा अन्तिम अक्षर मे पूर्व 'इ' स्वर विद्यमान है। और, यह प्रथा शौरसेनी मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वहाँ इनका रूप इस प्रकार बना—पठित >पठिदो>पठिओ, मारित >मारिदो>मारिओ, खादित >खादिदो>खादिओ >खादिआ। यही रूप पहाडी में क्रमश पढेआ-पढेया, मारेआ—मरेया, खादेआ—खादेया बनते है। कही-कही श्रुति के कारण 'इ' द्वारा 'खाइया' रूप भी प्रचलित है।

अत उपर्युक्त सभी विवरणो के अन्तर्गत साराश में यह स्पष्ट हो जाता है कि पहाडी भाषा का उद्गम निश्चय ही शौरसेनी अपभ्रश अथवा इसका कोई स्थानीय रूप है। दरदपैशाची इसका आधार कदापि नही हो सकती।

अध्याय—4

पहाड़ी भाषी क्षेत्र और उसकी बोलियाँ

पहाड़ी प्रमुखत उस क्षेत्र की भाषा है, जिसमें वर्तमान हिमाचल प्रदेश राज्य स्थित है। परन्तु, जैसा कि सभी भाषाओं के बारे में स्वाभाविक है किसी भी भाषा को ठीक भौगोलिक क्षेत्र के अन्दर सीमित करना न सम्भव है, न ही युक्तिसगत। इस तरह, पहाड़ी भाषा को ठीक हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक तथा प्रशासनिक सीमाओं के अन्दर सीमित समझना वस्तुस्थिति के अनुकूल नहीं। पहाड़ी भाषा का अपनी पड़ौसी भाषाओं पर प्रभाव पड़ा है, वैसे ही जैसे पड़ौसी भाषाओं का इसके सीमावर्ती रूप पर प्रभाव स्वाभाविक है। पहाड़ी भाषा का प्रमुख प्रभाव उत्तर प्रदेश के ज़िला देहरादून के जौनसर-बावर तथा जम्मू कश्मीर के भद्रवाह क्षेत्र पर विशेष रूप से विद्यमान है। और, इन दोनों क्षेत्रों की भाषा प्राय पहाड़ी ही मानी जाती है।

इस प्रकार देहरादून के जौनसर बावर से लेकर जम्मू-कश्मीर के भद्रवाह इलाके तक का समस्त भूभाग पहाड़ी भाषी क्षेत्र है। इसके उत्तर में हिमालय की गहरी घाटियाँ हैं, जहाँ तिब्बती (भोटी) प्रधान भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें एक ओर हिमाचल प्रदेश का लाहुल और स्पिति तथा दूसरी ओर किन्नौर ज़िले की सीमान्त भाषाएँ हैं। इसके पूर्व में गढ़वाल का क्षेत्र है, जहाँ भारतीय आर्य भाषा गढ़वाली बोली जाती है। इसी क्रम में पूर्व-दक्षिण की ओर देहरादून और अम्बाला हिन्दी भाषी क्षेत्र तथा दक्षिण एव दक्षिण-पश्चिम मे पजाबी भाषी क्षेत्र पड़ता है। पूर्व और पूर्व-उत्तर मे यह डोगरी तथा कश्मीरी भाषाओं से घिरी है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीन काल में चम्बा से लेकर गढ़वाल तक के क्षेत्र को सपादलक्ष कहते थे।[1] सपादलक्ष से अभिप्राय 'सवालाख' पहाड़ियों से है, जो इस क्षेत्र में पाई गई मानी जाती हैं। बाद के साहित्य मे सपादलक्ष का अर्थ 'शिवालिक' ने लिया। प्रागैतिहासिक काल

1. दे० डा० ग्रियर्सन · लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ, इंडिया खण्ड 9, भाग 4, पृ० 15, तथा श्री डी० आर० भण्डारकर फारिन एलिमेंट्स इन दी हिन्दु पापुलेशन, पृ० 221 श्री भंडारकर चम्बा से लेकर पश्चिम नेपाल तक के क्षेत्र को 'सपादलक्ष' मानते हैं।

में इस क्षेत्र में यक्ष, नाग, कोल, किन्नर, किरात जातियों के लोग रहते थे। वर्तमान समाज में यक्ष अथवा राक्षस केवल डर की वस्तुएँ रह गई हैं, सम्भवतः यह उनके अत्यधिक अत्याचार का कारण है। नाग जाति का अस्तित्व इस समस्त क्षेत्र में नागपूजा की प्रथा द्वारा सिद्ध होता है, यद्यपि नाग-ब्राह्मण अब भी इस क्षेत्र में रहते हैं। समस्त हिमाचल और गढ़वाल में कोलियों की भारी संख्या आदि कोल जाति की ही सन्तान है। श्री लाल चन्द प्रार्थी इन्हें दस्यु राजा कोलितर शम्बर की सन्तान मानते हैं।[1] किन्नर लोगों का सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल तक सीमित नहीं है। हिमाचल प्रदेश का वर्तमान किन्नौर जिला किन्नरों का ही प्रदेश है। किरात जाति के लोग भी आज तक इस प्रदेश के विभिन्न भागों में रहते हैं। श्री लालचन्द प्रार्थी बैजनाथ के प्राचीन नाम किरग्राम को किरातों से ही सम्बन्धित मानते हैं।[2] और श्री राहुल सांकृत्यायन कुल्लू जिला के मलाणा गाँव के निवासियों को किरात और इनकी भाषा को किराती कहते हैं।[3] यक्ष और नागों की क्या भाषा थी, इसका रूप अब उपलब्ध नहीं है। कोली लोगों की भाषा अब पूर्णत भारतीय आर्य भाषा पहाड़ी में बदल चुकी है। किन्नर और किरात लोगों की भाषा के पर्याप्त अवशेष अभी किन्नौर जिला और मलाणा गाँव में सुरक्षित हैं, यद्यपि उनमें तिब्बती, आर्य और मुण्डा भाषाओं का अधिक मिश्रण है।

इन प्रागैतिहासिक जातियों के बाद जिन लोगों का सम्बन्ध सपादलक्ष से जोड़ा जाता है, वे खश हैं। महाभारत के कर्णपर्व, सभापर्व, द्रोणपर्व में खश लोगों से सम्बन्धित कई उल्लेख मिलते हैं। इसके अतिरिक्त, विष्णुपुराण, मार्कण्डेयपुराण, हरिवंशपुराण भागवतपुराण में कई कथाएं और उल्लेख खशों के बारे में मिलते हैं। पौराणिक कथाओं में इन्हें कश्यप ऋषि की संतान बताया गया है। बहुत से विद्वानों के अनुसार खश भी आर्य थे, परन्तु वे मूल आर्यों से बहुत पहले आये थे और बाद के आर्य आक्रमणों द्वारा उनकी स्थिति पर भारी चोट पहुँची थी। हिमाचल प्रदेश में खशों का प्रभाव बहुत रहा होगा, यहाँ का लोक-साहित्य इस बात का प्रमाण है। सिरमौर, सोलन और शिमला जिलों में कितनी ही हारें (Heroic ballads) उनके सम्बन्ध में गाई जाती हैं, जिनसे इनके बारे में काफी प्रकाश पड़ता है।[4] खश लोग भी आर्य भाषा बोलते थे, परन्तु उनकी भाषा भारतीय आर्य भाषा से बहुत भिन्न थी। भरत नाट्यशास्त्र में लिखा है कि 'वाह्लिकी भाषा खशों और उत्तर के निवासियों की बोली थी।' डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार वाह्लिकी बलख देश की भाषा थी। उनके अनुसार खश लोग संस्कृत से मिलती भाषा बोलते थे, परन्तु उनकी शब्दावली किसी हद तक ईरानी अवेस्ता से मिलती थी। खशों की ही दूसरी बिरादरी पिशाच थी और डॉ० ग्रियर्सन खश पैशाची को ही पहाड़ी भाषा का मूल बताते हैं।

आर्यों के भारत में आगमन के बाद यह प्रदेश आर्य ऋषि-मुनियों का निवास तथा

1 श्री लाल चन्द प्रार्थी कुलूत देश की कहानी, पृ० 175
2 वही पृ० 187
3 श्री राहुल सांकृत्यायन ऋग्वैदिक आर्य, पृ० 24
4 कुछ हारें हिमाचल प्रदेश, भाषा विभाग की त्रैमासिक पत्रिका 'हिम भारती' में छपी हैं। विशेषत दे० हिमभारती दिसम्बर 1971, जून 1973, सितम्बर 1973, दिसम्बर 1973 दिसम्बर 1974

जप स्थान रहा है। सिरमौर मे परशुराम ताल, रेणुका झील, कुल्लू मे वशिष्ठ गरम पानी का कुण्ड, भृगु तुङ्ग (जोत रोतांग), व्यास कुण्ड, जमदग्नि का मलाणा, मनु का मनाली, मण्डी मे पराशर झील, माण्डव्य ऋषि की मण्डी आदि स्थान उन्ही ऋषियो की यादगार है। वेदो के अधिकाश भाग की रचना सप्त-सिन्धु क्षेत्र मे हुई थी। सात नदियों के स्रोत इसी भू भाग मे पडते है। विद्वान वैदिक काल के सप्त सिन्धु भूखण्ड मे वर्तमान पजाब के मुग्य भाग मानते है। परन्तु वेदो के बहुत बडे भाग म जो बादल, बिजली, पहाडो मे घनघोर वर्षा, सरत सरदी और बर्फ का हवाला है, वह पजाब के मैदानी भाग से कदापि मेल नही खाता। पजाब की सज्ञा और सकल्पना बहुत देर बाद की है। वेदो मे इस नाम से सकेत नही है। विद्वानो ने उन्नीसवी और बीसवी सदी मे वेदो की व्याख्या की है। उन्होने समस्त पजाब को वह भूमि स्थापित किया जहाँ वेदो के उल्लेख के अनुसार मुख्य भाग की रचना हुई है। परन्तु इन ऋचाओ का रचना-स्थान पर्वतीय क्षेत्र ही है। मैदानी क्षेत्र नही। अत वेदो के सप्त-सिन्धु का मुख्य भाग वर्तमान हिमाचल प्रदेश तथा साथ लगता कश्मीर और गढवाल का क्षेत्र है। सप्त सिन्धु को आर्यावर्त्त भी कहा गया है। ऋग्वेद मे व्यास नदी के अर्जिकीया नाम के हवाला से श्री लालचन्द प्रार्थी इसी क्षेत्र को आर्यावर्त्त का मुख्य भाग मानते हैं, जिस का केन्द्र आर्यकी वर्तमान 'अर्की' स्वीकार करते हैं।[1] हिमालय के पाँच खण्डो में एक जलन्धर था—

खण्ड पच हिमालयस्य कथिता नेपाल कूर्माचलौ
केदारोऽथ जलधरोऽथ रुचिर कश्मीर सज्ञोऽन्तिम

जलन्धर खण्ड का मुख्य भाग सपादलक्ष है, जलन्धर का मैदानी भाग नही। इसी मे ही बाद के साहित्य का प्रसिद्ध क्षेत्र त्रिगर्त पडता है, जिसम काँगडा और उसके इर्द-गिर्द का बडा भू-भाग शामिल है और जो सपादलक्ष का केन्द्र है। वेदो मे एक महान युद्ध 'दाश राज्ञ' का वर्णन है जो एक ओर वसिष्ठ ऋषि द्वारा समर्थित सुदास और दूसरी ओर दस जन पदो के बीच हुआ जिन्हे विश्वामित्र का मार्गदर्शन प्राप्त था। यह युद्ध परुष्णी अर्थात् रावी नदी के किनारे हुआ था, जो आर्य और दासों के बीच सघर्ष का भी क्षेत्र माना जाता है। दास से अभिप्राय यहा के आदि जातियो के लोगो से है, जिन्हे दस्यु भी कहा गया है और जिन मे कोल, किरात, भील, किन्नर, असुर आदि शामिल है जो जैसा कि पहले लिखा गया है इस क्षेत्र के मूल निवासी थे । दस जनपदो के बीच पाँच बडे जनपदों में एक तृत्सु जनपद भी था जिनका मूल अधिकार क्षेत्र रावी नदी के पूर्व का भू-खण्ड बताया जाता है। यही तृत्सु क्षेत्र बाद मे त्रिगर्त कहलाया होगा।

स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर सतलुज, व्यास और रावी का पहाडी क्षेत्र आर्यों और दस्यु जाति का सघर्ष का अखाडा रहा है, वहाँ दूसरी ओर यह वही क्षेत्र है जहाँ वैदिक ऋषियो ने वेदो के मुख्य भाग की रचना की। उपर्युक्त 'दाश राज्ञ' के सम्बन्ध मे ऋग्वेद की जिन रचनाओ का निर्माण हुआ है, वे सर्वश्रेष्ठ रचनाओ मे से मानी जाती हैं। वर्तमान पहाडी भाषा मे वैदिक तथा सस्कृत ध्वनियो और शब्दो का जो आधिक्य है,

1 श्री लाल चन्द प्रार्थी कुलूत देश की कहानी, पृ० 77.

वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि न केवल यह वेदों का रचना-स्थान है, वरन् यह वह भू खण्ड है जहाँ किसी समय संस्कृत लोक भाषा रही होगी।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के समय इस भू-खण्ड में आदिवासियों, खशों और आर्यों के साथ साथ गूजर लोगों का सम्बन्ध भी जोडा जाता है। कुछ विद्वानों ने वर्तमान पहाडी के निर्माण में गूजर जाति तथा उनकी भाषा के योगदान को प्रमुख स्थान दिया है। डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार "पहाडी भाषा राजस्थानी का एक रूप है जो मूल में खश-गूजर की भाषाओं का मिश्रण है।"[1] खशो के बारे में पहले कहा जा चुका है। जहाँ तक गूजरो का सम्बन्ध है, उनकी वर्तमान समाज में जनसंख्या को देखते हुए यह स्वीकार करना कठिन है कि पहाडी भाषा में उनका कोई निर्णायक योगदान रहा हो।

यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है। परन्तु विषय के क्रमानुसार यहाँ इस सम्बन्ध में कुछ और कहना उचित होगा।

डॉ० ग्रियर्सन ने पहाडी क्षेत्र की भाषाओं में जिन गुजरी भाषाओं का वर्णन किया है वे 'हज़ारा की गुजरी', 'स्वात की गुजरी', 'यूसफजई गुजरी', 'कश्मीर की गुजरी' तथा 'पंजाब के पहाडियों की गुजरी हैं। इनमें अन्तिम को छोडकर कोई भी गुजरी भाषा हिमाचल क्षेत्र से सम्बन्धित नही है। अन्तिम गुजरी में भी मूल भाग गुजरात, गुरुदासपुर और होशियारपुर का है। कुल 226, 949 में से कांगडा में केवल 8,460 गूजर दिखाए गए हैं। स्पष्ट है कि उस समय भी गूजरो की संख्या इस भू-खण्ड में नही के बराबर थी। अत इस नाममात्र जनसंख्या का समाज की भाषा पर विशेष प्रभाव नही पड सकता। यह तर्क भी अधिक युक्तिसंगत नही कि किसी समय इनकी भारी संख्या यहाँ थी, परन्तु बाद में वे अन्य राजपूत जातियों से मिल गए और उनकी अलग सत्ता खत्म हो गई हो। वे रण-कुशल और सफल शासक रहे हैं[2] ऐसी कोई बुराई उनमें न थी, जिससे वे अपना नाम छोडने को विवश होते। जब खश जैसी जाति जो गूजरो से कई सौ वर्ष पहले भारत में आई, इस प्रदेश के कई भागो में विभिन्न रूपो में अपना अस्तित्व छोडे हुए है, तो कोई कारण नही कि उनके बहुत देर बाद छठी ईसवी में आए गूजर इतने शीघ्र केवल उदाहरण के लिए ही कुछेक खानाबदोष परिवार छोड जाते। खश जाति अपने अत्याचारो के कारण इतिहास में किसी समय मानवभक्षी भी कहलाए और इसीलिए जहाँ कुल्लू और कांगडा में खश कहना गाली माना जाता है, वहाँ किन्नौर जैसे इलाको में खश बडा सम्मानित शब्द है। इसी विरोधी पक्ष में ही हिमाचल का विशाल लोक साहित्य प्राप्य है। परन्तु गूजरो के बारे में ऐसा अत्याचारी व्यवहार कहीं व्यक्त नही है। फिर उनका अस्तित्व कैसे मिट गया। उन्हें अपनी जाति छोडकर अन्य राजपूतो में कैसे समाप्त होना पडा।

इसके अतिरिक्त, विद्वान इस बात पर एक आवाज़ में सहमत हैं कि गूजर लोग भारतवर्ष में पहली बार छठी शताब्दी में आए। तब तक तो मध्यकालीन भारतीय आर्य

1 डा० ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, खण्ड 9 भाग 4, पृ० 273

2 श्री के० एम० मुंशी 'ग्लोरी देट वाज़ गूजर देश' भूमिका पृ० XII

जप स्थान रहा है। सिरमौर मे परशुराम ताल, रेणुका झील, कुल्लू मे वशिष्ठ गरम पानी का कुण्ड, भृगु-तुङ्ग (जोन रोतांग), व्यास कुण्ड, जमदग्नि का मलाणा, मनु का मनाली, मण्डी मे पराशर झील, माण्डव्य ऋषि की मण्डी आदि स्थान उन्ही ऋषियो की यादगार हैं। वेदो के अधिकाश भाग की रचना सप्त-सिन्धु क्षेत्र मे हुई थी। सात नदियो के स्रोत इसी भू-भाग मे पडते हैं। विद्वान वैदिक काल के सप्त सिन्धु भूखण्ड मे वर्तमान पजाब के मुख्य भाग मानते हैं। परन्तु वदो के बहुत वडे भाग मे जो वादल, बिजली, पहाडो मे घनघोर वर्षा, सख्त सरदी और बर्फ का हवाला है, वह पजाब के मैंदानी भाग से कदापि मेल नही खाता। पजाब की सज्ञा और सकल्पना बहुत देर वाद की है। वेदो मे इस नाम से सकेत नही है। विद्वानो ने उन्नीसवी और बीसवी सदी मे वेदो की व्याख्या की है। उन्होंने समस्त पजाव को वह भूमि स्थापित किया जहाँ वेदो के उल्लेख के अनुसार मुख्य भाग की रचना हुई है। परन्तु इन ऋचाओ का रचना-स्थान पर्वतीय क्षेत्र ही है। मैंदानी क्षेत्र नही। अत वेदो के सप्त सिन्धु का मुख्य भाग वर्तमान हिमाचल प्रदेश तथा साथ लगता कश्मीर और गढवाल का क्षेत्र है। सप्त-सिन्धु को आर्यावर्त्त भी कहा गया है। ऋग्वेद म व्यास नदी के अर्जिकीया नाम के हवाला से श्री लालचन्द प्रार्थी इसी क्षेत्र को आर्यावर्त्त का मुख्य भाग मानते हैं, जिस का केन्द्र आर्यकी वर्तमान 'अर्की' स्वीकार करते है।[1] हिमालय के पाँच खण्डो मे एक जलन्धर था—

खण्ड पच हिमालयस्य कथिता नेपाल कूर्माचलौ
केदारोऽथ जलधरोऽथ रुचिर कश्मीर सज्ञोऽन्तिम

जलन्धर खण्ड का मुख्य भाग सपादलक्ष है, जलन्धर का मैंदानी भाग नही। इसी मे ही बाद के साहित्य का प्रसिद्ध क्षेत्र त्रिगर्त पडता है, जिसमे कांगडा और उसके इर्द-गिर्द का बडा भू-भाग शामिल है और जो सपादलक्ष का केन्द्र है। वेदो मे एक महान युद्ध 'दाश राज्ञ' का वर्णन है जो एक ओर वसिष्ठ ऋषि द्वारा समर्थित सुदास और दूसरी ओर दस जन पदो के बीच हुआ जिन्हे विश्वामित्र का मार्गदर्शन प्राप्त था। यह युद्ध परुष्णी अर्थात् रावी नदी के किनारे हुआ था, जो आर्य और दासो के बीच सघर्ष का भी क्षेत्र माना जाता है। दास से अभिप्राय यहाँ के आदि-जातियो के लोगो से है, जिन्हे दस्यु भी कहा गया है और जिन मे कोल, किरात, भील, किन्नर, असुर आदि शामिल हैं, जो जैसा कि पहले लिखा गया है इस क्षेत्र के मूल निवासी थे। दस जनपदो के बीच पाँच वडे जनपदा मे एक तृत्सु जनपद भी था जिनका मूल अधिकार क्षेत्र रावी नदी के पूर्व का भू-खण्ड बताया जाता है। यही तृत्सु क्षेत्र बाद मे त्रिगर्त कहलाया होगा।

स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर सतलुज, व्यास और रावी का पहाडी क्षेत्र आर्यो और दस्यु जाति का सघर्ष का आखाडा रहा है, वहाँ दूसरी ओर यह वही क्षेत्र है जहाँ वैदिक ऋषियो ने वेदो के मुख्य भाग की रचना की। उपर्युक्त 'दाश राज्ञ' के सम्बन्ध मे ऋग्वेद की जिन रचनाओ का निर्माण हुआ है, वे सर्वश्रेष्ठ रचनाओ मे से मानी जाती हैं। वर्तमान पहाडी भाषा मे वैदिक तथा सस्कृत ध्वनियो और शब्दो का जो आधिक्य है,

1 श्री लाल चन्द प्रार्थी कुलूत देश की कहानी, पृ० 77.

यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि न केवल यह वेदों का रचना-स्थान है, वरन् यह वह भू-खण्ड है जहाँ किसी समय संस्कृत लोक भाषा रही होगी।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के समय इस भू-खण्ड में आदिवासियों, खशों और आर्यों के साथ-साथ गूजर लोगों का सम्बन्ध भी जोड़ा जाता है। कुछ विद्वानों ने वर्तमान पहाड़ी के निर्माण में गूजर जाति तथा उनकी भाषा के योगदान को प्रमुख स्थान दिया है। डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार "पहाड़ी भाषा राजस्थानी का एक रूप है जो मूल में खश-गूजर की भाषाओं का मिश्रण है।"[1] खशों के बारे में पहले कहा जा चुका है। जहाँ तक गूजरों का सम्बन्ध है, उनकी वर्तमान समाज में जनसंख्या को देखते हुए यह स्वीकार करना कठिन है कि पहाड़ी भाषा में उनका कोई निर्णायक योगदान रहा हो।

यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है। परन्तु विषय के क्रमानुसार यहाँ इस सम्बन्ध में कुछ और कहना उचित होगा।

डॉ० ग्रियर्सन ने पहाड़ी क्षेत्र की भाषाओं में जिन गुजरी भाषाओं का वर्णन किया है, वे 'हज़ारा की गुजरी', 'स्वात की गुजरी', 'यूसफजई गुजरी', 'कश्मीर की गुजरी' तथा 'पंजाब के पहाड़ियों की गुजरी हैं'। इनमें अन्तिम को छोड़कर कोई भी गुजरी भाषा हिमाचल क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं है। अन्तिम गुजरी में भी मूल भाग गुजरात, गुरुदासपुर और होशियारपुर का है। कुल 226, 949 में से कांगड़ा में केवल 8,460 गूजर दिखाए गए हैं। स्पष्ट है कि उस समय भी गूजरों की संख्या इस भू-खण्ड में नहीं के बराबर थी। अतः इस नाममात्र जनसंख्या का समाज की भाषा पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता। यह तर्क भी अधिक युक्तिसंगत नहीं कि किसी समय इनकी भारी संख्या यहाँ थी, परन्तु बाद में वे अन्य राजपूत जातियों से मिल गए और उनकी अलग सत्ता खत्म हो गई हो। वे रण-कुशल और सफल शासक रहे हैं[2] ऐसी कोई बुराई उनमें न थी, जिससे वे अपना नाम छोड़ने को विवश होते। जब खश जैसी जाति जो गूजरों से कई सौ वर्ष पहले भारत में आई, इस प्रदेश के कई भागों में विभिन्न रूपों में अपना अस्तित्व छोड़े हुए है, तो कोई कारण नहीं कि उनके बहुत देर बाद छठी ईसवी में आए गूजर इतने शीघ्र केवल उदाहरण के लिए ही कुछेक खाना-बदोश परिवार छोड़ जाते। खश जाति अपने अत्याचारों के कारण इतिहास में किसी समय मानवभक्षी भी कहलाए और इसीलिए जहाँ कुल्लू और कांगड़ा में खश कहना गाली माना जाता है, वहाँ किन्नौर जैसे इलाकों में खश बड़ा सम्मानित शब्द है। इसी विरोधी पक्ष में ही हिमाचल का विशाल लोक साहित्य प्राप्य है। परन्तु गूजरों के बारे में ऐसा अत्याचारी व्यवहार कहीं व्यक्त नहीं है। फिर उनका अस्तित्व कैसे मिट गया। उन्हें अपनी जाति छोड़कर अन्य राजपूतों में कैसे समाप्त होना पड़ा।

इसके अतिरिक्त, विद्वान इस बात पर एक आवाज में सहमत हैं कि गूजर लोग भारतवर्ष में पहली बार छठी शताब्दी में आए। तब तक तो मध्यकालीन भारतीय आर्य

1. डा० ग्रियर्सन · लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, खण्ड 9 भाग 4, पृ० 273
2 श्री के० एम० मुंशी 'ग्लोरी दैट वाज़ गुर्जर देश' भूमिका पृ० xii

भाषाओ के प्रथम दो चरण समाप्त हो गए थे और केवल अन्तिम चरण 'अपभ्रश' का समय चल रहा था । ऐसी अवस्था मे गुजरात जैसे क्षेत्रो मे तो, जो उनके गढ थे, उनकी भाषा प्रधान हो सकती है, शेष स्थानो पर उनका विशेष प्रभाव नही माना जा सकता, विशेषत पहाडी भाषी क्षेत्र पर।

ऐतिहासिक सन्दर्भों से लगता है कि जब गुजरात-मालवा आदि गूजर देशो मे गूजर शासको का प्रभुत्व था, तब यह क्षेत्र उनके अधिराजत्व के रूप मे रहा होगा, कभी स्वतन्त्र हुआ, कभी उनके अधीन । समाज म तब भी उनकी सख्या अधिक न थी। सन् 550 से 1200 ईसवी तक गूजर शासको ने कई बार सपादलक्ष पर आक्रमण किए। 1150 ई० के लगभग कुमारपाल ने इसे विध्वसित कर दिया,[1] और इसे गूजरदेश का भाग भी बनाया । परन्तु यह केवल उनके शासन की समय-समय की विजय थी। मूलरूप मे सपादलक्ष पर राजपूत राजाओ का अधिकार रहा । सपादलक्ष मे तब भी गूजरो की आबादी किसी जगह अधिक न रही होगी, तभी तो गूजर प्रदेश के शासक यहाँ अपना स्थायी राज्य कभी भी उस समय स्थापित न कर सके। यहाँ के मूल निवासियो को उनका आक्रमण ऐसा ही रहा होगा, जैसा गजनी और गौरी का उत्तर भारत पर। श्री के० एम० मुन्शी का यह कथन कि सपादलक्ष गूजर राज्य का दुर्जेय इकाई थी,[2] इस बात का सकेत है कि पहाडी लोगो ने कभी उनका स्थायी शासन स्वीकार नही किया।

इसका यह अभिप्राय नही कि गूजर जाति की भाषा का कोई भी प्रभाव नही है। प्रभाव जरूर है, परन्तु इतना ही जितना पहाडी भाषा पर मुण्डा, दरद-पैशाची और तिब्बती भाषा का प्रभाव दिखाई देता है । वस्तुत पहाडी भाषा के मूल मे वैदिक तथा लौकिक सस्कृत है जो मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रश के माध्यम से वर्तमान भाषा के रूप मे पहुची है । वर्तमान पहाडी भाषा का मूलाधार शौरसेनी होने के बारे मे उदाहरण और तर्क सहित अन्यत्र उल्लेख किया गया है।

भौगोलिक तथा प्राकृतिक स्थिति

समस्त पहाडी-भाषी क्षेत्र केवल भाषा की दृष्टि से ही नही, वरन भौगोलिक तथा प्राकृतिक रचना की दृष्टि स भी अन्य भागो मे पृथक है । इसके पूर्व-दक्षिण, दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम मे हरियाणा और पजाब के मैदान हैं। ज्यो ही हम सपाट समतल मैदान से उत्तर की ओर ऐसे स्थान पर पहुँचते हैं, जहाँ हिमालय के दामन की पहाडियाँ जन्म लेने लगती है ठीक वही से पहाडी भाषी क्षेत्र आरम्भ होता है। दक्षिण की ओर इन्ही छोटी पर्वत शृखलाओ ने अपने उत्तर मे आने वाले क्षेत्र को दक्षिण के क्षत्र से भौगोलिक रूप मे अलग कर दिया है । इन्ही पहाडियो ने हिन्दी और पजाबी क्षेत्र से पहाडी की सीमा बाँधी है। जैसे ही अम्बाला, कालका, चण्डीगढ, रोपड, होशियारपुर और पठानकोट मे पहुँचकर मैदानी भाग समाप्त होता है हिमालय की सवा लाख शाखाएँ

1 श्री के० एम० मुन्शी 'ग्लोरी देट वाज गूजर देश' पृ० 343.

2 वही पृ० 347.

(सपादलक्ष क्षेत्र) मैदान से बिलकुल भिन्न प्राकृतिक सौंदर्य लिये स्वागत-द्वार खोले होती हैं। यही छोटी पर्वत शृंखलाएँ लघु और विशाल रूप में ज्यों ज्यों आगे बढ़ती हैं, ऊपर उठती और ऊँची होती हैं, यहाँ तक की अन्तत वे उत्तर में उन "हिमाच्छादित हिमालय के उच्च शिखरों पर पहुँचती है जो इसकी उत्तर की सीमा का काम देती हैं। इस प्रकार शिवालिक की गहरी घाटियों में 1500 फुट से चलकर ये पर्वत चोटियाँ कांगड़ा किला 2500 फुट, मण्डी 3000 फुट, सूईधार 8900 फुट, भबूजोत 12000 फुट, बघाल (धौलाधार) 17000 फुट, देऊ टिब्बा 19680 फुट तथा इन्द्रकील (इन्द्रासन) 20400 फुट तक ऊँची चढ़ती हैं। पूर्ण भूखड समुद्रीतल में 1200 फुट से 21000 फुट की ऊँचाई के बीच स्थित है। प्रदेश की विभिन्न चोटियाँ सदा से पर्यटकों और यात्रियों को आकर्षित करती रही हैं।

समस्त क्षेत्र छोटी छोटी वादियों में विभक्त है जो पर्वत चोटियों और नदी-नालों से घिरी है। जगह जगह पर तीर्थ स्थान, ऋषि-मुनियों के साधनास्थल तथा प्राकृतिक सौंदर्य के दृश्यों से भरपूर है। सिरमौर में रेणुका झील, बिलासपुर में गोविन्द सागर, कांगड़ा में भागसू नाग और डल झील, मंडी में पराशर झील रिवालसर झील, चम्बा में खजियार और मणिमहेश, कुल्लू में वशिष्ठ और मणिकरण के गर्म पानी के चश्मे प्राकृतिक सौंदर्य के अद्भुत दृश्य हैं। इसी तरह हिमालय की सुन्दर उपत्यकाएँ इस क्षेत्र की शोभा को चार चाँद लगाती है—सिरमौर में चूड़धार, शिमला में चूड़धार, कांगड़ा में धौलाधार, चम्बा में हाथीधार, डागनीधार, मण्डी में सिकन्दरधार, चियाड़ाधार, जाऊ-धार, कुल्लू में सारोधार, बशलेऊजोत, चण्डीजोत, जोत रोहतांग आदि प्रसिद्ध पर्वतचोटियाँ हैं। नदियाँ में चन्द्रभागा (चनाब), रावी, व्यास, सतलुज पब्बर, और गिरी न केवल सुन्दर नदी घाटियों की जन्मदातृ हैं, अपितु महान जलशक्ति का स्रोत भी हैं, जिन पर देश की खुशहाली और सम्पन्नता निर्भर है। वास्तव में यह समस्त क्षेत्र प्राकृतिक सौंदर्य की विविधता और विशालता का अनुपम भूखण्ड है।

पहाड़ी की विभिन्न बोलियाँ

पहाड़ी के नामकरण और स्वरूप की तरह ही पहाड़ी के विस्तारक्षेत्र और उसकी बोलियों के बारे में भी विद्वानों के मतभेद हैं। ऐसे मतभेद के कारण स्पष्ट हैं। विद्वानों ने इस पर गहन अध्ययन नहीं किया है, और न ही किसी विद्वान का इस ओर विशेष ध्यान गया है। जिन विद्वानों ने इस सम्बन्ध में छुट पुट संकेत किया है, उन्होंने केवल अन्य भाषाओं के अध्ययन के बीच सरसरी संकेत किया है। यदि विद्वान भाषा-विशेषज्ञ इसके स्वरूप पर विशेष रूप से अध्ययन करते तो उन्हें स्वयं अपने विचारों को बदलना पड़ता। अपने अध्ययन और खोज के अधीन भाषाओं का स्वरूप और क्षेत्र निर्धारित करते हुए पास-पड़ोस की भाषाओं पर आकस्मिक और नैमित्तिक निर्णय देना न केवल अन्याय करना है, वरन् अनावश्यक भ्रान्तियों और शंकाओं को जन्म देना है। पहाड़ी के स्वरूप का वर्णन करते हुए, विद्वानों के इन विभिन्न मतों का अन्यत्र उल्लेख

किया जा चुका है, और उन्हे पुन उद्धृत करना युक्तिसगत नही है। यहा केवल कुछ विवेचन किया जाएगा।

आज तक केवल डॉ॰ ग्रियर्सन ही ऐसे विद्वान हुए है, जिन्होने पहाडी की सभी बोलियो का, सक्षिप्त व्याकरण सहित, उल्लेख किया है। यहा डॉ॰ ग्रियर्सन के हवाले से ही पहाडी की विभिन्न बोलियो का सक्षेप मे उल्लेख किया जाएगा।

1 जौनसारी

पूर्व से पश्चिम की ओर चलते हुए (पश्चिमी) पहाडी के अन्तर्गत डॉ॰ ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम बोली जौनसारी मानी है। यह उत्तर प्रदेश के देहरादून जिला के जौनसार-बावर क्षेत्र की बोली है। मूल रूप मे यह देहरादून की हिन्दी, इसके पूर्व की गढवाली और सिरमौर बोलियो का मिश्रण है, परन्तु इसका सर्वाधिक झुकाव सिरमौरी की ओर है। डॉ॰ ग्रियर्सन ने इसे अन्तर्वर्ती बोली कहा है। जौनसारी म 'अ' प्राय 'औ' मे बदलता है जो साथ लगती पहाडी की बोलियो की विशेषता है, जैसे—घर>घौर। एक दूसरी विशेषता जो पहाडी का मुख्य गुण है, कर्ता का तिर्यक रूप है, जो वास्तव मे करण का विभक्ति चिह्न है, जैसे घोडे (घोडे ने या घोडे द्वारा), घौरे (घर ने या घर द्वारा)। इसी तरह अन्तिम स्वर 'अ' या 'आ' भी 'औ' मे बदलता है।

नमूना—एकौ-के दुई बेटे थे। तिहू मुझे जोजा काणछा था तिने आपणे बाबा-ख बोलो, जै बाबा, जो किछ धन-टाका औ, तेथु मुझे जो-किछ मेरे बाटे-को, सो मू-ख दे।' तेबी तीने जो किछ थो सो तिहू-ख बाटी दिनो।

2 सिरमौरी

पहाडी की दूसरी बोली सिरमौरी है। यह मूल रूप मे सिरमौर जिला की बोली है। गिरी नदी उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर चलती हुई सिरमौर जिले को लगभग दो बराबर भागो मे बाटती है। दक्षिण-पश्चिम भाग गिरी-वार तथा उत्तर-पूर्वी भाग गिरी-पार कहलाता है। इसी विभाजन पर सिरमौरी की स्थानीय दो उप-बोलिया मानी गई है—गिरी वार क्षेत्र मे धारठी नाम की पर्वत-शृ खला है। इसी के नाम पर इस ओर की उप-बोली को धारठी कहते है। दूसरे भाग की उप-बोली को **गिरी-पारी** कहा जाता है। दोनो उप-बोलियो मे वैयाकरणिक भेद कोई नही है, सिवाय इसके कि धारठी पर हिन्दी का कुछ प्रभाव दिखाई देता है, जबकि गिरीपारी का क्षेत्र शुद्ध पहाडी भाषा-भाषी है। सिरमौरी मे वे सभी ध्वनिया हैं जो अन्य पहाडी बोलियो मे पाई जाती हैं। शब्दरूप का भी वही सामान्य नियम है। विभक्तिया घटकर केवल चार रह गई हैं कर्ता-करण के लिए 'ए', कर्म-सम्प्रदान के लिए 'खे' अपादान अधिकरण 'दा' तथा सम्बन्ध रा-रे-री।

गिरी-पारी और धारठी के अतिरिक्त डॉ ग्रियर्सन सिरमौरी की एक और उप-बोली मानते हैं—विशाऊ। विशाऊ का क्षेत्र जुब्बल विशेष है। परन्तु वे इसका कोई ब्योरा या व्याकरण नही देते। नाम के सिवाय वे इसे गिरीपारी से भिन्न नही समझते।

असल मे गिरीपारी का वास्तविक नाम 'बिशाऊ' है।[1]

नमूना—एकी जोणे रे दू बेटे थिए। काणठे बेटे आपणे बावा-खे बोलो, 'वा
मेरे बाडे हिसाब मा खे दे, तेणीए तिनी-खे हिसाब बाडे दिया। काणछे छोटे आपण
बाडा लईरो दूर देशो खे डेओ गोवा।

2 सी तेसी-ख देखीवा रीझीयू थिया, बोलो थिया, एसणा हाण्डो थिया जेसण
बादलो देखीवा मोर नाचो। गाव वाले एमणा लाड देखीवा हैरान थिए। कोवी-को
आरु मुझो तेसके ठाठे पाडो थिए।

3 बघाटी

बघाटी भूतपूर्व बघाट रियासत की बोली है, जहा अब वर्तमान सोलन जिला है
परन्तु इसका प्रभाव बघाट रियासत तक सीमित न होकर भूतपूर्व पटियाला राज्य
पिंजौर तक व्यापक था, और अब भी है। इसके पूर्व में सिरमौरी क्षेत्र, दक्षिण मे हिन्द
क्षेत्र तथा पश्चिम मे पहाडी की हण्डूरी बोली का क्षेत्र है। अशणी नदी इसे शिमला व
बोली क्योंथली से अलग करती है। अपने स्रोत शिमला के निकट कुफरी से लेकर गि
नदी के साथ संगम स्थान गोडा तक यह अशणी नदी क्योंथली और बघाटी के बी
पूर्णत सीमा निर्धारित करती है। इसके बाए ओर क्योंथली तथा दाए ओर बघाट
बोलियां हैं। कुनिहार मे इसी बोली का रूप बघलाणी कहलाता है, परन्तु मूल बोली
कोई ऐसी भिन्नता उसमे पाई नही जाती जिससे बघलाणी को बघाटी से अलग समझ
जाए।

बघाटी बोली सिरमौरी के बिलकुल निकट है। उच्चारण की दृष्टि मे सिरमौर
बघाटी तथा साथ लगती दूसरी बोलियो मे कोई विशेष अन्तर नही है, सिवाय इसके f
बघाटी मे महाप्राणत्व को कोमल करने की प्रवृत्ति है, यथा 'भी' को 'बी', 'घर' व
'गोहर', 'तिन्हा' को 'तिन्ना', दूसरी पहाडी बोलियों के 'हाऊ' के लिए 'आओं (मैं)
इसके अतिरिक्त बघाटी क्षेत्र के वर्तमान लेखको मे सयुक्त-अक्षरो के प्रयोग की प्रवृत्ति
भी दिखाई देती है—जैसे 'कसरा' के लिए 'कस्सरा' (किसका), 'तेसरे' के लिए 'तैस्सरे
'सबी-खे' के लिए सब्बी-खे (सब को), 'आपणा' के लिए 'आप्पणा' आदि। परन्तु मू
मे यह व्यक्तिगत लेखको के मन की सदिग्धता लगती है, क्योंकि एक ही लेखक एक ह
पैरे मे इन दोनो तरह के शब्दों का प्रयोग निस्सकोच करता है।

नमूना—एकी आदमी रे दो बघेर थिए। तिन्ना माय दे छोटे आपणे बावा-रे
बोलेया 'बावा, आपणी घरची माय दे जो मेरा हिसा ओ, सो मा-खे दे।' तब्बे तेन्नी
तिन्ना-खे आपणी घरची बाडे दिती।

2. से तेसरी चाली पादे लट्टू थे। बोलो थे ईशा चालो जिशा मोर घनघटा मे
देखरो नाचणे लगी राआ ओ। गाओं रे लोक इना मोह माया खे देखरो हरान थे। कने
कबे बनपी साथि देखरो ईशारा बी करने थे।

---

1 शिक्षा विभाग, राज्य भाषा संस्थान, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित 'गीत पत्रावली' पृ० 6
स० श्री राम-मान मोरज।

4. क्योंथली

स्वतन्त्रता से पूर्व शिमला क्षेत्र छोटी-छोटी रियासतो का समूह था। इन्हे शिमला पहाडी रियासते कहा जाता था। पहाडियो के बीच हरएक वादी मे प्राय अलग रियासत थी। दक्षिण मे सिरमौर और बघाट तथा उत्तर मे सतलुज नदी के बीच के क्षेत्र मे मुख्यत इन रियासतो का क्षेत्र पडता है। यद्यपि भाषायी दृष्टि से यह एक सपुट क्षेत्र है, परन्तु भूतपूर्व प्रशासन की दृष्टि से हर रियासत की उसी नाम से अपनी बोली गिनाई गई थी। ध्वनि, व्याकरण और शब्दावली मे समानता होते हुए भी रियासती विभेद भाषायी विभेद का कारण था। इन रियासतो मे सबसे बडी क्योथल रियासत थी, और वह भौगोलिक दृष्टि से मध्य मे पडती थी। इसीलिए इन सभी रियासतो की बोलियो को, जो समान थी, डॉ ग्रियर्सन ने 'क्योथली' के अन्तर्गत रखा है। इस आधार पर क्योथली के अधीन निम्नलिखित उप-बोलियो का उल्लेख किया जाता है —

(1) **हण्डूरी**—यह भूतपूर्व हण्डूर रियासत अथवा नालागढ मे बोली जाती है, और अन्य बोलियो के ठीक दक्षिण-पश्चिम मे पडती है। नालागढ का पूरा क्षेत्र इसमे नही पडता, परन्तु पूर्व की ओर मंलोग का क्षेत्र इसी उप-बोली का भाग है। इस पर महलूरी का प्रर्याप्त प्रभाव है।

(2) **शिमला सिराजी**—क्योथल को छोडकर शिमला के आस पास की भूत पूर्व छोटी-छोटी रियसतो की बोली को शिमला-सिराजी कहा गया है, यद्यपि मूल सिराज क्षेत्र सतलुज नदी के उस पार कुल्लू जिले का एक भाग है, जिसमे बाहरी सिराज और भीतरी सिराज दो तहसीलें हैं। शिमला सिराजी के अन्तर्गत भूतपूर्व ठेओग और घुण्ड रियासतें, पुनुर क्षेत्र का कुछ भाग, कुम्हारसेन का दक्षिणी भाग, दरकोटी, बलसन तथा बशहर रियासत का कनेती क्षेत्र और कोठखाई का कुछ भाग आता है। इसके दक्षिण मे बिशाऊ क्षेत्र पडता है, परन्तु बिशाऊ का इस पर कोई प्रभाव नही है।

(3) **बराडी**—भूतपूर्व जुब्बल रियासत का उत्तरी भाग बराड कहलाता है। इसके उत्तर मे बुशहर क्षत्र पडता है। बराड क्षेत्र, पुनुर क्षेत्र का कुछ भाग, कोठखाई का कुछ भाग, और बुशहर क्षेत्र बराडी उप-बोली का क्षेत्र है। डॉ० ग्रियर्सन स्वय इसको कोई अलग स्थान नही देते। केवल स्थानीय नाम का सकेत करते हैं।

(4) **सौराचोली**—जुब्बल के बराड क्षेत्र के पूर्व मे राउँई (रवांई) का इलाका पडता है, जो भूतपूर्व क्योथल रियासत का एक भाग था और राउँई की ठकरैत कहलाता था। इस क्षेत्र की उप-बोली का स्थानीय नाम सौराचोली है। इसका झुकाव क्योथली की अपेक्षा कुलुई सिराजी की ओर अधिक है। इसका भी केवल स्थानीय महत्त्व है।

(5) **कीरनी**—बराड और राउँई के दक्षिण मे भूतपूर्व तरोच की रियासत थी। रियासत के एक परगना किरन के नाम पर इस उपबोली का नाम किरनी दिया गया है। इसके पूर्व मे जौनसर-बावर का क्षेत्र है। नाम के सिवाय इसमे कोई भी भेद के

लक्षण नही है। अलग नाम का सकेत सम्भवत इसलिए किया गया है कि कही-कही जौनसारी के शब्द आ गए हैं।

(6) कोचो—भूतपूर्व बुशहर रियासत द्विभाषी क्षेत्र था। इसके पूर्वी भाग मे तिब्बती भाषा से प्रभावित किन्नौरी भाषा बोली जाती है, और इसका पश्चिमी भाग भारतीय आर्य-भाषी क्षेत्र है। पश्चिमी भाग की इसी भारतीय आर्य पहाडी बोली का स्थानीय नाम कोची है। यह बोली उपर्युक्त शिमला सिराजी, बराडी, राउँई पहाडी बोलियो और एक ओर किन्नौरी से घिरी है। पश्चिम की ओर सतलुज नदी इसे कुलुई सिराजी से अलग करती है। इस उप-बोली का अलग अस्तित्व नही है। मूल क्योथली से पृथक विशेषताएँ नही हैं। 'कोचा' का अर्थ किन्नौरी बोली मे 'बाहर का' तथा 'कोचङ' का अर्थ 'दिशा' अथवा 'बुरा' होता है। सम्भव है इस बोली का नाम किन्नौर वालों ने 'बाहर की अर्थात् किन्नौर क्षेत्र के बाहर की बोली' दिया हो और डॉ० ग्रियर्सन ने यह नाम वहीं से लिया हो।

मूल क्योथली बोली, जिसमे उपर्युक्त उप-बोलियो की सभी विशेषताएँ है, मूल रूप मे भूतपूर्व क्योथल रियासत की बोली है। शिमला-कमुम्पटी (शहर से बाहर) इस का केन्द्र है, और इसका क्षेत्र ठेओग, कोटी, धामी और भज्जी तक फैला है। इसके पूर्व मे सिरमौरी, दक्षिण मे बघाटी, पश्चिम मे हण्डूरी से आगे कहलूरी और उत्तर मे पहाडी की मण्डी की सुकेती उपबोली का क्षेत्र है। क्योथली बोली की मुख्य विशेषता हिन्दी भाषा के आकारान्त शब्दो के औकारान्त मे बदलने की प्रवृत्ति है, जैसे हिन्दी के घोडा, तारा, साचा, हफ्ता, लोहा, सूखा, हरा, पीना, बाँटना क्रमश घोडौ, तारौ, साँचौ, हफ्तौ, लोहौ, शुकौ, हौरौ, पीणौ, बाट्णौ मे बदल जाते हैं। यहाँ 'औ' को ठीक 'औ' नही मानना चाहिए, न यह 'ओ' है, यद्यपि कुछ लेखक इन्हे तारो, हौरो, शूको, बाँडणो आदि भी लिखते हैं। मूल रूप मे यह ह्रस्व 'ओ' है, जो पहाडी भाषा की मुख्य ध्वनियो मे से है। इसी तरह व्यजनात (अथवा अकारात) पुल्लिग सज्ञा शब्दो का विकारी रूप भी 'औकारान्त' हो जाता है—देशौ रे बीर (देश के वीर), बोणौ मे एस री कुटिया ओसो (वण मे इसकी कुटिया है) आदि। क्योथली की एक दूसरी विशेषता शब्दो मे अल्पार्थकता विशालार्थकता की अभिव्यक्ति के लिए टा-टू-टो या -टी प्रत्ययो का प्रयोग है, विशालार्थकता या महत्त्वार्थकता के लिए 'टा-टो' और अल्पार्थकता या लघुत्वार्थकता के लिए 'टू' और स्त्रीलिंग मे 'टी'—उचटा (ऊँचा), छेलटू (बकरी का बच्चा), शिखुटा (कवल), छागटू (लडका)। यह प्रवृत्ति उप-नामो मे बडी व्यापक है, जैसे—बरागटा, जोगटा, प्रेमटा, जमालटा, थोबटा आदि। लघुत्व और विशालता को ऐसे प्रत्ययो द्वारा व्यक्त करने की पहाडी भाषा की एक मुख्य विशेषता है यद्यपि अन्य बोलियो मे टा टू-टो टी प्रत्यय डा-ड-डो-डी, या का-कू-को की मे भी प्रयुक्त होते हैं।

नमूना—एक माणछो रे दो छोह्टू थे। छोटडे छोह्टूए आपणे बाबेखे बोलो जे जो घरचे मेरे बाँडेरे आजो से मू-खे दे। तेने सब घरचो टूईसे-बाँडी। छोटे छोह्टूए आपणो बाँडो लेय एक दूरो देशो खे डेउआ।

2 से तेसरी चालो देखेओ मस्त हुओ थो। बोलो थो, जे एरी चाल हाडी जेरा

दन्त्य 'ल' और मूर्धन्य 'ल' की स्वतन्त्र ध्वनिया, 'ए' और 'ऐ' के साथ-साथ ह्रस्व 'एँ' तथा 'ओ' और 'औ' के अतिरिक्त 'ओं' ध्वनियो की स्थिति जो पहाडी की सभी बोलियों की विशेषताए हैं, कुलुई मे स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुई हैं। इसी प्रकार सर्वनामो के सम्बन्ध में पहाडी भाषा की विशिष्टताए, विशेषत अन्य पुरुष के लिए स्त्रीलिंग और पुल्लिग के अलग अलग प्रत्यय, कुलुई मे नितान्त स्पष्ट हैं।

नमूना—एकी माण्हु-रे दूई बेटे थो। तिन्हा मोंझा-न होछे बेटे आपणे बाबा-बे बोलू 'एई बाबुआ, माल-मता री जो बोड मूँबे पूजा सा, सो मूँबे दे।' तेबे तेइए तिन्हा-बे बोडी घोनी।

2 सो तेईरी चाला पाघे बडा मस्त हौआ थी। बोला थी, एण्डा चौला सा जेंडा काले बादला हेरिया मोर नौचा सा। ग्रा-रे लोका तेईरी मोह-माया हेरिया बडे हैरान हौआ थी।

7. मण्डियाली

मण्डियाली वर्तमान मण्डी जिला की बोली है। इसके दक्षिण मे सतलुज नदी इसे महासुई से अलग करती है। इसके उत्तर मे बघाल का क्षेत्र है जिसके पूर्वी भाग के कुछ हिस्से मे कुलुई बोली का कोहड-सुआड इलाका पडता है और पश्चिमी भाग के बडे हिस्से मे कांगडी बोली का क्षेत्र है। दक्षिण-पश्चिम की ओर कुलुई की भीतरी सिराजी का क्षेत्र पडता है और उत्तर-पश्चिम मे कुलुई विशेष। डॉ॰ ग्रियर्सन ने इसकी तीन उप-बोलियाँ मानी हैं—(1) मण्डियाली, (2) मण्डियाली पहाडी, (3) सुकेती। ध्वनि के किंचित अन्तर के सिवाय वे इन तीनो मे कोई भेद नही समझते, बल्कि उन्हें समान रूप बताते है। व्याकरण भी केवल मण्डियाली का प्रस्तुत किया गया है। वे स्वय लिखते है कि तीनो मे शायद ही कोई भेद हो।

मण्डियाली बोली मे उपर्युक्त शेष पहाडी बोलियो की 'अ' को 'औ' मे बदलने की प्रवृत्ति कम हो गई है, जैसे मण्डी मे 'घर' शब्द 'घौर' न होकर 'घर' रहता है, परन्तु साधारण बोल चाल मे प्राय 'औ' की ओर झुकाव फिर भी रहता है, जैसे ठौंड<ठण्ड। इसी तरह तालव्य च-वर्गीय ध्वनियों को च वर्गीय ध्वनियों मे बदलने की प्रवृत्ति भी कम हो गई है। परन्तु ल और ल स्वतन्त्र ध्वनियाँ सुरक्षित हैं। शेष पहाडी बोलियो मे भविष्यत् का प्रत्यय 'ला' अथवा 'लौ' है, परन्तु मण्डियाली मे यह हिन्दी 'गा' के समान है। कर्म और सम्प्रदान कारक का प्रत्यय मण्डियाली मे 'जो' है। इन भेदो को छोडकर शेष पहाडी भाषा के सभी गुण मण्डियाली मे विद्यमान हैं।

नमूना—एकी मनुखा रे दूई मावरू थे। माट्ठे मावरूए आपणे बाबा-सौगी बोलया, जे 'मां-जो लटे फटे री बौंड जे औणी तेसा देई दे।' ताँ तसरे बाबे तेसरी बौंड लटे-फटे री तेस जो देई दित्ती।

2 सैं तेसरी चाला पर बड़ा मोहित होई गईरा था। बोलहाँ था, इहाँ चलाहाँ जिहाँ मोर बदला री घटा जो देखी कने नाची पौहाँ। ग्राँवारे लोक एढा मोह माया जो दखी कने हरयान थे।

8. चम्बयाली

चम्बयाली भूत-पूर्व चम्बा रियासत की बोली है। इसके दक्षिण में कांगडा जिला पडता है। उत्तर-पूर्व और पूर्व मे एक ओर चम्बा-लाहुल का क्षेत्र स्थित है, जहा की भाषा तिब्बती-बर्मी परिवार की है तथा दूसरी ओर जम्मू कश्मीर का लद्दाख क्षेत्र है। इसके पश्चिम मे भटियाली बोली का क्षेत्र है जो डोगरी भाषा का रूप है। इसके उत्तर पश्चिम मे भद्रवाही क्षेत्र है जहाँ की बोली भी पहाडी भाषा से सम्बन्धित है, जिससे आगे फिर डोगरी भाषी क्षेत्र है। बाहरी हिमालय पर्वत की धौलाधार की एक शाखा इसे कांगडा जिला से अलग करती है। कांगडा की ओर व्यास जल-क्षेत्र तथा दूसरी ओर रावी जलक्षेत्र पडता है। इससे आगे मध्य हिमालय पर्वत शाखा अर्थात् पांगी पर्वत शृ खला पडती है। दोनों पर्वत शृ खलाओ के बीच की कुल रावी नदी घाटी तीन वादियां में विभक्त है—(1) चम्बा (2) भरमौर और (3) चुराही। रावी नदी-घाटी से आगे पागी पर्वत शृ खला की दूसरी ओर चनाब नदी का क्षेत्र पडता है जिसे पागी क्षेत्र कहते हैं। पागी वादी दो भागों मे विभक्त है, दक्षिण-पूर्व मे चम्बा-लाहुल और उत्तर-पश्चिम मे पागी क्षेत्र पडता है। चम्बा लाहुल की भाषा तिब्बती-बर्मी परिवार से है और पागी की भारत-आर्य से। इस तरह स्थानीय नामो के आधार पर चम्बयाली बोली के अन्तर्गत उपर्युक्त चार उपबोलियाँ हैं—अर्थात् चम्बयाली विशेष, भरमौरी, चुराही तथा पागी (पगवाली)।

धौलाधार और पागीधार के बीच रावी नदी का मुख्य भाग चम्बयाली बोली का मूल क्षेत्र है। चम्बयाली मे वे सभी विशेषताए हैं जो पहाडी भाषा मे निहित हैं। परन्तु इसमे कुछ ऐसे लक्षण विद्यमान हैं जो पहाडी भाषा की कुछ अन्य बोलियो मे नही पाए जाते। इसका मुख्य कारण सीमा-वर्ती कश्मीरी, डोगरी तथा पजाबी भाषाओं का प्रभाव है। ऐसी विभिन्नता मे एक सम्प्रदान कारक का 'जो' प्रत्यय है, जो कर्मकारक का प्रत्यय भी है। यह प्रत्यय भारतीय भाषाओं मे केवल सिन्धी मे पाया जाता है, परन्तु वहाँ यह सम्प्रदान का नही बल्कि सम्बन्ध कारक का प्रत्यय है। इस पर विस्तार से आगे विचार किया जाएगा। चम्बयाली के सज्ञा शब्दो के तिर्यक रूपो मे भी भिन्नता है, जहा उपर्युक्त (मण्डियाली को छोडकर) पहाडी की बोलियो में बहुवचन का तिर्यक रूप वही होता है जो एक वचन का, वहाँ चम्बयाली में एक वचन और बहुवचन के तिर्यक रूप अलग-अलग पाए जाते हैं, जैसे शेष बोलियो में घौरा-ले का अर्थ 'घर को' और 'घरो को' दोनो समान हैं, परन्तु चम्बयाली में एक वचन में घर-जो और बहुवचन घरा-जो। इसी तरह ध्वनि-क्षेत्र में भी कुछ भिन्नताए पाई जाती हैं, जिन में मुख्य यह है कि चम्बयाली में 'अ' को 'औ' अथवा 'ओ' में बदलने की प्रवृत्ति नही है।

नमूना—इक्की आदमी रे दो पुत्र थिए। उन्हाँ मझा निक्के पुत्रे बाबा कने गलाया 'बाबा, जे घर-बारी रा हेसा मेरा है, से मिंजो दे।' ता उनी आपणी लटी-पटी उन्हाँ-जो बडी दिती।

भरमौरी को गादी या गदयाली भी कहते है। रावी का ऊपरी भाग तथा इसकी

दो सहायक नदियों बुढ़ल और तुदेहन का क्षेत्र भरमौरी का मूल क्षेत्र है। मूलत गादी चम्बयाली की उप-बोली है, परन्तु इसमें कांगड़ी और कुलुई बोलियों के प्रभाव स्पष्ट है। गादी में सम्प्रदान कारक का 'जो' प्रत्यय कुलुई का 'बे' है। ध्वनि के क्षेत्र में गादी की मुख्य विशेषता स, श को 'ख' मे बदलने की प्रवृत्ति है। उदाहरणार्थ हिन्दी सुनना > अन्य पहाड़ी बोलियों मे 'शुणना' और गादी मे 'खणना', हिन्दी सीखना > प० शीखणा > गा० खिखणा, हि० सिर के बाल > प० शराल > गा० खराल, पहाड़ी सदना > शादणा > गा० खदणा (बुलाना) हि० बैठना > प० बेशणा > गा० बेखणा।

चुराह तहसील में स्यूल नदी पड़ती है। स्यूल घाटी चुराही का मूल क्षेत्र है। गादी से भी चुराही अपनी मा-बोली चम्बयाली के अधिक निकट है, और चम्बयाली मे अधिक भिन्नता नही दिखाती। ध्वनि क्षेत्र मे चुराही मे स्वरों के निकट आने से ध्वनियो में सामान्य नियम मे कुछ भिन्न परिवर्तन होता है, जैसे 'खाता' से स्त्रीलिंग 'खाती' न बन कर 'ई' के कारण 'खैती' बनता है, इसी तरह खाणा से खैणी आदि। इसके अतिरिक्त चुराही म सम्प्रदान-कर्म का प्रत्यय चम्बयाली के 'जो' के स्थान पर 'भी' होना है, जैसे—तेसनी (उसको)।

पांगी की पंगवाली बोली कश्मीरी भाषा से बहुत प्रभावित है। इसकी शब्दावली मे ऐसे शब्दों की बहुलता है, जो पहाड़ी की अन्य बोलियो में साधारणत पाए नहीं जाते जैसे—आसी (मुंह), दैस (सूर्य), झंडी (कहाँ), गीह (घर, सं० गृह), ही (पिछले कल), लिण्ड (बैल), मगर (सिर) आदि। परन्तु ऐसे शब्द भी हैं जो ठेठ पहाड़ी हैं, जैसे—भरेट्ट (बोझ) बुन्ह (नीचे), धाम (महफल), जोली (प० जोई 'पत्नी'), ग्रुँत (पति), गोरा (गाए, कु० गोरू 'मवेशी'), जौमण (प० जौण,'चन्द्रमा') आदि। पंगवाली में श्रुति के बहुत उदाहरण मिलते है, जो पहाड़ी की मुख्य विशेषता में से है।[1] पंगवाली मे 'र' का लोप प्राय हो जाता है, जैसे हेना < प० हेरना (देखना), माना < मरना, कना < करना, हाना < हारना आदि।

9. भद्रवाही

भद्रवाह क्षेत्र जम्मू कश्मीर राज्य मे पड़ता है, परन्तु भाषायी रूप से यह पहाड़ी भाषी क्षेत्र है। यह चम्बा के उत्तर पश्चिम और चनाब नदी के दक्षिण में स्थित है। भद्रवाही के अन्तर्गत तीन उप-बोलियाँ पड़ती है—

(1) भद्रवाही विशेष, (2) भलेसी, और (3) पाडरी।

दोनो भद्रवाही विशेष और भलेसी भूतपूर्व भद्रवाह जागीर मे बोली जाती है —भद्रवाही मूल भद्रवाह क्षेत्र मे और भलेसी भलेस क्षेत्र मे जो भद्रवाह नगर मे पूर्व की ओर चम्बा सीमा के बीच मे एक छोटी सी वादी है। पाडरी जम्मू-कश्मीर के ऊधमपुर के पाडर क्षेत्र की बोली है।

यद्यपि तीनों उप-बोलियों में स्थानीय भेद हैं, परन्तु तीनों मे बहुत सी समानताएँ हैं। आगामी स्वर के कारण किसी शब्द के प्रथम स्वर मे आने वाले परिवर्तन,

1. विस्तार से आगे कुलुई में 'श्रुति' देखें

जिसके उदाहरण पगवाली मे देखने मे आए थे, भद्रवाही मे और व्यापक हो गए है, उदाहरणार्थ छे डो 'बकरा' परन्तु छे ई 'बकरी', को 'लडका' परन्तु कुई 'लडकी', बछो 'गाय' परन्तु बूछे 'गाय ने', घोडी परन्तु घोडीए 'घोडी ने'। मूल पहाडी मे छे डो से छे ली, को से कोई, बछो से बछीए आदि रूप बनने चाहिए थे। परन्तु भद्रवाही मे बाद मे आ रहे स्वरो के प्रभाव के कारण ऐसे रूप न बनकर पूर्वकथित रूप बन जाते है। इसी तरह भैंण (बहिन) से बहुवचन भैंणी बनता जैसा कि अन्य पहाडी बोलियो मे 'बेहण' से 'बहणी' बनता है। परन्तु बहुवचन के प्रत्यय 'ई' के प्रभाव के कारण भद्रवाही, विशेषत पाडरी, मे ऐसा रूप न बनकर भीण 'बहिनें' बनता है। यह कश्मीरी भाषा के प्रभाव के कारण है।

उच्चारण भेद की एक और स्पष्ट व्यापकता है, जो तिब्बती भाषा के प्रभाव के कारण है। तिब्बती मे प् और र् का सयोग का उच्चारण 'प्र' न होकर 'ट' या कदरे 'ट्र' जैसा होता है। इसी तरह फ+र=फ्र न होकर 'ठ' या ठ्', ब+र =ब्र न होकर 'ड या कदरे 'ड्'। तिब्बती मे 'र' का सयोग सभी वर्गों के अक्षरो के साथ ऐसा ही उच्चारण देता है—क्र<ट, ख्र<ठ, ग्र>ड आदि। पगवाली की बोलियो मे यह प्रवृत्ति प्राय दिखाई देती है, उदाहरणात हिन्दी भूख>पंगवाली भ्रुख>भद्रवाही ढ्रुखो, हिं० भ्राता>का० भ्रा>भ० ढ्रा, हिं० भालू>भ्रालू>भ० ढलवू, सस्कृत व्याघ्र>कुलुई ब्राघ>भ० ढलाग, हिं० भेड>चु० भ्रड> भ० ढलेड, हिं० तीन> प० त्राई>भ० टलाई, हिं० स्त्री>भ० ठली आदि।

भद्रवाही और भलेसी के मुख्य अन्तर सर्वनामो के सम्बन्धकारक मे हैं। जबकि भद्रवाही मे मेरा, तेरा, हमारा और तुम्हारा के लिए क्रमश मेरू, तेरु, इशू और तिशु रूप प्रचलित है, वहाँ भलेसी मे मेऊ तेऊ, असेरू, तुसेरू का प्रयोग होता है। पगवाली मे श्रुति के उदाहरण देखे जा चुके है, भलेसी के तेऊ, मेऊ मे भी 'र' के लोप स्पष्ट हैं।

पाडरी उप-बोली कश्मीरी से बहुत प्रभावित है। परन्तु भद्रवाही और भलेसी से मूल भिन्नता सज्ञा-सर्वनामो के साथ कारक प्रत्ययो के जोडने से परिवर्तन है। कर्ता-विभक्ति रूप और करण के रूप अन्य पहाडी भाषाओ की तरह 'ए' जोडने से बनते है। कर्म सम्प्रदान मे 'ए', अपादान मे 'एल' और सम्बन्ध मे 'र' या 'कर' प्रत्यय लगते है। शेष रूप मे पाडरी अन्य दो भद्रवाही उप-बोलियो के अनुकूल है।

भद्रवाही का नमूना—एगी जेणे दुई मौठे थिए। तिना मजरा निक्के अपणे बाउ्ए से ही जऊँ 'हे, बाजी जे हसो मी मलने, दिदें', फिरी तेनी तेनन अपणी घोरवारी वंडी दित्ती।

कांगड़ी और कहलूरी

इस प्रकार जौनसर-बावर से लेकर भद्रवाह तक के पहाडी भाषा के क्षेत्र मे डॉ० ग्रियर्सन ने प्रमुख नो बोलियो का समावेश किया है। परन्तु इन्ही बोलियों से घिरी हुई अन्य दो बोलियों को डॉ० ग्रियर्सन ने (पश्चिमी) पहाडी भाषा की बोलियाँ नही माना है। ये दो बोलियाँ हैं कांगडी और कहलूरी। कांगडी बोली मूलत भूतपूर्व कांगडा

जिला तथा उस के आस-पास के पडोसी क्षेत्रो की बोली है, जिसमे अब हिमाचल प्रदेश के वर्तमान कांगडा, हमीरपुर और ऊना जिले शामिल हैं। इस समस्त कांगडी बोली क्षेत्र के उत्तर मे चम्बा, पश्चिम मे कुल्लू और मण्डी, दक्षिण मे बिलासपुर तथा दक्षिण-पश्चिम और पश्चिम मे होशियारपुर और गुरदासपुर के क्षेत्र पडते हैं। इस प्रकार कांगडी बोली लगभग तीन ओर से पहाडी भाषी क्षेत्र से घिरा है और एक ओर पजाबी भाषी क्षेत्र पडते हैं।

भूतपूर्व कहलूर और मगल रियासतो की भाषा को कहलूरी कहते हैं। इस क्षेत्र का प्रमुख भाग अब बिलासपुर जिले मे पडता है, और यह बोली अब बिलासपुरी के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसके दक्षिण मे सोलन जिला, पश्चिम में मण्डि जिला, उत्तर मे एक तरफ वर्तमान हमीरपुर और उससे आगे ऊना जिले पडते है, तथा पूर्व में पजाब का होशियारपुर जिला पडता है।

डॉ॰ ग्रियर्सन ने दोनो कांगडी और कहलूरी को पहाडी भाषा की बोलियाँ नहीं माना है। कहलूरी के बारे म डॉ॰ ग्रियर्सन लिखते हैं कि कहलूरी को आज तक पश्चिमी पहाडी का एक रूप माना जाता रहा है और स्थानीय लोग इसे पहाडी ही कहते हैं। परन्तु (बोली के) नमूने से प्रकट होता है कि ऐसी बात नही है।[1] वे इसे होशियारपुर म बोली जाने वाली पजाबी का एक रूप मानते हैं परन्तु न बोली का पूर्ण नमूना देते है और न ही कोई व्याकरण।

कांगडी को भी वे पजाबी का रूप मानते हैं, जो पडोसी भाषा डोगरी और पहाडी का मिश्रण है और यहाँ तक कि इसमे कश्मीरी,के भी प्रभाव हैं। वास्तव म डॉ॰ ग्रियर्सन पजाबी भाषा की दो बोलियाँ मानते हैं— 'एक भाषा का सामान्य बोलचाल का रूप और दूसरे डोगरा या डोगरी। इनमे से डोगरी अपने विभिन्न रूपों म जम्मू रियासत के उप पहाडी क्षेत्र और अधिकत कागडा जिला के मुख्यालयों मण्डल में बोली जाती है।[2] आगे चलकर डोगरी भाषा का उल्लेख करते हुए वे फिर लिखते है "डोगरा (अर्थात डोगरी) की तीन उप-बोलियाँ है। ये कण्डियाली, कागडा और भटयाली हैं। कांगडा बोली कागडा जिला और तहसीलो के मुख्यालयो की प्रमुख भाषा है।[3] सारांश

1 Dr G A Grierson Linguistic Survey of India, Vol IX, part I, p 677—
'In the adjoining hilly part of the District a dialect is spoken, which is locally called Pahari It is the same as Kehluri
[illegible] had [illegible] form of Western Pahari

2 [illegible]
the sub mountainous portion of Jammu State and over most of the headquarters divison of the Kangra District

3 Ibid p 637—
[illegible] dialects of Dogra These are Kandeali the
[illegible] of

यह कि उनके अनुसार—

(1) पंजाबी की दो बोलियाँ हैं, और उनमे से एक डोगरी है,

(2) डोगरी बोली की तीन उप-बोलियाँ हैं जिनमे से एक कांगड़ी है, तथा

(3) कांगड़ी मुख्यत जिला और मण्डल तहसील मुख्यालयों म बोली जाती है।

स्पष्ट है कि डॉ० ग्रियर्सन कांगड़ा जिला की समस्त भाषा को डोगरी के माध्यम से पंजाबी की उप-बोली नही मानते, बल्कि केवल उस रूप को डोगरी की उप-बोली मानते हैं जो जिला के मुख्यालय और मण्डल-तहसील के मुख्यालयो मे बोली जाती है। अर्थात् जो बोली जिला और तहसील मुख्यालयो से बाहर बोली जाती है वह डोगरी की उप-बोली नहीं है। कांगड़ी की स्थिति मे स्पष्ट रूप स जिला और तहसील मुख्यालयों का उल्लेख करके उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह इन मुख्यालयो से बाहर की बोली को पंजाबी डोगरी की उप-बोली नही मानते, बल्कि केवल मुख्यालयों मे बोली जाने वाली भाषा को ही डोगरी का रूप कहते हैं। अब, यह एक सर्वसम्मत और असदिग्ध राय है कि राज्य, जिला या तहसील की बोली समस्त क्षेत्र के मूल निवासियों की भाषा नही होती। यह कचहरी भाषा होती है जो तथाकथित पढ़े लिखे कर्मचारियों और कार्यालय मे काम के लिए आए लोगो की काम चलाऊ भाषा होती है जो मूल निवासियों की भाषा की वास्तविक प्रतिनिधि नही होती। अत स्पष्ट है कि जिस बोली को डॉ० ग्रियर्सन ने डोगरी की उप-बोली कहा है, वह कांगड़ा के देहात की भाषा नही बल्कि कर्मचारियों और लोगो के बीच की बोल चाल की कलुषित भाषा है।

यदि तर्क के लिए इसे कलुषित भाषा न भी मानें, तो भी केवल मुख्यालय की बोली के आधार पर सारे क्षेत्र की बोली को पंजाबी डोगरी का रूप नही माना जा सकता। मुख्यालयो का स्पष्ट हवाला देकर दो विकल्प स्पष्ट होते हैं—अर्थात् या तो डॉ० ग्रियर्सन मुख्यालयों स बाहर की बोली को पंजाबी-डोगरी की उप बोली नही मानते, या उन्हे मूल कांगड़ी बोली का ज्ञान नही था।

डॉ० ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण म सब से बड़ी कमी यह रही है कि बहुत सी बोलियो को उन्होंने स्वय नहीं सुना, न ही उन क्षेत्रों को देखा है। किसी बोली के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उसके मूल उच्चारण को कानो से सुनना अत्यन्त जरूरी है। डॉ० ग्रियर्सन ने मूलत अपनी अंग्रेजी की सामग्री के अनुवाद पर निर्भर किया है, और इस लिए उनके लिए भाषा, मूल रूप मे, अनुवादक की भाषा थी। और, इस प्रक्रिया मे भाषा के वास्तविक रूप के समझने मे कई कठिनाइयाँ थी—ठीक वक्ता की खोज, उसकी ध्वनि का मूल बोली के बोलने वालों की ध्वनि से साम्य, क्योंकि उच्चारण मे कई व्यक्तिगत विशेषताएँ होती हैं, फिर उसकी ध्वनि को अनुवादक द्वारा ठीक समझना, ठीक समझते हुए भी उसे लेखनी-बद्ध करने मे कठिनाई, अंग्रेजी लिपि की भारतीय भाषाओं की ध्वनियो को ठीक ठीक दर्शाने मे असमर्थता, अनुवादक की अपनी सूझ से दर्शाई ध्वनियो को अनुसंधान कर्ता द्वारा ठीक-ठीक समझने म कठिनाई, अक्षर-वर्तनी मे भूलें आदि। इन सब बातो के होते हुए भी डॉ० ग्रियर्सन ने जो कार्य किया है, उस सराहे बिना नही रहा

जा सकता। इन कठिनाइयों के बावजूद भी उनके निर्णयों को सामान्यत ठुकराना आसान नही है। परन्तु, फिर भी उनकी जो सीमाए थीं उन्हें वे स्वय भी मानते थे और उन्होंने स्थान-स्थान पर इस बात का सकेत भी किया है। वे अपनी सीमाओं से बाहर नही जा सकते थे। और, कांगडी के बारे मे उनकी य कठिनाइयां तथा सीमाए और अधिक प्रबल हुई हैं क्योंकि व लिखते हैं कि जिस नमूने के आधार पर वे कांगडी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं और वैयाकरणिक निर्णय दे रहे हैं वह नमूना 'कांगडा के निवासी ने नहीं लिखा है।'[1] स्पष्ट है कि लेखक कोई जिला मुख्यालय का कर्मचारी होगा जो कांगडा से बाहर पजाब का था, और जो अनुवाद उसने भेजा वह मूल कांगडी का प्रतिनिधि नही था, बल्कि उसकी अपनी बोली थी जिसमे कुछ मुख्यालय की बोली का मिश्रण था। इस लिए निस्सन्देह ही कांगडी के बारे मे डॉ० ग्रियर्सन का आधार ही दोषपूर्ण था, और अनुवादक के मुख्यालय मे लिखे हस्तलेख की भाषा भी। पिछले पृष्ठों पर उद्धृत 'मुख्यालयों' से भी डॉ० ग्रियर्सन का मुख्य हवाला जिला कार्यालय से ही था। पृष्ठ 609 पर वे "कांगडा जिला के मुख्यालयों डिविजन" लिखते हैं, और पृष्ठ 637 पर 'कांगडा जिला के मुख्यालयी तहसीलों' का उल्लेख करते हैं।

कांगड़ी बोली की स्थिति

वास्तव मे डॉ० ग्रियर्सन कांगडी के बारे मे स्पष्ट नही है। उनका कांगडी बोली का हस्तलेख कांगडा निवासी द्वारा लिखा नही गया था, और वे मुख्यालय की बोली को ही डोगरी की उप-बोली कहते है, या दूसरे शब्दों मे कांगडा से बाहर के अनुवादक की भाषा को डोगरी का रूप मानते हैं, और बाद के बहुत से लेखकों और विद्वानों ने बिना गहरा अध्ययन किए यही धारणा अपना ली कि कांगडी पजाबी की बोली है। असल मे यह धारणा वस्तुस्थिति के बिलकुल प्रतिकूल है। कांगडी बोली तीन ओर से पहाडी भाषा से घिरी हुई है। इसके उत्तर के एक भाग मे, डॉ० ग्रियर्सन के अपने शब्दो मे गद्दी लोग गादी बोलते है जो पहाडी की एक बोली है।[2] उत्तर के शेष भाग मे चम्बा जिला की चम्बयाली का क्षेत्र है। पश्चिम के एक छोटे भाग मे कुलुई बोली तथा बहुत बडे भाग मे मण्डियाली बोली जाती है। दक्षिण मे बिलासपुर का क्षेत्र है जहाँ हण्डूरी को तो स्वय डा० ग्रियर्सन पहाडी मानते हैं। अर्थात उत्तर मे चम्बा से लेकर दक्षिण मे बिलासपुर तक कांगडी पहाडी बोलियों से घिरी है, कहलूरी स्वय तीन तरफ शिमला पहाडी से ढकी है। केवल पश्चिमी भाग ही पजाबी क्षेत्र से सलग्न है। अत इसका डोगरी की उपबोली होना सम्भव नही है। कांगडी की अपेक्षा चम्बयाली बोली डोगरी के अधिक निकट होनी चाहिए क्योंकि उसका क्षेत्र डोगरी क्षेत्र से लगता है। परन्तु डॉ० ग्रियर्सन ने चम्बयाली को डोगरी की उप बोली नही माना बल्कि स्पष्ट रूप मे पहाडी की बोली निर्धारित की है। कारण यह है कि चम्बयाली के बारे मे उनके पास अपने

1 "This manuscript was not written by a native of Kangra"—
डॉ० ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, खण्ड 9 भाग 1, पृ० 776

2 लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, खण्ड 9, भाग 1, पृ० 776

भाषा-नमूने के अतिरिक्त और अधिक व्यापक और प्राधिकृत सामग्री थी, जिन में मुख्यत रेव० टी० ग्राहम बेली की 'लैंग्वेजिज आफ दि नार्दर्न हिमालयाज' और डॉ० जे० पी-एच० वोगल की 16 वीं तथा 17वी शताब्दियों की "प्रशस्तियों (अधिकार पत्रों) से ली गई चम्बयाली शब्दावली" जैसी रचनाएं थी। ऐसी सामग्री कांगड़ी के बारे में उन्हें प्राप्त न हुई। कांगड़ी बोली दूर की डोगरी की अपेक्षा पड़ोसी बोलियों अर्थात् चम्बयाली, गादी, कुलुई, मण्डियाली से अधिक प्रभावित होनी चाहिए। परन्तु डॉ० ग्रियर्सन कांगड़ी से निकटतः मिलती चम्बयाली और मण्डियाली को तो पहाड़ी मानते हैं, कांगड़ी को ऐसा नहीं मानते।

वस्तुत इस सारे विवेचन से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—एक यह कि डॉ० ग्रियर्सन के पास कांगड़ी बोली का सही रूप सही ढंग से प्राप्त न हो सका और इस लिए एक अजनबी द्वारा प्रस्तुत किए गए नमूने के आधार पर इस वास्तविक रूप में नहीं आंका गया। दूसरे यह कि जैसा भी उन्होंने मूल्यांकन किया है, वे केवल जिला मुख्यालय की बोली को ही डोगरी की उप-बोली मानते हैं, सारे कांगड़ी भाषी क्षेत्र की बोली को नहीं। ऐसी परिस्थितियों में कांगड़ी बोली के बारे में भूल हुई, या दूसरे शब्दों में इसके साथ अन्याय हुआ है। गलत प्रतिनिधित्व के कारण कांगड़ी भ्रान्त-धारणा की शिकार हुई, और बाद तक इसके सही रूप पर आक्षेप लगता रहा।

डॉ० ग्रियर्सन के बाद कांगड़ी बोलियों पर, अन्य पहाड़ी बोलियों की तरह वैज्ञानिक अध्ययन तो नहीं हो सका परन्तु बाद की घटनाओं द्वारा यह बात स्पष्ट हो गई है कि कांगड़ी बोली डोगरी के माध्यम से पंजाबी की उप बोली नहीं है। इन घटनाओं में से सबसे महत्वपूर्ण पंजाब सीमा-कमीशन की रिपोर्ट और उसके आधार पर भूतपूर्व पंजाब राज्य का विभाजन है। पंजाब में कई वर्षों के भाषायी संघर्ष के परिणाम-स्वरूप जब भारत सरकार ने 23 अप्रैल, 1966 को पंजाब सीमा-कमीशन नियुक्त किया तो उसका एकमात्र उद्देश्य यह था, कि "वर्तमान पंजाब राज्य के हिन्दी और पंजाबी क्षेत्रों की प्रचलित सीमा का निरीक्षण किया जाए और यह सिफारिश की जाए कि प्रस्तावित पंजाब और हरियाणा राज्यों में भाषात्मक सादृश्य प्राप्त करने के लिए क्या प्रबन्ध जरूरी है।"[1] इससे भी पहले सरदार हुकमसिंह की अध्यक्षता में गठित संसदीय समिति ने यह सिफारिश की थी, कि—

× × पंजाब क्षेत्रीय समिति आदेश, 1957 की प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट पंजाबी क्षेत्र एकभाषी पंजाबी राज्य बनना चाहिए। पंजाब के हिन्दी क्षेत्र में सम्मिलित पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों को, जो हिमाचल प्रदेश के साथ लगते हैं और **जिनका उस टेरेटरी के साथ भाषात्मक और सांस्कृतिक साम्य है, हिमाचल प्रदेश के साथ मिलाना चाहिए।** पंजाब के शेष हिन्दी भाषी क्षेत्र को हरियाणा राज्य के नाम से अलग इकाई के रूप में गठित करना चाहिए।[2]

1 Punjab Boundary Commission Report (presented on the 31st May, 1966), p 2

2 Ibid, p 1 (which runs as on foot-note p 98)

स्पष्टतया, पंजाब सीमा-कमीशन की नियुक्ति का प्रस्ताव निर्दिष्ट सिद्धान्तों पर आधारित था, और कमीशन का मुख्य उद्देश्य यह सिफारिश करना था कि—

(i) भाषायी सजातीयता को स्थापित करने के लिए वर्तमान राज्य के हिन्दी और पंजाबी क्षेत्रों की वर्तमान सीमाओं को निर्धारित किया जाए,

(ii) वर्तमान राज्य के उन पहाड़ी क्षेत्रों की सीमाएं निर्दिष्ट की जाएं जो हिमाचल प्रदेश के साथ लगते हैं तथा उसके साथ सांस्कृतिक तथा भाषात्मक साम्य रखते हैं।[1]

भूतपूर्व पंजाब का विभाजन मूल रूप में भाषायी दृष्टि पर हुआ, और अन्य बातों के साथ-साथ, कमीशन के सामने मुख्यतः 1961 की जनगणना के आंकड़े मूल आधार थे। परन्तु 1961 की जनगणना के पंजाब के भाषा सम्बन्धी आंकड़े एक लम्बे समय से चल रहे भाषायी संघर्ष के कारण पूर्णतः दूषित थे। मूल रूप में यह पंजाबी और हिन्दी के बीच संघर्ष था, परन्तु इसका सीधा प्रभाव पहाड़ी भाषा पर पड़ा। दोनों भाषाओं के अनुयायी 1961 की जनगणना पर अपना विस्तार क्षेत्र दिखाने के उद्देश्य से अधिक से अधिक आंकड़े प्राप्त करने में प्रयत्नशील थे और इस प्रकार भाषा से सम्बन्धित जो चित्र प्रस्तुत हुआ 'वह न केवल भ्रामक था, बल्कि असत्य था और पंजाब की राजनीति के कारण अपने हित में इसे ऐसा रूप दिया गया था।[2] परन्तु, जैसी भी स्थिति रही हो, कमीशन ने अन्ततः यह सिफारिश की, कि—

(i) शिमला, कुल्लू, कांगड़ा, लाहुल-स्पिति जिले,

(ii) नालागढ़, अम्ब और ऊना विकास खण्ड (गिरगांव, सलोरा, भभौर और कनेरा गांवों तथा तहसील ऊना से बोगरी गांव को छोड़कर),

(iii) तहसील नालागढ़ (जिला अम्बाला)

(iv) चम्बा जिला के डलहौजी, बलून तथा बकलोह क्षेत्र'''

हिमाचल प्रदेश के साथ मिलाए जाएं।[3] कमीशन की सिफारिश के अनुसार

"The Punjabi Region specified in the First Schedule to the Punjab Regional Committee Order, 1957, should form a unilingual Punjabi State, the hill areas of the Punjab included in the Hindi Region of the Punjab which are contiguous to Himachal Pradesh and have linguistic and cultural affinity with that territory should be merged with Himachal Pradesh. The remaining areas of the Hindi speaking region of the Punjab should be formed as a separate unit called the Haryana State."

1. Ibid, page 9—
(i) adjustment of the existing boundary of the Hindi and Punjabi Regions of the present state to secure linguistic homogeneity
(ii) to indicate boundaries of the hill areas of the present state which are contiguous to Himachal Pradesh and have cultural and linguistic affinities

2. डा० वाई० एस० परमार, हिमाचल प्रदेश, क्षेत्र तथा भाषा पृ० 7.

3. पंजाब सीमा कमीशन, पृ० 48.

जो क्षेत्र हिमाचल प्रदेश मे मिला दिए गए और उनके स्थानान्तरण के परिणाम-स्वरूप हिमाचल प्रदेश का जो पूर्ण राज्य बना वह लगभग ठीक वही क्षेत्र है जो 1891 की जनगणना मे पहाड़ी भाषी क्षेत्र दिखाया गया है।[1] उस समय भी सिरमौर से लगते क्षेत्र से लेकर चम्बा के साथ लगते इलाकों तक पहाड़ी भाषा स्थापित हुई थी और तब भी नालागढ, हमीरपुर, देहरा, नूरपूर, चम्बा से लगते सीमावर्ती क्षेत्र पहाड़ी भाषी थे।

कांगड़ी-कहलूरी पंजाबी की बोलियां हैं अथवा पहाड़ी की

ऊपर कांगडी बोली के बारे मे लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया की वास्तविक स्थिति वर्णित की गई है, क्योकि इसी को आधार मान कर कांगडी के स्वरूप के बारे मे भ्रान्तिया उत्पन्न होती रही हैं। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि डॉ० ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के लिए उपयुक्त मूल भाषा बोलने वालो की असल भाषा का आदर्श रूप प्रस्तुत नही हुआ है, और जो कांगडा से बाहर के अनुवादक ने कांगडी का प्रारूप दिया उसके आधार पर डॉ० ग्रियर्सन ने ज़िला के मुख्यालय की बोली को डोगरी की उप-बोली कहा, और डोगरी को वे पहले ही पजाबी की बोली मान चुके थे। अत यहां यह जरूरी है कि पहाड़ी की मुख्य विशेषताओ का उल्लेख किया जाए तथा उनका पडोसी भाषाओं के साथ-साथ कांगडी बोली से सम्बन्ध का सकेत किया जाए।

पहाड़ी की विशेषताएं

उच्चारण—इस सदर्भ मे पहाडी की प्रमुख स्वर-ध्वनियो म मे पहली उल्लेखनीय ध्वनि 'एॅ' की है। इसका स्पष्ट स्वरूप एकारान्त शब्दो मे दृष्टव्य है। जैसे—नेडें, झेडें, गभें, कट्ठें, परमात्में, लें (ले), यहां यो लगता है जैसे 'ए' की ध्वनि गिर रही हो, अर्थात् यह दीर्घ 'ए' की अपेक्षा अधिक विवृत है और कुछ शिथिल भी है। शब्द के बीच मे भी इसके पर्याप्त उदाहरण हैं, जैसे—भेंण(बहिन), छेॅल छेॅल(सुन्दर),सेॅहर (शहर), बेॅहकणा, रेॅहदा, बेॅहणा, केॅ (क्यो), नेॅणा (नयन)। अब, एॅ पहाडी भाषा की मूल ध्वनियो मे से एक है। डॉ० ग्रियर्सन ने पहाडी भाषा की हर बोली का वर्णन करते हुए लिखा है कि इन बोलियो मे लघु 'ए' की ध्वनि है जो 'met' मे 'e' की ध्वनि के समान है। पहाडी के सिवाय पडोस की किसी भाषा मे स्वतन्त्र 'एॅ' की ध्वनि नहीं है, भले ही 'ए' के विकार के रूप मे यह उच्चारण प्रचलित हो। पहाडी मे इस ध्वनि का इतना प्रभुत्व है कि इसे हर लेखक देवनागरी मे लिखते हुए कई तरह से लिखते है, जैसे कागडी मे ही 'सेॅ' (वह) को सँ, स , सैंह्, सह, स्है, सह्, से, सेह्, ऐं (है) का ए, ऐ, एह्, कनें (साथ) को कने या कनै, आदि रूप से लिखते हैं। पहाडी भाषा की सभी

1 Census of India, 1891, Volume XIX p 201 (as reproduced by Dr Y S Parmar in his book 'Himachal Pradesh Area and Language, Annexture C

बोलियों मे कर्ता का विकारी रूप जो मूलत तृतीया का विभक्ति चिह्न है, भी यही ध्वनि है, जैसे—गावें, मुण्डुएँ, कुडीएँ आदि।

पहाडी का एक और विशिष्ट स्वर 'ओं' है, जिसके बारे मे डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है कि पहाडी बोलियो म 'अ' को 'ओं' म बदलने की प्रवृत्ति है। उन्हे यह स्वर मण्डियाली मे नही मिला था, और इसलिए कागडी मे भी न मिला। सम्भवत वे इसे प्रवृत्ति रूप मे ही देखना चाहते थे। परन्तु वास्तव मे यह पहाडी मे केवल प्रवृत्ति ही नहीं स्वतन्त्र स्वर भी है, जो कागडी चम्बयाली, मण्डियाली सब मे विद्यमान है जैसे कागडी मे ही होंलें-होंलें, नमोंडी कोंला तोंला-तोंला आदि।

यदि कागडी मे प्रवृत्ति रूप मे ही देखना हो, तब भी देखा जा सकता है—ओंणा < आना, पोंणा < पडना, कोंडा < कडवा, वोंहणा < वहणा < बैठना, परोंणा < पर + आगत, नहांणा < नहाना, होंआ < हवा, आदि।

यह हिन्दी के अर्धविवृत दीर्घ स्वर 'औ' से कुछ अधिक विवृत है। जिह्वा का भी उतना पिछला भाग नही उठता जितना 'औ' के लिए उठता है, बल्कि कुछ आगे केन्द्र की ओर आकर्षित रहता है। इसका मुख्य उदाहरण महासुई म मिलता है जहाँ शब्द का अन्तिम आ' स्वर 'ओं' मे बदलता है जैसे घोडों, खाणों, छोटनों आदि।

कागडी बोली मे शब्दो के अन्त मे 'उँ' की ध्वनि उल्लेखनीय है, जैसे जाह्लुँ ताह्लुँ, काह्लुँ, माण्डुँ, दानुँ, पेउँ, सेउँ, छेलुँ आदि। अन्य पहाडी बोलियो म 'उँ' का यह रूप आदि और मध्य म भी आता है परन्तु शब्दो के अन्त मे इसका भेद स्पष्ट व्यक्त होता है जैसे लडखडा या फुमफुमा रहा हो। यह न उ है न ऊ, बल्कि कुछ दोनो के बीच की सी स्थिति लगती है। यही कारण है कि आजकल लेखक ऐसे 'उँ' को कभी 'उ' म और कभी 'ऊ' मे लिखते हैं। ऐसा 'उँ' न पजाबी मे देखने को मिलता है न हिन्दी मे। इसमे होंठ का गोलाकार अशत शिथिल रहता है। पूर्ण सवृत न होकर अर्धसवृत के निकट है। यह पहाडी बोलियो का सामान्य गुण है, इसीलिए सम्भवत डॉ० ग्रियर्सन के इस कथन मे सार्थकता लगती है कि पहाडी-भाषियो म 'उ' और 'ऊ' के बीच भेद नही है। वस्तुत भेद होते हुए भी वर्तमान देवनागरी मे इसे लिखित रूप देना कठिन है।

जहाँ तक व्यंजनों का सम्बन्ध है, कांगडी बोली की समस्त व्यजन ध्वनियाँ हिन्दी और पजाबी या डोगरी की अपेक्षा नितान्त पहाडी ध्वनियो के समरूप है। तालव्य च-वर्गीय ध्वनियो के साथ-साथ वर्त्स्य च-वर्गीय ध्वनियो का प्रभाव निस्सन्देह ज्यो-ज्यो पहाडी क्षेत्र के भीतरी भाग मे बाहर की ओर चलते हैं, कम होता जाता है, फिर भी तालव्य चवर्ग ध्वनियो के साथ वर्त्स्य चवर्गीय ध्वनियाँ समस्त क्षेत्र मे प्रचलित है। जहाँ ये सिरमौरी, महासुई और कुलुई मे स्वतन्त्र ध्वनिया है कांगडी के मूल क्षेत्र मे केवल सध्वनियाँ रह गई है, परन्तु उनका अस्तित्व केवल अन्तिम सीमावर्ती क्षेत्रो मे ही समाप्त हुआ है।

इसी तरह कांगडी के समस्त क्षेत्र मे तालव्य ल और मूर्धन्य ल बिलकुल

अलग-अलग स्वतन्त्र ध्वनियो के रूप मे विद्यमान है। हिन्दी, पजाबी और डोगरी[1] मे ल केवल ल के उच्चारण-विकार के रूप मे है, परन्तु कांगडी और कहलूरी म अन्य पहाडी बोलियों की तरह ये अलग-अलग ध्वनियाँ है, विकार का कारण नहीं—गल (गला) परन्तु गल (गल-बात), काली (काली माता) परन्तु काली (काले रग की) आदि।

पहाडी भाषा मे 'न' का उच्चारण हिन्दी या पजाबी मे बिलकुल भिन्न है।[2] एक लेखक सगोष्ठी मे कागडी के 'बुन्ह' (नीचे) शब्द को बुन, बु न, बुह्‌न, बूण, बु ण, बुण्ह, बुन्ह आदि कई रूपो से लिखने पर भी लेखको और श्रोताओ को सताप न हुआ। कारण स्पष्ट था। हिन्दी मे देवनागरी का 'न' दन्त्य वर्ग के परिवार मे होते हुए भी दन्त्य नही है। 'तथा' उच्चरित करते हुए जिस स्थान मे जिह्वा का अग्रभाग 'त' और 'थ' के लिए दाँतो से स्पर्श करता है, उसी स्थान से 'तना' कहते हुए 'न' के लिए जिह्वा नहीं टकराती। 'त' का उच्चारण करके जिह्वा का अग्र भाग ऊपर मूर्धा से कुछ नीचे टकराता है। परन्तु पहाडी मे 'न' का उच्चारण स्थान बिलकुल दन्त्य हैं अर्थात वही स्थान है जो त, थ, द, ध का है। सभवत वैदिक काल मे तवर्ग का ठीक यही स्थान था जो आजकल पहाडी भाषा के तवर्ग का है और इस मे कहलूरी और कांगडी बोली भी शतश शामिल है। 1

पहाडी भाषा की ध्वनि की एक और विशेषता, जिसका कांगडी मे विशिष्ट स्थान है, **अनुनासिक, अन्तस्थ तथा ऊष्म व्यंजनों के महाप्राणत्व के महत्त्व** की है। यो तो 'ह' पहाडी बोलियो मे कई रूपो मे उपस्थित है परन्तु ण्, न्, म्, य्, र्, ल्, ल तथा म् के साथ 'ह' का सयोग पहाडी भाषा की ध्वनियो को अन्य भाषाओ मे बिलकुल भिन्न करता है। समस्त पहाडी भाषा क्षेत्र मे इन ध्वनियो का समान रूप से प्रचलन है—माण्हु<मानव, कुण्ही<कोना, न्हीठा<निकृष्ठ (नीचे), तिन्हावे (उनको), बुन्ह (नीचे), म्हारा म्हाचल, म्हूरत<मुहरत, वर्‌ह<वर्ष, र्‌हान<हैरान, पर्‌हा (पार दूर), सर्‌हाणा<सिरहाना, कुल्ह<कुल्या (छोटी नहर), टल्हा (कपडा), आल्हणा (घोसला) परवाल्हे<ऊपरले, स्हान<एहसान, स्हाब<हिसाब।

गैर पहाडी-भाषियों को हैरानी न होगी, यदि उन्हे 'य्' के साथ भी महाप्राणत्व रूप देखने और सुनने मे मिलेगा, परन्तु पहाडी मे 'ह्' का यह विशेष गुण है, जिसे कांगडी मे भी देखा जा सकता है—सिय्हाणा<सह+ज्ञान, नियहाणा<नहलाना, रिय्हाणा<दिखाना, दोय्हो<दोनो आदि। इनमे से 'ण्ह' को छोडकर शेष सभी महाप्राणरूप शब्दो के आदि, मध्य और अन्त मे आते हैं। ऐसे रूप प्राय दो स्वरो के बीच ही होते हैं, तथा जैसा कि ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है, प्राय. ऐसे रूप पूर्व वर्ण के ह्रास के कारण उसकी पूर्ति के अनुरूप आगामी वर्ण मे महाप्राणत्व आ जाता है, अकेला<केल्हा>कल्हा, अन्धेरा>न्हेरा, हमारा>म्हारा। इसी तरह अन्तिम और मध्यवर्ण के लोप के कारण भी ऐसा परिवर्तन आता है—कुल्या>कुल्ह, टीला>टील्ह, कुनाय>

1. All India Dogri Writers Conference Souvenir (held on Nov. 29, Dec 1, 1970) p not given, in the article 'डोगरी भाषा परिवार'।

2 उच्चारण सभी व्यजन ध्वनियो के विस्तार के लिए देखें आगे 'कुलुई' भाग म व्यजन-ध्वनियां।

बोल्ह आदि। इस प्रकार वर्णलोप के कारण हकार अथवा महाप्राणत्व का आगमन पहाड़ी भाषा की मुख्य विशेषता है। स्पष्ट है कि हिन्दी, पजाबी आदि भारतीय-आर्य भाषाओ के मूल महाप्राण स्पर्श व्यजनो ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ के अतिरिक्त पहाड़ी भाषा मे ण्ह, न्ह, म्ह, ड़्ह, र्ह, ल्ह, व्ह, स्ह अन्य महाप्राण अक्षर भी हैं।

महाप्राणत्व से सम्बन्धित बहुत सी विशेषताए पहाड़ी भाषा मे उल्लेखनीय हैं। जैसा कि पहाड़ी भाषा के उद्भव के सम्बन्ध मे पहाड़ी तथा दरद-पैशाची की तुलना करते समय स्पष्ट कर दिया गया है पहाड़ी भाषा के महाप्राण व्यजनो मे महाप्राणत्व का गुरुत्व पड़ोस की भाषाओ से बहुत अधिक है। अघोष महाप्राण व्यजना (ख, छ, ठ, थ, फ) की ध्वनि सर्वदा ठीक वैसी नही है जैसी हिन्दी, पजाबी अथवा डोगरी या कश्मीरी मे है। बल्कि यदि किसी शब्द म इन अक्षरो के साथ स्वर बलशाली हो तो इन मे एक और 'ह्' का समावेश होता है। इन सब मे, इस तरह, और अधिक महाप्राणत्व की प्रवृत्ति रहती है। स्वराघात के कारण 'ख' का उच्चारण 'खुह्' हो जाता है। और यह प्रवृत्ति आम बोल-चाल तक सीमित नही है, लिखित रूप म भी लेखको की रचना से इस *बात की पुष्टि मिलती है। उदाहरणार्थ 'खेल' को 'खेहल'[1] (असल मे खेह्‌ल), खड़ना को* खह्‌ड़णा (खड़ा होना) *'छिज' को 'छिहज', 'खादा' (खाया) को 'खाहदा', 'फिरी' (फिर) को 'फिहरी'[2] 'ठाका' को 'ठहाका', 'थाना' के लिए 'ठहाणा', 'थाली' के लिए 'थहाली'* आदि। ये सभी बागड़ी और कहलूरी के उदाहरण हैं जो पहाड़ी की सभी बोलियो मे इसी बल से प्रयुक्त है, बल्कि प्रवृत्ति इससे भी प्रबल है, जैसे *हिन्दी 'फिर' का० फिहरी* कुलुई मे आगे चलकर 'भिरी' बन जाता है। अघोष महाप्राण व्यजनो का यह दोहरा महाप्राणत्व पहाड़ी भाषा की एक स्वतन्त्र और अलग विशेषता है। भले ही इस तरह के दोहरे महाप्राणत्व को लिखित रूप न दिया जाए, परन्तु उच्चारण मे यह सदा वर्तमान रहता है।

अब **सघोष महाप्राण** (घ, झ, ढ, ध, भ) की बात लीजिए। पजाबी और डोगरी[3] मे इन सब सघोष महाप्राण व्यजनो की ध्वनि अपने वर्ग के अघोष अल्पप्राण (क, च, ट, त, प) की ओर झुकती है। वहाँ 'घर' प्राय 'क्हर' होता है। इसी तरह झडा > च्हडा, ढोणा > ट्होणा, धागा > त्हागा आदि। पहाड़ी भाषा की अधिकतर बोलियो मे सघोष महाप्राण व्यजनो की क्षमता पूर्ण रूप मे प्रचलित है। वहा इनके महाप्राणत्व मे कोई अन्तर नही। कांगड़ी, कहलूरी, सिरमौरी सीमावर्ती बोलियो मे इन ध्वनियो मे कुछ *शिथिलता आती है परन्तु यह परिवर्तन पजाबी डोगरी के अनुकूल नही है। जहा पजाबी डोगरी मे सघोष महाप्राण व्यजन अघोष अल्पप्राण की ओर झुकते हैं (जैसे घोड़ा से क्होड़ा, ढोल से ट्होल) वहाँ पहाड़ी की इन बोलिया मे, इसके विपरीत, सघोष महाप्राण*

---

1 दे० काव्यधारा (भाग 2), पृ० 56

2 दे० हिम भारती, जून, 1973 अक पृ० 79

3 All India Dogri Writers Conference, New Delhi (held on Nov. 29 to Dec 1, 1970 p not given, Article डोगरी भाषा परिवार, तथा श्री बसीलाल गुप्ता डोगरी भाषा और व्याकरण, पृ० 40

व्यजन सघाप अल्पप्राण की ओर प्रवृत्त होते है, जैसे 'घर' शब्द 'वहर' न होकर 'ग्हर' होता है 'झगडा' शब्द 'च्हगडा' न होकर 'जह्गडा', 'धोती' शब्द 'त्होती' न होकर 'द्होती',[1] 'भगत' शब्द 'प्हगत' न होकर 'ब्हगत' आदि । यहा यह दृष्टव्य है कि पहाडी में पजाबी-डोगरी की तरह घोषत्व को क्षति नही पहुँचती बल्कि प्राणत्व में परिवर्तन होता है। पजाबी-डोगरी के क्ह, च्ह आदि की बजाय पहाडी में ग्ह, ज्ह आदि का परिवर्तन डॉ० ग्रियर्सन ने भी व्यक्त किया है।[2]

महाप्राणत्व से सम्बन्धित पहाडी भाषा की विशेषता यही समाप्त नही होती। इसका एक और गुण भी है। ऊपर कहा गया है कि पूर्व, अन्त या मध्य के वर्णलोप के कारण अनुनासिक, अन्तस्थ तथा ऊष्म व्यजन भी महाप्राणत्व-युक्त हो जाते हैं। यह प्रवृत्ति और जोर पकडने पर जब दो स्वरो के बीच मूल महाप्राण स्पर्श व्यजन आ जाए तो वे कई बार हकार अथवा अन्य महाप्राण व्यजन द्वारा प्रतिस्थापित हो जाते है—

मधुकर >मधुक >माहूँ
मुखाकार >मुखार >मुहार
बन्धन >बांधना >बन्हणा
नख >नख >नँह
सौगन्ध >सौंह
नि + भाल >निभाल >निहाल(ना)
अन्धेर >न्हेर

इस प्रकार कई तरह से हकार या महाप्राणत्व के प्रति इस कदर तीव्र प्रवृति तथा मोह के कारण पहाडी भाषी व्यक्ति अपने उच्चारण से तुरन्त पहचाना जाता है।

ध्वनि विस्थापन की यह क्रमिक प्रक्रिया पहाडी भाषा मे बडी मनोरजक है। पहले लिखा जा चुका है कि एक ओर से स्वर के लोप के कारण अल्पप्राण व्यजनो (ण्, न्, म्, य्, र्, ल्, ल़्) के बाद श्वास का झोका आने से उनमे महाप्राणत्व (ण्ह, न्ह, म्ह, य्ह र्ह, ल्ह, ल़्ह) आ जाता है। परन्तु इनमे एक दूसरा परिवर्तन भी आता है। यदि इनके बाद की बजाय इनसे पूर्व ऐसा श्वास का झोका आ जाए तो उनकी ध्वनि स्वरयन्त्र मुखी (glottalized) हो जाती है। स्वरयन्त्रमुखी के मुख्य उच्चारण ण्, न्, ल्, ल़् से पूर्व मिलते हैं, यद्यपि इसके उदाहरण उपर्युक्त अन्य व्यजनो से पहले भी मिलते हैं। कुलुई और महासुई बोलियो मे यह प्रवृति बडी व्यापक है, परन्तु कांगडी और दूसरी बोलियो मे भी यह विशेषता उल्लेखनीय है। स्वरयन्त्रमुखी ध्वनि एक प्रबल स्वर और ण्, न्, ल् और ल़् के बीच मे स्पष्ट रूप से श्रव्य है, जब इन्ही वर्णों के महाप्राणत्व रूप और स्वरयन्त्रमुखी ध्वनियो मे स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है, यह ध्वनि सस्कृत की विसर्ग ध्वनि से बहुत मिलती है—

सर्हाणा (सिरहाना)	सरा णा (सराहना)
आण (ले आ)	आ ण (बिच्छू बूटी, ओले)

[1] शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश, राज्य भाषा सस्थान द्वारा प्रकाशित शोधपत्रावली पृ० 59, 60

[2] Linguistic Survey of India, Vol IX, Part IV, p 377.

वाणा (चाल)	वा णा (जोतना)
काल (अकाल)	का ल (जल्दी, करनाल)
शाणा (जदा, ताला)	शा णा (रहना)
सोन्ह (साझ)	सो न (सकेत)

उच्चारण के क्रम मे श्वास की गति मे ऐसा अवरोध क्षणिक होता है। हिमभारती त्रैमासिक पत्रिका के जून, 1971 से सितम्बर, 1972 तक के अको में क्रमिक रूप से प्रकाशित कांगडी-कहलूरी बोली के "गूगा काव्य" मे इस उच्चारण के अनेक दृष्टान्त प्राप्य हैं, जिन्हे हलन्त् 'ह्' से या विसर्गो से लिखा गया है, जैसे—गु नणे > गूँधने, दु इयाँ > दोनो, बै णी > बहिन, बा मण > ब्राह्मण, का्ह् णी > कहना आदि। वहाँ उपर्युक्त वर्णो के अतिरिक्त अन्य वर्णों से पहले भी स्वरयन्त्रमुखी उच्चारण के उदाहरण मिलते हैं। इनमे से प्राय. बहुत से शब्दो मे जहाँ 'ह्' के लोप के कारण ऐसी ध्वनि व्यक्त होती है, वहाँ 'ह्' स्वरयन्त्रमुखी स्पर्श (glottal stop) का रूप धारण करता है, जैसे—डु गी (गहरी), प्रो त > परोहित, प नाए > पहनाए से र > शहर, चा इदी > चाहइदी > चाहती आदि। यद्यपि यहाँ 'ह्' का स्पष्ट लोप है, परन्तु इसे किसी तरह का महाप्राणत्व रूप नही कहा जा सकता। वास्तव मे सम्बन्धित वर्ण से पहले ध्वनि-तारत्व मे क्षणिक परिवर्तन आ जाता है, और यह परिवर्तन इतनी तेजी से होता है कि महाप्राणत्व ध्वनि सुनाई नही देती बल्कि एक अवरोध-सा होता है जो महाप्राण की तरह लगता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत कुछ शब्दो की व्युत्पत्ति बडी मनोरजक है, जैसे—

जिस+पल > जह्‌पल > जा लु (जब)
तिस+पल > तह्‌पल > ता लु (तब)
किस+पल > कह्‌पल > का लु (कब)

इसके उच्चारण की मुख्य विशेषता यह देखने मे आती है कि इसमे 'ह' जैसा महाप्राणत्व तो नही होता, परन्तु सघर्षत्व अधिक रहता है और वायु झटके से बाहर निकलती है।

वर्ण लोप का एक और मनोरजक नियम पहाडी भाषा की सभी बोलियो मे प्रचलित है। मूल रूप से यह श्रुति का विषय है। हिन्दी आदि कुछ भारतीय आर्य भाषाओ मे प्राय य् तथा व् ही श्रुतिपरक है। परन्तु पहाडी मे 'य्' और 'व्' के अतिरिक्त कुछ अन्य वर्ण भी हैं जो विशेष रूप से श्रुतिपरक हैं। इस सम्बन्ध मे आगे कुलुई का उल्लेख करते हुए विस्तार के साथ वर्णन किया जाएगा, और इस प्रवृत्ति के नियम को स्पष्ट कर दिया जाएगा। परन्तु यहाँ विशेषता के रूप मे उल्लेख करना जरूरी है। मूलत इस श्रेणी मे र्, ड, ल्, ल्, वर्ण आते हैं, जो विभिन्न स्थितियो मे लुप्त हो जाते हैं। कई स्थानो पर इनकी ध्वनियाँ इस कदर लुप्त हो जाती है कि सामान्यत बिलकुल सुनाई नही देती या ये ऊष्म अथवा स्वरो मे बदलते दिखाई देते हैं। इस सम्बन्ध मे शिमला (महासुई) के एक लोक गीत को प्रस्तुत करना ठीक रहेगा। यह गीत आकाशवाणी से भी प्रसारित होता रहा है —

हाय बोलो खूनिया परसरामा,

कुणी बोलो रगा तेरा शाऊ,
एकी बोलो भाईए कन्या शागी,
दूजे बोलो भाईए गाऊ,
एकी बोलो भाभी री मुरकी बीकी,
दूजी बोलो भाभी रा बाऊ,
एकी बोलो खेचे रे मटर बीके
दूजे बोलो खेचे रे आऊ॥

इस लोक गीत मे शब्द शाऊ, बाऊ और आऊ देखने योग्य हैं। मूल रूप मे यह शब्द क्रमश शालू (शाल), वालू और आलू हैं जो पहाडी मे शाल़, वाल़ और आल उच्चारण देते हैं, और 'ल' सबसे अधिक श्रुतिपरक है, अत ये रूप बने। परन्तु इन से पूर्व 'बोलो' मे 'ल' मूल रूप मे है क्योकि यहाँ 'ल' दन्त्य है, मूर्धन्य नही। पहले लिखा जा चुका है कि पहाडी म 'ल' और 'ल़' अलग-अलग स्वतन्त्र ध्वनियाँ है। 'ल' भी लुप्त होता है परन्तु किसी दूसरी स्थिति मे। इसके और कुछ अन्य वर्णों के लोप के बारे मे आगे कुलुई मे स्पष्ट किया गया है।

समस्त पहाडी के शब्द और व्याकरण रचना मे श्रुति के योगदान का विशेष महत्त्व है। हिन्दी भाषा का प्रेरणार्थक क्रिया का प्रत्यय 'ला' पहाडी मे केवल श्रुति के कारण लुप्त हुआ है—'सुलाना' प्रेरणार्थक क्रिया का पहाडी रूप (कांगडी और कहलूरी बोली सहित) 'सुआणा' है। 'ल' श्रुति के कारण 'अ' मे बदल गया है। इसी तरह घुलाना>घुआणा, पिलाना>पिआणा, खिलाना>खुआणा या खियाणा आदि। श्रुति का यह नियम कांगडी और कहलूरी मे भी समान रूप से विद्यमान है, अन्तर केवल इतना है कि वहाँ ल, ल की बजाय र्, म् के लोप अधिक व्यापक मिलते हैं, जैसे—तिनो>तिसजो (उसे), मोया>मरा, तकाल>त्रिकाल, चौंह पासे>चारो पासे आदि। कालेज और स्कूलो की पत्रिकाओ मे 'पहाडी अनुभाग' के छात्र-लेखको की रचनाओ मे इस तरह के कई उदाहरण देखे जा सकते हैं।[1] सम्बन्धित वर्ण मूल शब्द मे अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार लुप्त होते हैं। परन्तु मुख्यत ऐसी स्थिति मे इनका लोप सामान्य है जब एक ही उच्चारण स्थान के दो वर्ण साथ-साथ आ रहे हो। ऐसी स्थिति मे जिह्वा प्रथम वर्ण को उच्चरित करने के लिए अपना उच्चारण स्थान छूने के लिए उठती है, परन्तु उस तक पहुँचने से पहले ही अगला वर्ण ध्वनित करती है—पडना>पीडना>पौणा, खोडना (निकालना) खो ना, खिलाना>खुलाना मे 'ल' और 'न' दोनो दन्त्य होने पर प्रथम 'ल' श्रुत हो जाता है खुआणा आदि।

पहाडी भाषा के ध्वन्यात्मक आपरिवर्तन की एक और मुख्य विशेषता है जो मूल रूप मे श्रुति से मिलती है, परन्तु हम उसे ऊष्मीकरण कहेगे। इसम वर्णो का परिवर्तन प्रदेश के भीतरी भाग से बाहरी भाग की ओर बडे क्रमिक और नियमित रूप से प्रचलित है। भीतरी स अभिप्राय हिमालय का भीतरी भाग है, जहाँ मे आगे पहाडी

[1] द० राजकीय महाविद्यालय शिमला की पत्रिका हिम-रश्मि 1973-74, पृ० 47, 48 56. कुल्लू राजकीय कालेज पत्रिका देवधरा, 1972-73, पृ० 52-53।

भाषी क्षेत्र या बीहड जगलो से सम्बन्धित हैं या तिब्बती बर्मी भाषायी क्षेत्र से जुडा है। और, बाहरी से अभिप्राय मैदानो की ओर पजाबी, हिन्दी या डोगरी भाषाओ के सीमावर्ती क्षेत्र से है। कुछ व्यजन ऐसे है जो क्रमिक रूप से ऊष्म वर्णों की ओर झुकते है। इनमे प्रमुख हिन्दी 'ठ' है जो स्थान के साथ-साथ क्रमश 'श', 'स' और 'ह' मे बदल जाता है। उदाहरणार्थ हिन्दी शब्द 'बैठना' भीतरी क्षेत्र कुलुई-महासुई मे 'बेशणा' बनता है, मण्डी पालमपुर-कहलूरी के आस-पास 'बेसणा' और मैदानो के निकटवर्ती कांगडी मे 'बैहणा'। प्रवृत्ति को यो देखा जा सकता है—

हिन्दी	कुलुई, महासुई, सिरमौरी	मण्डियाली, बिलासपुरी, पालमपुरके निकट आदि कांगड़ी	सीमावर्ती कांगडी, चम्बयाली,
बैठना	बेशणा	बेसणा	बैहणा
पैठना	पेशणा	पेसणा	पैणा (पई गया)
रूठना	रुशणा	रुसणा	रुहणा
गौ+गूथ	गोशट्ट	गोसट्ट	गोहट्ट
नाखून (नख)	न्होश	न्होस	नैह
निकृष्ट	निशटा	निसटा	नीठा (न्हीठा)
स० नश्	न्हौशणा	न्हसणा	नहणा नौहणा
ऐसा	इश्शा	—	इह्या (इआ)
पौष	पोश	पोस	पोह
पीसना	पीशणा	पीसणा	पीहणा
पिसाना	पिशाणा	पिसाणा	पिहाणा
बरसना	बरशणा	बरसणा	बर णा
परोसना	परोशणा	परोसणा	परोहणा

उपर्युक्त क्षेत्र विभाजन, सम्भवत कई स्थितियो मे ठीक न होगा, और हो सकता है, कुछ शब्दो के बारे मे भ्रान्ति भी पैदा कर दे, क्योकि इस तरह का ध्वनि-परिवर्तन विभिन्न बोलियों मे प्रचलित है, और बल्कि कई बार एक ही बोली मे भी इस तरह का भेद है, और कई बार दो तरह की ध्वनिया समान रूप से प्रचलित है, जैसे कुलुई मे ही 'न्हौशणा' और 'नौहणा' (जाना) दोनो बिलकुल समान रूप से प्रचलित हैं। इसी तरह 'बेशणा' और 'बहणा' (बैठना), 'गोशट्ट' और 'गोहट्ट' साथ-साथ प्रयुक्त होते है। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि स्पर्श व्यजनो का ऊष्म व्यजनो मे बदलने की प्रवृत्ति पहाडी की मुख्य विशेषता है। और फिर ऊष्म वर्णों मे भी क्रमश परिवर्तन पहाडी का खास गुण है, और अन्तत 'ह' भी 'अ' या जिह्वामूलीय सघर्षी की ओर झुक जाता है, उसका महाप्राणत्व समाप्त सा हो जाता है और प्राय स्वर मे बदल जाता है। जैसे, किसी उच्चारण भेद के कारण गोहट्ट के लिए गो ट्ट, परोहणा के लिए परो णा, पीशणा>पीसणा>पीहणा>पी णा। पहाडी की यह प्रवृत्ति मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा की विशेषता है। इस समय भी श, ष को स तथा स को 'ह' मे बदलने की

प्रवृत्ति थी, जैसे—एषा>एसो>एहो।

पहाड़ी भाषा के स्वरूप पर विचार करते हुए कुछ वर्णों के लोप की ओर विशेष ध्यान की अपेक्षा की जाती है क्योंकि ध्वनियों के इस विकार के कारण शब्दों के रूप में कई बार असाधारण परिवर्तन देखने में आ सकता है—सं० कीदृश>सि० किस्सा> हि० कैसा>म० केहा>का० कदेहा या केहा, यादृश>सि० जिस्सा>म० जेस्सा>हि० जैसा>म० जेहा>का०, जेहा या जेया, हिं० ससुर> का०, म०, बि० सौहरा> महा०, कु० शौउरा>सि० शौरा आदि।

महाप्राण व्यंजनों का इस प्रकार क्रमश: लोप प्राकृतों की देन है। प्राकृतों में ही इस तरह के परिवर्तन होने आरम्भ हुए थे, परन्तु पहाड़ी भाषा में यह प्रवृत्ति बहुत व्यापक है, जैसे—संस्कृत सौभाग्य>सुभाग>म०, का० सुहाग>सि०, कु० म० > सुआग सं० गोधूम >प्रा० गोहू>का०, म० गेहू>कु०, सि०, म० गऊ, सं० बधिर> का० म० बहरा>कु० बेउरा।

ध्वनि परिवर्तन के क्षेत्र में पहाड़ी की एक और विशेषता कठोर वर्णों को कोमल बनाने की प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति को पहाड़ी के अन्य लेखकों ने भी अनुभव किया है।[1] हो सकता है कहीं-कहीं एकाध उदाहरण ऐसे मिल जाएं जहां कोमल वर्ण कठोर हुए, परन्तु यह पहाड़ी की प्रवृत्ति नहीं है। मूल विशेषता उसके कोमल अक्षरों की ओर झुकाव की है जैसे—बाप>बाब या बब, चम्पा (फूल)>चम्बा, दन्त>दन्द या दोंद, पाच>पज, काटा>काडा, वक्त > वगत, जीना>जींदा, भक्त>भगत।

इस दृष्टि से भी पहाड़ी भाषा पंजाबी और डोगरी से प्रवृत्ति में भिन्न है। पंजाबी और डोगरी में पूर्वकथित घोष महाप्राण (घ, झ, ढ, ध, भ) को अघोष अल्प-प्राण (क्ह, च्ह आदि) में परिवर्तन भी, वास्तव में, कोमल वर्णों को कठोर बनाने की प्रवृत्ति का ही कारण है। डोगरी में तो कई बार ऐसी स्थिति में 'ह' बिलकुल ही लुप्त हो जाता है, जैसे अध्ययन>तेअ्अन, ध्यान>तेआन, विचारधारा>विचारतारा आदि।[2] ऐसा परिवर्तन पहाड़ी में प्रचलित नहीं है। यह बात पहाड़ी का दरद पैशाची से तुलना करते हुए भी पहले ही स्पष्ट कर दी गई है। और जैसा कि पहले लिखा जा चुका है यह विशेषता पहाड़ी को अपनी जननी शौरसेनी से मिली है।

डॉ० ग्रियर्सन ने पहाड़ी भाषा में 'त' को 'च' और 'द' को 'ज' में बदलने की प्रवृत्ति का संकेत किया है, परन्तु उन्हें इसके लिए पर्याप्त उदाहरण नहीं मिले थे। पहाड़ी में उदाहरण तो क्या आम प्रवृत्ति इस प्रकार की प्रचलित है। यह गुण इसे शौरसेनी प्राकृत से मिला है, जिसके बारे में पहले ही वर्णन किया जा चुका है। यह प्रवृत्ति कांगड़ी, कहलूरी में भी समान रूप से प्रचलित है, जैसे—तृतीया से तीजा, द्वितीय से दूजा, सन्ध्या से सांझ, द्युति से जोती, मुद्रा से मुजरा।

इसके अतिरिक्त पहाड़ी की ध्वनि सम्बन्धी कुछ अन्य प्रवृत्तियां भी हैं, परन्तु

1. शिक्षा विभाग, राज्य भाषा संस्थान, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित 'शोध पत्रावली' पृ० 60, लेखक श्री रामदयाल नीरज।

2 पूर्व-उल्लिखित "All India Dogri Writers Conference, Souvenir"

उनके बारे में यहां अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं, क्योंकि ये प्राय सर्वविदित हैं। ऐसी प्रवृत्तियों में प्रथम 'य' का 'ज' में बदलना है, जैसे—यज्ञ>जग, यमराज>जमराज, यात्रा>जातरा, युद्ध>जुद्ध, या स्वराघात के कारण श्रुतिपरक हो जाता है—याद>आद, प्यार>पिआर, कियारी>किआरी। इसी तरह 'व' प्राय 'ब' या श्रुति में बदलता है—वश>बश, वक्त>बगत, वर>बर या बौर, इतवार>तुआर, सोमवार>सुआर, पवार>पतुआर आदि। पंजाबी म 'व' सुरक्षित है, परन्तु पहाड़ी में प्राय इसका लोप हो गया है। यह या ब' में बदलता है या श्रुति में। इसी तरह आदि स्वर का लोप[1] पहाड़ी की मुख्य प्रवृत्तियों में से है जैसे—अकाल>काल, अगार>गार (गारू), अदालत>दालत, अंगीठी>गीठी, इकट्ठा—कट्ठा, इनाम>नाम, एकादसी>कादसी, आदि। एवं, पूर्व वर्ण के लोप के कारण शब्द के रूप में परिवर्तन आता है, जैसे—उधार>धुआर, इशारा>स्यारा>सहारा, अमावस>उआस, अजवाइन>ज्वाणे आदि।

संज्ञा

अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तरह पहाड़ी भाषा में भी संज्ञा शब्द दो प्रातिपदिकों म पाए जाते हैं—(1) व्यंजनान्त प्रातिपदिक, और (2) स्वरान्त प्रातिपदिक। व्यंजनान्त प्रातिपदिक वे हैं जिनके अन्त म व्यंजन होता है। इनके बाद 'अ' भी रहता है जो सभी प्रत्ययों के पहले लुप्त हो जाता है। इस श्रेणी म संस्कृत के अकारान्त तत्सम संज्ञा शब्द तथा दुर्बल तद्भव संज्ञा शब्द आते है। स्वरांत वे प्रातिपदिक है जिन के अन्त में स्वर रहता है। इनमें अधिकतर आ, ई, उ, ऊ, ओं से अन्त होने वाले संज्ञा शब्द मिलते है। य सभी प्रातिपदिक पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों प्रकार के हैं उदाहरणार्थ—

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
गार, नाक, धान,	रात, कात, परात, चौकड,
लूण, नरक, पाथर,	सझ, धूड, ईंट, ऊन,
धागा, गूठा, कतीरा,	कथा, कन्या,
धोबी, तेली,	मुनी, छोकरी, कुआली, चिड़ी,
माण्हु, घाटु, हिऊ, खिनु, घिऊ,	मकोडी, तराकड़ी
दाड़ू, आलू थालू, उलू	सस् (शाशू)

पहाड़ी म नपुंसक लिंग नहीं है। पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग का भेद प्राय हिन्दी की तरह वैयाकरणिक है। इस दिशा में पहाड़ी भाषा हिन्दी और पंजाबी से अधिक भिन्न नहीं है। पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के प्रत्यय भी लगभग समान हैं—बन्दर बंदरी, कुक्कड़-कुक्कड़ी, घोड़ा घोड़ी, बेटा-बेटी, तेली तेलण, धोबी-धोबण (हिन्दी का 'इन' न होकर 'अण'), माली मालण, बोटी-बोटण, नाना नानी, दादा (या दादू)-दादी आदि।

1. दे० शिक्षा विभाग, राज्य भाषा संस्थान, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित "शौर्य पत्रावली" (भाग 2), लेखक श्री मनसाराम शर्मा अरुण पृ० 45

परन्तु जहाँ तक वचन का सम्बन्ध है, पहाडी भाषा पुन हिन्दी और पजाबी से भिन्नता लिए हुए है। कुछेक सीमावर्ती बोलियो को छोडकर शेष सभी बोलियो मे शब्दो के रूप, चाहे स्त्रीलिंग हों या पुल्लिग, एक वचन और बहुवचन दोनो मे एक समान रहते है।

हिन्दी मे आकारान्त पुल्लिग प्रातिपदिकों को छोडकर शेष सब प्रकार के पुल्लिग शब्द विशुद्ध बहुवचन रूप नहीं बनाते, उदाहरणार्थ एक लडका—दस लडके, एक बेटा—दो बेटे, परन्तु एक घर—दस घर, एक आदमी—दस आदमी, एक साधु—चार साधु। यहाँ तक हिन्दी और पहाडी मे कोई अन्तर नही। परन्तु हिन्दी मे हर प्रकार के एकवचन स्त्रीलिंग प्रातिपदिक का विशुद्ध बहुवचन म भिन्न रूप होता है, जैसे—एक रात—दस रातें, एक लडकी—दस लडकियाँ, एक माला—पाच मालाए आदि। परन्तु पहाडी की सीमावर्ती को छोडकर शेष बोलिया मे अकारान्त स्त्रीलिंग प्रातिपदिकों को छोडकर शेष सभी तरह के स्त्रीलिंग सज्ञा शब्द एकवचन और बहुवचन मे समान रहते हैं, जैसे—एक कताब—दस कताबा एक भेड—नौ भेडा, परन्तु एक छोहठी—चार छोहटी, एक शाशू—चार शाशू एक बेटी—दुई बेटी आदि।

वचन के सम्बन्ध म ही पहाडी भाषा की हिन्दी और पजाबी से भिन्न एक और विशेषता है। यहाँ भी सीमावर्ती बोलियों को छोडकर शेष बोलियो मे सज्ञा शब्दो के विकारी रूप एकवचन और बहुवचन मे एक समान रहते है। हिन्दी मे 'घोडा' शब्द का एकवचन मे विकारी रूप 'घोडे' बनता है, और बहुवचन मे 'घोडों', जसे घोडे को, परन्तु घोडों को। परन्तु पहाडी म 'घोडा' का विकारी रूप एकवचन मे 'घोडे' है और बहुवचन मे भी ठीक यही रूप 'घोडे' ही रहता है—यहा घोडे-खे' या 'घोडे-ले का अर्थ है घोडे को' और 'घोडो को' भी। इसी तरह हिन्दी मे एकवचन मे 'हाथी पर' और बहुवचन मे 'हाथियो पर'। परन्तु पहाडी मे दोनो तरह से एक ही रूप प्रचलित है। पहाडी म 'हाथी पांधे' का अर्थ 'हाथी पर' भी है और 'हाथियो पर' भी। शाशुए का अर्थ 'सास ने' या 'सासों ने' दोनो हो सकता है। भीतरी पहाडी की बोलियो मे वचन सम्बन्धी यह पृथक् विशिष्टता है।

पहाडी भाषा की अकारान्त पुल्लिग शब्दो की यह विशेषता देखने योग्य है कि जहाँ पजाबी और हिन्दी मे ये केवल बहुवचन मे ही विकारी रूप धारण करते है वहाँ पहाडी मे ये एकवचन मे भी विकार ग्रहण करते हैं जैसे हिन्दी और पजाबी मे 'हाथ' एकवचन म प्रत्यय जुडने पर हाथ ही रहता है, केवल बहुवचन म प्रत्यय स पहले रूप बदलता है—एक हाथ, दस हाथ, एक घर, बीस घर, परन्तु प्रत्यय जुडने पर एक हाथ पर, दस हाथो पर, एक घर मे दस घरो म। परन्तु पहाडी म व्यजनान्त पुल्लिग शब्द एकवचन मे भी प्रत्यय से पहले विकृत हो जाता है—घौरा पांधे<घर पर, हौथा दे< हाथ मे देशो रे वीर<देश के वीर, आदि।

कारक

पहाडी भाषा की सभी बोलियों के कारक रूपो मे मूलभूत समानताए हैं। कर्त्ता

कारक मे अन्य आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाओ की तरह विभक्ति रहित और सविभक्ति दोनो रूप प्रचलित हैं, और इस दृष्टि से पहाडी अन्य पडोसी भाषाओ से भिन्न नही। परन्तु कर्ताकारक के सविभक्ति रूप से ही इसके भिन्न स्वरूप के लक्षण दृष्टिगत होते हैं। कर्ता की विभक्ति 'एँ' है और यह जौनसारी, सिरमौरी, महासुई,कुलुई, मण्डियाली, काँगडी, चम्बयाली और हण्डूरी सब बोलियो मे समान रूप से प्रचलित है—बेटें रोटी खाई, बेटें गलाया, बेटें बोलेया, घोडें घाह खाओ, घोडें घाह खादेया आदि। यह देखने की बात है कि हिन्दी, पजाबी और डोगरी मे भी 'घोडा' का विकारी रूप 'घोडे' है और उसी मे कर्ता का प्रत्यय 'ने' लगता है। परन्तु पहाडी मे यहाँ दो भिन्नताए है। प्रथम यह कि पहाडी मे 'घोडा' से 'घोडें' बनने पर उसके साथ अलग 'ने' प्रत्यय नही लगता। 'घोडें' स्वय का अर्थ है 'घोडे ने'। इससे स्पष्ट है कि पहाडी मे 'घोडें' शब्द 'घोडा' का विकारी रूप नही है, बल्कि कर्ता का सविभक्ति रूप है। ऐसा रूप न हिन्दी मे है और न पजाबी मे। यह केवल पहाडी की अपनी विशेषता है, जो सभी बोलियों मे समान रूप से प्रचलित है—बेटे ने कहा (हिन्दी), बेटे ने किहा (पजाबी), बेटें गलाया (काँगडी, मण्डयाली, कहलूरी) बेटें बोलो-बोलू (कुलुई, महासुई, सिरमौरी)।

कर्ताकारक की दूसरी विशिष्टता यह है कि हिन्दी और पजाबी मे केवल आकारान्त सज्ञा शब्द ही एकवचन में विकारी रूप धारण करते हैं, शेष सभी प्रकार के शब्द 'ने' प्रत्यय से पहले बिना विकार के मूल रूप में रहते है, जैसे शेर ने, आदमी ने, बालक ने, साधु ने। यहाँ 'ने' से पूर्व शेर, आदमी, बालक, साधु मूल रूप में हैं इनमें 'लडका' से 'लडके ने' की तरह विकार नही आया। परन्तु पहाडी में यह विशिष्टता है कि प्रातिपदिक चाहे व्यजनान्त हो या स्वरान्त, कर्ताकारक में हिन्दी के 'ने' के अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए सविभक्ति रूप अवश्यमेव ऐंकारान्त हो जाएगे, और 'ने' जैसा प्रत्यय भी नही लगेगा—शेरें (शेर ने), आदमीएँ (आदमी ने), साधुएँ (साधु ने), शेर ने गीदड को खाया (हिन्दी), शेर ने गिद्दड नू खादा (पजाबी) शेरें गीदड खाई (पहाडी)। स्पष्ट है कि हर रूप के प्रातिपदिक के साथ 'एँ' के सयोग से एकवचन कर्ता का विभक्ति रूप बनता है। यह नियम पुल्लिग और स्त्रीलिंग दोनो तरह के शब्दो के लिए समान रूप से लागू होता है। बहुवचन की स्थिति में कुछ बोलियो मे 'एँ' अनुनासिक लगता है। इससे स्पष्ट है कि पहाडी में सस्कृत की प्रथमा विभक्ति सुरक्षित है, केवल विसर्ग ( ) एँ मे बदल गया है—राम <रामें, देश <देशें।

यही 'एँ' पहाडी भाषा में करणकारक का विभक्ति चिह्न भी है। मूल रूप मे 'एँ' सर्वथा करणकारक का ही विभक्ति प्रत्यय है। पहाडी भाषा में कर्तृकारक के 'ने' सम्बन्धी भाव को करण कारक द्वारा अभिव्यक्त करना एक विशेषता है, सम्भवत यह किन्नौर और लाहुल की तिब्बती भाषा के प्रभाव के कारण हो, यद्यपि यह नियम शौरसेनी अपभ्रश में भी रहा है। तिब्बती भाषा में कर्ताकारक को सर्वदा करणकारक द्वारा व्यक्त किया जाता है। वहाँ इसकी ध्वनि भी 'एँ' के समान ही है, यद्यपि लिखने में मूल शब्द में 'स' का सयोग होता है—'ड' का अर्थ तिब्बती मे 'मैं' है और 'ड़स' का 'मुझ द्वारा' यद्यपि इसे 'मैंने' ही समझा जाता है, और इसका उच्चारण 'ङस' न

होकर 'डे' होता है। करणकारक में भी प्रातिपदिको से 'एँ' के सयोग का कर्ताकारक की तरह ही नियम है। इस प्रकार पजाबी, हिन्दी और पहाडी के दोनो कारक रूपों को इस प्रकार देखा जा सकता है—

हिन्दी		पजाबी		पहाडी	
कर्ता	करण	कर्ता	करण	कर्ता	करण
घोडे ने	घोडे से	घोडे ने	घोडे नाल	घोडें	घोडें
हाथ ने	हाथ से	हत्थ ने	हत्थ नाल	हौथें	हौथें
माली ने	माली से	माली ने	माली नाल	मालीएँ	मालीएँ
किताब ने	किताब से	किताब ने	किताब नाल	किताबें	किताबें
लडकी ने	लडकी से	कुडी ने	कुडी नाल	मुन्नीएँ	मुन्नीएँ

पहाडी भाषा मे कर्ताकारक मे हिन्दी और पजाबी की तरह 'ने' जैसा कोई अलग प्रत्यय नही है। प्रातिपदिक का 'एँ' सहित विकारी रूप ही इसका एक मात्र रूप है। करणकारक की अभिव्यक्ति के कुछ अन्य प्रत्यय भी प्रचलित हैं। मूल रूप मे करणकारक का 'एँ' सहित विभक्ति रूप हैं, जैसे—कलमें लिख (कलम से लिख), तलुआरीएँ काट (तलवार से काट), रुमाले साफ कर (रुमाल से साफ कर) आदि। परन्तु अधिक स्पष्टता के लिए अन्य प्रत्यय भी प्रचलित हैं, जैसे—कन्ने < के सग, साए ∠ साथे ∠ साथ, लोई ∠ लोये ∠ लाइये < लगाकर, कौरी ∠ करके, सूँगे ∠ सगे ∠ सग, सौगी ∠ सग। ये प्रत्यय शौरसेनी अपभ्रश मे भी 'सो', 'सजो' और 'सहुँ' के रूप मे प्रचलित थे।

अन्य कारको की अभिव्यक्ति कारक प्रत्ययो द्वारा की जाती है। कर्मकारक तथा सम्प्रदान दोनो के समान प्रत्यय हैं। मण्डियाली, कांगडी, कहलूरी, चम्बयाली बोलियो में 'जो' और सिरमौरी, महासुई मे खें, 'लें' तथा कुलुई मे 'बें' कर्म-सम्प्रदान के प्रत्यय हैं। इनमें से कोई भी प्रत्यय हिन्दी, पजाबी या डोगरी मे प्रचलित नही है। हिन्दी 'को, के लिए', पजाबी 'नू' तथा डोगरी 'गी' का प्रयोग पहाडी मे प्रचलित नही है, सिवाय नूरपुर के छोटे मे सीमावर्ती हिस्से के जहां के 'को' का प्रयोग डोगरी के 'गी' से जोडा जा सकता है।

अपादान के मुख्य प्रत्यय 'ते' और 'दो' हैं। 'ते' सस्कृत की इसी विभक्ति के ( ) > त् का परिवर्तित रूप है। कांगडी और कहलूरी मे 'ते' का प्रयोग होता है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, पहाडी मे कठोर व्यजन को कोमल मे बदलने की प्रवृत्ति है, अत 'ते' से 'दे' और 'दे' से 'दो' की व्युत्पत्ति हुई है। 'दो' सिरमौरी, जौनसारी, बघाटी और महासुई मे अपादान का प्रत्यय है। 'दो' शौरसेनी प्राकृत की भी अपादान की ही विभक्ति थी। मण्डियाली मे 'ते' का महाप्राण रूप 'थे' प्रत्यय प्रचलित है।

सिवाय कांगडी बोली के किंचित सीमावर्ती क्षेत्र के, समस्त पहाडी भाषी क्षेत्र मे सम्बन्धकारक का प्रत्यय रा-रे-री है। कांगडी के सीमान्त क्षेत्र में पजाबी प्रत्यय 'दा' का प्रयोग होता है जो डोगरी मे भी प्रयुक्त होता है। हिन्दी में केवल सर्वनामो के

साथ रा-रे-री का प्रयोग होता है, सज्ञा के साथ का-के-की ही सम्बन्धकारक के प्रत्यय है। परन्तु पहाडी मे सज्ञा और सर्वनाम दोनो प्रकार के शब्दो के साथ रा-रे-री ही प्रयोग मे आते है।

अधिकरण कारक के 'मे' के अर्थ मे पहाडी भाषा का मुख्य परसर्ग 'मझ' है जो सामान्य ध्वनि परिवर्तन के साथ सभी बोलियो मे प्रयुक्त होता है—भरमौरी, चुराही, चम्बयाली मे 'मझ', मण्डियाली 'मझ', कॉंगडी तथा कहलूरी 'ज' या 'च', सिरमौरी-महासुई 'मॉंझ', बघाटी 'मांय' और कुलुई 'मोंझ'। 'मझ' की व्युत्पत्ति सस्कृत 'मध्य' मे हुई है। शौरसेनी अपभ्रश मे भी यह प्रत्यय 'मॉंझ' और 'महँ' रूप मे प्रयुक्त होता रहा है। पुरानी हिन्दी मे यह 'मॉंहि' रूप मे बदल चुका था। स्पष्टत एक ही शब्द 'मझ' इन विभिन्न रूपो मे सामान्य अधिकरण-प्रत्यय है।

'पर' के अर्थ मे अधिकरण के दो सर्वव्यापक पहाडी परसर्ग 'पांदे' और 'पर' है। चम्बयाली, कॉंगडी, मण्डियाली, कहलूरी मे 'पर', तथा जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, महासुई, कुलुई मे 'पॉंदे' (या पांधे) का प्रयोग होता है। 'पॉंद' शब्द सस्कृत 'उपान्त' से व्युत्पन्न हुआ है। कोमल वर्ण की प्रवृत्ति मे अन्तिम 'त' वर्ण 'द' मे बदल गया है, पूर्व स्वर के लोप के कारण भी ऐसा परिवर्तन स्वाभाविक है—उपांत > पांद > पादे। इस के अतिरिक्त पहाडी की सभी बोलियों मे अधिकरण के 'मे' के अर्थ मे सविभक्ति रूप भी प्रचलित है। प्रादिपदिक मे 'एं' के सयोग से इसकी अभिव्यक्ति होती है—घरें कुण ऐ/हा < घर मे कौन है ?

उपर्युक्त विवरण मे स्पष्ट है कि ध्वनि के क्षेत्र मे कॉंगडी और कहलूरी दोनो पूर्णत. पहाडी भाषा के सभी गुण समोये हुई हैं। कारको मे भी हिन्दी और पजाबी की प्रवृत्ति पहाडी मे नही पाई जाती। हिन्दी का केवल अधिकरण का 'पर' ही कहलूरी और कागडी मे प्रयुक्त होता है। पजाबी का सम्बन्धकारक का प्रत्यय 'दा' केवल एक मात्र प्रत्यय है जो कॉंगडी के पजाबी के साथ लगते कुछ सीमाक्षेत्र मे प्रचलित है, अन्यत्र सारे क्षेत्र तथा प्राय समस्त कहलूरी क्षेत्र मे पहाडी रा-रे री का प्रयोग होता है। 'दा' की तरह ही दूसरा प्रत्यय जिसका पजाबी से सम्बन्ध जोडा जा सकता है, अधिकरण का 'च' है, जिस पजाबी 'विच' का सक्षिप्त रूप माना जा सकता है, जो कॉंगडी और कहलूरी के सीमावर्ती क्षेत्र मे प्रयुक्त होता है। परन्तु इन क्षेत्रो मे पहाडी का 'मझ' प्रत्यय भी समान रूप से प्रचलित है। शेष किसी भी कारक की विभक्तियाँ या कारक परसर्ग हिन्दी और पजाबी के साथ नही मिलते। डोगरी के साथ अधिकरण के 'च', सीमाक्षेत्र के 'दा', तथा करणकारक के 'कन्ने' का मेल जोडा जा सकता है। शेष कोई कारक प्रत्यय डोगरी से नही मिलते इस सम्बन्ध मे यह ध्यान देने योग्य बात है कि कॉंगडी और कहलूरी मे 'कन्ने', 'दा', 'पर' तथा 'च' का प्रयोग आंशिक रूप मे होता है। मूल रूप मे जिन क्षेत्रो मे इनका प्रयोग है उन्ही मे पहाडी के प्रत्यय 'सौगी' 'रा-रे-री', 'मझ' का प्रयोग व्यापक रूप से प्रचलित है। कर्म-सम्प्रदान कारक के प्रत्यय 'जो' का प्रयोग पहाडी भाषा की किसी भी पडोसी भाषा अर्थात् हिन्दी, पजाबी, डोगरी या कश्मीरी में नही मिलता।

सर्वनाम

पहाड़ी भाषा में सर्वनाम के सम्बन्ध में भी कुछ असामान्य विशेषताएँ हैं। उत्तम पुरुष एकवचन कर्तृकारक रूप 'हउँ' है, जो किंचित स्थानीय ध्वनिभेद से सभी बोलियों में समान रूप से प्रचलित है, जौनसारी से लेकर चम्बा की अन्तिम सीमा और भद्रवाही तक 'हउँ' उत्तम पुरुष एकवचन का अविकारी रूप है। कहलूरी के समस्त क्षेत्र में 'हऊँ' इसी रूप में प्रचलित है,[1] और कांगड़ी के कुछ सीमावर्ती क्षेत्र को छोड़कर शेष बड़े भाग में इसका प्रयोग है।[2] 'हउ' शब्द अपभ्रंश में ठीक इसी रूप में प्रचलित था।[3] इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'अहम्' से हुई है—अहम > अहअ > हउँ। 'हउँ' का तिर्यक रूप 'मैं' है परन्तु इसका उच्चारण हिन्दी 'मैं' से किंचित भिन्न है और मूलत पहाड़ी के मुख्य ह्रस्व स्वर ऍ के संयोग से व्युत्पन्न है 'मेँ'। इस मेँ में विभिन्न कारक परसर्गों से मिलने से पूर्व विकृत होने की प्रवृत्ति है जो स्थानीय उच्चारण भेद के कारण भिन्न भिन्न है, जैसे—सिरमौरी, कहलूरी, काँगड़ी, चम्बयाली में 'मिं', बघाटी 'माँ,' कुलुई महासुई 'मूं'—मिखे, मिजो, मांघ, मूंवे आदि। उत्तम पुरुष बहुवचन में दो रूप प्रचलित हैं—'हामे' और 'आसे'। बोलियों के आधार पर इन्हें अलग-अलग करना कठिन है, क्योंकि एक ही बोली में भी दोनों रूप सम भन प्रचलित है, जैसे असांरा (आसे से), म्हारा (हाम से) सब बोलियों में एक साथ प्रचलित है। पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि श>स>ह बदलने की पहाड़ी की मुख्य विशेषता है। इसलिए 'असा' में 'अहा' रूप भी स्वाभाविक्त प्रचलित है—असारा>अहारा, असाजो> अहाजो, आदि। ये दोनों रूप संस्कृत 'अस्म' से व्युत्पन्न हुए हैं—अस्म> असा, अस्मे> अह्मे > हमे।

मध्यम-पुरुष एकवचन कर्तृकारक रूप 'तू' है। इसका तिर्यक रूप 'तेँ' है, जो 'मेँ' की तरह कारक-प्रत्यय लगने से पूर्व विभिन्न रूप में विकृत हो जाता है, जो बोली भेद के कारण नहीं वल्कि स्थान भेद के कारण है। एक ही बोली में दो दो रूप भी प्रचलित हैं जैसे कांगड़ी, कहलूरी, मण्डियाली, चम्बयाली में स्थान-स्थान पर तिजो, तिज्जो, तु जो सामान्यत प्रचलित है। सिरमौरी, बघाटी में तेंई या ताई-खे, कुलुई तौवें। 'तू' की व्युत्पत्ति संस्कृत 'त्वम्' से हुई है—त्वम्>तुहुँ> तू। 'तें' अपभ्रंश 'तइ' का विकृत रूप है जो संस्कृत 'त्वयि' से व्युत्पन्न हुआ है। मध्यम-पुरुष का बहुवचन 'तुम' और 'तुमे' दो रूप हैं। तुम से तुमे, तुहे, तुए तथा तुस से तुसे, तुसा, तुहाँ रूप ध्वनि-परिवर्तन की प्रवृत्ति के कारण स्थान-स्थान पर प्रचलित हैं। ये रूप संस्कृत युष्मद् से निकले हैं—युष्मद्>युष्मअ>तुष्मे> तुमे, युष्मद्>तुष्मअ>प्रा० तुम्हे>तुमे।

परन्तु सर्वनाम के क्षेत्र में सबसे मुख्य विशेषता अन्य अथवा प्रथम पुरुष के सम्बन्ध में है जो शब्द-भेद के कारण नहीं वल्कि मूलाधार के कारण है। कुछेक सीमा-

1 शिक्षा विभाग, राज्य भाषा संस्थान हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित शोध पत्रावली (भाग 2), पृ० 48, ले० श्री मनसाराम शर्मा अरुण।

2. वही, भाग 1 पृ० 101, ले० प्रो० चन्द्र वर्कर।

3 हेम चन्द्र शब्दानुशासन।

वर्ती बोलियों को छोड़कर पहाड़ी की शेष बोलियों में अन्य पुरुष के लिंग-भेद के कारण अलग-अलग प्रातिपदिक हैं। हिन्दी में 'वह' और इसका तिर्यक रूप 'उस' दोनों स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के लिए प्रयुक्त होते हैं। इनके लिंग-भेद के कारण अलग-अलग रूप नहीं हैं। इसी तरह 'यह' और 'इस' पुल्लिंग के लिए जिस रूप में प्रयुक्त होते हैं, स्त्रीलिंग के लिए भी उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं। परन्तु पहाड़ी की मुख्य बोलियों में इनके स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के लिए अलग-अलग प्रत्यय हैं, जैसे कुलुई में **एई शोहरू-बें** < **इस** लड़के को, परन्तु **एसा** शोहरी-बें < **इस** लड़की को, **तेइ** मरदा रा < **उस** मरद का, परन्तु **तैसा** बेटडी रा < उस स्त्री का आदि। पुरुषवाचक अन्य पुरुष और निश्चयवाचक के इस तरह पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के अलग-अलग रूपों की विशेषत मुख्यत. सिरमौरी,[1] बघाटी,[2] महासुई, कुलुई, चुराही, चम्बयाली, भटियाली(चम्बयाली),[3] कहलूरी,[4] बोलियों में पाई जाती है। यह भेद प्राय एकवचन मे ही स्पष्ट रहता है, बहुवचन मे स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के रूप समान रहते हैं, जैसे कहलूरी मे—तिस कने < उस (पुरुष) के साथ, तिसा कने < उस (स्त्री) के साथ, परन्तु बहुवचन मे 'तिन्हां कने' पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के लिए समान रूप से प्रयुक्त होता है। इसी तरह सिरमौरी में—तैसीखें < उस (पुरुष) को, सीओखे < उस (स्त्री) को, परन्तु तिन्होंखे < उनको (पुरुषों या स्त्रियों को)। अन्य सर्वनामों के रूपों मे समानता नीचे देखी जा सकती है।

हिन्दी	कांगड़ी	कहलूरी	चम्बयाली, मण्डियाली	सिरमौरी, बघाटी, महासुई, कुलुई
वह/उस	सें/तिस	सें/तिस	सें/तिस	सो,मे,सो/तिसी, तेई
उन/उन्हों	ते/तिन्हाँ	स्यो, ते/तिन्हाँ	स्यो/तिन्हाँ	ते, से/तिन्हो/तिन्हाँ
यह/इस	एँ/इस	एँ/इस	एँ/एस	ए, ई/एसी, एई
ये/इन्हो	एह/इन्हाँ	एओ/इन्हाँ	यो/इन्हाँ	ए, ई/इन्हो/ इन्हा
कोई	कोई/किसी, कुसी	कोई/किसी	कोई/किसी	कोई/कोमी
कुछ	किछ	किछ	किछ	किछ
क्या	क्या, की	क्या, की	की, क्या	का की
कौन/किस	कुण/कुस, किस	कुण/कुस, किस	कुण/कुस	कुण/कुणी
जो/जिस	जे/जिस	जे/जिस	जे/जिस	जो, जू/जिस जौस
सब	सभ	सभ	सभ	सेभ
आप	अप्पु	अप्पू	आपू	आपू

1. शिक्षा विभाग, राज्य भाषा संस्थान, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित "शोध पत्रावली" पृ० 63—64
2. वही, पृ० 84—85.
3. वही, भाग 2, पृ० 28
4. वही, भाग 2, पृ० 51, 84.

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर विभिन्न बोलियो मे प्रयुक्त रूपो म समानता लक्षित होती है वहाँ दूसरी ओर इनका सीधा सम्बन्ध सस्कृत सर्वनाम रूपो से जुडत है। इनमे से कुछ अपभ्रश के मूल रूप हैं।'स' और 'सी सस्कृत का 'स' है, और कुलुई का 'सो' स० स के विसर्ग के 'ओ' म बदलने से व्युत्पन्न हुआ है। 'सो' शब्द अपभ्रश मे ठीक इसी रूप म प्रयुक्त होता था। 'ते' सस्कृत का बहुवचन रूप है, जो प्राकृत और अपभ्रश मे भी इसी रूप म प्रयुक्त होता रहा है। 'तिस' मूलत प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के सम्बन्ध कारक का रूप 'तस्य' है, जिस ने विकारी रूप धारण करके परसर्गो से पूर्व का स्थान ग्रहण किया है—तस्य>तेस>तिस (ह्रस्वीकरण से)। इसी तरह पहाडी की सारी बोलियो मे प्रयुक्त 'ए' (यह) प्रा० भा० आ० भा० के इदम् से सम्बन्ध रखता है—इदम्>इद>एद>एह>ए। एस, एसी, इसके सम्बन्ध मे डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव का कथन है कि 'प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के कर्ता एक-वचन की 'एप'-प्रकृति मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा मे 'एस' हो गई। पुल्लिग मे 'एसो', स्त्रीलिंग मे 'एसा' तथा नपुसक मे एस' रूप निर्माण हुआ।[1] पहाडी भाषा की विभिन्न बोलियो मे 'यह' और 'वह' के पुल्लिग और स्त्रीलिंग रूप इस प्रकार हैं —

हिन्दी		सिरमौरी	बघाटी	कहलूरी	कुलुई	चम्बयाली
इस	पु०	एसी	एसी	इस	एई	इस
	स्त्री०	इओ	इओ	इसा	एसा	इसा
उस	पु०	तेसी	तेसी	तिस	तेई	उस
	स्त्री०	तिओ	तिओ	तिसा	तेसा	उसा

बहुवचन मे यह लिंग भेद नही रहता। वहाँ, दोनो लिंगो के लिए समान रूप रहते है—इन्हाँ और तिन्हाँ। डॉ० उदयनारायण तिवारी ने तिन्ह की व्युत्पत्ति सस्कृत तेषाम् से इस प्रकार बताई है—स० तेषा>ताना (आकारान्त पुल्लिग के षष्ठि विभक्ति-प्रत्यय ना के योग से)> म० भा० आ० ताणा—ताण>तिन्—तिन्ह (तिन्ह पर करण कारक बहुवचन तेभि >तेहि का भी प्रभाव है)।[2] इसी के समरूप स० एषाम् से पहाडी इन्हा की व्युत्पत्ति सिद्ध होती है।

पहाडी का 'जे' सस्कृत के 'यद्' सर्वनाम के कर्ताकारक के बहुवचन का रूप है, यथा—य>जो, ये>जे। सस्कृत के 'किम्' से पहाडी के प्रश्नवाचक सर्वनाम का निर्माण क+पुन के सयोग से 'कुण' रूप हुआ है। 'कोई' अनिश्चयवाचक सर्वनाम स० किम्+अपि के प्राकृत रूप 'कोइ' का पहाडी रूप है, और 'किछ' स० किम्+चित् से व्युत्पन्न हुआ है। अपभ्रश मे इसके दो रूप प्रचलित थे— कछु' और 'किछु'। स्वरव्यत्यय के कारण 'कछु' से हिन्दी 'कुछ' और 'किछु' से पहाडी 'किछ' की व्युत्पत्ति हुई है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का 'आत्मन्' शब्द मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा मे 'अत' और 'अप्प' दो रूपो म परिणत हुआ। अपभ्रश मे अधिकत अप्पा, अप्प, अप्पण अप्पणु, अप्पाण, अप्पउ रूपो का प्रयोग रहा है। पहाडी के 'अप्पु' का अपभ्रश

1. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव अपभ्रश भाषा का अध्ययन, पृ० 178
2. डॉ० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, पृ० 454

अप्पउ' से स्वरूप बना है। भीतरी पहाड़ी की कुछ बोलियों में मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण 'आपू' का रूप प्रयोग में आया है। संस्कृत 'सर्व' से मध्यकाल में 'सव्व' रूप बना। बघाटी बोली में यह सर्वनाम इसी रूप में प्रचलित है। अन्य बोलियों में सरलीकरण के प्रभाव से 'सभ' रूप बना है।

विशेषण

पहाड़ी में विशेषणों के रूप हिन्दी से अधिक भिन्न नहीं हैं—नोआ (नुआ), पराणा, खरा, बुरा, ओछा, बड़ा, काला, लाल, नीला बांका, उलटा, सीधा गुणवाचक विशेषण समान रूप से प्रचलित हैं। संख्यावाचक सर्वनामों की स्थिति में सामान्य स्थानीय ध्वनि-परिवर्तनों के अतिरिक्त हिन्दी रूप ही प्रचलित है। केवल 'तीन' एक ऐसी संख्या है जिसके विभिन्न बोलियों में अधिक भेद प्रकट होता है, सिरमौरी, महासुई में तीन के लिए चोन शब्द प्रयुक्त होता है, क्योंकि यहाँ सं० 'त्र' प्रायः 'च' में बदलता है, जैसे 'क्षेत्र' से 'खेच'। इस आधार पर त्रीणि > चिणी > चोण > चोन। कुलुई, मण्डियाली, चम्बयाली, गादि, चुराही, भद्रवाही में 'तीन' का रूप त्राई या त्रै बना है—त्रीणि > त्रीई > त्राई > त्रै। शेष बोलियों में हिन्दी 'तीन' या 'तिन' प्रचलित है। शेष गणनात्मक संख्यावाचक रूप हिन्दी समान ही हैं। क्रमवाचक में पहले चार अंकों के रूप भिन्न हैं—पहला, दूजा—दुजा, त्रिजा, चौथा। इससे आगे हिन्दी 'वाँ' प्रत्यय 'उआ' रूप में प्रचलित है—पंजुआ, छेउआ, सतुआ आदि। स्वरमध्यग 'ज' के लोप से दूजा, त्रिजा के साथ-साथ दुआ, त्रिआ रूप भी प्रयोग में आते हैं। आवृत्तिवाचक में हिन्दी का 'गुना' प्रत्यय 'गणा' या 'गुणा' रूप में प्रचलित है—दुगणा, तिगणा, त्रिगणा, पजगुणा आदि।

सार्वनामिक विशेषणों में से परिमाणवाचक विशेषण कुलुई में 'रा' के तथा शेष बोलियों में 'णा' के संयोग से बनते हैं, अर्थात् कुलुई में एतरा, तेतरा, जेतरा और केतरा तथा अन्य बोलियों में एतणा—इतणा, तेतणा—तितणा, जेतणा—जितणा तथा केतणा—कितणा। परन्तु प्रकारवाचक सार्वनामिक विशेषणों के रूपों में ध्वनि परिवर्तन के अनुसार रूप किंचित भिन्न हैं—

हिन्दी	सिरमौरी	महासुई	कुलुई	मण्डियाली, कहलूरी	कांगड़ी, चम्बयाली
ऐसा	इशा	एशो	एडा	एडा	अदेहा
कैसा	किशा	केशो	कैंडा	केडा	कदेहा
जैसा	जिशा	जेशो	जेंडा	जेडा	जदेहा
तैसा	तिशा	तेशो	तेंडा	तेडा	तदेहा

कुलुई रूपों तथा मण्डियाली-कहलूरी रूपों की अन्तिम ध्वनियों में कहीं कहीं महाप्राणत्व ध्वनित होता है जैसे एढा, तेंढा, केंढा, जेढा तथा एढा, तेढा, केढा, जेढा। इनकी व्युत्पत्ति 'दृक्' प्रत्यय से स्पष्ट है। उच्चारण के अन्तर्गत पहाड़ी के ध्वनि-परिवर्तन का उल्लेख किया जा चुका है। उसी के अधीन इनके रूप को देखा जा सकता है—

कीदृश > कइश > किशा, केशो ओकारान्त प्रवृति के कारण, कीदृश > कीर्डाहृ > कदेहा आदि।

जहाँ तक विशेषण-पदों की रूपात्मकता का सम्बन्ध है, पहाड़ी मे आकारान्त विशेषण पद अपने विशेष्य-पदों के लिंग-वचन के अनुसार विकृत होता है। परन्तु इस तरह के परिवर्तन का परिमाप स्थानानुसार भिन्न है। पहाड़ी भाषा के भीतर भाग की बोलियो मे विशेषण पद हिन्दी के समान ही विशेष्य पद के लिंग वचन के अनुसार बदलता है, अर्थात्—

(i) *आकारान्त विशेषण पद पुल्लिंग बहुवचन विशेष्य के साथ एकारान्त मे बदल जाता* है—बांके लडके < अच्छे लडके, काले कुत्ते, लोमे बूटे < लम्बे वृक्ष। चाहे विशेष्य पद बहुवचन के लिए विकृत न हो परन्तु आकारान्त विशेषण अवश्य एकारान्त हो जाएगा—बांके घर < अच्छे घर, काले बादल आदि।

(ii) *आकारान्त विशेषण स्त्रीलिंग विशेष्य पद के लिए ईकारान्त मे बदलता है*, और चाहे स्त्रीलिंग शब्द एकवचन म हो या बहुवचन मे अथवा वह विकारी रूप मे हो या अन्यथा, ईकारान्त रूप हर स्थिति म ईकारान्त रहता है— बाकी कुडी, बाकी कताब—बांकी कताबा, काली भेड—काली भेडा, हरी कलम हरी कलमा *आदि। इसी तरह विकारी रूप मे काली टोपीरा < काली टोपी/टोपियो का,* सोहणी छोहटीया ताई < अच्छी लडकी/लडकियो के लिए आदि।

(iii) आकारान्त विशेषण पद पुल्लिग एकवचन विकारी रूप के लिए एकारान्त मे बदलता है, और बहुवचन पुल्लिग विकारी रूप के लिए भी एकारान्त ही रहता है, *उसमे अन्तर नही आता, उदाहरणार्थ—काले कुता वे < काले कुत्ते या कुत्तो को,* बांके शोहरू सौगी < अच्छे लडके या लडको के साथ।

साराश यह कि पहाड़ी की भीतरी बोलिया मे आकारान्त विशेषण पद विशेष्य पद के लिंग वचन के भेद के अनुसार केवल दो रूपो मे बदलता है—एकारान्त और *ईकारान्त। परन्तु ज्यो ज्यो पजाबी भाषी क्षेत्र के निकट आते हैं, विशेषण के रूप पजाबी* के अनुसार बदलने आरम्भ होते है। अत मण्डियाली, कहलूरी, पालमपुर के आस पास कागडी मे आकारान्त विशेषण पद पुल्लिग विशेष्य पद के साथ तो हिन्दी की तरह रहते है, परन्तु स्त्रीलिंग की स्थिति मे एक वचन और बहुवचन मे अलग-अलग रूप हो जाते है। *वहाँ खरी कुडी का बहुवचन* पजाबी की तरह *खरिया कुडिया हो जाता है।* इसी तरह न्हेरियाँ राताँ च < अधेरी रातो मे, हरिया डालिया पुर < हरी डालियो पर, खरिया कुडिया ते आदि। परन्तु यहा खरेया मुण्डुआ ते न होकर खरे मुण्डुआ ते ही रहता है। पजाबी भाषी-क्षेत्र की सीमावर्त्ती बोली मे पजाबी के अनुसार ही विशेषण शब्द विशेष्य पदो के अनुसार बदलते हैं। परन्तु विकारी रूप म कांगडी, चम्बयाली, मण्डियाली आदि भी पजाबी से भिन्न रूप रखती है, जो पहाडी की विशेषता है। जहाँ पजाबी मे 'काली घोडी नू घा पाओ' होता है, वहाँ इन बोलियों मे 'कालिया घोडिया जो घाह पाआ' होना है।

क्रियापद

क्रियापद का विवेचन करते हुए यदि आरम्भ में ही यह कहा जाए कि पहाड़ी भाषा संज्ञा (Nominal) न होकर क्रिया विषयक (Verbal) है तो अतिशयोक्ति न होगी। इस के मुख्य दो कारण हैं। इनमें से प्रथम कारण पहाड़ी वाक्य में शब्दक्रम (Syntactical order) की विशिष्टता है। हिन्दी और पंजाबी आदि अन्य भाषाओं में शब्दक्रम प्राय कर्ता, कर्म और क्रिया है। परन्तु पहाड़ी में इसके विपरीत क्रिया सर्वदा कर्म से पहले आती है। इसमें संदेह नहीं कि आजकल के पहाड़ी लेखक इस क्रम को अपना नहीं रहे हैं, जिसका मुख्य कारण यह है कि जितने भी लेखक पहाड़ी लेख लिख रहे हैं, वे सभी हिन्दी और उर्दू में आए हैं, और मूल रूप में हिन्दी-उर्दू की वाक्य रचना से शिक्षित-दीक्षित होने के कारण उसी माध्यम को पहाड़ी में भी अपनाते हैं। अपनी हिन्दी-उर्दू की लेखन-कला में बहकर वे बातचीत की पहाड़ी भाषा के मौलिक गुण को बिगाड़ देते हैं। यदि गावों और मूल निवासियों की बोल-चाल की आम भाषा को देखा जाए तो यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि पहाड़ी भाषा की सब बोलियों में कर्म से पहले ही क्रिया बोलने की मूल प्रवृत्ति है, प्रवृत्ति ही नहीं वरन् आधार-भूत शैली है। पहाड़ी भाषा में "मैं तिजो गलाया था" कहना स्वाभाविक नहीं है, वरन् यही कहना स्वाभाविक है कि "मैं गलाया था तिजो"। इसी तरह 'मैं बुलाया था उसजो' (मैंने बुलाया था उसे)। इसी तरह "छोहरू के देइरे थी खाना के फौल' (लड़के को दिये थे खाने को फल), किंदी आगा तेरा घौर (कहा है तेरा घर), हऊ चालो घोरा ले (मैं चला घर को), कताब नी पढोंदी तेरे ते (किताब नहीं पढ़ी जाती तेरे से) दाहीए नी खाइदी रोटी (दर्द में नहीं खाई जाती रोटी), ए आसो मेरा गाव (यह है मेरा गाव) आदि।

इस दिशा में दूसरी विशेषता पहाड़ी में क्रियाओं की संख्या की अधिकता है। यद्यपि पहाड़ी क्रियाओं की संख्या की गिनती नहीं हुई है, परन्तु यदि हिन्दी और पहाड़ी भाषाओं की क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, तो स्पष्ट हो जाता है कि पहाड़ी में हिन्दी की अपेक्षा बहुत अधिक प्रचलित क्रियाएं हैं। उदाहरणार्थ जहा हिन्दी में नामधातुओं या संज्ञक-संयुक्त क्रियाओं (Nominal Compounds) की बहुलता है, वहाँ पहाड़ी भाषा में उनकी तुलना में मूल क्रियाओं की संख्या अधिक है। अर्थात, जहाँ हिन्दी में संज्ञा और विशेषण शब्दों के साथ सहायक क्रिया से भाव प्रकट किया जाता है वहाँ पहाड़ी में मूल क्रियाओं की संख्या अधिक है। हिन्दी में 'करना' और 'होना' ही दो मूल क्रियाएं हैं जिनकी सहायता से संज्ञक संयुक्त क्रियाए बनती है—आक्रमण करना, आक्रमण होना, निर्णय करना/होना, लज्जित होना/करना, कैद करना/होना आदि। परन्तु बोलचाल की पहाड़ी में ऐसे प्रयोग कम और मूल धातु-प्रयोग अधिक है। कुछेक आम बोल-चाल के उदाहरणों से ही यह बात स्पष्ट हो जाएगी—हिन्दी खडा होना > पहाड़ी खडीना/खडना, खडा करना > खडेरना, पार करना > लघणा/लाघणा, प्रतीक्षा करना > निहालणा, फूक मारना > [illegible]रना मुक्त होना > मुकणा, पसन्द करना > रुचणा, टट्टी करना > हगणा, पेशाब करना

मूतणा/मूचणा, समाप्त होना >निभणा, समाप्त करना >निमेरणा, बीमार होना > दाहिणा, चुनाई करना >चिणना, घटणा <कम होना, बधणा <बढ जाना, झूरना < प्यार करना, पतनाणा <अपरिचित बनना, रोध करना >विरोधिणा, धूप देणा >घूपणा, खाल उतारना >सलेडना, गुआचणा <गुम होना, काम करना >कमोणा <स० कर्मापयति, तलाश करना >तापणा, निडाई करना >निडणा, पंची करना >पाहरना, प्रात होना >विहाणा, तैयार होना >तियारिणा, इकट्ठे होना >कठरोणा ।

पहाडी की मुख्य क्रियाए सस्कृत की हैं जो प्राकृत और अपभ्रश से उत्तराधिकार म आई हैं। इनमे तत्सम, अर्ध-तत्सम, तद्भव सभी प्रकार के रूप मिलते हैं। परन्तु पहाडी भाषा की धातुओं म उनका विशेष महत्व है, जिन्हे भाषा विशेषज्ञों ने 'देसी' नाम दिया है। पहाडी भाषा म इनकी अलग श्रेणी है, जिसमे असख्य एसी क्रियाए शामिल हैं, जिनका सस्कृत स सम्बन्ध ढूंढना कठिन है उदाहरणार्थ—रुढना <'बह जाना,' मुंढणा 'गूंधना', चटयाणा 'दूर फेंकना', उकलना—कोहणा 'चढ़ना,' हडणा 'चलना', शाकना 'चिपकना', टालना—तालणा 'छाटना', खोसणा—छडाहणा—खोहणा 'छीनना', लुकणा 'छुपना', तापणा 'तलाश करना', जिकणा दवाना', चाणना 'पकाना', ओमणा—भोलणा—लोहणा 'उतरना', टुल्हणा 'ऊंघना', पायणा—पीयणा 'दबाना', छोलणा—छोलणा बिलोना', टोलणा 'खोजना', गुआचणा—गुआणा 'गुम होणा,' शचणा—शोचण 'फसना', रिन्हणा 'पकाना', थुसणा 'टूटना', नठणा 'जाना'।

ऊपर के कुछेक उदाहरणो से ही स्पष्ट है कि अत्यन्त साधारण और आम प्रयोग की हिन्दी आदि पडोसी भाषाओं की क्रियाओं के लिए पहाडी मे उनसे नितान्त भिन्न क्रियाए प्रचलित हैं।

पहाडी की सभी बोलियो मे प्रेरणार्थक क्रियाओ का प्रत्यय हिन्दी और पजाबी से भिन्न है। पहाडी मे यह प्रत्यय 'आ' है, जबकि हिन्दी और पजाबी मे प्रथम प्रेरणार्थक रूप 'ला' द्वारा बनता है। 'ला' का प्रत्य पहाडी की किसी बोली मे साधारणत प्रयुक्त नहीं होता, यथा—हिन्दी सोना से सुलाना परन्तु पहाडी सुआणा, हिं० खाना से खिलाना परन्तु पहाडी खुआणा (भीतर प० खिआणा), इसी तरह सीना से हिं० सिलाना प० सुआणा (सियाणा), देना से हिं० दिलाना प० दुआणा (भी० प० दियाणा), आदि।

सहायक क्रिया के रूप भी सामान्य ध्वनि परिवर्तन के साथ समान रूप से प्रचलित है। मूलत सभी बोलियों मे 'होणा' (सस्कृत 'भू' धातु) सहायक क्रिया का प्रयोग होता है। वर्तमान काल मे सस्कृत 'अस्' मे प्राप्त रूपो का प्रयोग स्पष्ट है। सस्कृत अस्ति >असि से 'आसा' रूप बघाटी, क्योथली और सिरमौरी मे प्रचलित हैं। कुछ बोलिया मे ध्वनि विकार के कारण यही रूप 'औसो' हो गया है। कुलुई मे पूर्व 'आ' के लोप से केवल 'सा' ही सहायक क्रिया का रूप हुआ है। जैसा कि ध्वनि शीर्ष मे देखा जा चुका है 'सा' मण्डियाली और कहलूरी मे 'हा' बन गया है, तथा कागडी म 'ह' के लोप होने पर केवल 'ए' ही सहायक क्रिया का प्रयोग होता है।

उपर्युक्त पूर्व विवेचन मे यह स्पष्ट है कि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कांगडी और कहलूरी को पहाडी की अन्य बोलियो से पृथक नहीं किया जा सकता। कांगडी और

कहलूरी की भाषा-वैज्ञानिक विशिष्टताओ को पूर्वकथित पहाडी की विशेषताओ के साथ आमने सामने रखने से यह तथ्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता है, परन्तु पुनरुक्ति के भय से यहाँ इन्हे पूर्णत दोबारा प्रस्तुत करना उचित नही लगता। कागडी और कहलूरी का चम्बयाली तथा मण्डियाली से इतनी समानता है कि एक को दूसरे से अलग नही किया जा सकता। जब मण्डियाली और चम्बयाली को डॉ० ग्रियर्सन उचित रूप से पहाडी भाषा मे रखते हैं, तो कोई कारण नही कि वे कागडी को पहाडी से अलग रखते बशर्ते कि उन्हे कागडी का वास्तविक नमूना मिलता और वह नमूना कागडा के मूल निवासी द्वारा तैयार होता। *यही स्थिति कहलूरी की है। कागडी की अपेक्षा मण्डियाली की ओर इसका अधिक* झुकाव है।

पहाड़ी की उप-शाखाएँ (विभाषाएँ)

वास्तव म पहाडी भाषा की स्पष्टत दो उप-शाखाएँ हैं। हिमाचल प्रदेश के मानचित्र पर जरा ध्यान दिया जाए तो इसकी स्थलाकृति के मुख्यत दो भाग हैं—एक भाग मध्यग् हिमालय (Mid Himalaya) मे पडता है, जिसमे पूर्व दक्षिण से उत्तर-पश्चिम की ओर क्रमश किन्नौर ज़िला, लाहुल-स्पिति ज़िला के पूर्ण क्षेत्र तथा चम्बा ज़िला का चम्बा लाहुल इलाका शामिल है। भाषा-शास्त्रियो ने इस क्षेत्र की भाषा को तिब्बती-बर्मी कहा है, यद्यपि यह तिब्बती, किराती, मुण्डा और भारतीय आर्य भाषाओ का समा-मिश्रण लिए हुए है। इस क्षेत्र से आगे बाह्य-हिमालय (Outer Himalaya) पडता है। बाह्य-हिमालय क्षेत्र के भी ठीक उसी दिशा म अर्थात् पूर्व-दक्षिण से उत्तर पश्चिम की ओर दो प्रमुख भू भाग है। एक **भीतरी भाग** और दूसरा **बाहरी भाग**।

इसी स्थलाकृतिक दृष्टि स भीतरी भाग मे हिमाचल-प्रदेश के सिरमौर, सोलन, शिमला, कुल्लु के ज़िले, कागडा का उत्तरी-पर्वतीय क्षेत्र जहाँ 'गादी' बोली जाती है तथा चम्बा का चुराही और पगवाली के क्षेत्र शामिल है। शेष सभी क्षेत्र बाहरी भाग मे पडता है। भीतरी भाग पहाडी भाषा की **भीतरी उप-शाखा** का क्षेत्र है, और बाह्य भाग बाहरी *उप-शाखा के अन्तर्गत आता है। बाहरी उप-शाखा मे मुख्यत* मण्डी, बिलासपुर, कागडा हमीरपुर, ऊना और चम्बा के ज़िले पडते है। मूलरूप मे दोनो उप-शाखाओ मे वे सभी गुण विद्यमान हैं, जो पहाडी की मुख्य विशेषताएँ हैं और जिनके आधार पर पहाडी भाषा भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से पडोसी भाषाओं से भिन्न और स्वतन्त्र है। फिर भी दोनो उप-शाखाओ की अपनी-अपनी विशिष्टताए हैं, जिन्हे साराश मे नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

ध्वनि तत्व

(1) यद्यपि पहाडी की सभी बोलियों मे आदि स्वर के लुप्त होने की प्रवृत्ति है, जैसे—अगार से गार, *अगीठी* > *गीठी, अगोछा* > *गोछा, अगूठा* > *गूठा*, एकादशी > कादसी आदि, फिर भी जहाँ भीतरी पहाडी मे 'अ' के 'ओ' म बदलने की प्रवृत्ति है, वहाँ बाहरी पहाडी मे यह प्रवृत्ति प्राय नही है, जैसे—भी० प० ओसर < बा० प० असर,

भी० औकल < वा० अकल, भी० बौरत < वा० वरत 'उपवास', भी० कौपट < वा० कपट, भी० डौर < वा० डर आदि।

(2) भीतरी पहाड़ी मे तालव्य च-वर्ग तथा वर्त्स्य च वर्ग अलग-अलग स्वतन्त्र ध्वनियाँ हैं। बाहरी पहाड़ी म च-वर्गीय स्वतन्त्र ध्वनियाँ नही रही हैं। सध्वनि (allophone) के रूप मे इनका उच्चारण व्यापक है। कहीं-कहीं ये वर्त्स्य न हो कर दन्त्य हो गई है।

(3) दोनों उप-शाखाओं मे 'ष्' विद्यमान नही है। परन्तु जहाँ भीतरी पहाड़ी मे श् और म् पूर्णत सुरक्षित और प्रचलित हैं बाहरी उप शाखा म 'श्' को 'स्' मे बदलने की प्रवृत्ति है, जैसे—भी० शख वा० सख, भी० शर्त वा० सर्त, भी० शक वा० सक, भी० शीमा वा० सीमा, भी० शोभा वा० सोभा आदि।

(4) 'य्' तथा 'व' की श्रुति सभी बोलियों मे समान रूप से प्रचलित है। परन्तु जहाँ तक 'ल्', 'ल़्', 'ऱ्', ड़्' का सम्बन्ध है, भीतरी उप-शाखा मे इनकी श्रुति जितनी व्यापक है, बाहरी मे उतनी नही है। बाहरी शाखा के सीमावर्ती क्षेत्र म 'ल' वर्ण 'ल' मे बदलता है। मण्डियाली मे 'ल' प्राय 'ड' मे परिणत होता है। भीतरी मे 'ल' श्रुत हो जाता है।

(5) मध्य भारतीय आर्य भाषा के प्रारम्भिक काल मे सरलीकरण की जो प्रवृत्ति चली थी, उसका प्रभाव दोनों उप-शाखाओं मे भिन्न रूप मे पड़ा है। भीतरी उप-शाखा मे सयुक्त से पूर्व का ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है तथा साथ ही सयुक्त अक्षर मे से एक का लोप होकर केवल एक व्यजन रहता है, जैसे—सप्त > सौत, अष्ठ > औठ, पुष्प > फूल, नग्न > नागा, कण्टक > कोडा आदि। इसके विपरीत बाहरी पहाड़ी मे पूर्व स्वर दीर्घ नही हुआ है, यद्यपि द्वित्व कदरे लुप्त हो गया है, जैसे—स० पृष्ठ > वा० प० पिठ भी० प० पीठ, स० कर्म > वा० कम भी० कोम, स० अद्य > वा० अज्ज भी० आज या औज, स० हस्त > वा० हत्थ भी० हाथ कु० हौथ, आदि। लगभग चौदहवी शताब्दी के आरम्भ मे द्वित्व व्यजनो का सरलीकरण तथा पूर्ववर्ती स्वर का दीर्घीकरण हो चुका था, परन्तु बाहरी पहाड़ी मे यह प्रथा अभी प्रचलित नही हुई है।

रूप तत्त्व

(1) बाहरी और भीतरी उप शाखाओं मे एक अन्य अन्तर लिंग भेद के सम्बन्ध मे है। बाहरी पहाड़ी मे आकारान्त विशेषण शब्द विशेष्य शब्दों के अनुसार स्त्रीलिंग बहुवचन में रूप बदलते हैं, जबकि भीतरी पहाड़ी मे ऐसा परिवर्तन नही होता जैसे—वा० कालिया भेडा भी० काली भेडा, वा० बाकिया नारा भी० बाकी नार, वा० छैलिया धारा, भी० छैली धारा आदि।

(2) बाहरी उप-शाखा मे कर्म-सम्प्रदान कारक के प्रत्यय 'जो' और 'ओ' हैं। भीतरी उपशाखा मे इसके विभिन्न प्रत्यय हैं, सिरमौरी-महासुई मे खें, कें और लें कुलुई मे बें।

(3) बाहरी उप शाखा मे सम्बन्ध कारक के प्रत्यय अधिकत दा, दे, दी है,

जबकि भीतरी उपशाखा मे रा, रे, री का ही प्रचलन हैं।

धातु तत्व

(1) बाहरी पहाडी मे स० 'भू' धातु से व्युत्पन्न 'हो' तथा 'है' का प्रयोग होता है, जिनमे ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ हा, आ, ऐ, ए स्थान भेद के अनुसार प्रयुक्त होते हैं। भीतरी पहाडी मे स० 'अस्' से व्युत्पन्न सहायक क्रिया का प्रयोग होता है जो स्थान भेद के अनुसार औसो, असा या सा रूप मे प्रयुक्त होता है। अधिकत 'असा' रूप लिंग-वचन के आधार पर नही बदलता।

(2) बाहरी पहाडी मे निषेधात्मक भाव से सम्बन्धी भीतरी पहाडी का 'नाथी' <नास्ति नकारात्मक सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं होता। भीतरी पहाडी मे 'नाथी' लिंग-वचन के आधार पर परिवर्तित नही होता।

(3) पहाडी के समस्त क्षेत्र मे सम्भाव्य भविष्य प्राय क्रिया के सामान्य रूप से ही व्यक्त होता है, जैसे मारना, पिटणा, शुणना आदि। परन्तु सामान्य भविष्य बाहरी पहाडी मे गा, गे, गी द्वारा प्रकट होता है, जो हिन्दी के समान रहता है। भीतरी पहाडी मे गा, गे, गी की बजाय सामान्य भविष्य का प्रत्यय 'ला' है, जो पुलिंग बहुवचन के लिए 'ले' तथा स्त्रीलिंग एकवचन और बहुवचन के लिए 'ली' मे बदलता है। जैसे—मारला 'मारेगा', जाले 'जाएँगे', देली 'देगी'/देंगी।

दोनों उप-शाखाएँ मूलत एक

दोनो उप-शाखाओ के बीच उपर्युक्त भेद स दोनो के पृथक होने का भाव नही है, बल्कि दोनो के बीच विकास-क्रम का भेद है। दोनो उप शाखाओ के बीच कोई मूलभूत भेद नहीं है। वास्तव मे दोनों एक ही मूलाधार की दो शाखाएँ है, भिन्न आधार या भिन्न लक्षण की पृथक भाषाएँ नही है। अन्तर केवल विकास क्रम के चरण से है। एक का रूप कुछ अधिक आधुनिक है और दूसरी का कुछ प्राचीन। भीतरी और बाहरी शाखाओ के अध्ययन से दोनो के विकास क्रम का पता चलता है, और यह स्पष्ट नजर आता है कि जहाँ तक शब्द विकास का सम्बन्ध है बाहरी शाखा की अपेक्षा भीतरी शाखा का अधिक विकसित रूप है। इसका स्पष्ट प्रमाण व्यजन द्वित्व के सरलीकरण तथा पूर्ववर्ती स्वर के दीर्घीकरण की प्रक्रिया है। अपभ्रश की तुलना मे आधुनिक भाषाओ की यह प्रमुख ध्वन्यात्मक विशेषता है। भारतीय आर्य भाषाओं के क्रमिक विकास के बारे मे एक बात स्पष्ट है कि आरम्भ से लेकर ही सरलीकरण की ओर प्रवृत्ति रही है। इस सरलीकरण का एक उदाहरण व्यजनो का द्वित्वरूप या सयुक्त रूप है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा म सयुक्त या द्वित्व अक्षर कही भी आते थे। बाद मे यदि सस्कृत के किसी शब्द के सयुक्त अक्षर मे पूर्व लघु स्वर होता था तो सरलीकरण की प्रवृत्ति मे सयुक्त अक्षर एक अक्षर मे बदल गया, परन्तु छोडे गए अक्षर की क्षतिपूर्ति म सयुक्त अक्षर से पूर्व का लघु स्वर दीर्घ स्वर मे बदल गया जैसे—'अद्य' से 'आज', 'कर्म' से 'काम'। परन्तु सरलीकरण की इस प्रवृत्ति मे सयुक्त या द्वित्व से पूर्व ह्रस्व स्वर के दीर्घ मे बदलने का नियम एकदम

प्रचलित नही हुआ था। इससे पूर्व ही दूसरा रूप भी बना था, जिसमे द्वित्व या सयुक्त रूप तो रहा और साथ ही इससे पूर्व का ह्रस्व स्वर भी विद्यमान था परन्तु सयुक्त या द्वित्व अक्षर मे भेद आ गया था, जैसे 'अद्य' मे आरम्भ मे 'अज्ज' बना था। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से वर्तमान भारतीय आर्य भाषा तक आते हुए इस सरलीकरण के तीन चरण कहे जा सकते है —

(1) सस्कृत मे सयुक्त या द्वित्व अक्षर का अपना नियम था। वहाँ सयुक्त अक्षर ह्रस्व या दीर्घ दोनों स्वरो के बाद आ सकता है, जैसे कर्म, पृष्ठ कर्ण आदि शब्दो में सयुक्त अक्षर ह्रस्व स्वर के बाद हैं, तथा कार्य, मूल्य आदि शब्दो मे सयुक्त अक्षर दीर्घ स्वर के बाद मे हैं।

(2) सस्कृत के बाद पूर्व प्राकृत मे शब्द के आरम्भ मे सयुक्त अक्षर नही आते थे। शब्दो के मध्य और अन्त मे जरूर आते थे, परन्तु ये केवल ह्रस्व स्वर के बाद ही आते थे, दीर्घ के बाद नही जैसे स० अद्य>अज्ज, स० कर्म>कम्म, स०भक्त>भत्त। इस चरण मे सस्कृत के सयुक्त अक्षर के पूर्व का दीर्घ स्वर भी कई बार ह्रस्व हो गया, जैसे—स०मूल्य>मुल्ल, स०कार्य>कज्ज, मार्ग>मग्ग, स० तीक्ष्ण> तिक्खा आदि।

(3) तीसरे चरण मे दूसरे चरण के द्वित्व या सयुक्त रूप भी समाप्त हो गए। यहाँ द्वित्व अथवा सयुक्त अक्षर मे से एक का लोप हो गया तथा इस लुप्त अक्षर की प्रतिपूर्ति म पूर्व ह्रस्व स्वर दीर्घ हो गया, जैसे स० कर्ण से कान। अत तीनो चरण इस प्रकार व्युत्पन्न हुए—अद्य >अज्ज>आज, पृष्ठ > पिट्ठ<पीठ, मूल्य>मुल्ल>मूल, कार्य <कज्ज<काज, कर्म<कम्म<काम, हस्त>हत्थ>हाथ।

यह सरलीकरण का एक उदाहरण है और इससे किसी भाषा के विकास क्रम का पता चलता है। इस सिद्धान्त को दृष्टि मे रखते हुए यों लगता है कि बाहरी पहाड़ी अधिक प्राचीन रूप मे है और भीतरी पहाड़ी अधिक आधुनिक रूप मे, क्योंकि जहाँ बाहरी शाखा मे सयुक्त अक्षरो की अधिकता है, वहाँ भीतरी शाखा मे उतनी ही इनकी न्यूनता है[1] —

सस्कृत/हिन्दी	बाहरी पहाड़ी	भीतरी पहाड़ी
कार्तिक	कत्तक	काती
कर्म/काम	कम्म	काम/कोम
कज्जल/काजल	कज्जल	काजल
कर्ण/कान	कन्न	कान/कोन
मूल्य	मुल्ल	मूल/मोल
जूता	जुट्टा	जूता/जोडा
तिलक	टिक्का	टीका
फूल	फुल्ल	फूल

1 उदाहरण शिक्षा विभाग, राज्य भाषा सस्थान, हिमाचल प्रदेश, द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी–हिमाचली (पहाड़ी) शब्दावली' से।

फाल्गुण	फग्गण	फागण
भात	भत्त	भात/भौत
हस्त	हत्थ	हाथ/हौथ

स्पष्ट है कि बाहरी उप-शाखा चौदहवीं शताब्दी से पहले के गुण छुपाए हुए है, जबकि भीतरी पहाड़ी में वर्तमान हिन्दी के समरूप विकास प्रदर्शित है।

शब्दों के व्यवहार में भी इस बात की पुष्टि होती है। बाहरी और भीतरी के बीच क्रमिक विकास को 'ल' के प्रयोग में देखा जा सकता है—कांगड़ी आदि बाहरी उप-शाखा की बोलियों में 'ल' सुरक्षित है या 'ल' में बदलता है। मण्डियाली में 'ल' अक्षर 'ड' में बदलता है और कुलुई, सिरमौरी आदि भीतरी उप-शाखा की बोलियों में यह श्रुति में बदलता है। उदाहरणार्थ—हिन्दी काला>कांगड़ी काला>मण्डियाली काड़ा> कुलुई, महासुई>काआ; हिं आलू>कां० आलू>म० आड़ू>कु०, महा० आऊ आदि।

जहाँ तक दोनों उप-शाखाओं के अन्तर्गत विभिन्न बोलियों का सम्बन्ध है, डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार उनका सामान्य परिचय पहले दिया जा चुका है। डॉ० ग्रियर्सन द्वारा गिनाई बोलियां और उप-बोलियों में निस्सन्देह अतिशयोक्ति हुई है, इस बात को डॉ० ग्रियर्सन स्वयं स्थान-स्थान पर दोहराते हैं। उस समय वर्तमान हिमाचल क्षेत्र में बहुत सी छोटी-छोटी रियासतें थीं। 15 अप्रैल, 1948 को जब पुराने हिमाचल की स्थापना हुई तो भी लगभग 30 रियासतों का समावेश हुआ था। तत्पश्चात् बिलासपुर रियासत का विलय हुआ और एक नवम्बर, 1966 को पंजाब के कांगड़ा, कुल्लू, लाहुल-स्पिति और शिमला ज़िलों के संयोग से वर्तमान राज्य अस्तित्व में आया। स्पष्ट ही भूत-पूर्व रियासतों की संख्या बहुत अधिक थी। और, चूंकि बोलियों और उप-बोलियों का विवरण रियासतों पर आधारित रहा है, इसलिए इनकी संख्या अधिक होना स्वाभाविक था। भाषाओं के बारे में यह प्रसिद्ध है कि भाषा हर कोस पर बदलती है। हिमाचल प्रदेश जैसे पहाड़ी क्षेत्र में, जहाँ नदी-पहाड़ी की गहरी घाटियाँ हर वादी को एक दूसरे से प्राय पृथक करती हैं, बोलियों में कुछ अन्तर आना स्वाभाविक है। इस प्रकार की सामान्य भिन्नताओं के *अतिरिक्त अन्यथा बोलियों में अत्यधिक साम्यता* स्थापित है।

भाग II

कुलुई

अध्याय—1

कुलुई : क्षेत्र और उप-बोलियाँ

कुलुई से अभिप्राय कुल्लू की बोली से है। कुल्लू हिमाचाल प्रदेश का एक ज़िला है जिसमे कुल्लू विशेष, भीतरी सिराज और बाह्य सिराज के क्षेत्र सम्मिलित हैं। परन्तु जहाँ तक वर्तमान अध्ययन का सम्बन्ध है, यह केवल कुल्लू विशेष से सम्बन्धित है। कुल्लू बहुत प्राचीन प्रदेश रहा है, जिस का उल्लेख और अस्तित्व रामायण और महाभारत काल से सिद्ध होता है। पहली ईसवी सदी से लेकर लग-भग आठवी शताब्दी तक कुलूत देश एक प्रसिद्ध राज्य रहा है। इस बात का प्रमाण उस समय की सर्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा साहित्यिक पुस्तको मे कुलूत के सदर्भ मे स्पष्ट मिल जाता है। कल्हण की राजतरगिणी, बाणभट्ट की कादम्बरी, विशाखदत्त की मुद्राराक्षस, वराहमिहर की बृहत्सहिता और ह्यू न सांग की भारत यात्रा पुस्तको का ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व किसी से छुपा नही है, और इन सब मे कुलूत के पर्याप्त सदर्भों से इसकी ख्याति स्वय-प्रतिष्ठित है।

परन्तु, भाषा के रूप मे कुलुई शब्द का प्रयोग अधिक पुराना नही है। कुल्लू के लोग अपनी भाषा को कुलुई नाम से सम्भवत बहुत पुराने समय मे नही पुकारते थे। वे अपनी भाषा को देशी बोली कहते रहे है, इस बात का प्रमाण लोक साहित्य मे स्थान-स्थान पर प्रयुक्त 'देशी बोली' शब्द से स्पष्ट होता है—'देशी बोली देशी खाण,' 'बुरा हेरी बुझदा म्हारी सा देशा री बोली', 'देशी गधे बलायती बोली' जैसी लोकोक्तियों से तो यह भी स्पष्ट होता है कि यहाँ के लोग अपनी बोली के बारे मे बडे सरक्षणशील (Conservative) रहे हैं, तभी वे किसी को हिन्दी, उर्दू आदि भाषा बोलते हुए सुनने पर उसे देसी गधा तो विलायती बोली की उपमा देते हैं। भाषा के रूप मे कुलुई शब्द का प्रयोग सम्भवत सब मे पहले एडंलुग ने 'मिथरी डेट्स' पुस्तक मे1806 मे किया है। 1871 मे रेव० डब्ल्यु० जे० पी० मौरिसन ने अमेरीकन औरियटल सोसाइटी के सामने कुलुई की शब्दावली प्रस्तुत की थी। परन्तु वह प्रकाशित न हुई लेकिन उसके बारे मे रेव० एम० एच० केल्लोग ने सोसाइटी के जर्नल के खण्ड X (1871) के पृष्ठ xxxvi पर कुछ उल्लेख किया है।[1] उसके बाद ए० एच० डायक ने 'दि कुलु डायलेक्ट आफ हिन्दी' पुस्तक

1. Dr. G A. Grierson : Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part IV, p. 670.

मे कुलुई बोली पर सर्वप्रथम समुचित प्रकाश डाला। इस मे डायक ने कुछ लोक-गीत और शब्दावली देते हुए कुलुई के वैयाकरणिक संरचना पर अध्ययन किया है। यह पुस्तक 1896 मे पहली बार छपी। डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार ई० ओ'ब्राइन ने भी कुलुई तथा गादी बोलियो पर कुछ रचना लिखी थी, परन्तु वह प्रकाशित न हो सकी। पहाडी भाषा की बोलियो मे रेव० टी० ग्राहम बेली ने सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने अन्य बोलियों के साथ-साथ कुलुई पर भी *1908 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक "लेंग्वेजिज आफ दि नार्दर्न हिमालायाज"* मे पूरा विवरण प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् डायक और बेली के कार्यो का लाभ उठाते हुए डॉ० ग्रियर्सन ने "लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया" खण्ड IX भाग IV के पृष्ठ 669 से 713 तक कुलुई का व्याकरण प्रस्तुत किया है। हाल ही मे डॉ० पद्मचन्द्र काश्यप ने अपनी रचना मे कुलुई का सक्षिप्त परिचय देते हुए कुलुई विशेष तथा सतलुज समूह के बीच सामान्य अन्तर दर्शाया है।[1]

जिस प्रकार कुल्लू की देवभूमि अपने प्राकृतिक सौंदर्य और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए प्रसिद्ध है, उसी प्रकार कुलुई बोली भी अपने वैयाकरणिक और शाब्दिक समृद्धि तथा व्यापकता के लिए अत्यन्त सुप्रसिद्ध है। डॉ० ग्रियर्सन स्वय लिखते हैं कि कुलुई और क्योंथली-बघाटी पश्चिमी पहाडी भाषा की विशिष्ट बोलियाँ हैं और पश्चिमी पहाडी की जो प्रमुख विशेषताए उल्लिखित है, वे इन दोनो बोलियो पर आधारित हैं।[2] वास्तव मे पश्चिमी पहाडी भाषा का मूल वे कुलुई बोली मानते हैं, क्योकि जहाँ वे एक ओर कुलुई को क्योथली-बघाटी के साथ पश्चिमी पहाडी की विशिष्ट बोली मानते हैं, वहाँ इसका महत्व पुन प्रकाशित करते हुए लिखते है—

(i) मण्डियाली बोली **दक्षिणी कुलुई** का एक रूप है, जो आगे चल कर कांगडी-पजाबी मे विलीन हो जाता है,

(ii) चम्बयाली बोली **कुलुई** का वह रूप है जिसका बाद मे जम्मू की डोगरी और भद्रवाही के साथ विलयन हो जाता है।[3]

कुलुई का विस्तार क्षेत्र—

इसमे सदेह नही कि हर भाषा या बोली अपने विशेष भौगोलिक सीमा तक सीमित नही रहती। उसका पास-पडौस की भाषाओं पर प्रभाव पडता है, इसी प्रकार जिस प्रकार उनका असर इस पर पडता है। परन्तु डॉ० ग्रियर्सन का यह विचार कि (क) *कुलुई बोली क्योथली-बघाटी के साथ पश्चिमी पहाडी की मूल बोली है,* (ख) मण्डियाली बोली कुलुई का दक्षिणी रूप है जो आगे निकल कर कागडी मे प्रसारित होता है तथा (ग) चम्बयाली भी कुलुई का ही रूप है, कुलुई की मूलभूत विशिष्टता तथा उसके प्रभावी महत्व को भली प्रकार प्रकट करता है।

इस प्रकार कुलुई का वास्तविक तथा प्रभावी सीमा-क्षेत्र दोनो बहुत विस्तृत है।

---

1 डा० पद्मचन्द्र काश्यप, कुल्लुई लोक साहित्य, पृ० 220—231.

2 डा० ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया खण्ड IX, भाग IV पृ० 375

3 वही, पृ० 375

डॉ० पद्मचन्द्र काश्यप के अनुसार तो 'मोटे तौर पर इस (कुलुई) उपभाषा का क्षेत्र अपनी कई बोलियो के रूप मे सारे कुल्लू जिला म लेकर महासू (वर्तमान शिमला) जिला के उत्तर मे, रामपुर तहसील मे सराहन, पूर्वोत्तर मे कोटखाई, जुब्बल, यरोच और दक्षिण मे बलसन, ठ्योग तथा फागु तक है।[1] डॉ० ग्रियर्सन ने जिस ढग से भाषा-क्षेत्र का विभाजन किया है, उसके अनुसार कुल्लू तहसील, सेंज और भीतरी सिराज की बोलिया कुल्लू समूह मे तथा बाह्य सिराज, शाँगरी, कुम्हारसेन, बुशहर का दक्षिणी भाग तथा कोटगढ की बोलियाँ सतलुज समूह मे पडती हैं। भौगोलिक और प्रशासनिक दृष्टि मे सतलुज नदी कुल्लू और शिमला जिलो के बीच सीमारेखा स्थापित करती है। भाषाई दृष्टि से भी सतलुज नदी काफी हद तक कुलुई और महासुई के बीच विभाजन-रेखा का काम करती है। परन्तु भाषा भूगोल और प्रशासन के कृत्रिम अवरोधो मे जकडी रहने वाली वस्तु नही है। बाह्य सिराज और सतलुज नदी की दूसरी ओर शाँगरी, कुम्हारसेन, रामपुर बुशहर तथा कोटगढ के निवासियों के बीच आदिकाल से लेकर सामाजिक आदान-प्रदान बहुत घनिष्ट और तादात्मक रहा है, और इस पारस्परिक सामाजिक गूढ सम्पर्कों के कारण कुलुई-सिराजी का प्रभाव सतलुज नदी की दूसरी ओर के समीप लगते क्षेत्रो पर काफी पडा है। यही कारण है, डॉ० ग्रियर्सन ने इस क्षेत्र की बोली को क्योंथली (महासुई) मे अलग करके इसे कुलुई और क्योंथली के बीच सेतु का काम करने वाली बताया है।

इसी प्रकार कुलुई बोली का क्षेत्र कुल्लू जिले की पश्चिमी सीमा पर समाप्त नही होता। भौगोलिक और प्रशासनिक रूप म सारी जोत कुल्लू और काँगडे जिलो के बीच सीमा रेखा निर्धारित करता है। परन्तु भाषाई प्रभाव को सारी जोत रोक नही सका है। सारी जोत की दूसरी ओर कोठी कोहड-मुआड क्षेत्र की बोली भी पूर्णत कुलुई है, यहाँ तक कि काँगडी बोली के कोई विशिष्ट लक्षण इसमे विद्यमान नही हैं।

इस प्रकार कुलुई बोली के समस्त क्षेत्र को मुख्यत तीन उप-मण्डलो मे बाँटा जा सकता है—जोत रोहताँग के निकट व्यास नदी के स्रोत मे लेकर उसकी दोनों ओर औट तक व्यास-नदी क्षेत्र, (2) भीतरी सिराज तथा (3) बाह्य सिराज। सारा क्षेत्र लग-भग 31° तथा 32° उत्तरी अक्षाँश और 76° तथा 78° देशान्तर के मध्य स्थित है। डॉ० ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वेक्षण मे 1891 की जनगणना के अनुसार कुलुई बोलने वालो की सख्या 84,631 बताई है, जिस मे बाह्य सिराज की जनसख्या शामिल नही है। उस समय बाह्य सिराज की जनसख्या लग भग 20,000 थी। इस प्रकार समस्त कुलुई क्षेत्र मे 1891 की जनगणना के अनुसार 1,04,631 जनसख्या थी। 1961 तथा 1971 की जनगणना मे कुल्लू की जनसख्या क्रमश 1,52,925 तथा 1,92,348 है। समस्त कुलुई-भाषी क्षेत्र 5,455 वर्ग किलोमीटर मे फैला है।

समस्त क्षेत्र पहाडियो और नदी-घाटियो मे विभक्त है। उत्तर मे लाहुल के साथ इसकी सीमा रोहताँग दर्रा तथा उसकी ऊँची चोटियाँ है जो कुछ मील उत्तर-पश्चिम की ओर चल कर दक्षिण-पश्चिम की ओर मुडती है और आगे बढती हुई काँगडा ज़िला के

1 डॉ० पद्मचन्द्र कश्यप, कुल्लुई लोक साहित्य, पृ० 221.

बडा और छोटा बघाल क्षेत्र के साथ सीमा बाँधती है। इस शृ खला के जोत सारी पर पहुचते ही कुलुई बोली बघाल के क्षेत्र कोठी कोहड-सुआड मे घुस-पैठ करती है। यह पर्वत शृ खला आगे चल कर मडी के साथ सीमा बांधनी है। भबू जोत, तारापुर गढ तथा बडी जोत होती हुई यह पर्वत शृ खला नीची होती हुई औट के निकट पहुँचती है। रोहताँग से औट तक यह कुलुई की उत्तर-पश्चिमी, तथा पश्चिमी सीमा है। वही से लारजी के निकट लारजी तथा व्यास के सगम से पुन दक्षिण की ओर बढती है, वही मे पर्वत शृ खला धीरे-धीरे ऊँची चढती हुई जलोडी जोत पर सबसे अधिक ऊची हो जाती है। यह शृ खला आगे निकलती हुई अभी भी मण्डी के साथ सीमा बाँधती है, यहाँ तक कि यह वेहणा के निकट सतलुज से जा मिलती है। उससे आगे सतलुज नदी महासुई के साथ सीमा बाँधती है जो रामपुर बुशहर तक पहुँचती है। उससे आगे उत्तर की ओर चढती हुई ऊँची पर्वत शृ खला स्पिति के साथ सीमा बाँधती हुई आगे लाहुल में निकल कर रोहताँग पहुचती है। इस प्रकार इसके उत्तर मे लाहुल, उत्तर-पश्चिम मे कांगडा, पश्चिम मे मण्डी, दक्षिण मे शिमला तथा पूर्व मे स्पिति के क्षेत्र पडते हैं।

कुलुई मे साहित्य का अभाव

कुलुई मे कोई प्राचीन साहित्य लिखा है या नही, इसके बारे मे कोई खोज नही हुई है। परन्तु यह निश्चित रूप स नही कहा जा सकता कि इसमे किसी साहित्य की रचना नही हुई है। मि० एच० ए० रोज ने पजाब तथा उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के कबीलो तथा उपजातियो का वर्णन करते हुए, अपनी पुस्तक की भूमिका मे कुल्लू का विशेष हवाला देते हुए लिखा है कि कुल्लू के बारे मे यह कहना उचित न होगा कि वहाँ कोई साहित्य नही लिखा गया है। अवश्य ही साहित्य की रचना हुई होगी।[1] कुल्लूवादी आदि काल से ऋषि-मुनियो तथा देवताओं की भूमि रही है। यहाँ की जनता धर्मशील और सत्यनिष्ठ रही है। ऋषि और देवस्थानो से धर्म-उपदेश, व्याख्यान और प्रचार जरूर प्रसारित होते रहे होगे। अत यदि खोज की जाए तो कुछ लिखित साहित्य के मिलने की पूरी सम्भावना है। श्री चन्द्रशेखर बेबस ने इस सम्बन्ध मे सकेत भी किया है, और इस दिशा म उन द्वारा हिम भारती मे उद्धृत कुछ सामग्री हमारी सम्भावना को आशातीत बनाती है।[2]

जहाँ तक लोक साहित्य का सम्बन्ध है कुलुई एक समृद्ध बोली है। अपने लोक गीत तथा लोक नाट्य के सम्बन्ध म कुल्लू देश भर म प्रसिद्ध है। डॉ० पद्मचन्द्र काश्यप ने कुलुई लोक साहित्य पर शोध कार्य करके पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है और आशा है शीघ्र ही अन्य शोधकर्ता इस दिशा मे और प्रकाश डालेंगे।

1 H A Rose Tribes and Castes of Punjab and N W F Province, Preface p ix

2 हिम भारती त्रैमासिक पत्रिका, मार्च, 1972 अक, पृ० 50

कुलुई की उपबोलियाँ

डॉ० ग्रियर्सन ने कुलुई की तीन उप-बोलियाँ बताई हैं—**कुलुई विशेष, भीतरी सिराजी और सेंजी**। परन्तु सेंजी को अलग उपबोली मानने के कोई स्पष्ट गुण नही है। डॉ० ग्रियर्सन स्वय लिखते है कि सेंजी सर्वेक्षण के आरम्भिक कार्यो मे कोई अलग बोली ध्यान मे नही आई है, और न ही इसके कोई नमूने या शब्दावली प्राप्त हुए हैं। उनका कहना है कि ग्राहेम बेली की पुस्तक से लगता है कि सेंजी एक अलग बोली है और उसी को सर्वेक्षण मे उद्धृत किया जा रहा है।[1] स्वय वे सेंजी को भीतरी सिराजी का अभिन्न रूप मानते है, और यह सच भी है। सेंजी और भीतरी सिराजी मे कोई विशेष अन्तर नही है। इसके अलावा बाह्य-सिराजी को कुलुई की ही उप-बोली माना जाना चाहिए।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है जिस कुलुई का यहाँ विस्तार से अध्ययन हो रहा है वह कुलुई-विशेष है जो प्रमुखत कुल्लू तहसील (मलाणा को छोडकर) मे बोली जाती है। बाह्य-सिराजी और भीतरी सिराजी इसकी मुख्य दो उप-बोलियाँ है। आदर्श कुलुई से भीतरी और बाहरी सिराजी जिन बातो मे भिन्न हैं, नीचे उनका उल्लेख किया जाता है :—

(1) संज्ञा

भीतरी पहाडी की सभी बोलियो मे 'अ' को 'औ' मे बदलने की प्रवृत्ति है। कुलुई मे यह गुण विशिष्ट है। परन्तु बाह्य और भीतरी सिराजी मे कही-कही इस प्रवृत्ति के अपवाद मिलते हैं, जैसे कु० हौथ, भी० सि० मे हौथ और हाथ दोनो प्रचलित है और बा० सि० मे केवल हाथ प्रचलित है। इसी तरह कु० दौंद, औठ, औग, घौर, न्हौश, मौर, हौछी, बौक्रा, तौता आदि बा० सि० मे क्रमश दांद, आठ, आग, घर, न्हाश, मर, हाछी, बाकरा, तात तथा भी० सि० मे दोनो तरह के रूप प्रचलित हैं।

कुलुई विशेष मे आकारान्त ध्वनि हिन्दी की तरह है। परन्तु दोनो सिराजी उपबोलियो मे, और विशेषत. बाह्य-सिराजी मे, शब्द के अन्त का 'आ' स्वर 'औ' मे बदलना है। जैसे—कुलुई मे कुता, गधा, घोडा, दिहाडा (दिन), शेता (श्वेत), बोडा (बडा), बेजा (बीज) आदि बा० सि० में विशेषत तथा भी० सि० मे प्राय. कुतौ, गधौ, घोडौ, धिपाडौ, शेतौ, बाडौ, बेजौ मे बदलते हैं। बाह्य-सिराजी मे सामान्य क्रिया के रूप भी औकारात हो जाते है जबकि कुलुई मे ये हिन्दी के समान रहते हैं और भीतरी सिराजी मे दोनो तरह के रूप प्रचलित हैं, वहा वास्तव मे 'औ' की ध्वनि 'आ' और 'औ' के बीच की है, जैसे—बा० सि० बेशणौ, डिउणौ, हांडणौ, झूटणौ, चारणौ कुलुई मे क्रमश. बेशणा (बैठना), डीणा (जाना), हांडणा (चलना), झूटणा (पीना), चारना (चराना) आदि।

---

1. डॉ० ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, खण्ड नौ, भाग चार, पृ० 701.

कारक

भीतरी पहाड़ी की सभी अन्य बोलियों की तरह कुलुई, भीतरी तथा बाह्य सिराजी में बहुवचन का विकारी रूप वही होता है जो एक वचन का विकारी रूप होता है। परन्तु बाह्य सिराजी के कारक-प्रत्ययों में कुछ भिन्नता है। कुलुई तथा भीतरी सिराजी में कर्म तथा सम्प्रदान का प्रत्यय बें है परन्तु बाह्य सिराजी में लें प्रयुक्त होता है। कुलुई तथा भी० सि० में सम्बन्ध का प्रत्यय रा-रे-री है जब कि बा० सि० में यह ओ-ए है। कुलुई तथा भीतरी सिराजी में करण 'ए', 'सांगे', अपादान 'न' तथा अधिकरण 'मोझे', 'पांधे', 'न' प्रत्ययों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं, जो बाह्य-सिराजी में क्रमश 'के', 'का' तथा 'दी' द्वारा प्रतिस्थापित होते हैं।

विशेषण

विशेषणों में कोई अन्तर नहीं है, सिवाय इसके कि बाह्य सिराजी में आकारान्त विशेषण संज्ञाओं की तरह ही ओकारान्त में बदलते हैं, जैसे—जो घोड़ो हेरनालें बड़ो अच्छो और बलबान तो 'वह घोड़ा देखने को बड़ा अच्छा और बलवान था।'

सर्वनाम

अन्य गुणों की तरह ही सर्वनामों के क्षेत्र में भी भीतरी सिराजी अन्य दोनों कुलुई और बाह्य सिराजी के बीच सेतु का काम करती है। कर्ताकारक अविकारी रूप में सभी बोलियों में सब सर्वनाम समान हैं। एक वचन में विकारी रूप भी प्राय समान हैं अर्थात् उत्तम पुरुष हाऊँ से मूँ, मध्यम पुरुष तू से तौ तथा अन्य पुरुष सो से तेई में बदल जाते हैं। परन्तु उत्तम तथा मध्यम पुरुष के बहुवचन में कुछ भेद विद्यमान है। कुलुई में स-युक्त रूप प्रचलित हैं और बाह्य सिराजी में म-युक्त, जबकि भीतरी सिराजी में दोनों तरह के रूप प्रयुक्त होते हैं। कुलुई में हाऊँ से आसे तथा तू से तुसे बहुवचन रूप बनते हैं जो क्रमश आसा तथा तुसा में विकृत हो जाते हैं, जब उनके साथ कारक प्रत्यय लगते हैं। बाह्य सिराजी में हाऊँ या हूँ से हामे तथा तू से तुमे बहुवचन रूप हैं तथा कारक प्रत्यय के साथ ये हामा और तुमा में बदल जाते हैं। इस प्रकार जहाँ कुलुई में आसा-बे, आसा-न, आसा पांधे, तुसा-बे, तुसा-न, तुसा पांधे रूप प्रचलित हैं, वहाँ बाह्य सिराजी में हामा-का, हामा-ले, हामा-दी, तुमा-का, तुमा-ले, तुमा-दी रूपों का प्रयोग है, और भीतरी सिराजी में ये दोनों प्रकार के रूप साथ साथ प्रचलित हैं। सम्बन्धकारक की स्थिति में कुलुई में भी दोनों रूप साथ-साथ प्रचलित है, कुलुई में आसा-रा भी कहा जाता है और म्हारा भी।

क्रियापद

पहाड़ी की सभी बोलियों में सहायक क्रिया के रूप स० अस् धातु से विकसित हुए हैं। जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी तथा महासुई में वह रूप असो, औसो या आसा

प्रचलित है। बाह्य सिराजी मे आसा मे 'सा का लोप हो गया है, अथवा 'स' धीमे 'ह' मे बदल चुका है। 'श' का 'स' और 'स' का 'ह' मे बदलने का नियम अन्यत्र दिया जा चुका है। अत बाह्य सिराजी मे 'औसा' 'आसा' मे से पूर्व अक्षर 'औ' या 'आ' ही सहायक क्रिया का सर्वाधिक प्रचलित रूप है। यह 'औ' या 'आ' लिंग वचन या पुरुष के आधार पर नही बदलता। इसके विपरीत कुलुई मे 'औसा' या 'आसा' का पूर्व अक्षर लुप्त होकर अन्तिम अक्षर 'सा सहायक क्रिया का काम देता है। 'सा' केवल वचन के आधार पर बदलता है जब सा' मे 'सी' शब्द हिन्दी है' का अर्थ देता है। भीतरी सिराजी म भी यही 'सा' सहायक क्रिया है।

कुलुई मे सहायक क्रिया का भूतकालिक रूप 'थो' है जिसका कही-कही उच्चारण 'तो' भी मिलता है। थो' सभी लिंग, वचन और पुरुष मे समान रूप से प्रचलित है। इस मे किसी तरह का विकार नही आता। भीतरी सिराजी मे भी यही रूप प्रयुक्त होता है। परन्तु बाह्य सिराजी मे ऐसी स्थिति नहीं है। यहाँ भूतकालिक सहायक क्रिया का रूप 'तो' या 'ता' है। पुल्लिग बहुवचन मे 'तो' प्राय ते मे बदलता है, और स्त्रीलिंग की स्थिति मे दोनो एक और बहुवचन के लिए 'ती' रूप प्रयुक्त होता है।

अध्याय—2

कुलुई की शब्द सम्पत्ति

भाषा का विषय प्राय शुष्क और नीरस अध्ययन होता है, परन्तु इस दिशा मे कुलुई बोली एक अपवाद है। इसका अध्ययन अत्यन्त मनोरजक और रुचिकर है, जिसके मुख्य लक्षण इसमे समाविष्ट विभिन्न प्रकार के तत्त्व हैं। और इस विभिन्नता का मुख्य कारण यह है कि कुलुई बोली भिन्न परिवार की भाषाओ से घिरी हुई है। उत्तर मे यह लाहुल और स्पिति की भाषा से सलग्न है, जो तिब्बती-बर्मी परिवार से सम्बन्ध रखती है। इसके पश्चिम मे किन्नौरी भाषी क्षेत्र है जो किरात और मुण्डा भाषाओ का मिश्रण है। साथ ही मलाणा का कनाशी भाषी क्षेत्र पडता है जिसका भाषा की दृष्टि से अपना ही महत्व है। इसी क्रम से कुलुई के दक्षिण म महासुई तथा पश्चिम की ओर मण्डियाली और कागडी बोलियाँ पडती है जो भारतीय आर्य परिवार की पहाडी भाषा की बोलियाँ है। कुलुई बोली को अपने वर्तमान रूप तक पहुँचने के लिए जिन परिस्थितियो मे से गुजरना पडा है वे स्वाभाविक्त तथा स्पष्टत वही है जिनका उल्लेख पहले ही पहाडी भाषा के उद्भव और विकास के सम्बन्ध म सविस्तार किया गया है। हम यह देख चुके है और भली प्रकार जानते है कि जहाँ इस क्षेत्र म प्रागैतिहासिक काल से यक्ष नाग, वानर, पिशाच, दैत्य, दानव और उसी तरह बाद मे गन्धर्व, किन्नर, किरात, भील, कोल आदि जातियो का बोलबाला रहा है, और उनकी बोली के अस्तित्व से इनकार नही किया जा सकता, वहीं इतिहास के प्रारम्भिक काल से लेकर यह क्षेत्र वैदिक ऋषि मुनियों की तपोभूमि तथा देवस्थान रहा है, और आर्य भाषा वैदिक, लौकिक प्राकृतिक तथा अपभ्रश रूप से गुजरती हुई हम तक पहुँची है। इस लम्बी अवधि मे इतिहास ने कितनी ही करवटें ली है, बेशुमार उथल-पुथल देखे है और असख्य सघर्षो का सामना किया है। इतिहास साक्षी है कि भारत मे आदि काल से लेकर आर्यो के प्रतिष्ठित हो जाने के बाद ग्रीक, शक, हूण, मिस्र, इरानियो, अरबो, तुर्कों, पठानो, मुगलो, पुर्तगाल डच, फ्रेंच और अग्रेजो के आगमन और आक्रमण हुए। वे स्वय भारत की सस्कृति और भाषा से प्रभावित हुए, और साथ ही उन्होंने यहाँ की भाषा-सस्कृति को प्रभावित किया। सैंकडो वर्षो तक उनके सगठित शासन प्रचलित रहे है। स्वाभाविक्त यहाँ के आदि और मूल निवासियो के साथ बाहर से आए विदेशी भाषा बोलने वालों, जिन्होंने स्थायी रिहायश की, के साथ सम्पर्क और सम्बन्ध स्थापित रहे हैं। मूल निवासियो और बाहर

से आए विदेशियों के पारस्परिक सम्बन्ध और सामाजिक आदान-प्रदान से भाषा मे जो रेलपेल हुई है उसके परिणामस्वरूप वर्तमान भाषा मे कई तत्वों का समावेश लक्षित होता है।

कुलुई बोली इस दिशा मे अपवाद नही हो सकती। इस पर भी वे सभी प्रभाव पड़े हैं जो देश की अन्य भाषाओं और बोलियों पर पड़े हैं। अत संस्कृत, प्राकृत, देशी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं से कुलुई के शब्द भण्डार मे वृद्धि हुई है। इसकी शब्द सम्पत्ति का हम निम्नलिखित शीर्षकों म अध्ययन कर सकते हैं —

(1) तत्सम शब्द,
(2) तद्भव शब्द,
(3) देशी शब्द,
(4) विदेशी शब्द,
(5) अनार्य भाषाओं के शब्द,
(6) आधुनिक भारतीय भाषाओं से उधार लिए शब्द।

(1) तत्सम शब्द

तत्सम का अर्थ है उसी समान। अत तत्सम शब्दों में अभिप्राय उन शब्दों से है जो संस्कृत से ठीक उसी रूप मे वर्तमान भाषाओं या बोलियों मे प्रयुक्त होते हो। तत्सम शब्द प्राय दो तरह से आते है। एक साहित्य के माध्यम से दूसरे बोल-चाल के माध्यम से। साहित्य लिखते हुए बहुत से शब्द ठीक संस्कृत रूप मे ही लिखे जाते हैं और बाद मे वे आम बोलचाल के शब्द बन जाते हैं। दूसरे शब्द वे हैं जो आरम्भ मे ही उसी रूप मे आए हों चाहे रीति-रिवाज मे विशिष्ट शब्दो के कारण या आम बोलचाल मे पीढी-दर-पीढी प्रयोग के कारण।

कुलुई मे साहित्य रचना नही मिलती, इस बात का पहले भी उल्लेख किया गया है। फिर भी, इसमे अनेक संस्कृत शब्द ऐसे है जो बिना किसी विकार के आज तक प्रयुक्त होते चले आ रहे हैं। ये शब्द कुल्लू के लोगो को संस्कृत से पीढी-दर-पीढी उसी रूप मे संस्कृत से विरासत मे मिले हैं। इनमे से कुछेक शब्द इस प्रकार हैं —

अग, अत, अति, अन्न, अम्बर, आशा, आत्मा, आदर, इद्र, ऋषि, ऋण, एक, ओर, ओम्, ज्ञान (गुरू नी ज्ञान, खोजू मुसल बूद्ध धान), कण, काया, काल, कपट, कील, कुण्ड, क्रोध, कथा, क्षुद्, कर्म, खार (चार खार नाज), खुर, गुण, गुर, गीत, गोत्र, ग्रह, गति, घोर, चूप्, चूर्ण, चिह्न, जाल, जत, डी, ढोक, डोर, ताप, तारा, तुर, तत्र, ते त्राण, तोल, तुलसी, तिल, तालु, त्याग, तीर्थ, तपस्या, दया, दयालु, देश, दूत, द्वार, देह, दाह, दूर, द्रोह, दान, देव, देवी, दोष, दशा, दुह, घन, धार, धूप (धूपणा), धर्म, धार (पाणी री धार), धाना, ध्यान, नाग, नाश, नारद, नीति, नरक, नगर, पाप, पाठ, पूजा, पाश, पशु प्रेत, पच, पिप्, प्राण, प्रचार, बिल, बिंदु, बल, बुद्धि, भोजन, भोग, भीति, भाग, भाष् (देज्ने भाषणा), मन, माया, मणि, मुक्ति, माघ, मिश, माला, मुण्ड, मुसल, मोह, मूर्ति, मान, मास, मत्र, मुख, मेल, महात्मा, मिश (गुम्फा), मूल, राशि, रोग, मित्र, रुध्

(जैसे कोमे रभू होना), रस, रंग, राग, रम, राहु, गति, गेय, रेखा, रच् (रचणा), रप् (रपणा), गोप, नाम, लोट, लेख, लग्न, लीला, लेप, मूल, शिखा, दान, शोभा, शिष्, घुर (घुरणा), दोष, शिव, शिवरात्रि, शील, मग समेत, सन्त, साधू, मुख, मक्खन, सूत, हत, स्वाद, स्वन, सूतक (जैसे सूतक न्हौठा) आदि।

कुलुई म बहुत-सी संस्कृत की तत्सम धातुएँ प्रयोग में आती हैं। संस्कृत में मूल धातु का केवल अन्य रूप बनाने का काम होता है, अपने-आप में ठीक उसी रूप में संस्कृत धातु प्रयोग में नहीं आती है। परन्तु कुलुई में संस्कृत तत्सम धातु आज्ञार्थ में ठीक उसी रूप में प्रयोग में आती है, जैसे—सं० कील्, कुलुई म 'एई रे कील' (इसको कील दो), सं० चूप् कुलुई में 'पाणी चूप' (पानी को चूस), सं० शिष् कुलुई में 'बास शिष' (गंध ले) आदि। कुछ तत्सम शब्दों का अर्थ किंचित इधर-उधर हो गया है. उदाहरणार्थ, संस्कृत में $\sqrt{}$क्षुद्' का अर्थ छिपाना, हटाना, खिसकाना है कुलुई में इसका अर्थ हटाकर साफ करना है। इसी तरह संस्कृत में $\sqrt{}$डी' का अर्थ 'उड़ना' या 'जाना' है कुलुई में इसका अर्थ केवल 'जाना' रह गया है। संस्कृत में $\sqrt{}$धुर' का अर्थ 'दौड़ना', 'दबाना', 'आगे धकेलना' है, परन्तु कुलुई में 'आगे घुस जाना है। वैदिक संस्कृत में $\sqrt{}$ढौक' का अर्थ 'पहुँचना', 'निकट लाना', 'प्रस्तुत करना' है। कुलुई मे 'ढौक' आम प्रचलित शब्द है, जिसका अर्थ 'पकड़ना' है—कताब ढौक 'किताब पकड़'। इसी तरह संस्कृत में 'त्राण' का अर्थ 'रक्षा' है परन्तु कुलुई में इसका अर्थ 'शक्ति' हो गया है, जैसे—प्राण सी त्राण नी रौहू 'प्राण है, शक्ति नही रही'।

ऊपर के विवरण म दिखाए सभी आम बोल-चाल के शब्द है। तत्सम शब्दो मे दिन प्रति-दिन वृद्धि हो रही है। इसका मुख्य कारण शिक्षा का प्रसार है। ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रसार होता जा रहा है, तत्सम शब्दो में वृद्धि होती जा रही है। इस वृद्धि की दो दिशाएँ हैं। प्रथम दिशा में शिक्षित व्यक्तियों के उच्चारण का अशिक्षित व्यक्तियों के उच्चारण पर प्रभाव हो जाने के कारण शुद्ध उच्चारण प्रयोग होने लगे है। यदि कुछ वर्षों पहले अशिक्षित समाज मे अमरत, आतमा, इदर, मतर, जतर, ततर, रतन, गरिह शब्दो का प्रयोग था अब शुद्ध अमृत, आत्मा, इंद्र, मंत्र, यंत्र, तंत्र, रत्न, गृह (गृह पूजा) उच्चारण अधिक सुनने मे आते हैं। यह प्रवृत्ति ध्वनि के शिथिल स्वरूप से तीव्र स्वरूप की ओर अधिमानता के कारण भी है। इसका एक और लाभ भी देखने में आ रहा है। जहाँ मामूली-मामूली दूरी पर ही, बल्कि व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, उच्चारण-भेद दिखाई देता था, अब वह भेद भी बड़ी तेजी से समाप्त होता जा रहा है। जहाँ कुछ लोग दौशा, तौप, नौगर, बौल, रौथ, धोर्म, कौया, नौरक, ओंग, शौंख, रौस, मौन शब्द बोलते थे, तथा अन्य क्रमश दैशा, तैप, नैगर, बैल, रैथ, धैर्म, कैया, नैरक, ऐंग, शैख, रैस, मैन आदि उच्चारण किया करते थे, वहाँ अब सभी एक जगह आकर अधिकतर प्रयुक्त रूप दशा, तप, नगर, बल, रथ, धर्म, कया, नरक, अंग, शख, रस, मन उच्चारण समझते और करते है।

तत्सम शब्दों की वृद्धि की दूसरी दिशा साहित्यिक रचना के क्षेत्र मे सम्बन्धित है। हाल ही में कुलुई मे छुट-पुट साहित्यिक रचनाएँ हो रही है। इन रचनाओ के

माध्यम से नये तत्सम शब्द आम बोल-चाल की भाषा में भी आने लगे है। इसके परिणाम-स्वरूप जहा एक ओर नये तत्सम शब्द बोल-चाल की भाषा का रूप धारण कर रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर बहुत से तद्भव शब्द तत्सम रूप धारण करने लगे है। अब नरायण परनिष्ठा, जयकार निरिकार मसात, नौनरे शब्द क्रमश नारायण, प्रनिष्ठा, जयकार, निराकार मासात, नवरात्रि बन गए है।

(2) तद्भव शब्द

तद्भव का अर्थ है 'उससे उत्पन्न' या 'उसके अनुरूप'। अर्थात तद्भव वे शब्द है जो सस्कृत शब्दो के ठीक समान नहीं है, बल्कि उनमे कुछ भेद आ गया है। परन्तु यह भेद विशेष क्रम से आया होता है। जब वैदिक भाषा लौकिक सस्कृत मे, सस्कृत भाषा प्राकृत में, प्राकृत भाषा अपभ्रश म, और अपभ्रश भाषा वतमान विभिन्न आधुनिक आर्य भाषाओ म परिवर्तित हुई थी तो इस परिवर्तन का विशेष क्रम रहा है। शब्द रूपो के ये परिवर्तन विशेष गति से होते रहे है और ये परिवर्तन शब्द रूपों के अनुसार विभिन्न नियमो से घटित हुए हैं। उदाहरणार्थ, एक नियम यह रहा है कि जब प्राचीन भारतीय आर्य भाषा अर्थात् सस्कृत के किसी सयुक्त अक्षर से पूर्व लघु स्वर होता था तो बाद की भाषा में सरलीकरण की प्रवृत्ति रही है और इस प्रवृत्ति मे सयुक्त अक्षर एक अक्षर में बदल गया, परन्तु छोडे गए अक्षर की क्षतिपूर्ति में सयुक्त अक्षर से पूर्व का लघुस्वर दीर्घस्वर में बदल गया—जैसे अद्य'से आज','कर्म'से 'काम' 'सप्त' से सात आदि। परन्तु सरलीकरण की इस प्रवृति मे सयुक्त या द्वित्व से पूर्व ह्रस्व स्वर के दीर्घ मे बदलने और सयुक्त में से एक के लोप होने का नियम एकदम प्रचलित नहीं हुआ था। इससे पूर्व ही दूसरा रूप भी बना था, जिसमे द्वित्व अक्षर तो बना रहा, परन्तु कुछ परिवर्तित रूप मे और वह भी केवल ह्रस्व स्वर के बाद। इस प्रकार आधुनिक भाषाओ मे तद्भव शब्द तीन चरणों म से होकर पहुँचे है—(1) सस्कृत > (2) आरम्भिक प्राकृत > (3) बाद की प्राकृत। या यो कह सकते है कि सस्कृत > प्राकृत > आधुनिक। कुछ उदाहरण इस प्रकार है, जैसे—अद्य > अज्ज > आज, पृष्ठ > पिट्ठ > पीठ, कर्म > कम्म > काम, सप्त > सत्त > सात आदि। कुलुई मे अनेक तद्भव शब्द हैं, उदाहरणार्थ कर्ण > कोन, हस्त > हाथ, गर्भ > गोभ, ह्रास् > होज, द्युति > दोथी, अक्षर > आखर, मस्तक > मोथा, अग्नि > औथी, पस्त्य > पौया, प्रस्तर > पाथर, वार्ता > भारथा, वर्तिक > बौती आदि। परन्तु कुलुई के सभी तद्भव शब्द ठीक प्राकृत नियमो के अनुसार विकसित हुए हों, ऐसी बात नहीं है। किसी भी भाषा या बोली मे ठीक प्राकृत नियमो से तद्भव शब्द बने नहीं मिलते हैं। हर भाषा या बोली के अपने नियम रहे हैं, या विभिन्न नियम प्रचलित रहे हैं, शब्द-रूप के विकास के कई नियम रहे हैं जिनमें से एक उदाहरणार्थ 'त' अक्षर लीजिए। आरम्भ में 'त' सुरक्षित था। बाद मे 'त' अक्षर 'द' में बदला और अन्तिम चरण में 'द' फिर 'अ' मे बदला या लुप्त हो गया। परन्तु यह प्रवृत्ति न सभी भाषाओं मे समान थी और न ही एक ही भाषा म सभी शब्दो मे ऐसा परिवर्तन समान रूप में प्रचलित हुआ।

यही कारण है कि कुछ शब्द रूपो को विद्वानों ने तद्भव न कहकर अर्ध

कहा है। अर्थात् जो शब्द तद्भव के नियमो के अनुसार न बनकर अन्य रूप मे विकसित हुए उन्हे अर्ध-तत्सम कहा गया है। उदाहरणार्थ तद्भव रूपों के नियमों के अनुसार सस्कृत कृष्ण मे वण्ण>वाण्ह>कान्ह रूप बनने चाहिए और बने भी। परन्तु साथ ही कृष्ण से किसण>किसनु रूप भी बने। ये अर्ध-तत्सम रूप हैं। धर्म से तद्भव रूप धम्म होना चाहिए या धाम। परन्तु शब्द धरम प्रचलित है जो अर्ध-तत्सम है। कुलुई म तद्भव और अर्ध-तत्सम दोनो तरह के अनेक शब्द विद्यमान है। ऐसे भी रूप है जो न मूल तद्भव नियमो से बने हैं, न अर्ध-तत्सम नियम से, वरन् अपने ही नियम से व्युत्पन्न हुए हैं। जैसे सस्कृत सर्षप से तद्भव रूप इस प्रकार बने—सर्षप>सस्सप>सस्सव>सार्सौ। इसी से अर्धतत्सम रूप इस प्रकार विकसित हुए—सर्षप>सरिसव>सरिसो>सरसौं[1]। परन्तु कुलुई मे इसके रूप इस प्रकार व्युत्पन्न हुए है—सर्षप<शाप>शाव>शाअ>शाई।

अत सस्कृत शब्द चाहे किसी रूप मे, तत्सम के अतिरिक्त अन्य तरह से, फेर-बदल के साथ आज विद्यमान हैं वे सभी तद्भव ही कहे जाने चाहिए। कुलुई मे तद्भव शब्द असख्य हैं। उन सबको प्रस्तुत करना यहा जगह इजाज़त नही देती। इनमे से अनेक शब्द स्वरो और व्यजनो की उत्पत्ति मे दिए गए हैं और वही देखे जा सकते हैं। कुछेक अन्य तद्भव शब्द यहा उदाहरणस्वरूप दिए जाते हैं—

अमरत<अमृत, आरशू<आदर्शिका, आपणा<आत्मन, आज<अन्त्र, आगे<अग्र, आगल<अर्गल, इस्ट<इष्ट, उल्ह<ऊधस, उआस<अमावास्य, ऊना<ऊर्ण, ऊझे<ऊर्ध्व, ऊखल<उलूखल, एडा<एतादृश, ओठ<ओष्ठ, ओडी<औड्रिक, औतरा<अपुत्रक, औधा<अर्ध, औग<अग्नि ।

कुण्ही<कफोणी, कलार<कल्याहार, काउडा<काक, काणा<काण, कोडा<कटक, कोल्ह<कुलाय, खोर्हा<खर, खिला<खिल, खिशखिशी<खुरखुर, गोरू<गोरूप, गरका<गरिमन्, गाई<गौ, गोरा<गौर, गोदला<गोधूलि, ग्रा<ग्राम, गोठ<ग्रथि, घाम<घर्म, घुघु<घूक, गौंच<गौ+मूत्र, गाची<गत्रिका।

चुक्री<चक्षुरोग, चुट<त्रुट, चाड<चण्ड, छेत<क्षेत्र, छौल<क्षल्य, जात्र<यात्रा, जू<युगल (हौल जूं), चाकर<चकोर, चाक्ला<चक्कल, चूंज<चञ्चु, चतर<चतुर, चूर्न<चूर्ण, चितरा<चित्र, चूलू<चुलु (पाणी रा चूलू), चूचू<चूचुक, चूंडा<चूडाल, चेट्टू<चेटक, छेलू<छाग, छाऊ<छाया, छिडा<छिद्र, छूरा<छुरिका, जीघ<जङ्घ, जौऊ<जौ<यव, जो<यम, जौश<यश, जौटा<जटा, ज्रिण<जन, जीभ<जिह्वा, जतन<यत्न, जामू<जम्बु, जौजरा<जर्जर, जागरा<जागरण, जान्हू<जानु, जुआई<जामातृ, जीऊ<जीव (पशु), जीऊ<जीव (प्राण, आत्मा), जोण<जोवन, झस<झष्, झीडी<झिंटि।

टाग<टङ्गा, टीका<तिलक, ठाकर<ठक्कुर, डण्ड<दण्ड, डाइण<डाकिनी, ढोल>ढोल, तौच्छ (णा)<तक्ष, तुश<तुष, तौट (णा)<तड, तरखाण<तक्षन, तौखे<तत्र, ताणा<तान (धागा), तोबडा<तुम्ब, तरावा<ताम्र,

1 डॉ० उदयनारायण तिवारी हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० 212

तीच्छा < तीक्ष्ण, तुन्ह (णा) < तुण् (किरडा तुन्हणा), तुरही < तूर्य, तेज < तेजस्, दछणा < दक्षिणा, दाढ (ना) < दश, दागुदा < दग्ध, दरड (णा) < दरणम्, दाड् < दाडिम, दिहाइण < दुहिता, दाढी < दाढिका, दाची < दात्रिका, दाच < दात्रम, दयाउणा < दयालु, दाउआ < दामन (बौछू रा दाउआ) ने < नी, दीउआ < दीवा < दीपक, जूव < दूर्वा, धतूरा < धतूरक, दोद < दन्त, दोदल < दन्तुर, धरणी < धरणि, धोला < धवल, धणिया < धान्या, धुक (णा) < धुक्ष, धुआ < धूम्र, धूड < धूलि धूई < धूलिका, धोज < ध्वज, न्हौश < नौश < नख, नाती < नप्तृ, नटेइया < नर्तक, नौला < नलकम, नूआ < नव, निहसी < नि सह, नौ < नव, नाटी < नाट्यम, नारसिंघ < नरसिंह।

पौद < पर्द, पाख < पक्ष, पछी < पक्षी पनाह < पुन (पनाह पाणा), पुन < पुण्य, परमेशर < परमेश्वर, पूनू < पूर्णिमा, पुहाल < पशु < पाल, पिहर < पितृ + गृह, बौत < वर्त्मन, फलुंगु < फल्गु, फाका (धाणा रा फाका मारना) < फक्क, बागर < वायु, बराल < विडाल, फलाहर < फलाहार, भरोट्ठ < भार, बूटा < वृक्ष, मोई < भय, भाडा < भाटम्, भाडा < भाडव (वर्तन), भडारी < भण्डारिन्, भारी < भारिक (भारी कुण केरना), भौर < भृ, भौंरा < भ्रमर, मौल < मल, मौल < मल्ल, मौसक < मशक, मींज < मस्तिष्क, मीला < अम्ल, मेहा < महिष, मेही < महिषी, मूशा < मूषक, मठेल (णा) < मद, मौलश < मश, मीज < मेदस।

रौशी < रज्जु, रौजणा < रजनम् (तृप्त होना), रोड < रण्डा (फूहड स्त्री), रोगी < रुग्न, रुड < रुण्ड (जैस रुड मुडला माण्हु = बिना सिर का आदमी), रुहणी स० रुह् धातु से, रोपा < स० रोप् धातु स, रुखा < रूक्ष, रोढा < स० आरुढ (जिस पर घराट खडा होता है और पानी के बल से चलता है), रूपा < रुप्यम, लाख < लक्षकम, लछमी < लक्ष्मी, लेंगडा < लङ्ग, लिढ < लङ्ग (उपपति, प्रेमी)।

यहा कुलुई के केवल कुछेक तद्भव शब्दो का परिचय दिया गया है, और जैसा कि पहले भी लिखा गया है, कुछ अन्य तद्भव शब्दो को देखने का अगले पृष्ठो और अध्यायो मे भी अवसर मिलेगा। वास्तव मे कुलुई बोली मे तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। *इसका मुख्य कारण यह है कि कुलुई मुख्यत दैनिक बोलचाल की भाषा है।* हिन्दी म प्रयुक्त कितने ही तद्भव शब्द कुलुई मे भी प्रयुक्त होते हैं, परन्तु उन्हे यहा दिखाना आवश्यक नही समझा जाता।

(3) देशी

देशी शब्द किसे कहते हैं, इसके बारे मे विद्वानो के विभिन्न मत हैं। मैक्समूलर के अनुसार आचलिक शब्द देशी शब्द कहलाते हैं।[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि देशी शब्द वे हैं जो भारतीय अनार्य भाषाओं से आए हैं।[2] डॉ० उदयनारायण तिवारी

1 F Maxmular The Science of Language . Translation by Dr Udey Narain Tiwari, p 116

2 डा० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० 68

देशी शब्दों में उन शब्दों का तात्पर्य लेते हैं 'जो भारत के आदिवासियों की भाषाओं तथा बोलियों से वैदिक तथा पाणिनीय संस्कृत एवं प्राकृत तथा नव्य आर्य भाषाओं में समय-समय पर आए हैं।[1] डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार देशज शब्द उन्हें कहते हैं जो (तत्सम, तद्भव, विदेशी) 'तीन में किसी में न हों अर्थात् उनकी व्युत्पत्ति का पता न हो, जो उसी क्षेत्र में जन्मे हों'।[2] डॉ० हरदेव बाहरी भारतीय आर्येतर शब्दों को देशी शब्द समूह का एक अंगमात्र मानते हैं। वे इनके साथ अनुकरणात्मक शब्दों को भी प्रमुख स्थान देते हैं।[3]

चाहे परिभाषाएँ कुछ भी हों, सभी विद्वान एक बात पर सहमत होते हुए नजर आते हैं और वह यह कि जिन शब्दों की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं होती वे देशज या देशी कहलाते हैं। ऐसे शब्द जिनकी उत्पत्ति संस्कृत के प्रत्ययों या धातुओं से सिद्ध नहीं होती विद्वानों द्वारा 'देशी' कहलाए गए हैं। कुलुई में देशी शब्द का बाहुल्य है। इसमें अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति समझना कठिन ही नहीं असम्भव सा लगता है। कुछ शब्दों को तो खींचा-तानी करने पर संस्कृत से जोड़ा जा सकता है, परन्तु यह सम्पर्क इतना दूर का लगता है कि इनके संस्कृत परिवार के होने में विश्वास नहीं आता। उदाहरण-स्वरूप ये शब्द दिये जा सकते हैं—छौशणा = सं० म्रक्षणम् (मालिश करना), निलिधिणा = सं० म्लान (मुरझाना), जाइरू = सं० उत्सर (पानी का चश्मा), दुहरू = सं० दम्पति तरौंक्का = सं० त्वङ्ग (छलांग देना), झीप = सं० उपस (सवेरा), झोख = सं० शका (चिंता) नाहलू = सं० नाभि आदि।

प्राकृत वैयाकरणों ने उन शब्दों को देशी की सूची में रखा है जिनकी उत्पत्ति संस्कृत से सिद्ध नहीं हो सकती थी। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार 'ये लक्षणे न सिद्धा, न प्रसिद्धा संस्कृताभिधानेषु' जो लक्षण द्वारा संस्कृत से सिद्ध न हो सकते हों, और न ही संस्कृत के अभिधान में आते हों, वे प्रायः देशज शब्द कहलाते हैं। अतः देशी शब्द यदि संस्कृत से सम्बन्धित नहीं हो सकते तो वे किसी विदेशी भाषा के भी नहीं आ सकते। क्योंकि दूसरे स्थान या देश से आए शब्द 'विदेशी' नाम से अलग श्रेणी में आ जाते हैं। स्पष्टतः देशी शब्द उस भाषा या बोली विशेष के अपने मूल शब्द ही होंगे। जो चाहे आर्य भाषा से पहले उनकी मूल भाषा के अवशेष हों या बाद में ध्वनि के अनुक्रमण द्वारा व्युत्पन्न हों। कुलुई में ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं —

आरिए 'झूठ', आगी 'अलग,' आरखण 'कपोणी', इलकण 'चील', इटका 'सख्त' (विशेषतः आटा का सख्त होना), उवण 'गेहूँ के खेत में एक घास जो गेहूँ के साथ आसानी से पहचाना नहीं जाता', उवड़-खाबड़ 'असमतल', उघण 'अन्दर का कमरा,' उगू (करना) 'बायकाट', ऊँघ 'बहाना', उबला 'उलटा', ऊरा 'बहुत चलने के बाद जब पिंडली में दर्द हो जाए तो "ऊरा एणा" कहते हैं', उल्ह 'धन', ओग 'कीला', ओडा 'खेतों की सीमा के लिए गाडा तिरछा पत्थर, ओणख 'तंग होणा', ओबरा 'कमरा', ओडक

1 डा० उदयनारायण तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य पृ० 97

2 डा० भोलानाथ तिवारी भाषा विज्ञान, पृ० 404

3 डा० हरदेव बाहरी हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' में तृतीय खण्ड पृ 323-4

'उसर', ओ ड 'जोडो मे दर्द' ।

कैंकणा 'टेढ़ा-मेढ़ा', कुरक 'बिच्छु बूटी', क्रिढ 'धूलि से भरी वायु' और 'Halo 'प्रभामण्डल', करिंगशा 'चिल्लाहट', करेंगटा 'टेढ़-मेढ़ा', कोशा 'काठ की थाली,' वियार्डा 'गर्दन का अगला भाग', खाज्री 'चर्म-रोग', खाता 'बडा खेत , खशखशा 'खुर्दुरा', खेशडी 'लगोटी', खोवरू 'दीवार मे सामान रखन के लिए बनाया छेद', गाश 'वर्षा', खेज़ा 'झझट , खेपरा 'मखौटा', धाही 'रीढ़', खुआरा 'रीठा' ।

विद्वानों का मत है कि देशी शब्द अधिकत तालव्य और मूर्धन्य वर्णो से आरम्भ होते है।[1] कुलुई मे ऐसे वर्णों से आरम्भ होन वाले शब्द अनेक है, जिनमे स कुछ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जाते है—चेका 'कमर', चौश 'अकस्मात कमर मे दर्द', चिहक (चौश), चा भ 'दलदल , चिलढा 'पानी मे आटा घोल कर तवे पर घी के ऊपर पकाई रोटी', चौट्ठू 'कमजोर और छोटे कद का आदमी', चे ता 'इलाज', चाम्नडा 'पनीला', चोर 'शहतूत की एक किस्म', चाटा 'तग' और 'पत्थर का ढेर', चीठा 'काला', चाहड 'वडी चट्टान', चाथर 'पतीला आदि का निचला तल , चेहुर 'सूर-लुगडो बनान के लिए सडाया गया अनाज', चाउड 'लक्डी का बना बरामदा', चेफला 'चपटा', चिफला 'फिसलने योग्य', चेड 'ईर्ष्या , चोकण 'पकाई दाल, सब्जी या मास आदि', चोल्हा 'अन्य सदस्यो से चोर कर बनाया भोजन', छाबड 'घास आदि का चौडा टोकरा' ।

छेका 'जल्दी', छाणग 'पवित्रता के लिए छिडकाव', छोण 'घास की छत', छलिंग 'चिगारी', छोड्ण 'कडियाँ', छू डा 'काफी', छोत 'त्रियाक्रम', छमका 'तडका' छौत्रका 'छलाग', छौडी 'जलाने की लक्डी', छौली 'मकी', छोरगण 'चकमक' ।

जाकण दाढ', जुआर 'फसल आदि का काम पूरा करने के लिए लगाए गाँव के आदमी जिन्हें केवल दो वक्त का खाना दिया जाता है', जुआड 'पशुओं द्वारा फसल का नुकसान', जीडा 'सत्त जो पकाए जाने के योग्य न हो', जुक 'नीचे—केवल बैठने और रखने के अर्थ मे, जैसे जुक बेश (नीचे बैठ), जुक डाह (नीचे रख)', जौल 'पत्थरो और झाडियो से भरा क्षेत्र', जाऊ 'वाष्प' ।

झि ह 'मायूसी, गमगीनी', झ था' लम्बे-लम्बे बिखरे बाल', झोक्ड 'पट्टू', झौरका 'चौडे पत्ते का एक पौधा', झीर 'जलाने की पतली लक्डी', झार'gregarious growth', झीफ 'घना घास', झौक्ड 'झाडियाँ', झीउण 'कद्दू-ककडी आदि पौधो के चढने के लिए शाखाओ सहित तना', झिमटी 'पुराने समय मे बालों का एक रिवाज, माथे मे चोटी तक बीच मे साफ, दोनो ओर लम्बे बाल', झौसा 'शोर', झोल 'चिता', झीक 'गुस्सा', झलक्दा 'सत्त गर्म जो जला दे' ।

टाला 'मकान की सबसे ऊपर की मजिल, टेर 'गर्दन मे मोच', टाटा 'गूँगा', टाट्ट 'मुह', टौर 'छोटा और पतला वृक्ष', टिश 'औजार से तख्ता समतल करना', टिपला 'बूँद', टुबला 'उलटा', टेपरा 'भीगी आखवाला', टूँहू ष 'घास का सजाया ढेर', टिमणा 'चभोना', टूरा 'खडे कान वाला' ।

टार 'घुटने और पैर के बीच टाग का अगला भाग', ठावला 'लक्डी का बडा

1. डा० उदयनारायण तिवारी - भोजपुरी भाषा और साहित्य, प्रथम खण्ड पृ० 20.

बर्तन', ठुरडा 'पैर'।

डागरा 'परात', डोई 'काठ की कड़छी, डुगरू 'दूध दुहने के लिए लकडी का गहरा बर्तन', डैंठा 'डडा', डाफ 'ठगना'—(गवारू शब्द माना जाता है), डांस 'डांफ', डाना 'घडा', डेंगा 'टेढा', ढेक 'खेत का अन्दर का किनारा', ढाक 'कमर मे बांधने का भाव, या कपडा', ढीहू र 'फोडा', ढोउमू 'विशेप प्रकार का नगारा'।

यहाँ क्रिया शब्दो को नही दिया जा रहा है, क्योंकि देशी क्रियाओं की अलग श्रेणी है, और उन्हें आगे 'क्रियापद' अध्याय में दिखाया गया है। मूर्धन्य तथा तालव्य के अतिरिक्त अन्य देशी शब्दो के कुछ उदाहरण और देखे जा सकते हैं —

तीक 'निशाना', तुधका 'तोदा', थाच 'भेंडों के लिए पहाडो पर चरागाह', थारडू 'ऊन काटने से पूर्व भेड के शरीर पर ऊन साफ करने के लिए विशेप कघी, थो र 'ढेर', थौनी 'गाए-बैल के बाँधने की अपनी-अपनी जगह', थिपी 'एक खेल विशेप', थेड 'रोटियो का ढेर', थोथर 'गाल', थौ र 'वृक्ष पर नरम पत्ता का गुच्छा'।

दारठा 'अन्न रखने के लिए एक बडी कोठडी, दराथ 'एक ढोल विशेप', दरिघडा 'चीथडा', धामधिम 'गहरी नीद', निखड 'कमजोर'।

पतोसड 'मट्ठा', पाऊ 'बाँट', पेहरू 'भेड बकरियाँ', पीठ 'जवान बकरी', भुरका 'लकडी का गिलास'।

फाढा 'गोद', फाट 'पहाडो पर घास का क्षेत्र', फाड 'तख्ता', फेटा 'वस्त्र', फेंवडा 'एक प्रकार का भोजन', फेंफणा (नाक) 'चपटा', फनेकडा = फेंफणा, फारा 'सोज़िश'।

बेउड 'खेत का बाहर का किनारा', बेटडी 'स्त्री', बाहुड 'मिट्टी का फर्श', बाठर 'नया चेला', बाथल 'असिंचित भूमि', बाघण 'सुराही'।

भोक 'बडा छेद' स० भुक, भुगरू 'चूरा', भौरलू 'बास की टोकरी', भेखल 'एक कांटेदार झाडी', भेटी 'निकट'।

मीज 'चरबी', माढ 'मुश्किल', मठिगला 'हाथ से बनाया ढेला,' मढेल 'ढेला', मूयू 'गर्दन', मेइड 'फर्श का निचला भाग', मोका 'सख्त पेट दर्द', मौका 'तुतलाने वाला व्यक्ति (तोतला)'।

रागडा 'छोटा घडा', रौगला 'ततैया', रोखला 'हाथ रहित', रेट्ट 'धागो आदि का गोला', रिल्हा 'चीथडा', रूड 'खुदक साली'।

लावर 'रान', लेगा 'गीला', लुब्रदा 'गीला', लिचडी 'आंख की मैल', लीचा 'कमजोर', लाटा 'लगडा'।

शायणा 'झडियाँ साफ करना', शेकट 'लकडी आदि का टुकडा', शल्खरा 'जवान बैल', शाड 'बयारी', शाढा 'खुरमानी', शेला 'बकरी की ऊन का चोगा', हीक 'छाती'।

जैसा कि पहले भी लिखा गया है देशी शब्दो मे अनुकरणात्मक शब्दो का विशेप महत्व है। कुलुई मे अनेक अनुकार ध्वनि-युक्त शब्दों का बाहुल्य है जैसे **गडाउडा** (बादल की गर्ज), **शणाऊ** (नदी की शण-शण ध्वनि), **गणाट** (गर्जन), **तरफोडिना** (तडपना), **लेराकचीका** (चीख-पुकार) **खडखड़ा** (उबड-खाबड), **चुरबरांदी** (चुर-चुर करती), **खशलशा** 'खुरदुरा', **खड़कणा** (खडखड करना), **भौड़कणा** 'बुड-बुड करना',

ठणकदा (टनटन करता हुआ), झरोहरा (झर-झराना), लोडाघोडा 'हेर-फेर', चणकदा (चन-चन करता), शगकदा (शग-शग करता, जब उबलते पानी मे आवाज आने लगती है), शलिहुकी (सीटी), ठिलमिणी (घटी घडयाल), फिम्फरी (फरफराती तितली), दरखडो(दात बजना), दगदगी (हृदय की धडकन), धकधकी 'दगदगी , कुड्‌-मुड्‌ (गोल-मटोल), तरोडखिगा (गुस्से मे बुडबुडाना), घुक्घुकी 'दगदगी , भण-भणी (बुरा लगना), ढणमगाठ (खाली कमरे की आवाज, गुम्बद), झिचणी (रस्सी का मूला)। इस प्रकार अनुकरण तथा प्रतीकों पर आधारित अनेक शब्द कुलुई मे प्रचलित हैं। ऐसे शब्दो मे क्रियाओं का भी विशेष महत्व है, जिन्हें क्रियापद के अन्तर्गत दिखाया जाएगा।

(4) विदेशी शब्द

आधुनिक भारतीय अन्य भाषाओं की तरह कुलुई मे भी विदेशी शब्दों का विशेष समावेश है। ऐसे शब्दों मे फारसी, अरबी और अग्रेज़ी शब्दों का बाहुल्य है। इनमे से अधिकतर शब्द तो राजस्व नीति और कचहरियों से सम्बन्धित हैं, जिनका आना इसलिए स्वाभाविक है, कि कचहरियों और माल के आम प्रचलित शब्द धीरे-धीरे साधारण रूप धारण कर लेते हैं और सामान्य शब्दावली के अभिन्न अग बन जाते हैं। इनके अतिरिक्त भी बहुत से अन्य शब्द हैं जो समाज के अन्य पहलुओं से सम्बन्धित हैं तथा जो हिन्दी और उर्दू के माध्यम से कुलुई मे प्रवेश कर चुके हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो उर्दू में उतने आम प्रचलित नही हैं परन्तु कुलुई मे दैनिक प्रयोग का आम रूप धारण कर चुके हैं। ऐसे शब्द प्रधानत ठीक मूल भाषा के तत्सम रूप मे हैं, परन्तु ऐसे भी शब्द है जिनमे ध्वन्यात्मक परिवर्तन आया है। उर्दू मे अरबी का रिज़क शब्द उस कदर आम प्रचलित नहीं है, जिस कदर इसका तद्भव रूप रिजक (कभी-कभी रिचक) कुलुई म दैनिक प्रयोग का शब्द बन चुका है—कुणीरा रिज़क सा, तेइरा रिज़क निभू आप-अपणा रिज़क आदि। इसी तरह उर्दू मे अरबी का 'जबर' का अधिक प्रयोग नहीं मिलता। परन्तु कुलुई मे 'ज़बर' रोज़मर्रा का शब्द है। हां, इसके अर्थ म थोडा सा अन्तर आ गया है। अरबी म 'जबर' का अर्थ शक्ति, अधिकता, हिंसा, दमन है। परन्तु कुलुई मे इसका अर्थ 'शक्तिवाला', 'ताकतवाला' है—ए बडा ज़बर सा (यह बडा ताकतवर है)। पुन, उर्दू मे फारसी के 'ज़ोर' शब्द का प्रयोग अधिकत सयुक्त रूप मे होता है, जैसे जोरदार, ज़ोरावर, ऐकिक रूप मे इसका इतना प्रयोग नही है, जितना कुलुई मे—एई आगे बडा ज़ोर सा (इसके पास बडा जोर है)। इसी तरह अरबी 'जौक' का अर्थ प्राय 'व्यक्तियों का समूह' है—जौक-दर-जौक। कुलुई में यह आम प्रचलित शब्द है, परन्तु इसका अर्थ प्राय 'ढेर' रूप मे प्रचलित है, जैसे—शिकारा जौक (शिकार का ढेर)। फारसी मे 'साफी' का अर्थ 'झाडन' है, परन्तु उर्दू मे बहुत कम प्रयुक्त होता है। कुलुई मे 'साफी' तम्बाकू पीने समय चिलम के नीचे रखा कपडे का गीला टुकडा है, ताकि तम्बाकू मुह मे न आए। नीचे कुलुई म कुछेक आम प्रचलित विदेशी शब्दों की सूची दी जाती है—

अरबी—असर, असल, अकल, अवल, असूल, अरज, तराज (एहतराज़), जरा (अजरा), उजरत, सान (एहसान), अखवार, इश्तहार, तलाह (इतलाह), फुआह (अफवाह), लाज (इलाज), औस्त, मान (ईमान), मानत (इमानत), इमतहान, उजर, इज्ञत (इज्जत), अतर, इलाका, उमर, खीर (आखीर), जाहर (जाहिर), करार (इकरार), इमला, मीद (उमीद), इंतज़ाम, इतकाल (इन्तकाल), नाम (इनाम), लाद (औलाद), काफी, कताव (किताव), खुरसी, कसर, कब्जा, कदर, कुरकी, किस्त, कायदा, कनून (कानून), किस्मत (किस्मत), क्सूर (कमूर), क्स्ई, कलम, केइद (कैद), कीमत, खसारा (कोमा रा खसारा पाऊ), खालस (खालिस), खाली, खराब, खर्च, खर्चा, खुलासी, गाज़ी, ज़राब (जुराव), ज़िरह (जरह), जिस्म, जलसा, जाज़त (इजाज़त), जमाइत (जमायत), जमा, जुआव (जवाव), ज्हाज (जहाज), जदी, जमूस (जासूस), जाल्ह (जाहिल), तवीज (तजवीज), तरक्की, तरकीव, तहसील, तसल्ली, तसवीर, तस्दीक, तरीफ (तारीफ) तलाश (तालाश), तमीज, तनाज़ा, ताकत, तबीयत, तक्लीफ, तकसीम, तकदीर, ता ना, तलाक, दालत (अदालत), दाखला, दरज, दाउआ < दावा, दमाग (दिमाग), दुआइत (दवात), दुआई (दवा), दौलत, धोस, नाजर, नसूर (नासूर), नवज, नतीजा, नज़ला, नुसखा, नसल, नशा, नौदर (नज़र), नफ्ह, नकद, नकशा, नक्सान (नुकसान), नकल, नीत (नियत), फाका (फाकह), फाइदा, फरज, फरक, फसल, फजूल, फौज, फैसला, बजन (वज़न), बकील (वकील), बाक्फ (वाक्फि), बाकी, बालग (बालिग), बहस, वदल, बरी होना, बसूल (वसूल) बकाया, बारस (वारिस) बियान, वसीयत, बैं करना, बरका (वरक), माल, मालक (मालिक), माहिर, महफल, महनत, मदरसा, मदाला, मद्दई, मुराफा, मरज़ी, मरमत, मज़ारा (मुजारह), मसाफर (मुसाफिर), मुश्तरीका (मुश्तरक्ह), मुश्किल, मशवरा, मशहूर, मसाला, मिसरी, मसीबत, मज़बूत, मतलब, मुआफ, मामला, मावज़ा, ममूली (मामूली), मकाबला (मुकाबिला), मकदमा, मकान, मनादी, मनहूस, मनशा, मुनशी, मज़्र, मौसम, मौका, मरासण (मिरासन), मियाद, ज़ादा (ज़्यादा), ज़ेउर (ज़ेवर), ज़ा (ज़ाया), ज़ब्र, जिदकरा (ज़िद्दी), जरूरत, ज़िला, ज़माना, राज़ी, रियायत, रो व (रअब जमाना), रकवा, रुका, (रकह), रक्म, रमाल (रुमाल), रूह (जैसे रुह—राखस), रौनक, रियासत, लिहाज, लिफाफा, लफ्ज़, शामलात, शान, शजरा, शरारत, शरबत, शरत, शुरू, शरीफ, शक, शकल, शादत, सालम (सालिम, पूरा), सुआल (सवाल), सेइल (सैर), सावण (साबुन), सामी (आसामी), सेहत, सफाई, सिफर, सलाह, सुलह, हाजर (हाजिर), हाल, ज्हामत (हजामत), हद (जैसे हद शोटी केरिया), ह्रामी (हरामी), ह्हाव (हिसाव), हक, हुकम, हुक्त (हिक्मत), लुहाई(हलवाई), होसला (हौसला), हीला (जैसे होला-वहाना केरदा), हाज़मा, हिस्रा, हुतहुता (हुद-हुद), हरजा (हरज), हिमत, हुव-हुव (हू-ब्हू)।

फारसी—आदमी, (आ) जाद, अफसोस, अगर, अदाज़ा, अंदर, अवारा, उआज़ (आवाज़), करिंडा (कारिंदा), कारआई (कारवाई), कारखाना, कारदार, कुरती, कारीगर, काश्त, कागद (कागज), किसती (किश्ती), कुशती, कमीना, कोशत (कोशिश), गुज़ारा, गुरज, गिरवी, गुलसोसन, खराक (खुराक), खानदान, गजाइश (गुंजाइश),

गुआह् (गवाह्), गमास्ता (गुमाशता), चादर, चाक (जैसे पेट-चाक), चलाक (चालाक), चाकर (नौकर-चाकर), च.गली (चुगली), चदा, जादू, जगीर (जागीर), पजामा (पाजामा), जाइदाद (जायदाद), जुआन (जवान), जोश, ताजा, धागा (तागा), तियार (तय्यार), तीर, तेज़, तरीका, दारू (इलाज, दवाई) दरआजा (दरवाजा), दोस्त, दोगला, दकान (दुकान), दल्हीज़ (दहलीज), नायब, नशाण (निशान), नर्म, नगरानी, निमदा, नमूना, नोकर, पाहुचा (पाइचा), पौडदा (परदा), परहेज़, पशम, पदीना (पोदीना), पियाला, पेच, फरगी, बज़ार (बाज़ार), बाज़ी, बगीचा, बखश (जैसे बखश देउआ), बखशीश, बराबर, बिस्तरा, बहाना, बेलचा, बमार (बीमार), बेहोश, माह (माश), मौलश (मालिश), मरद, मज़ा, मजादूर, मस्त, मुफत, मूमबती, मेख, यार, जकीन (यकीन), ज़ीमी (जमीन), रसीद, शीखा (शिकार), सौदा, सऊ (सेब, सेऊ), सुस्त, सज़ा।

तुर्की—उडदू (उर्दू), कलगी (क्लगी), काबू, कुली, तमगा, तुपक (बदूक-'तोप' मे), तोप, खचर, बहादर (बहादुर), बरूद (बारूद), चाकू, कैंची, ल्हाश (लाश), बेबी (बाजी, बडी बहन), बदूक(बदूक), गलीचा, दरोगा, मचलका, चमचा, बुछका (बुकचा)।

पुर्तगाली—अलमारी, कमीज़, कप्तान, कनस्तर, कमरा, इस्तरी, गदाम (गुदाम), गोभी, चाबी, चार (अचार), तमाकू (तम्बाकू), पस्तौल (पिस्तौल), पादरी, पीपा, बिस्कुट, बालटी, बटन, बोतल, मिस्तरी, मेज, नलाम (निलाम), तौलिया, सतरा, सागू (दाणा)।

फ्रांसीसी—ग्रेज (अग्रेज), कारतूस, कोपन (कूपन)।

अंग्रेज़ी—अफसर, इजण, इसपिक्टर, कापी, कट्रोल, कपनी, कोट, कम्पोडर, कार्ड, क्लर्क, कमेटी, गार्ड, जेल, टिकट, टिकस, डाक्टर, ड्राइवर, डिग्री, डिपू,दर्जन, नर्स, नोट, नोटस, पार्सल, पेंसल, पुलस, फार्म, पेन, पील (अपील), पेंट, फीस, फोट्ट, फेशन, बकसा, बोट, बास्कोट, बाईसिक्ल, बूट, बनेन, बरट, बटन, मास्टर, मनिआडर, मनेजर, मशीन, मिट, मील, मोटर, रपोर्ट, रेल, रेडू, रबड, राशन, लैम्प, लालटीन, लेट, लाइन, समन, स्प्रे, सिनमा, सूट, सिगरिट, साइटी (सोसाइटी), स्कूल, सार्टिफकेट, स्लेट, स्टाम, हस्पताल, होटल।

सरलीकरण की प्रवृत्ति

विदेशी शब्दो के उपर्युक्त उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि कुलुई मे विदेशी शब्दो के अपनाए जाने पर ध्वन्यात्मक परिवर्तन की प्रवृत्ति लग भग वही रही है जो प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के मध्यकालीन रूप के परिवर्तन मे हुई है जैसे—पूर्व स्वर का लोप-लाज<इलाज, मान<इमान, तलाह्<इतलाह्। 'व' की श्रुति हुई है—दुआई<दवाई, दुआत<दवात, दरुआजा<दरवाजा आदि, या 'व' प्राय 'व' मे बदल गया है। इसी तरह 'क' पूर्णत 'क' मे, 'ख' प्राय 'ख' और 'फ' पूर्णत 'फ' मे बदल गए हैं। च-वर्गीय अक्षरो की च-वर्गीय रूप मे बदलने की प्रवृत्ति विदेशी शब्दो की दिशा मे भी स्पष्ट है। इस सम्बन्ध मे विस्तार से आगे विचार किया जाएगा।

इसी सम्बन्ध मे एक दूसरी बात भी व्यक्त होती है, और वह यह कि कुलुई मे विदेशी शब्दो के अपनाए जाने की स्थिति मे सरलीकरण की प्रवृत्ति का प्रभाव रहा है। वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के विकास मे सरलता की प्रवृत्ति बडी प्रबल रही है। प्राय यह प्रवृत्ति मुख्यत दो दिशाओ मे अग्रसर हुई है, प्रथम सस्कृत की विभक्तियो के स्थान पर स्वतन्त्र कारको का अस्तित्व मे आना तथा दूसरे सयुक्त अक्षरो का लुप्त होना। परन्तु इस सरलीकरण की एक तीसरी दिशा भी है और वह प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के कठिन शब्दो की अधिमानता मे विदेशी शब्दो का प्रयोग है। कुलुई मे यह बात उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है। सस्कृत के स्वतन्त्र, ध्वनि, प्रयत्न, साक्षी, पाठशाला, समाचारपत्र, पुरस्कार, प्रस्ताव, प्रसन्न, अधिकार, उपस्थित, व्यय, विशेष, प्रश्न, निर्धन, अशुद्ध, सम्पत्ति, सदेह आदि कठिन शब्दो की बजाय क्रमश (आ)ज़ाद, उआज़, कीरत, गुआह, स्कूल, अखबार, (इ) नाम, तबीज (तजवीज़), खुश, हक, हाजर, खर्च, खास, सुआल, गरीब, गलत, जाइदाद, शक आदि विदेशी शब्दो ने समाज मे स्थान ग्राहण किया है। जहाँ तक कठिन विदेशी शब्दो के आगमन का प्रश्न है उनके साथ कुछ विशेष धारणाओ की पृष्ठभूमि है। उर्दू जबा काफी समय तक प्रशासन और न्यायालय की भाषा रही है। अत फारसी और अरबी के कई कठिन शब्द इन प्रशाओ के माध्यम मे प्रवेश कर चुके हैं, और अब सामान्य समझ और प्रयोग के शब्द बन गए हैं, जैसे—

(क) माल-राजस्व तथा कर—मामला, तस्दीक, तक्सीम इतकाल, रूबरू, दाखलखारज, शनाखत, जमाबदी, पटवारी, कानूगो, किश्त गरदाउरी आदि।

(ख) न्यायालय तथा विधि—(अ) दालत, कुर्क जरा (उजरा), चकौहरी, तहसील, तसीलदार, नायब, दिवानी, फौजदारी, मकदमा, मुखतियार, दाउआ, कानून, पेशी, जमानत, (अ) पील, मरफा, मुद्दई, मदाला, गुआह चलान, समन, दरखास्त आदि।

(ग) शासन—नौकर, तनखाह, स्तीफा, दफतर, अरजी, खज़ाना, स्हाब, बदली, फौज, सरकार, मुस्तक्लि, हुक्म, कसूर, उजर, प्यादा आदि।

(घ) शिक्षा—बस्ता, तख्ती, कलम, दुआइत, कागद, मदरसा, इमला, इमतहान, नतीजा, मु शी, इस्पिक्टर, मेज़, कुर्सी, बरजिश, स्लेट, सियाही, जमाइत, मनीटर, कताब आदि।

(ड) सस्कृति—गलीचा, निमदा, पाहुचा, पौडदा, पशम, रेशम, शाल, सलुआर, कुर्ता, कोट, साफा, पियाला ज़ीरा, मेइदा बदाम, सौदा सोहर, शादी आदि।

अद्भुत संमिश्रण

कुलुई मे विदेशी शब्द इस कदर घुलमिल गए हैं कि उन्हे अब विदेशी पहचानना कठिन है। हर भाषा मे शब्द निर्माण प्राचीन भारतीय आर्य भाषा और विदेशी भाषाओ के उपसर्गों ओर परसर्गों से हुआ करता है। परन्तु कुलुई मे प्राचीन भारतीय आर्य भाषा मे आए तत्सम, तद्भव, देशीय तथा विदेशी शब्दों का इतना अद्भुत तादात्मय है कि

अब यह कहना कठिन है कि कौन सा शब्द किस स्रोत से आया है। बोल-चाल की भाषा में विभिन्न स्रोतों के शब्द एक रूपता धारण कर ही लेते हैं परन्तु एक ही शब्द, एक ही वाक्यांश में दो विभिन्न स्रोतों के शब्दों का मेल बड़ा रोमांचकारी है। जैसे—सान-गुण नी बुझदा' में 'सान' अरबी शब्द 'एहसान' है और 'गुण' संस्कृत शब्द है। इसी तरह 'राअदेऊ' में 'राअ' अरबी शब्द 'रिआया' है और 'देऊ' संस्कृत 'देव' अर्थात 'जनता का देवता।' कुछ और उदाहरण देखने योग्य हैं—

'बखश' फारसी+'देऊआ' सं० देव	=बखश देऊआ 'हे देवता क्षमा करें'।
'मान' संस्कृत+'इज्जत' अरबी इज्जत	=मान इज्जत नीं रौही 'कोई इज्जत न रही।
'मुण्ड' संस्कृत+'नौदरी' अ० नज़र	=मुण्डा-नौदरी नी बोलदा 'सामने नहीं कहता।'
'लाज' अ० इलाज+'कारी' सं० कार्य	=लाजकारी ता रज केरी 'इलाज आदि तो बहुत किया।'
'रुह' अरबी+'राख्स' सं० राक्षस	=रुह-राखस भी निभे 'राक्षस आदि भी समाप्त हुए।'
'सेर' फारसी+'टौल्हा' देशी	=सर-टौल्हा नी दें दे 'भोजन-कपड़ा नहीं देते।'
'ओकती' सं० औषधि+'दारू' फारसी	=ओकती-दारू वक्ते केरी 'इलाज समय पर करना'।

इसी तरह नाता रिश्ता (सं० नात+फा० रिश्ता), जेउर-गहणे (अ० जेवर+हिं० गहना), सौदा-पतरा (फा० सौदा+सं० पत्र), मान धर्म (अ० ईमान+सं० धर्म) नाऊ नशाण (सं० नाम+फा० निशान), राशण-पाणी (अंग्रे० राशन+हिं० पानी)

कुलुई में विदेशी शब्दों का सहयोग इसकी शब्दावली में वृद्धि करने में कई तरह से बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। एक ही भाव की दो भाषाओं के शब्दों में भिन्नता प्रकट हुई है। 'भूचाल' के लिए कुलुई में 'हिलण' (हिन्दी 'हिलना' से) तथा 'जौजरी' (अरबी 'जलजला) शब्द प्रचलित हैं। परन्तु दोनों में भेद है। साधारण भूकम्प हो तो 'जौजरी', परन्तु भारी भूकम्प हो जिसमें हानि भी बहुत हो तो 'हिलण' होता है। 'खातर' शब्द के दो अर्थ हैं—'तेरी खातर आऊ हाऊ' में इसका सम्बन्ध अरबी 'खातिर' से है (तेरी खातिर आया मैं), परन्तु 'आल् री खातर' में 'खातर' शब्द सं० 'क्षेत्र' का तद्भव रूप है। कुलुई में 'फाका' शब्द दो अर्थों में प्रचलित है। जब इसका अर्थ 'किसी भोज्य पदार्थ को मुट्ठी में भरकर मुंह में डालकर खा लेना हो तो इसका सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'फक्क' (निगलना) से है, जैसे—चाउला रा फाका मार'। जब इसका अर्थ 'फाके लगना' है तो इसका सम्बन्ध अरबी शब्द 'फाक़ह' (अनशन, उपवास) से है, जैसे 'मारी दिहाड़ फाका लागा'। फारसी का 'दरगाह' आम प्रचलित शब्द है, परन्तु यह 'मठ, मढ़ी, मस्जिद, मकबरा' नहीं है, बल्कि 'किसी पुण्य स्थान पर कर्ज चुकाना है, जैसे

दई'। फारसी 'पाइचा' से प्रसूत कुलुई 'पाहुचा' का अर्थ 'पाजामे की एक टाग' नहीं है, बल्कि 'एक ऐसा मोजे या जोड़ा है जो घुटन से टखने तक ऊनी कपड़े का बना होता है'। इसी तरह अरबी शब्द 'मिजाज' से कुलुई रूप 'जमाज' बना तो अर्थ में भी कुछ अन्तर आ गया है। मिजाज का अर्थ 'स्वभाव, तबीयत, मनोवृत्ति' है। परन्तु कुलुई 'जमाज' का अर्थ 'नाज-नखरा' है और उससे विशेषण 'जमाजतला' (नखरेबाज) भी आम प्रचलित शब्द है।

(5) अनार्य भाषाओं के शब्द

पुस्तक के पूर्व भाग में पहाड़ी भाषा के उद्भव और विकास पर चर्चा करते हुए यह उल्लेख किया जा चुका है कि आर्य लोगों के इस भूखण्ड में पदार्पण करने से पूर्व इस भू-खण्ड में कोल, किन्नर, किरात और खश जातियों का बोल-बाला रहा है। हमारे प्राचीन अभिलेख *इस बात के प्रमाण हैं कि ये सभी समय समय पर सुसभ्य और सुसंस्कृत* जातियां रही हैं यहां तक कि इनकी रीति रिवाज और संस्कृति का आर्य संस्कृति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। संस्कृत साहित्य में खश, किन्नर, किरात जातियों का स्थान-स्थान पर संदर्भ आता है। इन में से खश तो आर्य जाति में ही सम्बन्धित माने जाते हैं, यद्यपि जो भाषा वे बोलते थे वह भारतीय आर्य भाषा नहीं थी। हिमाचल प्रदेश के भीतरी पहाड़ी का लोक साहित्य खशों के हवालों से भरपूर है। किन्नौर, शिमला, सोलन सिरमौर जिलों में इन से सम्बन्धित कितनी ही लोक-गाथाएं प्रचलित हैं। उपरि-शिमला और किन्नौर में आज भी खशों को उच्च-राजपूत परिवार समझा जाता है। या लगता है कि कुल्लू में खश लोग समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त न कर सके थे, या उन्होंने इस क्षेत्र में अत्याचार ढाए होंगे क्योंकि समस्त कुल्लू क्षेत्र में खश के नाम से गाली दी जाती है। खशों का कुल्लू में प्रभाव रहा है, इस बात का प्रमाण इसी बात से स्पष्ट हो जाता है। किन्नर लोग कुल्लू के साथ लगते किन्नौर जिला में आज भी प्रतिष्ठित समाज के रूप में रहते हैं। मलाणा गांव किरातों किन्नरों का गढ़ है। मलाणा कुल्लू का प्राचीन काल से एक भाग रहा है यद्यपि यहां के लोगों की भाषा और संस्कृति मूल कुल्लू वादी से भिन्न रही है। कुल्लू की आबादी में वर्तमान कनैतों और कोलियों का बहुत बड़ा अनुपात है। इनका सम्बन्ध प्राचीन खश और कोल जातियों से सिद्ध होता है।

कोल भाषा को अब मुण्डा भाषा कहा जाता है। हम यह देख चुके हैं कि पहाड़ी *की अन्य बोलियों के साथ-साथ कुलुई में क्रिया की अश्लिष्टता का मुख्य कारण मुण्डा भाषा का प्रभाव है।* मुण्डा का कुलुई पर *यह प्रभाव क्रियाओं के रूपों तक सीमित नहीं है।* इसका शब्द भण्डार भी अनेक मुण्डा शब्दों को अपनाए हुए है। सथाली में कजिया का अर्थ लड़ाई-झगड़ा है और कुलुई में यह आम प्रचलित शब्द है तथा इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे —पाऊ कजिया ?' (डाल दिया झगड़ा ?)। सथाली का एक और शब्द 'बतर' है जो मौसम के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कुलुई में भी इसका इसी भाव में आम प्रयोग होता है और कुलुई में मुख्यतः 'बातर' शब्द का प्रयोग खेतों में नमी का भाव देता है—बातर खरी सा की नी ? (नमी ठीक है या नहीं)। इसी तरह 'झप झप', 'लकलकी', 'धकधक'

आदि अनेक मथाली अनुकरणात्मक शब्द कुलुई म प्रचलित है।

कुलुई के *अनार्य शब्दा म* 'किरानी' का विशिष्ट स्थान है। विद्वानो का मत है कि कनाशी और किन्नौरी भाषाओं मे जो शब्द तिब्बती, चीनी और सस्कृत म बाहर है, वे किराती हैं तथा उनका मुण्डा भाषा से सीधा सम्बन्ध है। 'मलाणा' की भाषा को डा० ग्रियर्सन ने 'कनाशी' नाम दिया है। इसके लगभग पचास प्रतिशत शब्द किरानी हैं। *यह बडी विचित्र बात है कि चारो ओर से आर्य परिवार की भाषा मे घिरी होने के बाव-*जूद भी मलाणा की भाषा अपने प्राचीन रूप को सुरक्षित रखे हुए है। उसका लगभग आधा शब्द-भण्डार न आर्य परिवार से है और न तिब्बती म सम्बन्धित है। मलाणा ने न केवल प्राचीन भाषा को सुरक्षित रखा है, वरन् उसने कुलुई को बहुत से अनार्य शब्द प्रदान किए है। कुलुई मे स्त्री के लिए प्रयुक्त शब्द **'बेटडी'** मलाणा का मूल किरानी शब्द है। सारे पहाडी क्षेत्र में पाजामा केवल एक शब्द से अभिव्यक्त होता है और वह मलाणा का किरानी शब्द **'सूथन'** है। इसी तरह कुलुई म जवान बैल के लिए प्रयुक्त **शाखरा'** शब्द मलाणा का 'शाकरस्' है। कुल्लू म माता और पिता के लिए आम प्रचलित क्रमश शब्द **'या'** और **'बा'** का सम्बन्ध भले ही सस्कृत 'जननी' और अरबी 'बाप' या हिन्दी बावा' से जोड दिया जाए परन्तु असल म ये दोनो शब्द मूल रूप मे किराती शब्द है जो मलाणा मे इसी रूप मे प्रयुक्त होते हैं। इसी तरह कुलुई **'खाख'** मलाणा-किराती 'खखँग (मुह, विशेषत खुला मुह), कु० **मुथू** कि० मुथुँग् (गर्दन), कु० **ठुरडा** कि० 'टुरडा' (पैर), कु० **फेटै** कि० 'फेटे' (बाद, 'तेवे न फेटे' उसके बाद) कु० **रियास** कि० 'रियास' (घना जगल) कु० माजा, कि० माजाग (चारपाई) आदि अनेक शब्द सीधे और पूर्णत किरानी रूप हैं, तथा अनेक अन्य शब्दो मे ध्वन्यात्मक परिवर्तन आया है। उदाहरणार्थ कि० कोर्योग् कु० कठी, कु० सिराजी 'चेई' कि० चेमी (बेटी), *कु० सि० 'चीश' कि० तीह् (पानी प्यास), कु० सि० छेउडी' कि० छेस् (स्त्री),* कु० सि० 'चोन' कि० शुम, तिब्बती सुम (तीन) आदि। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि आर्य से पूर्व किरात जाति का इस भूखण्ड से विशेष सम्बन्ध रहा है। महाभारत, रामायण और कुमारसम्भव मे इनका स्थान स्थान पर सदर्भ आता है, और इन का जो हाव भाव तथा प्रभाव क्षेत्र दिखाया है, उनस इनका इसी क्षेत्र से स्पष्ट सम्बन्ध जुडता है।

जहाँ तक खश जाति के शब्दो का सम्बन्ध है, पहाडी क्षेत्र की शब्दावली मे उन का विशेष अशदान है। कुलुई मे जो पहले 'देशी' शब्दों के अन्तर्गत सूची दी गई है, उनमे मे अनेक शब्द खशो की भाषा से सम्बन्ध रखते है, जिसे विद्वान खश प्राकृत भी कहते हैं। इस सम्बन्ध मे कुछ अन्य शब्द भी दिए जाते हैं जो न केवल कुल्लू मे वरन समस्त पहाडी क्षेत्र मे बोले जाते है। खशों से सम्बन्धित हारों' (गाथाओं) मे इन शब्दो का प्रयोग मिलता है।[1] चरेडा 'पक्षी का बच्चा', चोपड 'मक्खन', हुणा 'जिसका ओठ कटा हो', झूरी 'प्यार', भूमण 'बुरका', खापरा 'बूढा', छेका 'जल्दी', टॅटा 'आँख', टापरी 'खेतो मे बनी छोटी झोंपडी', टुल्हणा 'ऊघना', टब्बर 'कुटुम्ब', तकडा-तगडा

1. देखिए हिम भारती, दिसम्बर, 1971, पृ० 18 20

'मजनून', तक्ली—ठरना 'ऊन कातने के लकड़ी के औजार', निहामे 'एक प्रकार की गाली', फाडी 'आखरी' आदि।

श्री राहुल साकृत्यायन के अनुसार 'किन्नर जाति का सबसे पुराना स्तर है किरात। आर्यों से पहले खशो के साथ उसका समागम हुआ मालूम होता है।[1] उनके अनुसार किन्नौरी भाषा मे सस्कृत, तिब्बती और किराती भाषाओ के तत्त्व मिले हैं। स्पष्टत किन्नौरी भाषा मे जहाँ एक ओर भारतीय आर्य भाषा सस्कृत का अशदान है, वहाँ दूसरी ओर अनार्य भाषा किराती, और तिब्बत की भाषा तिब्बती का भी इसमे मिश्रण है। सस्कृत भाषा के शब्द और गुण उसने अपनी पडोसी भारतीय आर्य भाषा से लिए हैं जिनमे कुलुई एक है। और, इसके बदले मे किन्नौरी ने अपनी अनार्य किराती भाषा से पडौसी बोलियो को प्रभावित किया है। इस बात का प्रमाण न केवल कुलुई वरन् पडोस की अन्य पहाडी की बोलियो मे विद्यमान ऐसे किन्नौरी शब्दो स मिलता है जिनका सम्बन्ध सस्कृत या तिब्बती से नही है। कागडी, मण्डियाली, चम्बयाली, कुलुई आदि पहाडी की सभी बोलियो मे प्रयुक्त डूंगा या डूघा (गहरा) शब्द किन्नौरी का डूंगस् है। इसीतरह पहाडी की सभी बोलियो मे चटाई के लिए स्थानीय शब्द माजरी, मादरी या बदरी कुछ और नही किन्नौरी का किराती शब्द 'मदली' है। खुले मुह' के लिए पहाडी मे आम प्रचलित शब्द 'खाख' किन्नौरी किरानी 'खाखड्' है, जो मलाणा मे 'खखग' रह गया है। इसी तरह किन्नौरी-किराती का 'कदम' के लिए शब्द 'गोम्फा' कुलुई और महा-सुई मे 'गोई' तथा मण्डियाली, बिलासपुरी तथा कागडी आदि अन्य बोलिया मे 'गे' रह गया है। इसी तरह 'शोर' के लिए पहाडी तथा हिन्दी की कुछ ग्रामीण बोलियो मे प्रयुक्त 'रौला' शब्द भी सम्भवत किराती शब्द 'रोलड्' से आया हो। यही स्थिति किराती 'टब्बर' की है जो पहाडी मे आमतौर परतथा हिन्दी की ग्रामीण बोलियो मे प्राय 'परिवार' के लिए प्रयुक्त होता है।

किन्नौरी किराती के कुलुई मे प्रचलित कुछ और शब्द भी देखे जा सकते है,जो उदाहरणस्वरूप यहाँ दिए जा रहे है—

किन्नौरी–किराती 'गाचिग्'=कुलुई गाची (अगोछा, कमरकस), कि० कि० रापोटो=कु० रेट्टू (बडी अट्टी), कि० कि० 'कुशनड्'=कु० कुशी (अट्टी), 'टोक्टो-क्याग्'=टकटक (आहट), 'सोनिड्'=सोन्ह (इशारा), पशरिड् =पाशड (करवट), 'मारी'=माडा (खराब), 'खाशरा'=खशखशा (खुरदुरा), 'लाटा'=टाटा (गूँगा), 'अबू'=काकू (चाचा), 'ठोटी'=ठूठी (चिलम), 'गूलिड्'=गूली (चूतड, जाघ), लारो' =लाडा (दुल्हा), ठुरेनमू=ठूरना, ठोर मारना (दौडना), 'डोकड्'=ढौग (हि० ढाक, पहाड), 'सूथण'=सूथण (पाजामा), 'गोप'=गप (बहुत, जैसे—गप मीठा सा), 'टीपू' =टीपू (बूद, हिन्दी का टपकना इसी से देशी धातु बनी है), 'चोपरड्=चोपड(मक्खन, हिंदी की चुपडना किराती चोपड से ही देशी क्रिया बन गई है।)

यह ज्ञातव्य है कि किनौरी किराती म शब्द का अन्तिम अक्षर बोला नही जाता या धीमा अथवा रूक के उच्चरित होता है। इसलिए डूंगस्, खाखक्, रोलड्, गाचिड्

1 राहुल साकृत्यायन किन्नर देश, पृ० 292

आदि शब्दों के पहाड़ी रूप डुगा, साल, रोला, गाची ध्वनि प्रवृत्ति के अनुकूल हैं।

(6) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं से उधार लिए शब्द

कोई भी भाषा अपने आस-पड़ोस की भाषाओं के प्रभाव से खाली नहीं रह सकती। भाषा समाज के व्यवहार की वस्तु है। जिस प्रकार समाज में हर प्रकार के आदमी मिलते हैं, उसी प्रकार विभिन्न बोलियों तथा भाषाओं में भी आदान-प्रदान होता रहता है। कुल्लू के लोग कुल्लू से बाहर कामों पर जाते रहे हैं, वे वापसी पर अपने साथ बाहर की भाषाओं के शब्द लाते रहे हैं। बाहर से व्यापारी लोग आते रहे हैं और उनकी भाषाओं के शब्द कुलुई के अंग बन गए हैं। जिस कदर एक भाषा दूसरी भाषाओं के शब्द और गुण ग्रहण कर सकती है, उसी कदर वह अधिक सम्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त, यह एक सर्वव्यापी तथ्य है, कि भारत की विभिन्न भाषाओं में मूलभूत समानता पाई जाती है। इस समानता के पीछे भारत की श्रेष्ठ संस्कृति है, जिसने न केवल विभिन्न सम्प्रदायों को एक सूत्र में बाँधे रखा है, अपितु इनकी भाषाओं को भी समान रूप प्रदान किया है। कुलुई में अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के शब्दों के उदाहरण निम्न रूप में देखे जा सकते हैं —

गढ़वाली—कल्यार=कलार<कल्याहार, कूँजी <कुंचिका, आगल<आर्गल, गोठ<गोष्ठि, खाब<कु० खाख (मुँह), जियू<जीव, ध्याण=ध्याइण<दुहिता, परार (पिछले से पिछला वर्ष), पौर<परुत, पराल (भूसा), पाला (तुषार), भूई<भूमि, मुँदडो=मुँदड़ी (अगूठी), जोई<युवती, बलद (बैल), स्यूँ<सीमा, सूर<सुरा, ऊन, भैरू<भैरव, ऐगू<एपम्, आखर, गोरू (मवेशी), लछण<लक्षण, डाइण=डैण <डाकिनी, थान, घाम (गर्मी), घिऊ<घृत।

पंजाबी—औखा (कठिन), टिकणा=टेकणा, ठुकणा=ठोकणा, डाँग, ढुघा, ठुँगा, तगड़ा=तकड़ा टुर=तुर, धक्क=धाक, पोंचा=पाहुचा, फाका, फिट्टे (मुँह), बाँका, मुकणा, मजा=माँजा, लक्कड़=लक्ड़, लोड (कुलुई मे लोड का अर्थ माँग नहीं है, बल्कि 'चाहिए' है) खोसा, निगर, निरा, खप्प, खट्टणा, घूटणा, पुगणा, नठणा, सदका, दिहाड़ा, जट्टा=कु० जोटा, नेड़े, वेल=कु० वेहूल, सियाणा, नियाणा=याणा।

भोजपुरी—जोई (पत्नी), ढेबुआ (पैसा), ओछा=ओधा (छोटा), ओठ, भूई (भूमि), जोर, बाछी=बौछी (बछिया), गोरू<गोरूप, गेहूँ, मुण्ड, पोथी, बधन<बर्धन, गुआल=गुआला, पाहुन=पाहुणा, घाम<घर्म, किआरी, पीठा < पिष्टक, छूरी, छेनी, जतन=जतन<यत्न, झूमक=झूमकू, सझा=सोझा<सध्या, हाट, कटारी, ठाकुर, ठठेरा, ठेला, डोर=डोरि, डबरा=डावरा (पीतल का चौड़ा बर्तन), डेरा, डाइनि=डाइण< डाकिनी, धाई < धातृ, नाती <नप्तृ, माहुर=कु० माहुरा (विष)।

मगही—उलटी (कै), कड़ी (छप्पर में लगाने की लकड़ी), कच्छा=काछा, कदीमी (मौसमी), करारा, कलमी (कलम लगाया फल-पौधा), काँसा, कागजी (नर्म), काढा=काढ़, किल्ली=किली, कोठी, कोदइ=कोदरा (एक अन्न), खलड़ी (खाल), खूर<क्षुर, गाभिन=गोभण, गारा (मिट्टी का मसाला), गोरू (मवेशी)

(गर्मी), चीन्हना (पहचानना), चुनचुनी (शरीर में खुजली), चोखा (शुद्ध) छींका =कु० छींका (रस्सियों से बना बर्तन रखने का थैला), छूछा = छूछा (सादा, कजूस), जबर (बलवान), जीउ < जीव, जुआन (जवान) जोर, टिपना =कु० टिपणा (दबाना) ठिकरी, डोरी (रस्सी), ढुकना =कु० ढुकणा, (घुसना), देबुआ (पैसा), तडके (सवेरे), *दगदगी—धुकधुकी—धकधकी (हृदय की धड़कन), नाता (सम्बन्ध), नाता-गोता =कु०* नाता-पोता, पतियाना (विश्वास करना कराना), फुल्ला =कु० फुला (आँख का रोग) बटलोई =कु० बटलूई या बटूई, बासमती, बिगहा =कु० बीघा, बिसरना (भूलना), बुक्का (हृदय), भनभनी =कु० भणभणी (बुरा लगना), मसाल =कु० मसौला (मिशाल), मसालची, रदा, रोपा, रोट (बडी रोटी), लांघना (पार करना), लीद (पशुओं का मल), लोटकी (छोटा लोटा), सरह (रिवाज), साढ़ू (साली का पति), हाट, हाड-मांस, हेरना (देखना)।

छत्तीसगढ़ी—*ओवरी, आखर, इरखा =कु० हिरख < ईर्ष्या, ऊन, एतरा* (इतना), केतरा (कितना), कटोरा, कात < कृत (कटारी), कागद, काढा, गूह (टट्टी), घाम, चूची =कु० चूचू, छोटका (छोटा), चोखा, झोथा =कु० जथा, झूथा (यूथ), टोपा, ठाकुर, डाइन = डाइण, डोरा, दूजे, देउल < देवकुल, बलद (बैल), मडा =कु० मौडा < मृतक, माउली < मातृ+ली, निहचै < निश्चय, भीती, भीतर, भाजी, हूम।

निमाडी—आँगण, आणी (लाई), एतरा (इतना) ऊवल, कदी (कभी) काजली *(काली, कजरारी गाई), काठी, काली, काला (काला)*, कुण (कौण), कूकडो = कूकड, केतरो =कु० केतरा (कितना), खीचा =कु० खीसा (जेब), घाम, घीऊ < घृत, चोखा, छान =कु० छान (छप्पर), डेल =कु० डेहूल (ड्योढी), ताता = तौता *(गर्म)*, दुई (दो), धौरा (धौरे, ठेहरो), न्हाटो =कु० न्हौठा (गया), नेडा =कु० नेड (निकट), परात (बडी थाली), पियर =कु० पिहर-पेउका (मायका), भांडा (वर्तन), मुंदडी (अंगूठी), रूपा (चांदी) लाडा (दुलहा), लाडी, सई =कु० सेई (समान), सउक = सउका (सौत), हाऊ =कु० हाऊ (मैं), हांक =कु० हाक (पुकार), हाडका (हड्डी)।

अध्याय—3

ध्वनि तत्त्व

भाषा ध्वनियो का समूह होती है। किसी भी आवाज़ को जो हमारे कानो मे पड़े, ध्वनि कहते हैं। एक पत्थर के दूसरे पत्थर या वस्तु के साथ टकराने से जो 'टक' सी आवाज निकलती है, या पानी मे किसी वस्तु के गिरने से जो 'छल' सा शब्द निकलता है, साधारण शब्दो मे ये सभी ध्वनियाँ हैं। किन्तु भाषा-विज्ञान मे किसी भाषा विशेष की केवल किसी सार्थक ध्वनि को ही ध्वनि कहते हैं। यहाँ केवल वही आवाज़ या शब्द ध्वनि है, जिसका कोई अर्थ निकले। किसी भाषा मे अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त छोटी सी छोटी आवाज़ जिससे अर्थ स्पष्ट हो जाए, उस भाषा की ध्वनि कहलाती है। जब हम 'सात' और 'साठ' शब्द कहते हैं, तो हमे तुरन्त पता लगता है कि 'त' और 'ठ' अलग-अलग ध्वनियाँ है, क्योकि उन के कारण ही 'सात' का अर्थ 'साठ' से भिन्न है। कान, जान, मान, दान, थान शब्दो के आदि के सभी व्यजन ध्वन्यात्मक दृष्टि से एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। ये पृथक्-पृथक् ध्वनियाँ हैं।

चूंकि ध्वनि भाषा की मूल विशेषता है, अत हर भाषा की ध्वनिया ही वस्तुत. प्रथम आधार हैं जिनके कारण एक भाषा दूसरे से भिन्न होती है। हर भाषा की अपनी-अपनी ध्वनियाँ होती है, और इनकी सख्या भी हर भाषा मे अलग होती है। किसी भाषा मे ध्वनियो की सख्या अधिक होती है, और किसी मे कम।

हिन्दी आदि भारतीय आर्य भाषाओ की ध्वनियाँ सस्कृत से आई हैं। परन्तु हर एक मे न सस्कृत की सभी ध्वनियाँ सुरक्षित हैं, और न ही सब का हू बहू वही रूप आज तक पहुँच सका है। विद्वानो ने सस्कृत की ध्वनियो की विभिन्न सख्याएँ गिनाई हैं। वायुपुराण तथा कौटिल्य के अर्थ शास्त्र मे त्रेसठ ध्वनियो का उल्लेख है। पाणिनीय शिक्षा मे चौसठ वर्ण माने हुए है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य मे 68 अक्षरो का उल्लेख मिलता है। उस समय अ, इ, उ और ऋ के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन-तीन रूप होते थे। इसी तरह ए, ऐ, ओ और औ के दीर्घ और प्लुत दो दो रूप मिलते हैं। हिन्दी मे वर्णो की सख्या अधिक कम रह गई है।

स्वर-ध्वनि

कुलुई भाषा को भी अपनी स्वर सम्पत्ति सस्कृत से ही मिली है, परन्तु इस लम्बे समय मे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश मे से गुजरते हुए इनकी सख्या कम हो गई

है, परन्तु हिन्दी से कही अधिक है। सस्कृत की कुछ ध्वनिया वर्तमान हिन्दी मे पहुँचने तक अपना उच्चारण बदल चुकी हैं, परन्तु इनमे से कुछ कुलुई मे सुरक्षित हैं। कुलुई मे हिन्दी के ह्रस्व और दीर्घ स्वरो के अतिरिक्त उनके प्लुत रूप भी विद्यमान हैं। हिन्दी की मुख्य ध्वनिया देवनागरी लिपि मे लिखी जाती हैं, परन्तु कुलुई की अतिरिक्त ध्वनियो को देवनागरी लिपि मे व्यक्त करना कठिन है। इसकी उच्चारण सम्बन्धी अपनी विशिष्टताओ को व्यक्त करने के लिए देवनागरी लिपि मे कुछ चिह्नो का प्रयोग करना होगा।

अ, आ

हिन्दी मे अ और आ दो कण्ठ-स्वर हैं। कुलुई मे इनके कई उच्चारण सुनने मे आते हैं, जिन्हें साधारणत इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

'अ' कुलुई का अर्धविवृत मध्य स्वर है। इसके उच्चारण मे जिह्वा अपने प्राकृतिक स्थिति से किंचित पीछे हटती है और इसका मध्य भाग कदरे ऊपर उठता है। ओठ कदरे खुल जाते हैं, परन्तु न अधिक ज्यादा न अधिक सक्र होते हैं। अ का व्यवहार अनेक शब्दो मे मिलता है, जैसे—सट-पट, लटा-फटा, नगर आदि। कुलुई मे 'अ' शब्दों के आरम्भ में बहुत कम प्रयुक्त होता है, क्योकि कुलुई मे आरम्भिक 'अ प्राय 'ओ' मे बदल जाता है। यहा तक कि कई स्थानो मे उपर्युक्त उदाहरणो के उच्चारण भी प्राय सोँट-पोँट, लोँटा-फोँटा, नोँगर मिलेंगे। शब्दो के मध्य और अन्त मे इसका उच्चारण स्पष्ट मिल जाता है। इसका सबसे उत्तम उच्चारण तीन अक्षरो वाले शब्दो के दूसरे अक्षर के साथ मिलना है, जैसे—बागर, चादर, सावण, बाथण, गौभण शब्दो के मोटे अक्षरो के साथ इसका उच्चारण स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है।

'अँ' कुलुई मे ह्रस्व स्वर 'अ' का और अधिक ह्रस्व रूप है। इसे अ' का लघु उच्चारण कहना चाहिए। द्रुत गति के साथ शब्दो के उच्चारण होने पर इस स्वर का प्रयोग होता है। अपने से अगले शब्द मे स्वराघात के कारण प्राय ऐसा होता है। उदाहरणार्थ, 'मौगर' शब्द मे 'ग' के साथ 'अ' स्वर है। परन्तु जब यही शब्द 'मौगरा' रूप मे प्रयुक्त होता है, तो 'ग' का 'अ' और अधिक लघु सुनाई देता है, मानो 'मौग्रा'। इसी तरह शाधर परन्तु शार्धॅरा, चाकल परन्तु चाकॅला, पीतल परन्तु पातॅला आदि।

'अऽ' विवृत अग्र स्वर है। यह 'अ से अधिक दीर्घ, परन्तु 'आ स अधिक ह्रस्व स्वर है। इसे मान स्वर 'आ' का ह्रस्व रूप माना जा सकता है। इसका उच्चारण भी मान स्वर 'आ' के कदरे आगे स होता है। जिह्वा का मध्य से कुछ पीछे का भाग ऊपर उठता है। ओठ खुले होते है परन्तु अधिक फैलते नही। इसके उच्चारण मे ओठा मे हल्की सी हरकत होती है। इसका मुख्य उदाहरण अऽसारा 'हमारा', अऽपणा < अपना, जऽला 'जाहिल' आदि शब्दो मे मिलता है। इनका उच्चारण न क्रमश असारा, अपणा और जला है तथा न ही आसारा, आपणा और जाला आदि। इसी तरह 'शऽला' शब्द न तो 'शला' है और न ही 'शाला' बल्कि यो लगता है जैसे 'शअला' (कदरे खुला)। शअबर' (लाठी), 'लअबर' (पट), 'गअबड' (पशु) आदि शब्दो मे क्रमश श, ल और ग के साथ

तो 'अऽ' स्वर है और तीनों शब्दों में 'व' में 'अ' स्वर है।

इस स्वर के दूसरे स्पष्ट उदाहरण हिन्दी के कुछ द्वित्वाक्षर वाले शब्दों के कुलुई रूप में मिलते हैं, जैसे—हिन्दी बच्चा कुलुई बऽचा, हिं॰ पत्थर कु॰ पऽथर, हिं॰ बदर कु॰ बऽदर, हिं॰ झब्बल कु॰ झऽबल हिं॰ ठण्डा कु॰ठऽण्डा आदि। जैसाकि पहले लिखा गया है कुलुई में आदि 'अ' स्वर 'ओ' में बदलता है। परन्तु कुलुई शब्दों में यदि कहीं 'अ' स्वर आरम्भ में सुनाई देता है तो यह प्राय 'अऽ' ही है, जैसे—अऽणा, अऽमारा, अऽक्खर 'अक्षर', अऽगला 'अगला', आदि। कुलुई का यह स्वर तिब्बती भाषा का प्रभाव लक्षित करता है। तिब्बती में व्यजनों का उच्चारण हिन्दी की तरह नहीं होता। वहाँ 'क' का उच्चारण कऽ है। इसी तरह ख >खऽ, ल >लऽ, ज >जऽ आदि। व्यजनों की ऐसी दीर्घ ध्वनि के कारण ही तिब्बती के कई व्यंजन मूलरूप में ही सार्थक हैं, जैसे—ख 'मुँह', ङ 'मैं', ज 'चाय', 'फ' पिता, ब 'गौ', र 'बकरी' आदि।

'आ' कुलुई का विवृत, दीर्घ, पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जिह्वा का पिछला भाग कुछ ऊपर उठता है, 'अ' से भी कदरे पिछला भाग। परन्तु जिह्वा का अगला भाग प्राय समतल रहता है। मुख उपर्युक्त सभी 'अ' की अपेक्षा अधिक खुलता है। यह स्वर कुलुई के आदि, मध्य और अन्त सभी स्थिति में मिलता है, जैसे—आरशू 'आरसी', आटा, धागा, चाल, काला, शेता 'सफेद' आदि।

इ, ई

कुलुई ध्वनियों में सबसे अधिक कठिन स्पष्टीकरण तालव्य स्वरों का है। जिन लेखकों ने कुलुई को देवनागरी लिपि में लिखने का प्रयत्न किया है, उनमें इ और ई का प्रयोग समान नहीं मिलता। यदि कोई लेखक किसी शब्द को 'इ' से लिखता है, तो दूसरा उसे 'ई' में लिखता है। यही नहीं, एक ही लेखक एक ही शब्द को विभिन्न स्थानों पर कहीं इ से और कहीं ई से लिखता है, जैसे कहीं 'इन्हावे' कहीं 'ईन्हावे' (इनको), 'शिल्हा' या 'शील्हा' (सायदार), 'गुआइरा' या 'गुआईरा' (खोया है) 'निहाइणा' या 'निहाईणा' (नहाना) 'त्रिजा' या 'त्रीजा' (तृतीय) 'शिखा' या 'शीखा' (शिकार) आदि। इसका मुख्य कारण यह है कि जहाँ कुलुई में 'इ' और 'ई' का प्रयोग मिलता है, वहां इस दिशा में इन दोनों से भिन्न अन्य ध्वनि भी है जो दोनों से अधिक प्रयुक्त होती है।

'इ' कुलुई में सवृत, ह्रस्व, अग्र स्वर है। इसके उच्चारण म जीभ का अग्रभाग कठोर तालु के साथ साधारण स्पर्श करता है, तालु पर जोर नहीं डालता, बल्कि स्पर्श शिथिल रहता है। ओठ कुछ अधिक फैले होते हैं। शब्दों के आरम्भ में यह इलमान्न (तुरन्त), इजत (इज्जत), इलकण (चील), इटका (सस्ता) जैसे शब्दों में मिलता है। अन्त में इसका प्रयोग नहीं होता, परन्तु मध्य में इसका रूप अधिक मिलता है, जैसे—काइल (एक वृक्ष), धाइल (घायल), निहालणा (नि+भालना) आदि।

'ई' दीर्घ, सवृत, अग्रस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का अग्र भाग ऊपर उठकर कठोर तालु के निकट स्पर्श करता है। 'इ' की अपेक्षा स्पर्श अधिक दृढ़ है। परन्तु कुलुई 'ई' का स्थान हिन्दी 'ई' में कदरे नीचे है, जीभ के दोनों किनारों का स्पर्श उतना कठोर

तालु के निकट नही है जितना हिन्दी मे होता है। ओठ कदरे खुले और फैले हुए रहते हैं। इसका प्रयोग शब्दो के आदि, मध्य और अन्त मे मिलता है, जैसे—ईण (गिद्ध), ईशर (नाजुक), महीन (बारीक), तीर, जोई (पत्नी), बेटडी (स्त्री) आदि।

इस श्रेणी मे, इन दोनो से भिन्न ध्वनि को 'इॅं' द्वारा दिखाया जा सकता है। कुलुई मे 'इॅं' अत्यधिक प्रचलित ध्वनि है। इसका उच्चारण ह्रस्वता तथा दीर्घता की दृष्टि से उपर्युक्त दोनों इ और ई के बीच है। इसके उच्चारण मे जिह्वा कदरे सीधी रहती है। अर्थात् इ और ई मे जहां जिह्वा अधिक गोल हो जाती है इॅं मे उतनी गोल नही होती। इ मे जिह्वा के दोनों पार्श्व ऊपर तालु से कुछ अग्र भाग पर स्पर्श करते हैं, ई मे कठोर तालु के निकट परन्तु इॅं मे इन दोनो के बीच का भाग तालु से छूता है। जीभ तालु के निकट जाकर मुख विवर को सकरा तो करती है, परन्तु जीभ के दोनो सिरे तालु से लग-कर अर्धवृत बना देते हैं। तालु के साथ जीभ का सम्बन्ध न अधिक सुदृढ है न अधिक शिथिल। ओठ न 'ई' की तरह अधिक फैले होते है न 'उ' जैसे गोलाकार। इसका प्रयोग कुलुई मे अधिक है, जैसे—रिॅंण < ऋण, तिॅंजी > तृतीय, शिॅंमा < श्लेष्मा, भाइॅंड 'धर्म भाई' आदि।

उ, ऊ

'उ' कुलुई मे सवृत, ह्रस्व, पश्च स्वर है। इसके उच्चारण मे जीभ का पिछला भाग किंचित ऊपर उठता है, परन्तु बहुत अधिक नही उठता। ओठ आगे को बढते है, परन्तु पूर्ण वृत्ताकार नही होते। हिन्दी 'उ' की अपेक्षा कुलुई 'उ' अधिक शिथिल है। यह शब्दो के आदि, मध्य और अन्त मे प्रयुक्त होता है, जैसे—उचडा 'ऊंचा', उमर, काउणी (एक अनाज), कड़ुआ 'कडवा', घुगु 'कबूतर', कुतु (छोटा कुत्ता) आदि।

'ऊ' सवृत, दीर्घ, पश्च स्वर है। इसका उच्चारण मान स्वर ऊ से कुछ नीचे होता है। 'उ' की अपेक्षा 'ऊ' के उच्चारण मे जिह्वा का पिछला भाग अधिक ऊपर उठता है और लगभग पूर्ण सवृत की स्थिति मे होता है। ओठ अधिक वृत्ताकार होने है। इसका प्रयोग शब्दो के अन्त मे अधिक होता है। यो भी कुलुई उ कारांत प्रधान है, परन्तु इनम से 'ऊ' सबसे अधिक अन्त मे प्रयुक्त होता है। नाथू, भगतू, ध्यानू आदि सज्ञा नामो म 'ऊ' ही प्रचलित है। बोलू, उठू, शाधू आदि क्रिया के भूतकालिक रूप म भी 'ऊ' का ही प्रयोग है। आदि और मध्य मे इसका प्रयोग कम होता है, जैसे—ऊना 'ऊन', शूल 'पेट दर्द', दूत आदि।

उपर्युक्त दोनो से भिन्न कुलुई मे एक अन्य ध्वनि को 'उॅं' रूप से दिखाया जा सकता है। इसका उच्चारण-स्थान इतना पीछे नही है जितना हिन्दी 'ऊ' का है। इसमे जीभ का स्पर्श कोमल तालु से होता है और यह स्पर्श शिथिल है। दीर्घता की दृष्टि म यह उ और ऊ के बीच की ध्वनि है, परन्तु 'ऊ' के अधिक निकट है। ओठ वृत्ताकार होते हैं, परन्तु पूर्ण वृत्तमुखी नही। ओठ बहुत आगे नही निकलते। इसका उच्चारण शब्द के आदि मध्य और अन्त मे मिलता है, जैसे—उॅंण्डाएँ (यूंही), उॅंभ्रला (उलटा), बिउॅंन्त (तजबीज), जेउॅंड (निचला किनारा), बेउॅंरा (पागल), देउॅं < देव, हिउॅं < हिम, घिउॅं

'घून', सेउँ < सेतु आदि

ए, ऐ

कुलुई म 'ए' हिन्दी 'ए' की भाति है। यह अवृतमुखी, अग्र, अर्धसवृत और दृढ स्वर है। इसमे मुँह लगभग इतना ही खुलता है जितना 'अ' के लिए खुलता है, ओठ मामूली से अधिक विस्तृत होते है। कुलुई 'ए' शब्दो के अन्त म प्राय प्रयुक्त नही होता। शेष शब्द के आदि और मध्य मे इसका प्रयोग होता है, जैसे—एतरा 'इतना', एणा 'आना', केजडा 'कितना', छेत 'खेत', कडेड 'अभिमान', नेड 'निकट' आदि।

'ऍ' कुलुई मे 'ए' का ह्रस्व रूप है। इसका उच्चारण-स्थान ए तथा ऐ के लगभग मध्य कदरे ऐ की ओर झुका है। इसके उच्चारण मे जीभ केन्द्र की ओर खिच जाती है, और मध्य भाग किंचित दब जाता है। ए से ऍ मे जान के लिए मुँह अधिक खुल जाना है और जीभ का तालु से स्पर्श ढीला हो जाता है, अर्थात् जीभ के दोनो पहलु ऊपर की दाढो की जडो से स्पर्श करते है, परन्तु ए जैसे दृढता से नही। यह स्वर अधिकतर शब्दो के अन्त मे प्रयुक्त होता है, यहाँ तक कि हिन्दी के ए से अन्त होने वाले शब्द कुलुई मे प्राय ऍ-अन्तिम हो जाते हैं, जैसे—हिन्दी केले > कुलुई केलें, हि० चेले > कु० चेलें, हि० जिले > कु० जिलें, हि० करेले > कु० करेलें आदि। कर्ता-कारक मे शब्द का विकारी रूप अर्थात् 'ने' की अभिव्यक्ति के लिए शब्द मे जो विकार आता है, वह यही 'ऍ', है—एइऍ 'इसने', शोहरूऍ 'लडके ने', बेटें 'बेटेने' आदि। इसी विकारी रूप से ही इस ध्वनि का ठीक उच्चारण पहचाना जा सकता है। कर्म कारक का प्रत्यय 'बें' (को) इसी ध्वनि मे हैं—मूबें 'मुझे', शोहरी-बें 'लडकी को' आदि। आरम्भ मे ऍ प्रयुक्त नही होता। मध्य में इसका उच्चारण सुनने मे आता है। लिखित लेखो मे आजकल लेखक शब्दो के अन्त मे जो 'ऐ' का प्रयोग करते हैं, वह वास्तव मे 'ऍ' है। आजकल मुद्रण कठिनाई के कारण इसे 'ऐ' रूप मे ही लिखा जा रहा है। परन्तु उचित यह है कि इसे 'ए' से लिखा जाए अन्यथा लिखित कुलुई हिन्दी से बहुत दूर चले जाएगी। ऍ का उच्चारण ए की अपेक्षा 'ऐ' से निस्सन्देह अधिक निकट है, परन्तु केवल इस निकटता के कारण पहले, दूजे, सीधे, बडे, केले, बेटे आदि असख्य हिन्दी शब्दो को, जो कुलुई मे आम बोल-चाल के शब्द है, पहलै, दूजै, सीधै, बडै, केलै, बेटै आदि रूप मे लिखना अधिक उचित न होगा। मूल रूप मे यह मान स्वर ऍ के अधिक निकट है।

'ऐ' अर्धविवृत, दीर्घ, अग्रस्वर है। कुलुई 'ऐ' अपने अनुरूप 'ऍ' से दो दिशाओ मे भिन्न है—एक जीभ की स्थिति और दूसरे ओठो का आकार। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है ऍ मे जीभ के दोनो पहलु ऊपर की दाढो की अन्दरूनी जडो से स्पर्श करते हैं, परन्तु 'ऐ' मे जिह्वा दाढो की जडो को नही, प्रत्युत सिरो को छूती है। ऐ मे ओठो का आकार अग्रस्वरो मे मे 'इ' को छोड कर अन्य सबमे अधिक फैला होता है। 'ऐ' मे ओष्ठो का फैलाव 'ई' से कुछ ही अधिक होता है। इस ध्वनि का सबसे स्पष्ट उच्चारण उन शब्दो मे सुनाई देता है जहा सस्कृत या हिन्दी 'अ' को 'ऐ' बदल दिया जाता है। नियमन कुलुई मे 'अ' को 'ओ' मे बदलने की प्रवृत्ति है जो भीतरी पहाडी की सभी

बोलियो की मुख्य विशेषता है। परन्तु शहरो के निकट के निवासी इस मौलिक प्रवृत्ति का जान-बूझ कर या बाहरी प्रभाव के कारण पालन नही करते। इस प्रकार 'डर' को डौ`र (डौर) न कह करके 'डॅर' कहते हैं। इसी तरह, 'चल' को 'चौल' न कह करके 'चॅल', मत>मौन>मॅत, पकना>पौकणा>पॅकणा, आदि।

ओ, औ

कुलुई मे 'ओ' अर्धसवृत, दीर्घ, पश्चस्वर है। यह वृत्तमुखी स्वर है, परन्तु इसमे 'ऊ' की अपेक्षा ओष्ठ कम गोलाकार होते है। इसके उच्चारण मे जीभ का पिछला भाग कोमल तालु से छूता है, परन्तु जीभ तालु मे जाकर मुख विवर को 'ऊ' जितना सकरा नही करती। ओ का प्रयोग शब्दो के आदि मध्य और अन्त मे समान रूप से मिलता है—ओस 'ओस', ओठ 'ओष्ठ', ओवरा 'कमरा', लोक 'लोग', 'कमोडी 'चीटी', रो, धो, छो, सो आदि।

कुलुई का 'ओ' अर्धविवृत पश्चस्वर है। इसका उच्चारण 'ओ' और 'औ' के बीच कदरे ओ के निकट है। जैसे ए और ऐ की अपेक्षा एँ का प्रयोग कुलुई मे अधिक है, वैसे ही ओ और औ की अपेक्षा 'ओँ' का प्रयोग कही अधिक है। 'ओँ' मे ओ की अपेक्षा मुँह अधिक खुलता है, ओठो का आकार कम गोलाकार होता है, और अधिक फैलते हुए दीखते है। ओ उच्चरित करते समय जीभ का जो पश्च-भाग कोमल तालु से स्पर्श करता है, 'ओँ' मे उससे भी किंचित पिछला भाग कोमल तालु से स्पर्श करता है, परन्तु स्पर्श कुछ शिथिल होता है। अग्रेज़ी के ब्लॉक, रॉक, आदि मे जो 'ऑ' की सी ध्वनि होती है, कुलुई 'ओँ' उसके निकट सी है, परन्तु कुछ भेद जरूर है। अग्रेज़ी 'ऑ' का स्थान नीचे 'आ' की ओर है, परन्तु कुलुई 'ओँ' की कदरे ओ की ओर ऊपर को है। इसका प्रयोग आरम्भ, मध्य और अन्त मे मिलता है, जैसे—ओँग>अग्नि, ओँज>अद्य, ओँठ<अष्ट, घोँड 'सड', कोँ 'कहाँ' आदि।

कुलुई मे आज कल ओँ को प्राय 'ओ' रूप मे लिखा जा रहा है, क्योकि कुलुई में मूल 'औ' का रूप 'अउ' मे परिणत होता नजर आ रहा है। मूलत 'औ' का स्थान 'ओँ' से कुछ ऊपर है। औ मे ओष्ठ ओँ से अधिक गोलाई की ओर झुकते हैं। औ का अधिकत प्रयोग सध्यक्षर के रूप मे होता है। तब इसका ओँ से भेद स्पष्ट प्रकट होता है, जैसे—मोँत (मत) परन्तु मौत (मृत्यु), ओँखेँ (यहा) परन्तु औखेँ (कठिनता से), ओँज़ (आज) परन्तु औज़ (अपवित्रता) आदि।

इस प्रकार स्वरों के उच्चारण मे जिह्वा के अग्र, मध्य तथा पश्च भाग के प्रयुक्त होने तथा जिह्वा की तालु से ऊँचाई (सवृत) और निचाई (विवृत) होने के आधार पर कुलुई के स्वरो को निम्नलिखित स्थिति मे व्यक्त किया जा सकता है —

	अग्र	मध्य	पश्च
सवृत	ई		ऊ
	इ		उँ
	इँ		उ

अर्धसंवृत	ए		ओ
	ऍ		ऑ
अर्धविवृत	ऐ	अ	ओँ
विवृत	अऽ	ॲ	आ

प्लुत ध्वनियाँ

कुलुई मे प्लुत ध्वनियाँ हिन्दी तथा कुछ अन्य आर्य भाषाओं से अधिक व्यवहार मे आती हैं। सम्बोधन तथा आह्वान मे तो प्लुत ध्वनियो का प्रयोग मिलता ही है, कुलुई मे यह कोई खास बात नही। इस सम्बन्ध मे कुलुई मे एक दूसरी मुख्य विशेषता है, और वह यह कि अधिकता, प्रमुखता या अधिमानता दिखाने के लिए ध्वनि सर्वदा प्लुत हो जाती है। कुल्लू के लोग जब कोई अधिकता, न्यूनता या विशेषता आदि दिखाना चाहते हो तो बहुत, अधिक, अति, अत्यधिक आदि विशेषण या क्रिया-विशेषण का प्रयोग नही करते, वरन् मूल शब्द के प्रथम स्वर को लम्बा कर देते हैं। यदि किसी ने बहुत काला सांप देख लिया तो 'बहुत ही काला था' नही कहते, बल्कि 'काला' मे 'का' के 'आ' स्वर को लम्बा कर देंगे, जैसे 'का३ला'। लम्बा कितना था ? उत्तर होगा 'लो३मा' (बहुत ही लम्बा)। तू ने क्या किया ? उत्तर होगा 'खी३ट मारी' (बहुत तेज भागा)। इसी तरह बहुत खट्टा को 'मी३ला', अधिक ऊँचे को 'ड३थडा', बहुत ही छोटा को 'हो३छा'। बहुत अधिक चौडा को 'बे३र्ला' कहते हैं। इस प्रकार सभी तरह की स्वर ध्वनियाँ प्लुत हो जाती है और कुलुई बोली की यह सामान्य विशेषता है और साधारण बोल-चाल मे इसका व्यापक और आम प्रयोग होता है। यह विशेषता केवल विशेषण और क्रिया-विशेषण शब्दो तक ही सिमित नही है। सज्ञा और क्रिया शब्दो मे भी प्लुत स्वरो का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ यदि 'ठीक', 'बिलकुल', 'स्पष्ट' आदि की अभिव्यक्ति करनी हो तो इन विशेषण शब्दो का प्रयोग नही होता बल्कि इनके विशेष्य शब्दो के स्वर को प्लुत किया जाता है, जैसे—ना३का पाधे पाई 'ठीक नाक पर मारा', से३उआ पाधे झोड़ू 'बिलकुल पुल पर गिरा', खा३दी घेरे पुहता सो 'बिलकुल (खाना) खाते ही पहुँचा वह', लि३खी-लिखिया थोकू 'लिख-लिखकर थक गया' आदि। इस प्रकार विशेषणो और क्रिया-विशेषणो का काम प्लुत स्वरो से ही लिया जाता है।

अनुनासिकता

कुलुई मे प्राय सभी स्वरो के अनुनासिक रूप मिलते हैं। अनुनासिकता मे स्वरों का उच्चारण स्थान तो वही रहता है, परन्तु उच्चारण करते समय बाहर निकलने वाली वायु मुँह और नाक से साथ-साथ निकलती है —

अ : अबर, अट-शट, मतर,

अऽ अऽजा>अञ, नऽगा 'नगा', बऽदर, ठऽंडा 'ठण्डा',

आ धाड 'नखरा', टाग, लाँघणा 'पार करना',

ई · इजण 'इजन', पिंजण, लिगटा 'दुम',

इँ : इँच, पिँच, पिँघा,
ईं : ईंट, ढीग, ठींग, हींग,
उ : टुबला, मुड, शुड,
उँ . उँडा, उँबला, हिउँ,
ऊ ऊघ, चूढा, टूडा,
ए एडा, लेंडा, लेंगडा, फेबडा,
एँ चेँ-चेँ, भेँपरा,
ऐं : सेंगी, सैंसा, चेंदरा,
ओं . ओंस, छोंदा, रोंदा, तोंबडा,
ओँ . लोँगर, झोँख, ग्रलोँ,
औं : कौंधा, गौंच, कौंला

कुलुई मे अनुनासिकता की कुछ प्रवृत्तिया भी पाई जाती है। उदाहरणार्थ सस्कृत 'म' व्यजन अनुनासिक मे बदल जाता है, यथा—कोमल > कोंला, हिम > हिउँ, अहम् > हाऊँ, ग्राम > गराँ, नाम > नाऊँ आदि।

इसी तरह हिन्दी क्रिया का 'ना' कुलुई मे 'णा' मे बदल जाता है और इसके वर्तमानकालिक कृदन्त का रूप अनुनासिक मे बदल जाता है—खाना > खाणा > खाँदा (खाता), जाना > जाँदा (जाता), आना > एणा > एंदा (आता), सोना > सोणा > सोंदा (सोता) आदि। यह अनुनासिकता केवल स्वरांत धातुओं में होती है। अन्य मे नही।

इसके विपरीत ऐसे उदाहरण हैं जहाँ अनुनासिकता कुलुई मे आकर लुप्त हो गई है। शब्दो मे प्रथम अक्षर मे अनुस्वार या अनुनासिक हो तो कुलुई मे इसका प्राय लोप हो जाता है, जैसे हिं० फसना कु० फसणा, गवाना > गुआणा, गवार > गुआर, फूंकना > फूकणा, माँस > मास आदि।

इसी आधार पर यदि शब्द 'अ' से आरम्भ होता हो तो उसका पूर्णत लोप हो जाता है—अगीठी > गीठी, अगूठा > गूठा, अगूठी > गूठी, अगार > गार, अगोछा > गोछा आदि।

कई ऐसे उदाहरण हैं जहाँ केवल अनुनासिकता के कारण ही अर्थ मे भेद आ जाता है, जैसे—गोठ (महफिल) परन्तु गोंठ (गाठ), बाका (खोलो) परन्तु बाँका (अच्छा), रोग (बीमारी) परन्तु रोंग (रग) आदि।

स्वर-संयोग

सिद्धान्त रूप मे सयुक्त स्वर और स्वर-सयोग के दो भिन्न रूप हैं। हिन्दी के आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ सयुक्त स्वर है। इस दृष्टि से कुलुई अऽ, एँ, ओँ सयुक्त स्वर है। सयुक्त-स्वर मे दो स्वरो का ऐसा मिश्रण होता है कि दोनो अपना स्वतन्त्र रूप छोड कर एक नया रूप धारण करते हैं। अपना अलग व्यक्तित्व खो कर एक नई सत्ता को जन्म देते हैं। दोनो का उच्चारण अलग-अलग नही रहता। स्वर-सयोग मे दो या अधिक स्वरो

की एक दूसरे के साथ-साथ आने पर अलग सत्ता लग-भग स्थापित रहती है। सब का उच्चारण अलग-अलग रहता है। यहां दो स्वर एक रूप धारण नही करते; दो स्वर पास-पास होते हैं परन्तु अपना अलग व्यक्तित्व कायम रखे होते है। कुलुई भाषा मे इस तरह के स्वर संयोग बहुत है —

आ+इ आइ आइडा (कदरे गूँगा), माइल (एक वृक्ष), लाइक (लायक), खाइला (खाया जाएगा)।

आ+ई आई आईला (सन्न), त्राई (तीन), भाई, छाई।

आ+उ आउ आउता (कच्चे भुने दाने), काउडा (कौवा), धाउडा (अधूरा), माउला (मामा)।

आ+ऊ आऊ आऊदा (चूल्हे का पिछला भाग), घाऊ (घाव), झाऊ (ऊपर)।

आ+एँ आएँ आएँ, वणाएँ, खाएँ, वटाएँ।

इ+अ इअ मिअत (मजदूरी), जिअम (जी लेंगे) पिअम (पी लेंगे)।

इ+आ इआ *सिआ (सिला), मिआल (जलती लकड़ी) दिआल (दयालु)।* य-श्रुति के कारण इसके रूप क्रमशः सिया, मियाल, दियाल हो जाएगे।

इ+उ इउ शिउल (बड़ा बिलटा), जिउड़ा (तबीयत), दिउड़ा।

इ+उँ इउँ घिउँ (घृत), हिउँ (हिम), बिउँन्त (तजवीज), निउँदा (निमंत्रण)।

इ+एँ इएँ जिएँ (जी गए), पिएँ (पी लिए)।

ई+अ ईअ धीअण (धनिया), भीअण (झब्बल)।

ई+आ ईआ जीआ (जीओ), पीआ (पीओ) छीआ (चित्रण)।

ई+इ ईइ पीइला (पिया जाएगा), जीइणा (जिया जाना)।

ई+उ ईउ सीउण (सूई), बीउन (भेड़ की मींगनें), रीउश (एक लकड़ी विशेष)।

ई+ऊ ईऊ पीऊ (पिया), जीऊ (जिया), सीऊ (सीमा)।

ई+एँ ईएँ बेटीएँ (बेटी ने), भाईएँ (भाई ने), छोहरीएँ (लड़की ने), मामीएँ (मामी ने)।

उ+आ उआ · उआर (इस ओर), उआंस (अमावास्य), दुआज (अलग कर), च्‌आड (छोल), डुआर (द्वार), सुआर (सवार), पुआस (उपवास)।

उ+इ उइ उइन (इस में), भुइण।

उ+ई उई हुई, धुई (धुआ)।

उ+एँ उएँ हुएँ, जुएँ, मुछुएँ।

ऊ+आ ऊआ रुच्‌आ (पसन्द आया), छोटूआ (फँस गया), रातूआ (रात हुई)।

ऊ+ई ऊई दूई (दो), बूई (बुआ), धूई (कल)।

ऊ+एँ उएँ. लोचूएँ (थक गए), पूछूएँ (पूछ ही लिया), धाचूएँ (पाल ही लिया)।

ए+आ एआ नेआ (ले जाओ), देआ (दो), लेआ (लो)।

ए+इ एइ मेइड (फर्श), देइणा (दिया जाना)।

ए+ई एई नेई (ले जाना), देई (दे देना), लेई (ले लेना)।

ए+उ एउ जेउडा (पशु बाधने की रस्सी), नेउडा (शिकार की तरी), रेउडी (रेवडी)।

ए+ऊ एऊ लेऊ (लिया), नेऊ (लेगया)।

ओ+आ ओआ धोआ (धो दो), सोआ (सो लो), ढोआ (वाहन करो), रोआ (रो लो)।

ओ+इ ओइ डोइका (मछली की किसम का जीव), ओइर (मुंह पर दाग), कोइला (कोयला)।

ओ+ई ओई: जोई (पत्नी) पोई (पडी), डोई (काठ की कडछी), भणोई (बहनोई)।

ओ+ऊ ओऊ खोऊ (खो दिया) धोऊ (धो दिया), ढोऊ (वाहन किया)।

ओ+एँ ओएँ खोएँ ढोएँ धोएँ।

औ+इ औइ शौइरी (सैरी सक्रान्त)।

औ+ई औई नौई (नदी), खौई (मैल)।

औ+उ औउ औउरा (अधूरा), कौउडा (कडवा) औउरी (अधूरी)।

औ+ऊ औऊ शौऊ (सौ)।

कुलुई मे दो मे अधिक स्वरो का भी साथ-साथ प्रयोग मिलता है—तीन स्वरो का सयोग—

आ इ आ खाइआ, निहाइआ।

आ ई एँ भाईएँ (भाई ने)।

आ उ आ खाउआ (खाया गया), बणाउआ (बनाया गया), बचाउआ (बचाया गया)।

आ उ ई खाउई, बणाउई, बचाउई (बचाई गई)।

आ उ एँ खाउएँ, बणाउएँ, बचाउएँ (बचाए गए)।

ई उ आ पीउआ (पिया गया), जीउआ, सीउआ, सञ्जीउआ (दीया)।

ई उ ई, पीउई जीउई, सीउई।

ई उ एँ पीउएँ, जीउएँ, सीउएँ।

इ आ इ धिआइणी (विवाहित बहिनें), पिआइणा (पिलाया जाना) जिआइणा (जीवित कराना)।

ए उँ आ देउँआ (हे! देव) सेउँआ रा (सेब का), रेउँआ (नवीयन)।

ए उ ई देउई (दी गई), नउई (ले जाई गई), लेउई (ले ली गई)।

ए उ एँ परेउएँ (पूरे हुए), नेउएँ (ले जाए गए)।

ओ उ आ खोउआ (खोया गया), धोउआ (धोया गया), सोउआ (सोया गया)।

ओ उ ई खोउई, धोउई, सोउई, रोउई।

ओ उ एँ गोउएँ, धोउएँ, मोउएँ, परोउएँ (परोए गए)।
ए इ एँ तेइएँ (उगने)।
ओ ई एँ जोईएँ (पत्नी ने), भणोईएँ (बहनोई ने)।

चार स्वरों का संयोग—

कुलुई की क्रियाओं के विभिन्न प्रयोगों में चार स्वरों का भी एक साथ संयोग होता है। कुछेक उदाहरणों में इस तथ्य की पुष्टि हो जाएगी

आ उ इ आ खाउइआ (खाया जा कर), निहाउइआ (नहा कर)।
आ उ इ एँ खाउइएँ न्होसी (खाया ही न गया), बणाउइएँ, पाउइएँ।
ई उ इ एँ पीउइएँ, जीउइएँ, सीउइएँ।
ओ उ इ एँ धोउइएँ बेठे (धो कर बैठ गए), सोउइएँ, रोउईएँ न्होमुई (रोया ही न गया)

(नोट य-श्रुति के कारण उपर्युक्त उदाहरणों में इ आ स्वर 'इया' हो जाते हैं)

श्रुति (Glide)

कुलुई में श्रुति का विशेष महत्व है। 'य' और 'व' हिन्दी में भी श्रुतिपरक हैं। परन्तु कुलुई में 'य' और 'व ही नहीं, वरन् अन्तस्थ श्रेणी के शेष 'र' और 'ल' तथा उत्क्षिप्त 'ड़' तथा 'ल' भी इस क्षेत्र में आते हैं। 'र' और 'ल' का श्रुतिपरक होना कुलुई का पूर्व वैदिक भाषा से सम्बन्ध जोड़ता है, क्योंकि प्राग्वैदिक आर्यभाषा में 'र' और 'ल' भी अर्धस्वर थे।[1] इसी लिए ये अन्तस्थ श्रेणी में हैं।

श्रुति में 'य' का सम्बन्ध अग्रस्वरों से है। इसका उच्चारण विशेषत इ, ई तथा ए, अऽ के सदृश होने लगता है। 'प्यारा' का उच्चारण पिआरा होता है। इसी तरह प्याला या पिआला, धियाना या धिआना, सियाणा या सिआणा आदि। इस स्थिति में 'य' के लिए उच्चारण में जीभ की हरकत ध्यान देने योग्य है। जीभ का अग्रभाग किंचित ऊपर उठता है। 'इ' के उच्चारण स्थान के निकट तालु में स्पर्श करता है और फिर तुरन्त आगे को फैल जाता है तथा 'ए' की ओर झुकने लगता है। उच्चारण लघु है। मूलत. शब्दों के आरम्भ में 'य' प्राय. 'ज' में बदलता है, जैसे—यजमान > जजमान, योगिनी > जोगणी, योग > जोग आदि। परन्तु मध्य और अन्त में 'य' सुरक्षित तो है, लेकिन श्रुति में बदल जाता है, यहाँ इसका उच्चारण इ + अ से मिलता है, जैसे—बिआली < ब्याली < अप० बिआलिअ (रात का खाना), शिआल < शियाल < स० शृगाल, काइया < काया, पराइआ हिं० पराया आदि।

श्रुति में 'व' का सम्बन्ध पश्चस्वरों से है। इसका उच्चारण उ-ऊ-आ के सदृश है। वास्तव में कुलुई में व' व्यंजन नहीं है इसका उल्लेख व्यंजन ध्वनियों के अन्तर्गत किया गया है। कुलुई में 'देव' का रूप 'देऊँ' है। परन्तु जब कारक प्रयोग के लिए इस का विकारी रूप बनता है तो 'देउआ' बनता है जो प्राय: 'देवा' समान है। अत: 'व' कुलुई

1. डा० हरदेव बाहरी : हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, पृ० 116.

में उ—ऊ—ओ—औ में परिवर्तनीय है—सुपना < सं० स्वप्न, सुना < सं० स्वर्ण, देउर < सं० देवर, लूण < सं० लवण, दानू < सं० दानव, माण्हू < मानव, जौर < सं० ज्वर आदि। इसी तरह तवा > तोउआ, दीवा > दिउआ, दरवाजा > दरुआजा आदि। 'व' का 'उआ' में परिवर्तन सहजता के कारण है। इन स्थानों पर 'व' का दन्त्योष्ठ्य उच्चारण सुविधा-जनक नहीं है। सामान्य बोल-चाल में 'व' की अपेक्षा 'व' श्रुति का मध्यात्मक रूप उओ या ओ अधिक मिलता है। जब 'व' की ध्वनि गठित नहीं बनती तो 'व' ध्वनि 'व' में बदल जाती है—वलि > बोंली, वर्ष > बोंर्ष आदि। श्रुतिरूप 'व' के उच्चारण में जीभ ऊपर को उठती है और फिर पीछे की ओर झुक जाती है। इसमें ओठों का आकार भी कुछ गोलाकार हो जाता है।

जहां तक अन्तस्थ व्यंजनों के शेष 'र', 'ल', 'न' की श्रुति का सम्बन्ध है, यों लगता है, जैसे कुलुई बोली 'र' तथा 'ल' 'न' रहित है। कुछ स्थितियों में तो ये इतने धीमे उच्चरित होते हैं कि साधारणतः सुनाई नहीं देते और इन्हें पहचानना कठिन है। 'एइरा मुह भा. ता भा' में कोई नहीं कह सकता कि 'भा' वस्तुतः 'भाल' है, अर्थात् भाल ता भाल (देख तो देख)। इसी तरह "भौनू-न की सा ?" वाक्य में अन्य भाषा-भाषी तो दरकिनार स्वयं कुलुई आसानी से यह नहीं कह सकते कि "भौनू" शब्द वास्तव में "भौरनू" है। इसी तरह "धुन्ह औंआ ऊँ" में यद्यपि 'औंआ' मूलरूप में 'औलणा' है (सम्भवतः < सं० गल् से) परन्तु यह अपने मूल उच्चारण में बोला ही नहीं जाता, अन्यथा इसका रूप 'औलणा' हो जाएगा जिसका अर्थ 'अनणा' अर्थात् 'कम नमक वाला' हो जाएगा।

मूलरूप में 'र' मूर्धन्य व्यंजन है और साधारणतः इसका मुख्य प्रयोग इसी रूप में होता है—रौशी, कौरथ, सौरग, भार, चार आदि। परन्तु यदि किसी शब्द या वाक्य में 'र' के तुरन्त बाद इसी वर्ग का व्यंजन आए तो इसकी ध्वनि श्रुत कर जाती है। तब 'र' का पूरा उच्चारण नहीं होता, बल्कि इसकी ध्वनि अपने से पूर्व स्वर में मिल जाती है, और अगले वर्ण की ध्वनि से मेल खाकर नयी ध्वनि पैदा होती है जो इस उच्चारण से बिल्कुल भिन्न होती है। ऐसी स्थिति तब होती है जब 'र' से पूर्व दीर्घ स्वर हो और 'र' के बाद इसी के उच्चारण-स्थान का व्यंजन हो। 'र' का उच्चारण-स्थान मूर्धन्य है। अतः इसके पश्चात् अन्य मूर्धन्य वर्ण ट, ठ, ड, ढ, न, ल तथा ल के आने से 'र' का उच्चारण बदल जाता है। 'र' के उच्चारण के लिए जीभ मूर्धा पर पहुँचती है और चूँकि तुरन्त बाद पुन. मूर्धा का स्पर्श करना है अतः अपने स्थान को छूने से पहले ही अगले मूर्धन्य शब्द को उच्चरित करती है और इस तरह 'र' पूर्णतः लुप्त हो जाता है, अथवा मामूली सी ध्वनि निकलती है। इस स्थिति में जीभ 'र' के लिए मूर्धा तक नहीं पहुंचती, केवल जीभ के पार्श्व दाढ़ों के सिरों तक ही जा टकराते है, और इस तरह कोमल 'ह' अथवा 'अ' के निकट की ध्वनि उत्पन्न होती है—मौह्ना (मरना), भौअ्ना (भरना), घौअ्ठ (घौरठ < घराट), तौह्ना (तौरना < तैरना), बाह्मला (बाहरला < बाहर का), बेएला (बेरला—'चौड़ा'), दाअ्ठा (दारठा—'सदूक'), कौअ्डा (कौरडा—'कठिन') ठुअ्डा (ठुरडा—पैर)। मूर्धन्य वर्णों से पूर्व ही 'र' श्रुति में बदलता है, अन्य से पूर्व

नही। इस बात को उदाहरण मे स्पष्ट किया जा सकता है—'चीरना' के धातु 'चीर' मे 'ला' लगाने से श्रुति होती है चीअ्ला (चीरला—चीरेगा) परन्तु 'ता' लगाने से 'र' पूरा उच्चारण देता है चीरता (कृपया चीरो)। इसी तरह धोअ्न (धौरन<धरणी) परन्तु धौरन (धरति), केअ्ना (केरना 'करना'), केअला (केरला 'करेगा') परन्तु केरता (कीजिए) आदि।

कुल्लूई मे 'र' की तरह ही 'ड' भी श्रुति-परक है। इसके श्रुति मे बदलने के भी वही नियम है जो 'र' के हैं। परन्तु ध्वनि मे थोडा-सा अन्तर है। 'र' की श्रुति मे जीभ के दोनो किनारो के पिछले भाग का मामूली-सा स्पर्श दाढो (molars) के सिरो पर होता है। इसके विपरीत 'ड' की स्थिति मे जीभ का अग्रभाग कदरे मुडकर मूर्धा से किंचित स्पर्श करता है—घोअना (घोडना, मारना), झोअना (झोडना, गिरना), शोअना (शोडना, सडना), रोअला (रोडला, छेडेगा), आदि।

कुलुई मे 'ल' और 'ल' अलग-अलग ध्वनियाँ हैं। इस तथ्य का स्पष्टीकरण "व्यजन ध्वनि' अध्याय मे कर दिया गया है। दोनो 'ल' और 'ल' श्रुतिपरक हैं, परन्तु दोनो के नियम अलग-अलग है, और इस दृष्टि से 'ल' की अपेक्षा 'ल' की श्रुति अधिक व्यापक है। 'ल' शब्दो के आरम्भ मे प्रयुक्त नही होता, परन्तु जहाँ भी 'ल' का प्रयोग होता है, अथवा शब्दो मे जो भी इसकी स्थिति हो, इसकी ध्वनि श्रुति मे ढल जाती है। इसके पूर्व और पश्चात् कैसी भी ध्वनि हो, इसकी ध्वनि का लोप हो जाता है—काअ (काल, अकाल), पराअ (पराल), गुआआ (गवाला), नाआ (नाला, नाला), थाई (थाली अर्थात् थाली), आऊ (आलू, आलू), नाहऊ (नाहुलू 'नाभि') आदि। 'ल' का ऐसा उच्चारण असावधानी, आलस्य, या ढीलेपन के कारण होता है। शीघ्रता के साथ बोलने से भी प्राय ऐसा होता है, अन्यथा 'ल' की ध्वनि ठीक भी सुनाई देती है। ऐसे उच्चारण मे जीभ की गति देखने योग्य है। जीभ का अग्रभाग ऊपर उठता है, परन्तु मूर्धा को छू नही पाता। पहले ही आगे को झुक जाता है, जिससे हवा बिना रोक-टोक के बाहर निकल जाती है। जीभ का अग्रभाग चौडा भी हो जाता है। 'र' और 'ल' की श्रुति मे अन्तर यह है कि 'र की स्थिति मे जीभ के मध्य के दोनो किनारे दाढो स स्पर्श करते है। परन्तु चूँकि 'ल' मूलरूप म पार्श्विक व्यजन है, अर्थात उसके मूल उच्चारण मे वायु किनारों से बाहर निकलती हैं, अत श्रुति मे भी जीभ के पार्श्व दाढो से स्पर्श नही करते।

जहाँ तक श्रुति सम्बन्धी उच्चारण का सम्बन्ध है 'ल' और 'ल' की ध्वनियो मे कोई अन्तर नहीं है। जीभ की स्थिति और गति समान रहती है। होठो का आकार भी एक-सा रहता है। परन्तु जहा 'ल हर स्थान और हर स्थिति मे श्रुति-योग्य है, वहा 'ल' मे कुछ सीमाएँ हैं। 'ल' शब्दो के आरम्भ मे भी प्रयुक्त होता है। इस स्थिति मे यह कभी भी श्रुति मे नही बदलता। इसी तरह अन्तिम स्वर-रहित 'ल' (अथवा अ-स्वर सहित) भी अपना पूरा उच्चारण स्थिर रखता है—यथा लोन, लिंगटा, लुहार, लोहा, लाल, बोल, खोल, ढाल, टोल आदि। 'ल' केवल उस स्थिति म श्रुति मे बदल जाता है, जब 'ल' के तुरन्त पश्चात इसी के वर्ग का व्यजन आ जाए, अर्थात् यदि 'ल' के

बाद कोई स्वर न हो बल्कि इसके वर्ग का व्यंजन हो तो इसका उच्चारण श्रुति में बदल जाता है।

'र' की स्थिति मे ऊपर लिखा जा चुका है कि 'र' मूर्धन्य है तथा यदि इसके बाद अन्य मूर्धन्य वर्ण अर्थात् ट, ठ, ड, ढ, न, ल तथा ल आ जाए तो 'र' का उच्चारण बहुत क्षीण हो जाता है। इसी तरह कुलुई 'ल' का उच्चारण-स्थान दन्त्य और वर्त्स्य के बीच का है, बल्कि वर्त्स की ओर अधिक झुका है। अत यदि 'ल' के तुरंत पश्चात् दन्त्य व्यंजन त, थ, द, ध या वर्त्स्य च, छ, ज, झ तथा ल अथवा ण आ जाए तो 'ल' का उच्चारण बिलकुल धीमा हो जाता है और सामान्यत सुनाई नही देता—उदाहरणार्थ काअ्जा < कालजा < क्लेजा, गोटा खोअ्ता खोल (खोलि तो खोल), सो बोअ्दा लागा (सो बोलदा लागा), सो नौअ्दा उठू (सो नौलदा उठू)। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि कुलुई मे 'र' के बाद 'ण' कभी नहीं आता। 'र' के पश्चात् सदा 'न' ही आएगा और जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, इससे पूर्व भी 'र' श्रुति मे बदल जाता है। ठीक इसके विपरीत 'ल' के बाद 'न' नहीं आता, वरन् सर्वदा ण ही आता है, तथा 'ण' से पूर्व भी 'ल' श्रुति मे बदल जाता है, परन्तु साथ ही एक और परिवर्तन भी होता है और वह यह कि 'ण' भी स्वर मे बदल जाता है और साथ ही अपने से पूर्व अनुस्वार को भी जन्म देता है—बोंअ्आ (बोलणा, बोलना), खोंअ्आ (खोलणा), नौंहआ (नौल्हणा, कूटना), तौंहआ (तौल्हणा, हिलना), पीठा चांअ्आ (पीठा चालणा) आदि। ऐसी घटना 'र' के बाद 'न' के साथ नहीं होती। वहां 'न' सुरक्षित रहता है।

जैसे ल, ल, र के उच्चारण श्रुति मे बदल जाते है वैसे ही इनके महाप्राण ल्ह, ल्ह, र्ह भी उच्चारण बदल देते है—थौही (थौल्ही), नौंहआ (नौल्हणा) आदि। कुलुई मे श्रुतिपरक शब्दो और उच्चारण का खास महत्व है। इसके कारण कई बार लुप्त अक्षर का ज्ञान आसानी से हो भी नही पाता। यह ज्ञात करना कठिन हो जाता है कि र, ड, ल, ल मे से कौन-सा अक्षर लुप्त है। केवल शब्दो के सम्पर्क से ही यह पता चल सकता है। उदाहरणार्थ—"मू खाणा सेअ्ना" वाक्य मे सेअ्ना मे क्या लुप्त है? 'सेअ्ना' का अर्थ सम्पूर्ण होता है 'सम्पूर्ण' से 'सारा' शब्द बना। 'सारा' से 'सेरा' और 'सेरना'। अत 'र' की श्रुति हो सकती है। इस विषय के सम्बन्ध मे वास्तविक घटना पर आधारित एक कहावत बडी प्रसिद्ध है। राजमहल मे अतिथियो को खाना खिलाया जा रहा था। जब बड़ियो की प्रशंसा होने लगी तो रानी से, जिसने बड़िया बनाई थीं, रहा न गया और तुरन्त बोली "बोई ता मैं तौई" (बोड़ी ता मैं तौली अर्थात् बड़िया तो मैंने तली हैं)। ल, ल, र, ड की अपने ही वर्ग के वर्णों से पूर्व श्रुति के अतिरिक्त अन्यत्र इसका कारण उच्चारण मे शीघ्रता, आलस्य, असावधानी या ढीलापन है।

अध्याय—4

स्वरों की उत्पत्ति

'अ' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'अ' से, यथा—वचन < स० वचन, खह्रा < स० खर, अजंण < स० अर्जुन, चमार < स० चर्मकार, दही < स० दधि।

(2) प्रा० भा० आ० भा० के 'आ' म स्वराघात के अभाव से, जैसे—जीभ < स० जिह्वा, वेल < स० वेला, लाल < स० लाला (थूक), वख्यान < स० व्याख्यान।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के इ, ई से, यथा—राश < स० राशि, बुध < स० बुद्धि, जात < स० जाति, भीत < स० भीति, बशाऊ < स० विश्राम, गुरभण < स० गर्भिणी, तीतर < स० तित्तिर, लिखत < स० लिखित, हीरण < स० हरिण, जोत < स० ज्योति।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'उ' से जैसे—गूर < स० गुरु, चतर < स० चतुर, दार < स० दारु (लकड़ी), मुक्ट < स० मुकुट, कुकड़ < स० कुक्कुट।

(5) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से—वध (णा) < स० वृद्धि, अमरत < स० अमृत, शगार < स० शृंगार, करपाण < कृपाण।

(6) स्वर भक्ति से, यथा—जतन < स० यत्न, जनम < स० जन्म, विघन < स० विघ्न, मतर < स० मन्त्र, रतन < स० रत्न, जतर < स० यन्त्र।

'आ' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'अ' से, जैसे—काजल < स० कज्जल, काठा < स० कष्ठक, थभा < स० स्तम्भ, नाश < स० नष्ट।

(2) प्रा० भा० आ० भा० के 'आ' से—आतमा < स० आत्मा, खार < क्षार, राजा < स० राजा, गरा < स० ग्राम, माया < स० माया, दुआर < स० द्वार।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के 'इ', 'ई', से, जैसे—तारा < स० तारिका, धरिशटा < स० दृष्टि, गोदला < स० गोधुलि।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से, यथा—वाट < स० वृन्त, माज (णा) < स० मृज, शांगर < स० शृंखला, नारसिंघ < स० नृसिंह, नेता < स० नेतृ, दाता < स० दातृ।

(5) अ+आ या आ+अ के सयोग से—पुआस<स० उपवास, तुआर<स० आदित्यवार, कलार<स० कल्याहार।

(6) प्रा० भा० आ० भा० के 'क' से, यथा—पीठा<स० पिष्टक, चोढा<स० चूडिका, कोडा<स० कण्टक, भाडा<भाडक, कीडा<कीटक।

'इ', 'इँ' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'अ' से—गिण<स० गण, ज्रिण<स० जन, मिश< मश (क्रोध), पिंजरा<स० पजर, किण<स० क्षण, इमली<स० अम्लिका।

(2) प्रा० भा० आ० भा० के 'इ' से, यथा—इदर<स० इन्द्र, चिंता<चिन्ता, चिह्न<स० चिह्न, बिजली<स० विद्युत, छिडा<स० छिद्र, हिउँ<स हिम।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के 'ई' से, जैसे—हिरख<स० ईर्ष्या, दिउआ<म० भा० आ० भा० दीव<दीप, दियाली<म० भा० आ० भा० दीवावली<स० दीपावलि।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से—शिँयाल<प्रा० सिआल<स० शृगाल, घिँउँ<स० घृत, रिंशी<स० ऋषि, रिँण<स०ऋण, करिश<स० कृप, तिँजा<स० तृतीय, गरिह<स० गृह, धरिशटा<स० दृष्टि।

(5) प्रा० भा० आ० भा० के 'य' से, यथा—बिँथा<स० व्यथा, तियाग<स० त्याग पिँजण<स० व्यजन, धियान<स० ध्यान।

'ई' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'इ' से, जैसे—नीज<स० निद्रा, बीज<स० विद्युत मीठा<स० मिष्ट, जीभ<स० जिह्वा।

(2) प्रा० भा० आ० भा० के 'ई' से, जैसे—ज्रीव<स० जीव, जीण<स० जीवन शीर<स० शीर्ष, खीर<क्षीर, नौई<स० नदी, कीडा<प्रा० कीडअ<स० कीटक।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से जैसे—शीग<प्रा० सिंग<स० शृग, भाई <स० भ्रातृ, नाती<स० नातृ, जुआई<जामातृ, पीठ<स० पृष्ठ, सीच (णा) <सृज।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'य' से, यथा—नीम<स० नियम, नीत<स० नियत ज्रोई<स० जाया।

(5) प्रा० भा० आ० भा० के 'क' से—घाणी<स० घ्राणिका, कोटी<स० काष्ठिका ओडी<स० औड्रिक।

'उ' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'उ' से—वुध<स० बुद्धि,मुख<स० सुख, दुख<स० दुःख, खुर<म० क्षुर, छुरी<प्रा० छुरिआ<म० क्षुरिका।

(2) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऊ' से—मुल<स० मूल्य, भुइँ<भूमि, पाहुणा<प्रा० पाहुण<स० प्राघूर्णक।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के 'इ' से—दाड़ु<स० दाडिम, औस्तु<स० अस्थि, बुरा<प्रा० बुरुअ<स० विरूप।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से—मुआ<स० मृत, माउली<मातृली, बुक्का<स० वृक्क (कौकडी बुक्का), घुश<घृष्, शुण<स० शृ।

(5) प्रा० भा० आ० भा० के 'व' की श्रुति के कारण, जैसे—दुआर<स० द्वार, सुभाव<स० स्वभाव, देउर<देवर, घाउ<स० घाव, सुपना<स० स्वप्न।

'उँ', 'ऊ' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'उ' से—सूर<स० सुरा, दूध<स० दुग्ध, पूतर<स० पुत्र शूका<स० शुष्क, गूगल<स० गुग्गुल।

(2) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऊ' से—ऊना<ऊर्ण, मूच<स० मूत्र, चूरण<चूर्ण, सूतर<स० सूत्र, दूर<दूर, पूजा<स०पूजा, गेहू<प्रा० गोहू<स० गोधूम।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से—बूटा<स० वृक्ष, बूता<स० वृत्तम् (कोमबूता केरा) पूछदी<स० पृच्छति, मातृ>माऊ, भाऊ<स० भ्रातृ।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'व' की श्रुति के परिणामस्वरूप—लूण<स० लवण, दानू<स० दानव, तालू<तालव्य, जीऊ<जीव, सूना<स्वर्ण।

(5) प्रा० भा० आ० भा० के 'क' से जैसे—चेटू<चेटक, काठू<काष्टक।

(6) प्रा० भा० आ० भा० के 'अ' से—पोटू<स० पट, पोटकू<स० पटक, बोछू<स० वत्स, लूज<लज्ज।

(7) प्रा० भा० आ० भा० के ओ, औ से—जूगत<स० योगात, कूण्ही<स० कोण, हूम<होम।

(8) प्रा० भा० आ० भा० के 'त' से—घिऊ<घृत, सेऊ<सेतु, चऊथा<चतुर्थ, माऊला<मातुल, धिऊ<दुहिता।

(9) प्रा० भा० आ० भा० के 'म' से—खेऊ<क्षेम, हिऊ<हिम।

'ए' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'ए' से—एक<एक, शेता<स० श्वेत, मेऊ<स० मतु, जेठा<स० ज्येष्ठ, देऊ<देव, छेत्र<स० क्षेत्र, समेन<स० समेन, ते<स० ते।

(2) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऐ' से—तेल<प्रा० तेल<स० तैल, गेरु<प्रा० गेरुअ<स० गैरिक, वेइद<स० वैद्य, देइव<स० दैव।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के 'अ' से—सेभ<स० सर्व, केरें<स० कदा, केवरी<स० कदापि, तेरें<स० तदा।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'द' से यथा—नेड<स० निकट, छेद<स० छिद्र,

नेउँता < स० निमन्त्रण ।

(5) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से, जैसे—केर < स० कृ, पेर < स० पृ० ।

'ऍ' 'ऐ' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'अय' से, जैसे—परलें < स० प्रलय, भें < स० भय, जें < स० जय, जेंकार < स० जयकार, सोमें < स० समय, निह् चें < स० निश्चय।

(2) स्वराघात की निर्बलता के कारण—ऍण्डा < स० एतादृश, तें ण्डा < स० तादृश, जें ण्डा < स० यादृश।

(3) अ+ह के संयोग से—दैली < दहली, पैला < पहला।

'ओ' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'ओ' से, जैसे—ओठ < स० ओष्ठ, ओर < स० ओर, बरोध < स० विरोध, कोठा < स० कोष्ठ, गोठ < स० गोष्ठि जोथ < स० ज्योत्स्ना, दोश < स० दोष।

(2) प्रा० भा० आ० भा० के 'औ' से—ओक्ती < स०औषध, ओडी < स० औड्रिक, मोती < स० मौक्तिकम्।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के 'उ', 'ऊ' से, जैसे—कोढ < स० कुष्ठ, तोल < स० तुल, पोथी < प्रा० पोत्थिअ < स० पुस्तिका, चोर < स० चुर।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से, यथा—बोट < स० वृत्त।

(5) प्रा० भा० आ० भा० के 'अ', 'आ' से—दोद < स० दन्त, कोडा < स० कण्टक, कोम (णा) < स० कम्प्, खोण (ना) < स० खन्, घोण < स० घन।

'ओँ', 'औ' की उत्पत्ति

(1) प्रा० भा० आ० भा० के 'अ' से, जैसे—जोँप < स० जप, भोँई < स० भय, बोँल < स० बल, तोँप < स० तप, औग < अग्नि।

(2) संयुक्त व्यंजनों के पूर्व वाले 'अ' से, यथा—भौस < भस्म, सौत < सप्त, औठ अष्ट, औशी < स० अरसी, हौथ < हस्त।

(3) प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' से—भौर < भृ, घौर < स० गृह, मौर < स० मृ, नौच < स० नृत्य, तौर < स० तृ, मौत < मृत्यु।

(4) प्रा० भा० आ० भा० के 'व' की श्रुति से—जौर < स० ज्वर, जौल < ज्वल।

(5) अ+उ के संयोग से—चौथा < चउथा < स० चतुर्थ, चौदा < चउदा < स० चतुर्दश, औखा < अ+सुख, सौखा < सह+सुख।

(6) प्रा० भा० आ० भा० के 'अव्'—औगण < स० अवगुण, जौऊ < जौ < स० यव, नौ < स० नवम्, धौला < स० धवल, लौंग < लवङ्ग (लौंगारा दाणा)।

(7) शब्द के मध्य में 'प', 'म' से, यथा—औतरा < स० अपुत्र, कौंला < स० कोमल, सौक्ण < स० सपत्नीक, गौंच < स० गो+मूत्र।

अध्याय—5

व्यंजन ध्वनियाँ

स्वरो की भाति ही व्यजन ध्वनियां भी कुलुई मे हिन्दी से अधिक हैं। अतिरिक्त ध्वनियो मे से वर्त्स्य स्पर्श सघर्षी 'च', 'छ', 'ज', 'झ' इसकी विशिष्ट ध्वनियां हैं, जो हिन्दी मे पाई नही जाती। इसी तरह वर्त्स्य अन्तस्थ 'ल' के साथ-साथ वैदिक-कालीन मूर्धन्य 'ल' ध्वनि भी कुलुई मे विद्यमान है। कुलुई व्यजन ध्वनियो को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है —

स्पर्श—

क्, ख्, ग्, घ्
च्, छ्, ज्, झ्
ट्, ठ्, ड्, ढ्
त्, थ्, द्, ध्
प्, फ्, ब्, भ्
च़्, छ़्, ज़्, झ़्

अनुनासिक—

ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, ण्ह्, न्ह्, म्ह्

अन्तस्थ—

य्, र्, ल्, ऌ्, व्
म्ह, र्ह, ल्ह, ऌह

ऊष्म—

श्, स्, ह्

क्, ख्, ग्, घ्, कण्ठ्य स्पर्श ध्वनियां हैं। इनका उच्चारण जीभ के पश्च-भाग को कोमल तालु से स्पर्श करने से होता है। इनमे 'क्' अल्पप्राण, अघोष स्पर्श व्यजन है। यह शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त मे प्रयुक्त मिलता है—कात (कैंची), चाकर (चकोर), नाक। 'ख्' महाप्राण, अघोष स्पर्श वर्ण है। यह भी तीनो अवस्थाओ मे आता है—खापरा (वृद्ध), पाखला (अजनबी), खाख (मुह)। 'ग्' अल्पप्राण, सघोष स्पर्श व्यजन है, और तीनो अवस्थाओं मे आता है—गाजण, आगरा, नाग आदि। 'घ्' महाप्राण, सघोष स्पर्श व्यजन है। आदि, मध्य और अन्त मे आता है—घोर, द्राघडा, बराघ

आदि। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'घ्' की ध्वनि कुलुई मे सुदृढ है, पजाबी की तरह ग्+ह् जैसा नहीं होता।

च्, छ्, ज्, झ् तालव्य स्पर्श सघर्षी ध्वनियाँ हैं। इनके उच्चारण मे जीभ का अग्र भाग टवर्गीय वर्णों के उच्चारण स्थान से कुछ नीचे दान्त की ओर तालु मे घर्षण करता है। परन्तु चवर्ग मे टवर्ग की तरह जिह्वा की नोक कठोर तालु से नही टकराती, वरन् जिह्वा की नोक का पिछला भाग (जिह्वा-अग्र-भाग) कठोर तालु के अग्र भाग मे टकराता है। जिह्वा की नोक कदरे फैली रहती है।

इनमे से 'च्' अल्पप्राण अघोष, 'छ्' महाप्राण अघोष, 'ज्' अल्पप्राण सघोष तथा 'झ्' महाप्राण सघोष स्पर्श व्यजन हैं। ये चारो व्यजन आदि, मध्य और अन्त तीनो स्थानों मे प्रयुक्त होते हैं—उदाहरणार्थ चाण्डा, छाचणा, दाच, छोल, लोछ्ण, होछी, जौछ्ण, गाजण, ताज, झीरड, सोझा आदि।

ट्, ठ्, ड्, ढ् ध्वनियाँ कुलुई मे भी मूर्धन्य हैं। टवर्गीय उच्चारण मे जीभ का अग्र भाग कदरे मुड जाता है और इसकी नोक तालु के कठोर भाग अर्थात् मूर्धा को स्पर्श करती है। परन्तु कुलुई के टवर्ग अक्षरो का उच्चारण हिन्दी टवर्ग अक्षरो से कदरे आगे दात की ओर होता है।

इनमे से 'ट' अल्पप्राण अघोष, 'ठ' महाप्राण अघोष, 'ड' अल्पप्राण सघोष तथा 'ढ' महाप्राण सघोष स्पर्श ध्वनियाँ हैं। ये सभी आदि, मध्य और अन्त म पाए जाते हैं—टोपी, टापरा, मटियाला, लाटका, काट, ठाकर, कोठडी, शौठ, डाना, चाडा, घोड, ढोल, मढार, मा ढ।

त्, थ्, द्, ध् दन्त्य स्पर्श ध्वनियाँ हैं। इनके उच्चारण मे जीभ का अग्र-भाग ऊपर के दातो के अग्र भाग को स्पर्श करता है। इनमे से त्, थ् अघोष और द्, ध् सघोष तथा त्, द् अल्पप्राण और थ्, ध् महाप्राण व्यजन ध्वनियाँ है। इन सबका प्रयोग आदि, मध्य और अत सभी स्थानो पर होता है—

आदि—तौता, तेरा, थाच, थान, दात, दूजा, धान, धौज आदि,

मध्य—बोतल, बातर, मथाण, मथाला, कदाल, बादल, कधोण, चौधरी आदि,

अत—बौन, भौत, नाथ, साथ, खाद, बाद, करोध, वरोध आदि।

इस सम्बन्ध मे कुलुई की 'ध्' ध्वनि हिन्दी की 'ध्' ध्वनि से किंचित भिन्न है। उसका महाप्राणत्व बहुत हलका प्रतीत होता है। कुछ स्थानो पर 'ध्' का महाप्राणत्व इतना शिथिल है कि 'द' से भिन्नता प्रकट नही होती—दिहाडा या धियाडा (दिन), द्होखा या धोखा, द्हीजणा या धीजणा आदि। परन्तु 'दान' तथा 'धान', 'दाच' और 'धाच', दिउआ तथा धिउआ आदि न्यूनतम-विरोधी युग्मो द्वारा दोनों ध्वनियों की पृथकता स्पष्ट होती है।

प्, फ्, ब्, भ् ध्वनियाँ हिन्दी की तरह ही ओष्ठ्य स्पर्श ध्वनियाँ हैं। इनके उच्चारण मे ऊपर और नीचे के दोनो ओष्ठ आपस मे छूते है। जीभ को हरकत की चेष्ठा नही करनी पडती। परन्तु इनके उच्चारण मे ओष्ठ हिन्दी की अपेक्षा अधिक फैले

रहते हैं, तथा इनका स्पर्श भी अल्पकालिक होता है।

इन वर्णों का उपयोग आदि, मध्य और अंत तीनों स्थानों में समान रूप से होता है—

आदि—पाप, पेट, फाफ, फागडा, वागर, वीट, भाजी, भेज आदि,
मध्य—पापड, कपडा, मुकन, साफा, सावर, नीवरू, दोमला, गौभली आदि,
अन्त—नाप, शराप, माफ, शीफ, जूब, सूब, लोभ, शोम आदि।

कुलुई में च़, छ़, ज़, झ़, वर्त्स्य संघर्षी ध्वनियाँ हैं। यह च-वर्गीय तालव्य ध्वनियों से भिन्न हैं। इनके उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के दांतों के सिरों को किंचित् स्पर्श करती है, परन्तु मुख्यतः जीभ का अग्र भाग (नोक से पिछला) वर्त्स (alveola) के साथ टकराता है। इन ध्वनियों को उच्चरित करने का तरीका यह है कि जीभ की नोक को निचले दांतों के अग्र भाग पर दृढ़ता से टिकाए रखें और फिर तालव्य च-वर्ग के वर्णों को क्रमशः च, छ, ज, झ का उच्चारण करने का प्रयत्न किया जाए। अर्थात् जीभ की नोक निचले दांतों पर स्थिर रहे और फिर च्, छ्, ज्, झ् उच्चरित किया जाए। यह केवल इन ध्वनियों के उच्चारण का एक सहज उपाय है, अन्यथा इनके उच्चारण में साधारणतः जीभ का अग्र भाग निचले दांतों से नहीं टकराता।

इन ध्वनियों में से 'ज़' की ध्वनि से हिन्दी भाषी अच्छी तरह परिचित है। यह उर्दू ज़ाल या अंग्रेजी जेड (z) है। इनमें से 'च' अल्पप्राण अघोष वर्ण है। यह शब्दों के आदि, मध्य, अंत में प्रयुक्त होता है—चरेडा (पक्षी का बच्चा), कचेड (शरारत), नौच (नाच)। 'छ' महाप्राण अघोष व्यंजन है। यह भी तीनों अवस्थाओं में पाया जाता है—छार (क्षार), कोछड (लम्बा सा खेत), रौछ (रछ)। 'ज' अल्पप्राण सघोष वर्ण है और तीनों स्थितियों में आता है—जात, काजल, गज। 'झ' महाप्राण सघोष स्पर्श ध्वनि है। आदि, मध्य और अंत में प्रयुक्त होती है—झावल (झब्बल), वझिया, मोझ।

इन वर्त्स्य ध्वनियों में जीभ की गति तीव्र होती है। इनमें 'स' ध्वनि का समावेश है। 'च' बोलते हुए पहले जीभ 'त' ध्वनित करने का प्रयत्न करती है, परन्तु तुरन्त 'स' उच्चरित करती है। यही स्थिति 'छ', 'ज' और 'झ' की है जिनके उच्चारण में जीभ पहले क्रमशः 'थ्', 'द्' और 'ध्' के लिए दांतों से स्पर्श करती है और फिर सर्वदा 'स' ध्वनित करती है, और इस तरह जीभ वर्त्स से टकराती है। जीभ की नोक दांत पर ही रहती है, परन्तु जिह्वाग्र भाग वर्त्स के निकट पहुंचता है। हिन्दी का 'ल्' वर्त्स्य है और कुलुई 'ल्' भी। अब 'ल्', चवर्ग और चवर्ग ध्वनियों में जिह्वा की स्थिति देखी जाए। जब 'ल्' का उच्चारण होता है तो जिह्वा की नोक (tip) सीधी वर्त्स से टकराती है। जिह्वा का रूप नोकदार होता है। जब चवर्ग ध्वनियों का उच्चारण होता है तो जिह्वा की नोक चपटी (flat) हो जाती है और चपटी होकर ऊपर के दांतों को छूती है और साथ ही जीभ का अग्रभाग वर्त्स से टकराता है। 'ल्' में नोक का स्पर्श दृढ़ होता है। परन्तु चवर्ग में बड़ा शिथिल स्पर्श होता है। इसके विपरीत चवर्ग में जिह्वा की नोक नहीं वल्कि जिह्वा का अग्र भाग तालु से स्पर्श करता है।

डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है कि कुलुई मे 'च' ध्वनि को 'च' मे बदलने की प्रवृत्ति है। उनके मतानुसार 'च' केवल 'च' की सध्वनि (allophone) है। इसमे सन्देह नही कि कुलुई मे च, छ, ज, झ को क्रमश च, छ, ज, झ मे उच्चरित करने की साधारण प्रवृत्ति है। वे चिन्ता को चिन्ता, चरखा को चरखा, छाया को छाऊ, छतरी को छतरी जवान को जुआन, जटा को जौटा, झालर को झालर, झट को झट कहते हैं। परन्तु यह कहना अनुचित है कि 'च' केवल 'च' की सध्वनि है। न ही छ, ज, झ क्रमश छ, ज, झ की सध्वनिया है, वरन् च, छ, ज और झ अलग ध्वनिग्राम हैं जो च, छ ज और झ से भिन्न हैं। इनका पृथक ध्वनिग्राम होना निम्नलिखित न्यूनतम-विरोधी युग्मो से स्पष्ट हो जाता है —

चोर (शहतूत की किस्म का वृक्ष)	चोर (चुराने वाला)
चाम्बडा (पतीला)	चाम्बडा (चमडा)
कचेडा (खमीर)	कचेडा (शरारतें)
दाची (दराती)	दाची (जाच ली)
चौखिणा (सड जाना)	चौखिणा (उठाया जाना)
छार (पानी मे निकालना)	छार (क्षार)
मोछी (मक्खी)	मोछी (मछली)
छोण (क्षण, समय)	छोण (छन लगाना)
जोत (जोतना)	जोत (पहाड की चोटी)
जोडी (जोडा)	जोडी (भेडो के लिए पत्तियां)
जुक (नीचे)	जुक (मार)
पूजा (पहुचें)	पूजा (पूजा)
झौड (तग परन्तु लम्बा खेत)	झौड (गिर जा)
झाड (इकट्ठा कर)	झाड (गिरा दे)

इन उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'च' और 'च', 'छ' और 'छ', 'ज' और 'ज' तथा 'झ' और 'झ' कुलुई मे अलग-अलग ध्वनियाँ हैं, सध्वनियाँ नही।

ऊपर लिखा गया है कि कुलुई मे चवर्ग और चवर्ग पृथक ध्वनिया अवश्य हैं फिर भी चवर्ग को चवर्ग मे बदलने की प्रवृत्ति भी बडी व्यापक है। इस विषय को और अधिक स्पष्ट करना बड़ा जरूरी है। कुलुई मे चवर्ग को चवर्ग मे बदलने की प्रवृत्ति है, चवर्ग को चवर्ग मे बदलने की नही। 'चाहिए' को 'चाहिए' कहना उचित है, परन्तु 'जारा' को 'जरा' कहना कदापि ठीक नही। अत 'जहाज' को 'जाह्ज' तो कह सकते है, परन्तु 'जाह्ज' कहना बिलकुल प्रवृत्ति के प्रतिकूल है। इसी तरह 'चीज' को 'चीज' कहना बिलकुल ठीक है, परन्तु 'चीज' को 'चीज' कहना अधिक अशुद्ध है। ऐसा उच्चारण कुलुई समाज मे बडा भद्दा लगता है। भद्दा ही नही हसी का विषय बन सकता है। कारण स्पष्ट है कि च, छ, ज और झ कुलुई की मूल ध्वनिया हैं, अत बाहर की

ध्वनियाँ मूल में बदल जाती हैं। मूल ध्वनियाँ बाहरी ध्वनियों को जन्म नहीं देतीं। च, छ, ज, झ ध्वनियों का कुलुई में पूर्ण समावेश अवश्य है, परन्तु ये बाद में आई लगती हैं।

स्पर्श ध्वनियों में से सघोष महाप्राण अक्षरों का महाप्राणत्व कदरे अधिक कोमल है, परन्तु उनका झुकाव पंजाबी की तरह अपने वर्ग के अघोष अल्पप्राण की ओर नहीं होता जैसे पंजाबी में 'घर' का उच्चारण क्हर या 'धक्का' का उच्चारण तुहक्का होता है। इसके विपरीत कुलुई में सघोष महाप्राणों का झुकाव अपने वर्ग के सघोष अल्पप्राण के प्रति होता है—जैसे ध्यान > दिहान, धियाड़ा > दिहाड़ा, झोंवड़ > ज़होंवड़ (झाड़िया), धियाग > दिहाग (निशान) धुहाड़् > दुहाड़् (आधा), घिऊ > गिऊ (घृत) आदि।

अनुनासिक ध्वनियाँ

स्पर्श व्यंजनों के पाँच वर्गों अर्थात् कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के अन्त में क्रमशः ङ्, ञ्, ण्, न् तथा म् वर्ण भी हैं। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा और आधुनिक हिंदी में ये अपने-अपने वर्ग के अन्य वर्णों के लिए अनुनासिकता का काम देते हैं—गङ्गा, चञ्चल, दण्ड, दन्त, कम्प आदि। कुलुई में इनका उपयोग इस प्रकार नहीं मिलता। वर्णों की अनुनासिकता के लिए कुलुई में अनुस्वार (—) का ही प्रयोग होता है—गंगा, दंड, दाँद, आदि। तथापि, कुलुई में अनुनासिक व्यंजन के रूप में इनका प्रयोग मिलता है। इस रूप में भी ण्, न्, और म् ही अधिक उपयुक्त ध्वनियाँ हैं। ङ् और ञ् का भी प्रयोग होता है, परन्तु सीमित क्षेत्र में जैसे—खुङ, घुङ, ञिजा, इञा आदि कुछेक शब्दों में इनका प्रयोग देखा जा सकता है।

'ण्' कुलुई में मूर्धन्य अनुनासिक ध्वनि है। इसका उच्चारण टवर्ग के अन्य वर्णों की तरह मूर्धा से कुछ आगे दांतों की ओर जीभ की नोक से स्पर्श करके होता है। परन्तु कुलुई 'ण्' में जीभ की नोक के साथ-साथ उसके किनारे के भाग मुख के उपरिभाग से ऐसे स्पर्श करते हैं कि श्वास मुँह के रास्ते से बिलकुल बंद होता है और पूर्णतः नासिका से निकलता है। कुलुई में 'न्' को 'ण्' में बदलने की प्रवृत्ति है। विशेषतः क्रियाओं के सामान्य रूप में 'णा' ही आता है, केवल 'ड्', 'ढ्' और 'र्' में अन्त होने वाली धातु में ही 'ना', 'णा', में नहीं बदलता—खाणा, नौचणा, काटणा, कौतणा, नापणा, बोलणा, वाशणा, बौसणा, परन्तु केरना, मोरना, शोड़ना, घोड़ना आदि। 'ण' शब्दों के आदि में प्रयुक्त नहीं होता। मध्य और अन्त में इसकी ध्वनियाँ मिलती हैं—कोणक (कणक), धणोट्ट (तम्बूर), गणाट (तेज आवाज), धोण (धन), जोण (जन), कुण (कौन)।

'ण्' की महाप्राण ध्वनि 'ण्ह्' भी कुलुई में मिलती है। यह अनुनासिक सघोष मूर्धन्य ध्वनि है, और इसका प्रयोग शब्दों के मध्य और अन्त में मिलता है—माण्हु (मानव), शाण्हा (टहना), पाण्हा (टहना), आदि।

हिन्दी में 'न्' की ध्वनि दन्त्य नहीं रही है, यद्यपि यह त-वर्ग का अंतिम वर्ण

है। हो सकता है प्राचीन आर्य भाषा में 'न्' का उच्चारण दन्त्य हो। अब यह वर्त्स्य के निकट है। परन्तु कुलुई में 'न्' पूर्णतः दन्त्य अनुनासिक है। हिन्दी में 'तथा' कहते हुए जीभ की नोक 'त' और 'थ' दोनों के लिए एक जगह से टकराती है, परन्तु 'तना' कहते हुए जीभ 'त' के लिए दांत में स्पर्श करती है और 'न' के लिए ऊपर जाकर मसूड़े से छूती है। कुलुई में 'न्' की मूल ध्वनि दन्त्य है, ठीक ऐसे ही जैसे तवर्ग के अन्य वर्णों की है। अन्तर केवल इतना है कि तवर्ग के शेष वर्णों में श्वास जीभ के किनारों से बाहर निकलता है परन्तु 'न' में मुंह से न निकलकर नाक से अधिक निकलता है—नेड<निकट, मुन (काट), कोन (कान), नाक, नाटी, नौच आदि। अतः मूल में कुलुई 'न' दन्त्य है, यद्यपि इसकी सध्वनि कहीं-कहीं वर्त्स्य में भी मिलती है जैसे, भौरना, केरना आदि में 'न्' वर्त्स्य है। कुलुई में 'न्' ध्वनि का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में मिलता है। जैसे—नाक, निशटा (नीचा), नुहार (चहरा) आदि में, मनाडना (खत्म करना), चनाट (चिकना), झनाटणा (तंग करना), शनाट (हट्टा-कट्टा) मध्य में, मोन (मन), कोन (कान), पीन (पिन) आदि अन्त में। इन में चनाट, झनाटणा, शनाट का 'न्' वर्त्स्य है और यह आगे आने वाली ध्वनि 'ट्' के कारण है। शेष शब्दों का 'न्' दन्त्य है।

कुलुई में 'न्' की महाप्राण ध्वनि 'न्ह' भी मिलती है। यह सघोष अनुनासिक ध्वनि है और मुख्यतः यह दन्त्य रूप में ही प्रयुक्त मिलती है। हिन्दी में 'न्ह' ध्वनि शब्दों के आरम्भ में नहीं मिलती, परन्तु कुलुई में यह आरम्भ में भी उच्चरित होती है—न्हार (पिंजन की तार), न्हुरा (वह), तिन्हाबें (उनको), न्हौश (नाखुन), बुन्ह (नीचे), चिन्हणा (पहचानना)।

'म्' सघोष, अल्पप्राण, ओष्ठ्य अनुनासिक ध्वनि है। इसका उच्चारण दोनों ओठों के परस्पर स्पर्श से होता है। कुलुई के म् में ओष्ठों का स्पर्श हिन्दी से अधिक देर तक रहता है। स्पर्श से हवा मुंह से रुक जाती है और इसलिए नाक के छिद्रों से गुजरती है, और नासिका विवर ध्वनित होती है। कुलुई में 'म्' ध्वनि शब्दों के आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थिति में मिलती है—

आदि में—मोन, मेरा, माटा (मिट्टी), माह (माश), मुठी (मुट्ठी)।

मध्य में—जमाना, नमूना, जमीन, शमीन (मशीन), कमोणा (कमाना)।

अन्त में—कोम (काम), लोमा (लम्बा), घाम (गरमी), फीम (अफीम)।

कुलुई में 'म्' की महाप्राण ध्वनि 'म्ह्' भी मिलती है। यह सघोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक ध्वनि है। यह ध्वनि शब्दों के आदि में अधिक पाई जाती है, मध्य और अन्त में कम—म्हारा (हमारा), म्हीन (बारीक), म्हूरत, म्हात्मा, कम्हार, बाम्हण, जाम्ह (जमा)।

पार्श्विक व्यंजन

कुलुई में 'ल्', 'ल्ह्', 'ल़्', 'ल़्ह्' पार्श्विक व्यंजन हैं। कुलुई 'ल्' का उच्चारण हिन्दी 'ल्' से किंचित भिन्न है। कुलुई 'ल्' के उच्चारण में जीभ का शीर्ष ऊपर के

मसूडो को पूर्णत स्पर्श नही करता, वरन् कदरे नीचे दातो की ओर रहता है। अत इसकी ध्वनि वर्त्स्य और दन्त्य के बीच वर्त्स की ओर है। इसका उच्चारण स्थान कुलुई दन्त्य 'न' से पीछे 'च' के निकट है। 'न्' मे जीभ का स्पर्श दृढ है, 'ल्' मे शिथिल है, दातो का किंचिन ही स्पर्श होता है। 'न्' मे जीभ के स्पर्श से स्थान खाली नही रहता, परन्तु 'ल्' ध्वनि मे जिह्वा के दोनो किनारो पर स्थान रहता है जहाँ से हवा बाहर आती है। ऐसा ल्, ल्ह्, ल़, ल़्ह सब मे होता है, इसीलिए ये पार्श्विक व्यंजन हैं। अत 'ल' पार्श्विक, अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य ध्वनि है, जो आदि, मध्य और अन्त मे प्रयुक्त होती है—लाटा (लगडा), लोट्टा, लूण (नमक), लेमक्णा (चाटना), कलार (कल्याहार), कलास, जलोडी, मलेडा (खमीर); चाल, माल, डाल, तोल आदि।

कुलुई मे 'ल्' की महाप्राण ध्वनि 'ल्ह्' भी प्रचलित है। यह भी पार्श्विक, सघोष, वर्त्स्य ध्वनि है। इसका प्रयोग भी शब्दो के आदि, मध्य और अन्त मे मिलता है—

आदि—ल्हाशण (तिल), ल्हौसा (भू क्षरण), ल्हौसण (ल्हसन),
मध्य—कल्हाल, नौल्हणा (पीटना, मारना), शिल्हा (छायादार), गिल्हड,
अन्त—टोल्ह (बडा पत्थर), कोल्ह (घोंसला), शेल्ह (एक पौधे की छाल जिसकी रस्सी बनती है)।

कुलुई मे 'ल्' के साथ-साथ 'ल़' (ळ) ध्वनि भी बहुत प्रचलित है। यह ध्वनि उसे वैदिक संस्कृत मे प्राकृत द्वारा प्राप्त हुई है। प्राकृत मे 'ल्' ध्वनि 'ल' मे परिणत होने लगी थी। इसकी ध्वनि 'ट्' और 'च्' के बीच कदरे 'ट्' की ओर है। जीभ का शीर्ष तालु को 'च्' के उच्चारण स्थान से आगे तथा 'ट्' से किंचित पीछे स्पर्श करता है। 'ट्' और 'ल' के स्पर्श मे एक अतर और भी है। 'ट्' मे जीभ की नोक मूर्धा से सुदृढ स्पर्श करती है, नोक कदरे देर तक मूर्धा से छुए रहती है। 'ल़' मे जीभ का शीर्ष 'ट्' से अधिक पीछे को मुडता है और मूर्धा को मामूली स्पर्श करता है। इसे मूर्धन्य ही मानना चाहिए। इस प्रकार 'ल़' पार्श्विक, अल्पप्राण, सघोष मूर्धन्य ध्वनि है, जो शब्दो के मध्य और अन्त मे मिलती है। आदि मे इसका प्रयोग प्राय नही मिलता—छलिग (चिंगारी), ढालणा (मापना), पराल (धान का घास), मनाल (एक पक्षि), नेउला (नेवला) आदि।

'ल़' का महाप्राण रूप 'ल़्ह्' भी कुलुई मे पाया जाता है। इसका भी आदि मे प्रयोग नही होता, मध्य और अन्त मे इसके रूप मिलते हैं—थौल्हो (थली), खल्हेणा (खीला देना), शाल्ह (ओबरा)।

ल्, ल्ह्, ल़ और ल़्ह का स्पर्श अत्यत शिथिल होने का प्रमाण एक अन्य बात से भी स्पष्ट होता है, जिसका उल्लेख पहले ही 'स्वर-ध्वनि' अध्याय मे 'श्रुति' के अन्तर्गत कर दिया गया है। इन ध्वनियो का उच्चारण जीभ के बहुत मामूली स्पर्श से होता है। यह स्पर्श कई बार बिलकुल ही नही होता जिसके फलस्वरूप इनकी मूल ध्वनि लुप्त हो जाती है, और श्रुति मे बदल जाती है। इसका पूर्ण ब्यौरा 'श्रुति' के अन्तर्गत किया गया है।

यहाँ यह स्पष्ट करना भी अनिवार्य होगा कि कुलुई में 'ल्' और 'ल॒' अलग-अलग ध्वनिग्राम (phoneme) है। 'ल॒' का उच्चारण 'ल' की सध्वनि नहीं हैं। इनके अलग ध्वनिग्राम होने की पुष्टि निम्नलिखित न्यूनतम-विरोधी युग्मों में हो जाती है—

काल (कल)	काल (अकाल)
काला (मूर्ख)	काला (काला रंग)
गुआला (खो देगा)	गुआला (गवाला)
मौल (पहलवान)	मौल (गोबर)
खौल (खलडी)	खौल (खल्यान)
माला (मालिक · जैस मेरेया माला)	माला (माला)
औलणा (अलूना)	औलणा (गिरना)
लाला (लाला जी)	लाला (राल) सं० लाला

कुलुई में 'ल और 'ल' की पृथक ध्वनियाँ होने का प्रमाण श्रुति से भी मिलता है जिसका उल्लेख पहले ही 'स्वर ध्वनि' अध्याय में श्रुति के अन्तर्गत किया गया है।

लुण्ठित व्यंजन

कुलुई में 'र्' की ध्वनि हिन्दी में कदरे भिन्न है। इसके उच्चारण में जीभ का आकार अधिक बेलन नुमा होता है, और फलत जीभ की नोक तालु नहीं छूती। इसकी गोलाई नोक तक बनी रहती है और केवल दोनों छोर ऊपर के मसूडों का शीघ्रता से हलका सा स्पर्श करते है। हवा का प्रवाह अधिक तीव्र होने के कारण इसमें स्पष्ट कम्पन होती है। अत कुलुई 'र्' लुण्ठित कम्पनयुक्त मूर्धन्य है। लुण्ठित इस दिशा में कि जीभ *बेलन की तरह गोल रहती है, और कम्पनयुक्त इसलिए कि इसके उच्चारण में स्पष्ट* कम्पन होता है। कुलुई में 'र्' का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में होता है, यथा—

आदि—रावडा (ठीक), रीछ रशणा (रूठ जाना), रेत,
मध्य—बराह (एक वृक्ष), शराल (बाल), बराली (बिल्ली), घौरठ (घराट),
अन्त—लेर (चीख), तीतर, कलोतर (आरी), चार, क्षौर।

कुलुई में 'र्' का महाप्राण रूप 'र्ह' भी मिलता है। इसका प्रयोग अधिकतर शब्दों के आरम्भ में मिलता है—र्हाणा (गुम करना), र्हीराणा (गुम होना), रि्हला (चिथडा)।

'ल्' की तरह ही 'र्' का भी तालु से स्पर्श बहुत हलका होता है, यहाँ तक कि कई बार यह स्पर्श इतना मामूली होता है कि 'र्' की ध्वनि लुप्त होती है। इस बातका संकेत 'स्वर ध्वनि' अध्याय में 'श्रुति' के अधीन कर दिया गया है।

कुलुई में श्रुतिपरक शब्दों और उच्चारणों की खास विशेषता है। कई शब्दों में लुप्त अक्षर का ज्ञान आसानी से हो भी नहीं पाता। उदाहरणार्थ "स'ना' में यह अनुमान लगाना कठिन है कि लुप्त अक्षर 'र' है अथवा 'ड'—"स'ना खाणा।" इसी तरह हौ'ज में 'ल' की ध्वनि सुनाई नहीं देती, यद्यपि यह शब्द 'हौलज' (हलदी) है।

अर्ध स्वर

य' और व् कुलुई म व्यंजन के रूप में बहुत कम मिलते हैं। इन्हें इसलिए व्यंजनों मे गिना जाना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि ऐसा करन स रूप विज्ञान के अध्ययन में सुविधा मिलती है। ये मूलत अर्ध-स्वर के रूप में ही प्रयुक्त हाते हैं, जैसा कि स्वर-ध्वनि' अध्याय म 'श्रुति' के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है। व्यजन के रूप में 'य्' आरम्भ म 'ज' म बदल जाता है—यज्ञ > जौग, यक्ष > जौछ, यमराज > जोराजा, यजमान > जजमान, योगिनी > जोगणी, यात्रा > जातरा, युग > जुग आदि। यदि आरम्भ मे कहीं 'य' का उदाहरण मिल भी जाए तो उसस पूर्व 'इ' का आगम होता है—इयाणा > याणा > युवक, इयारा > यारा। या यह 'अ' म बदल जाता है—याद > आद। केवल मध्य म 'य' की ध्वनि अधिक स्पष्ट सुनाई देती है परन्तु यहाँ भी पूर्व म 'इ' की ध्वनि का सयोग अवश्य है—पियाणा > पिलाना, धियान, सियाणा (सिलाना), खाया (असल मे खाइया), जाइया आदि।

'व' की ध्वनि कुलुई म नहीं है। आरम्भ में यह 'ब' में बदलती है—वलि > बौली, व्यथा > बीथा, वन > बोण, वर > बौर, वर्ष > बौरश, व्याधि > बिआधी। मध्य और अन्त मे 'व' उआ म बदल जाता है—सुआग < स्वाग, दिउआ < दीवा, जुआन < जवान, मलाउट < मिलावट, तौउआ < तवा, देऊ < देव आदि।

ऊष्म सघर्षी

कुलुई मे 'श्', 'ष्', 'स्' में से 'ष्' ध्वनि नहीं है। 'ष्' प्राय 'श्' म बदल चुका है—वर्ष > बौरश, ऋषि > रिशी, घर्षण > घरिशणी, कष्ट > करशटा, नष्ट > नाश, भ्रष्ट > भरिशट आदि।

श् और 'स्' कुलुई म दोनों ध्वनियाँ मिलती है। 'श्' को 'स्' में या 'स्' को 'श्' मे बदलने की प्रवृत्ति बहुत कम है। 'श' के उच्चारण म जिह्वा के मध्य भाग के दोनो किनारे (पार्श्व-द्वय) ऊपर की दाढ़ो के मसूडो का स्पर्श करते हैं। जिह्वा का शीर्ष दांतो से दूर रहता है, बल्कि नीचे झुका होता है। ध्वनि घर्षण करती हैं और फुसकार के साथ ध्वनित होती है। कुलुई मे इस ध्वनि का उपयोग शब्दो के आदि, मध्य और अन्त म मिलता है—शेता (श्वेत), शेर, शोभला (अच्छा), नशाण, मशीन, मूशा (मूषक), दोश, होश, नाश आदि।

'स्' की ध्वनि मे जीभ के अग्र भाग के दोनो किनारे ऊपर के दांतो के मसूडों का स्पर्श करते हैं। 'श्' से 'स्' म आने के लिए जीभ के मध्य भाग के दोनो पार्श्व दाढ़ो का स्पर्श छोड कर अपने अग्र भाग के दोनो किनारो म दांतो के मसूडो का स्पर्श करते हैं, परन्तु जीभ की नोक तथा तालु के बीच स्थान खाली रहता है, जिसके बीच म हवा घुसकारी हुई बाहर निकलती है। अत यह वर्त्स्य, अघोष, ऊष्म सघर्षी ध्वनि है। तथा इसका प्रयोग तीनों स्थितियों म होता है—सायरा < सत्तर, सूथण (पाजामा), मेऊ < मधु, मसेरा (मौसरा), मूसल, कपूर, मौसर, दस, भौम < भस्म, वाम (वास, सुगन्ध)।

कुलुई मे प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के शब्दो के अन्त का 'स्' कभी-कभी 'ह्' मे परिवर्तित हो जाता है। परन्तु यह 'ह्' सघोष नही होता। उदाहरणार्थ—सस्कृत विश्वास कुलुई बशाह, सस्कृत श्वास कुलुई शाह, हिन्दी घास कुलुई घाह आदि।

उत्क्षिप्त ध्वनियाँ

कुलुई मे उत्क्षिप्त ध्वनियो का भी पर्याप्त प्रयोग मिलता है। इनमे मुख्यत 'ड़्' और 'ढ़्' है। इनके उच्चारण म जीभ का अग्र भाग कदरे उलट जाता है और कठोर तालु को झटके स स्पर्श करके सीधा हो जाता है। इनमे ड़ घोष, मूर्धन्य, उत्क्षिप्त अल्पप्राण ध्वनि है और ढ़् महाप्राण ध्वनि है। यह ध्वनियाँ मुख्यत मध्य और अन्त मे मिलती है—

मध्य मे—कौडछी (कडछी), कडाह (हलवा), कडआ (कडवा), मढायर (छोटे पत्थर), शौढना (सढना)।

अन्त मे—शाड (बयारी), मनाड (समाप्त कर), चाहड (चट्टान), देहुढ (डेढ), कौढ (निकाल), बौढ आदि।

यद्यपि आरम्भ मे उत्क्षिप्त ध्वनियो का प्रयोग नही होता, तथापि "ड़काणा" (फेंकना) शब्द मे 'ड़्' का आरम्भ मे प्रयोग अवश्य मिलता है।

स्वरयंत्रमुखी 'ह्'

(1) कुलुई मे 'ह्' ध्वनि का विशेष महत्व है। मूल रूप मे यह स्वरयत्रमुखी (laryngeal) सघर्षी है। यह काकल्य से उच्चरित होती है। इसके उच्चारण मे भीतर की हवा या नि श्वास जब स्वरयत्रमुख से बाहर निकलती है तो स्वरतत्रियो मे कपन होती है। यहाँ कुलुई 'ह्' का उच्चारण हिन्दी के बहुत समीप है। नि श्वास के घर्षण से घोषत्व स्पष्ट लक्षित होता है। इस रूप मे यह शब्द के आदि, मध्य और अन्त तीनो स्थितियो मे मिलता है। उदाहरणार्थ—हिऊ, हौय, हौसणा, हार, हुम, हौशणा आदि आरम्भ मे, लुहाल, पुहाल, शाहुरा, सराहुली आदि मध्य मे तथा दाह, डाह, दरगाह पनाह आदि अन्त मे। इन सब शब्दो मे 'ह्' स्वरयत्रमुखी सघोष सघर्षी ध्वनि है। यहाँ 'ह्' मे घोषत्व भी है और महाप्राणत्व भी।

(2) कुलुई मे 'ह्' की एक अन्य ध्वनि भी विद्यमान है। इसमे जिह्वा-मूल कदरे पीछे हटता है, और गलबिल तग हो जाता है जिसमें से श्वास फुकार की तरह बाहर निकलता है। इसे उपालिजिह्वीय (pharyngeal) मानना चाहिए। यह ध्वनि विशेषत ऐसे शब्दो में स्पष्ट लक्षित होती है, जहाँ सस्कृत अथवा हिन्दी का 'स' वर्ण 'ह्' में बदल जाता है। उदाहरणार्थ सस्कृत श्वास > शाह, घास > घाह, विश्वास > बशाह आदि। वास्तव में ऊष्म वर्ण श्, ष्, और स् जब अपनी मूल ध्वनि खो देते हैं तो उनका उच्चारण 'ह्' के निकट चला जाता है, परन्तु यहाँ 'ह्' सघोष न होकर 'अघोष' उच्चरित होता है। बीह < बीस, तीह < उन्नीस, छोह < षष्ठ आदि शब्दों में 'ह्' की

ध्वनि इसी तरह की है।

इस ध्वनि का दूसरा स्पष्ट उदाहरण ऐसे शब्दो मे मिलता है जब पाँच वर्गों के महाप्राण स्पर्शों को छोड कर किसी अन्य वर्ण में महाप्राणत्व का समावेश हो जाता है। ऐसे महाप्राण वर्णो में विशेषत ण्, न्, म्, य्, र्, ल्, ल् की महाप्राणत्व ध्वनियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—माण्हु, म्हीन, न्हूश, कोल्ह, शेल्ह, थौन्ही, रहाणा आदि शब्दो में 'ह' की ध्वनि अघोष उपालिजिह्वीय है। इसका एक बडा दिलचस्प उच्चारण 'य' के साथ महाप्राण ध्वनि में सुनाई देता है—रिय्हाणा—रिय्हाणा (रिखाना), निय्हाणा—निय्हाणा (नहलाना), निय्हालना—निय्हालना (प्रतीक्षा करना) आदि शब्दो में यह ध्वनि स्पष्ट लक्षित होती है। भले ही ऐसे शब्दों मे हकार का लोप वर्तनी में तो हो जाए परन्तु उच्चारण में उसका अस्तित्व स्पष्ट सूचित होता है।

(3) हकार की एक तीसरी ध्वनि भी कुलुई म प्रचलित है। यहाँ महाप्राणत्व बहुत धीमा सुनाई पडता है। यह ध्वनि हलकी खाँसी की तरह सुनाई देती है। इस ध्वनि के उच्चारण में स्वरतंत्रियो में क्षणिक रुकावट होती है और फिर श्वास झटके से बाहर निकलता है। इसे स्वरयन्त्रमुखी स्पर्श या काकल्य स्पर्श (glottal stop) कहा जा सकता है। इस ध्वनि के सर्वाधिक उदाहरण स्वर और 'ल' तथा 'ण' के बीच मिलते हैं। स्वर के लिए घोष ध्वनि उच्चरित होती है, परन्तु तुरन्त अघोष में बदल जाती है, जिस से फूक सी निकलती है जो 'ल या 'ण' के उच्चारण स प्रभावित होती है—टौह्ल (टहल), काह्ल (तुरही), डाह्णा (रखना), बाह्णा (हल चलाना)। कुलुई की इस ध्वनि को विसर्ग मानना चाहिए, क्योंकि इसका उच्चारण ठीक विसर्ग सा लगता है। अत टौह्ल का असल उच्चारण टौ ल है और इसलिए लिखित रूप भी टौ ल' ही होना चाहिए। इसी तरह उपर्युक्त अन्य शब्द भी क्रमश का ल, डा णा और बा णा ही है। पहाडी भाषा की सभी उप-भाषाओं में इस ध्वनि का प्रयोग है, और पहाडी भाषा में यह एक अलग ध्वनि है और इसे सध्वनि मानना बिलकुल गलत होगा। कागडी उपभाषा में 'शिरोधान' तथा 'प्रशसा' के लिए कई लेखको द्वारा एक जैसा लिखित 'सराहणा शब्द में यही अन्तर है। 'शिरोधान' के लिए स्थानीय शब्द में 'र' सप्राण है—SARHANA सर्हाणा, परन्तु 'प्रशसा' के लिए शब्द में 'रा' के आगे काकल्य स्पर्श या, दूसरे शब्द में अघोष ह अथवा विसर्ग है—SARA NA सराह्णा=सरा णा। स्पष्ट है कि सर्हाणा' (सिरहाना) में 'र' महाप्राणोच्चरित है तथा 'सरा णा' (सराहना) मे स्वर 'आ' और 'ण' के बीच अघोष 'ह्' या विसर्ग है। इसी प्रकार—

सोन्ह (सध्याकाल)	सो न (सकेत)
टौल्ह (कपडा)	टौ ल (टहल)
पार्ह (पार)	पा र (कची करना)

इस ध्वनि का अन्य स्वरो से भी स्पष्ट अन्तर है—

बाणा (चाल)	बा णा (हल चलाना)
जाला (जाएगा)	जा ला (कमज़ोर)
काल (अकाल)	का ल (तुरही)

छेड (छेड़ना)	छे ड (आवाज़)
आण (ले आ)	आ ण (एक विषैला पौधा)
शाणा (ताला)	शा णा (यक्ष)
पूणी (ऊन की पूनी)	पू णी (बुझारत)
शिल्ही (छायदार जगह)	शि ल्ही (स० शिलाए)

कुलुई भाषा मे हकार की सबल ध्वनि को निर्बल बनाने की ओर बड़ी सामान्य प्रवृत्ति है। कुलुई शब्दो में जहाँ कहीं भी ह-ध्वनि मूल रूप मे विद्यमान है, वहाँ भी इसका उच्चारण हिन्दी 'ह' से काफी कोमल है। इसका महाप्राणत्व काफी क्षीण हो गया है। हकार के कोमल होने की यह प्रवृत्ति विभिन्न स्थितियों में विभिन्न है —

(क) आरम्भिक--शब्दों के आरम्भ में 'ह' की ध्वनि का रूप इसके पश्चात् आने वाले अक्षर उच्चारण पर बहुत कुछ आधारित है, और यह परिवर्तन निम्न रूप मे लक्षित होता है —

(1) यदि 'ह' के तुरन्त पश्चात् आने वाली व्यंजन ध्वनि लघु हो तो 'ह' प्राय सुरक्षित रहता है—हौल<हल, हौक<हक, हौथ<हाथ, हौसला<हौसला, हौरन< हिरन, हार, हालन, हुक्म, हिम्मत,

(2) यदि शब्द द्व्यक्षरी हो तो आगामी ध्वनि के दीर्घ होने पर भी 'ह' ध्वनि विद्यमान रहती है—हाथी, होली, होणा, हौठी, हौरा<हरा आदि ,

(3) यदि आरम्भिक 'ह' के तुरन्त पश्चात् दीर्घ ध्वनीय अक्षर हो, तो 'ह' अगले अक्षर से मिलकर उसे महाप्राणत्व मे बदल देता है—हजामत>ज्हामत, हिसाब >स्हाब, हमारा>म्हारा, हैरान>र्हान, हमेशा>म्हेशा, हकूमत>क्हूमत,

उपर्युक्त नियम के अनुसार 'हटना' कुलुई में "हौटणा" रहेगा, परन्तु "हटाना" में 'ट' के साथ 'ह' का संयोग हो जाएगा "ट्हाणा",

(4) यदि 'ह' के बाद का अक्षर पहले ही महाप्राण हो तो 'ह' का पूर्णत लोप हो जाता है—हथेली>थौउली, हिफाजत>फाजत, हथौड़ा>थाउड़ा।

(ख) मध्यवर्ती 'ह' का प्रयोग यद्यपि लुहाल पुहाल, निहाल आदि शब्दो में मिलता है, तथापि इनमे महाप्राणत्व अधिक सबल सुनाई नही देता। सराहुती, गुहासड, आदि शब्दो मे तो 'ह' पूर्ण रूप से अघोष है। मध्यवर्ती 'ह' निम्न प्रकार से बदलता हुआ दिखाई देता है—

(1) यदि मध्यवर्ती 'ह' से पूर्व अक्षर स्वर-रहित (अथवा अ-स्वर सहित) हो तो 'ह' उससे मिलकर उसे महाप्राण में बदल देता है— जैसे, महीन>म्हीन, महीना> म्हीना, जहाज़>ज्हाज, सहारा>स्हारा, महेश>म्हेश, महूर्त>म्हूरत, नख>नह> न्हौश आदि ,

(2) यदि मध्यवर्ती 'ह' से पूर्ण वर्ण दीर्घ स्वर युक्त हो तो 'ह' ध्वनि का लोप हो जाता है या उसका उच्चारण अघोष हो जाता है—साहब>सा ब, सिपाही>सपाई, लोहा>लोआ, स्याही>स्याई, नही>नाई ।

(ग) अन्तिम 'ह' का महाप्राणत्व लग-भग समाप्त ही हो जाता है या इस की

ध्वनि बहुत कोमल होती है। अन्तिम 'ह्' का रूप-परिवर्तन निम्नलिखित ढग से प्रतीत होता है—

(1) 'ह्' में अन्त होने वाली धातुओं (क्रियाओं) की स्वरयत्रमुखी-सघर्षी ध्वनि 'ह्' स्पर्श में बदल जाती है—जैसे रह्>रौअ (रौअणा), दुह्>दुअ (दुअणा), आरोह्> टोअ (टोअणा) आदि,

(2) हकारान्त सख्या-वाचक शब्द आकारान्त में बदल जाते हैं—ग्यारह्> गियारा, बारह् >बारा, तेरह्>तेरा, चौदह्>चौदा, पदरा, सोला आदि;

(3) दीर्घ-स्वर मे अन्त होने वाली हकार ध्वनि श्रुति मे बदल जाती है—सिपाही >सिपाई, स्याही >सियाई, लोआ, रही >रौई आदि।

कुलुई व्यंजन ध्वनियों का ब्योरा

उपर्युक्त विवरण के अनुसार कुलुई व्यंजन ध्वनियो को उच्चारण स्थान आदि के आधार पर निम्नलिखित तालिका मे संक्षेप मे देखा जा सकता है।

		द्वयोष्ठ्य		दंत्य		वर्त्स्य		मूर्धन्य		तालव्य		कंठ्य			
		अघोष	सघोष	अघोष	सघोष	अघोष	सघोष	अघोष	सघोष	अघोष	सघोष	अघोष	सघोष	स्वर—यंत्रमुखी	काकल्य स्पर्श
सपर्श	अल्प०	प्	ब्	त्	द्			ट्	ड्			क्	ग्		
	महा०	फ्	भ्	थ्	ध्			ठ्	ढ्			ख्	घ्		
सपर्श सघर्षी	अ०प्र०					च़्	ज़्			च्	ज्				
	म०प्र०					छ़्	झ़्			छ्	झ्				
अनु-नासिक	अ०प्र०		म्		न्				ण्		ञ्		ङ्		
	म०प्र०		म्ह्		न्ह्				ण्ह						
पार्श्विक	अ०प्र०						ल्		ळ्						
	म०प्र०						ल्ह्		ळ्ह						
लुठित	अ०प्र०								र्						
	म०प्र०								र्ह						
उत्क्षिप्त	अ०प्र०								ड़्						
	म०प्र०								ढ़्						
ऊष्म सघर्षी						स्				श्				ह्	
अर्ध-स्वर			व								य्				

अध्याय—6

अक्षर-परिवर्तन

भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन बड़ा सहज-सामान्य गुण है, और ऐसा परिवर्तन निरन्तर चलता रहता है। भाषाओं में ऐसा उच्चारण परिवर्तन देश-मूलक और समय-मूलक दोनों प्रकार का होता रहता है। देश-मूलक ध्वनि परिवर्तन के बारे में प्रसिद्ध है कि भाषाएँ हर कोस के बाद बदलती रहती हैं। समय के अनुसार भारतीय प्राचीन आर्य भाषा प्राकृत और अपभ्रंश में से गुजरते हुए कई ध्वनि-परिवर्तनों में से होकर आगे बढ़ी है। कुलुई भाषा में भी स्वरों के आधार पर अनेक परिवर्तन आए हैं—

स्वर लोप

(1) कुलुई में मध्य अर्ध-विवृत 'अ' को पश्च अर्ध विवृत 'ओ॑' में बदलने की व्यापक प्रवृत्ति है। इस तरह संस्कृत 'अग' कुलुई में ओ॑ग' में बदलता है, पुनश्च—अग्नि > ओ॑ग, अद्य > ओ॑ज, अक्ल > ओ॑क्ल। यदि एक शब्द में एक से अधिक 'अ' स्वर हों, तो ऐसा परिवर्तन केवल प्रथम 'अ' तक सीमित रहता है, दूसरे स्वर में परिवर्तन नहीं आता—कलम > को॑लम, कब्ज़ा > को॑बज़ा, नक्ल > नो॑कल आदि। तथापि स्वराघात के कारण इस नियम में अन्तर दिखाई देता है। यदि प्रथम 'अ' स्वर न्यून हो जाए और दूसरे पर जोर पड़े तो प्रथम 'अ' की बजाए दूसरा 'अ' इस तरह 'ओ॑' में बदल जाता है—जैसे कचहरी > कचो॑री, दोपहर > दपहर > दपो॑हर। मध्य अर्धविवृत 'अ' को पश्च अर्ध विवृत 'ओ॑' में बदलने की प्रवृत्ति पहाड़ी भाषा की सभी उप भाषाओं में प्रचलित है, परन्तु कुलुई में यह प्रवृत्ति अपनी पड़ोसी उप-भाषा महासुई (क्योंथली) से कदरे कम है। महासुई में अन्तिम 'आ' स्वर भी प्राय 'ओ॑' में परिवर्तित हो जाता है—जैसे तमाचा > तमाचो॑, घेरा > घेरो॑, मिट्टी > माटा > माटो॑ आदि। कुलुई में अन्तिम 'आ' प्राय 'ओ॑' में नहीं बदलता।

(2) कुलुई में आदि स्वर का स्वराघात के कारण लोप हो जाता है। ऐसे लोप में प्राय ह्रस्व स्वर ही आते हैं—अभ्यास > भ्यास, अंगीठी > गीठी, अंगूठा > गूठा, अजवाइन > जुआणे, अटेरन > ठेरना, अदालत > दालत, अधूरा > धाउडा, अनाज > नाज, इकट्ठा > कट्ठा, इनाम > नाम, इलाज > लाज। यदि दूसरे स्वराघात या अक्षर पर बल न पड़े तो आदि ह्रस्व स्वर [illegible]

अथवा दीर्घ स्वर में बदल जाता है—अलसी > ओँलसी, अमर > आमरु, अदरक> ओँदरक आदि।

(3) स्वराघात के कारण ही मध्य स्वर भी लुप्त हो जाता है या दीर्घ से ह्रस्व हो जाता है। भारतीय आर्य भाषा के विकास के मध्यकाल में यह प्रवृत्ति आनी आरम्भ हुई थी और यह प्रवृत्ति कुलुई में विद्यमान है—फ्लोँहरी < फरहरा, क्चोँहूरी <कचहरी, पजामा < पाजामा, बज़ार < बाज़ार, नराज़ < नाराज, वचार < विचार, धरती < धरित्री, परोहत < पुरोहित, ठाकर < ठाकुर, गोक्ल <गोकुल।

(4) अन्तिम 'इ' या 'उ' स्वर लुप्त हो जाते हैं—बुद्धि > बुध, शुद्धि > शुध, गुरु > गूर, राशि > राश, सक्रान्ति>सगरात।

स्वरागम

कुलुई में स्वरागम के भी प्रचुर उदाहरण मिलते हैं, जैसे—

अ—जनम < जन्म, भरम < भ्रम, परचार < प्रचार, मतर < मंत्र, रतन <रत्न, छिड़ा < छिद्र।

इ—पियार < प्यार, नियारा < न्यारा, कनिया < कन्या, धियान <ध्यान, जूनी < जून।

उ—सुपना<स्वप्न, दुआर <द्वार, सुआद<स्वाद।

इसके अतिरिक्त कुलुई में संयुक्त अक्षर से पूर्व ह्रस्व स्वर गुरु में बदल जाता है—कज्जल > काज़ल, अद्य > ओँज, अक्षर > आखर, रुष्ट > रुश, कल्य>काल आदि।

आदि स्वर के लोप से अक्षर की क्षति पूर्ति के लिए बीच में अन्तर आ जाता है—उधार से दुहार, अधूरा से धाउडा, उपान्त से पाँध>पाँधे।

बलाघात और सुराघात

पहाड़ी भाषा में बलाघात और सुराघात का विशेष महत्त्व है। शब्दों या वाक्यों के किसी एक अंश पर विशेष बल देकर या सुर के उतार और चढ़ाव से ही लोग अपने विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। केवल 'हूँ' अक्षर को विभिन्न प्रकार का सुर और तान देकर वक्ता कई भावों को व्यक्त करता है। ऐसी भाषाओं में जो शब्दावली के आधार पर अधिक समृद्ध नहीं होती या जिन में शब्दों का अधिक खज़ाना नहीं, बलाघात और सुराघात का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वराघात के इस महत्त्वपूर्ण स्थान के कारण ही पहाड़ी भाषा के बहुत से शब्दों को लिप्यन्त्रण करते हुए कठिनाई अनुभव होती है। बोलते हुए सुर या तान से जो अर्थ वक्ता स्पष्ट करता है, वह लिपि द्वारा स्पष्ट नहीं होता। यही कारण है कि बहुत से शब्द समरूप दीखते हुए भी भिन्नार्थक होते हैं। हकार के विभिन्न रूपों का भी अधिकतर यही कारण हो सकता है। कुलुई में भी बलाघात और

[illegible] महत्त्व है।

बलाघात

बलाघात से अभिप्राय एक शब्द के विभिन्न अक्षरों में से किसी एक पर अन्य की अपेक्षा अधिक बल या जोर देने से है, अथवा एक वाक्य के किसी एक शब्द पर आघात देना भी बलाघात (stress accent) कहलाता है। बोलने में एक शब्द के सभी अक्षरों पर समान बल नहीं पड़ता। शब्द के किसी एक अक्षर पर अधिक जोर दिया जाता है और दूसरों पर कम। "फियाडा" में तीन अक्षर हैं 'फि', 'या' और 'डा'। बोलने में इन तीनों अक्षरों पर समान बल नहीं पड़ता। 'या' पर सर्वाधिक बल है, 'डा' पर उससे कम और 'फि' केवल सुनाई ही देता है और कुछ वक्ता तो इसे स्वरहीन 'फ्—यााडा' बना देते हैं। इसे अक्षर बलाघात कहते हैं। इसी तरह वाक्य में भी सभी शब्दों पर एक जैसा जोर नहीं पड़ता। जिस शब्द का विशेष स्थान है उसे हम अधिक बल से बोलते हैं। इसे शब्द बलाघात कहा जाता है। यह विचार करना निरर्थक है कि साधारण बोल चाल में सभी अक्षरों अथवा सभी शब्दों पर समान बल पड़ता हो। वास्तविक स्थिति यह है कि कुछ अक्षरों या शब्दों पर अधिक जोर पड़ता है और वे देर तक ध्वनित होते हैं।

जहाँ तक अक्षर बलाघात का सम्बन्ध है, कुलुई में इसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ हैं।

(1) एकाक्षरी शब्द सभी बलाघातमक होते हैं, और इन में व्यंजन की अपेक्षा स्वर पर अधिक बल होता है—खा', पी', जा', आ ण, शु'ण आदि। इनकी पूर्ण बलाघात होने की स्थिति अपने-आप तक सीमित है। जब ये अकेले बोले जाएँ तो ये पूर्ण बलाघात हैं, वाक्य में प्रयोग होने से बलाघात बदल सकता है।

(2) द्व्यक्षरी (disyllabic) शब्दों की स्थिति में प्राय: मुख्य (primary) बलाघात दूसरे अक्षर पर पड़ता है, तथा प्रथम अक्षर पर गौण (secondary) बलाघात रहता है। "शोठा" शब्द में 'ठा' पर मुख्य बल है और 'शो' पर गौण—शोठा'। इसी तरह कोठा', घाणी', काठू', शाव'र, लाव'र, बाणा', चोखा', चोक'र, झोक'ड, भाइ'ड, वेउ'ड, नुहा'र, भाऊ', छीक'ड आदि।

(3) तीन अक्षरों वाले शब्दों में प्राय: मध्य अक्षर पर मुख्य बलाघात होता है, अन्तिम पर गौण और प्रथम पर तृतीयक (tertiary) बलाघात होता है। पाहुणा शब्द में ये बलाघात क्रमश: 'हु', 'णा' और 'पा' पर हैं। इसी तरह धाउ'डा, पाइ'रा, गोझी'णा, पिया'णा, शौगी'णा आदि। बहु-अक्षरी शब्दों में प्राय: दूसरे अक्षर पर मुख्य बलाघात रहता है—जैसे फका'हुका, बजा'हिणा, बझे'रना, चना'हुडा, मठि'याई, पनशा'कडा, आदि।

कुलुई में उपर्युक्त अक्षर बलाघात निरर्थक हैं। इनसे शब्दों के अर्थ में अन्तर नहीं आता। यदि बोलने वाला बलाघात के इन निश्चित स्थानों की अपेक्षा किसी और अक्षर पर बल डाले तो इनके अर्थ में भेद नहीं आता। किसी शब्द विशेष में अन्य ध्वनि के जुड़ने से अथवा शब्द से ध्वनि के निकल जाने से बलाघात का स्थान बदल जाता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में शब्द के अक्षरों की संख्या बदल जाती है। ऐसी स्थिति में शब्द का अर्थ बदल जाना स्वाभाविक है—शोद् (फेंक) शब्द एकाक्षरी है और इस में बलाघात

शो' पर है। 'ट्' में 'उ' स्वर जोडने से शब्द 'शोटू' द्वयक्षरी हो जाता है और बलाघात दूसरे अक्षर पर पडता है—शोटू' तब इसका अर्थ बदल जाता है 'फेंक दिया'।

जहाँ तक शब्द-बलाघात का सम्बन्ध है, यह निश्चित नही है। शब्द-बलाघात स्थान बदलता रहता है और तब वाक्य के अर्थ की विशिष्टता मे भी अन्तर आ जाता है। शब्द-बलाघात से अभिप्राय एक वाक्य के किसी शब्द विशेष पर ज़ोर देने से है। वाक्य के सभी शब्दो को समान रूप से बोला नही जाता। वक्ता शब्द की अथवा भाव की विशेषता के अनुसार किसी एक शब्द पर अन्य शब्दो की अपेक्षा अधिक बल देता है। यही शब्द-बलाघात है, और निश्चित नही रहता—' मैं सो शोठें ताइया मारू" वाक्य का सामान्य अर्थ "मैं ने उसे डडे से मारा" है। इस वाक्य के मैं, सो शोठें, ताइया, मारू, इन शब्दो मे किसी एक पर बलाघात डालने से अर्थ की विशिष्टता में अन्तर आएगा। 'मैं' पर ज़ोर डालने से "मैं सो शोठें ताइया मारू" का अर्थ होगा—'मैं ने ही उसे डडे से मारा'। इसी तरह शोठें' पर बल देने से अर्थ होगा कि "मैं ने मामूली रूप में नही मारा बल्कि डडे' से मारा" और ताइया' पर ज़ोर डालने से भाव होगा कि मैं ने उसे डडे लगा लगा कर मारा'। इस प्रकार वाक्य के विभिन्न शब्दो पर बलाघात होने से अर्थ बदलता है और यह शब्द-बलाघात निश्चित न रह कर अनिश्चित होता है।

सुराघात

सुराघात (pitch accent) से अभिप्राय 'सुर पर आघात' है। इसे स्वराघात, संगीतात्मक स्वराघात भी कहते है। अंग्रेज़ी मे इसे (tonic accent) 'तान' भी कहा जाता है। बलाघात की तरह ही शब्द या वाक्य की सभी ध्वनियां एक सुर मे नही बोली जाती। कहीं सुर ऊंची होती है और कहीं नीची। सुर का उतार-चढाव, आरोह-अवरोह ही सुराघात का विषय है। ऊपर कहा जा चुका है कि कुलुई मे सुराघात का विशेष महत्व है। जिन भाषाओ मे शब्द-भण्डार की कमी हो उनमें बलाघात और सुराघात की ही विशेषता है। कुछ विद्वानो का यह भी मत है कि सर्द-क्षेत्रो के निवासियो की भाषाएँ शब्दप्रधान न होकर निपात-प्रधान होती है और निपात-प्रधान भाषाओ मे सुराघात और बलाघात की बहुलता रहती है। सुराघात का एकाक्षरी भाषाओ मे विशेष महत्व का स्थान होता है। तान या सुर के बदलने से शब्द का अर्थ बदल जाता है। विद्वानों ने चीनी शब्द 'श' के 52 अर्थ गिनाए है। इसी तरह चीनी मे केवल 'ई' शब्द के निम्नलिखित अर्थ होते हैं—एक, कपडे, औषधि, उपयुक्त, सदेह करना, कुरसी, द्वारा, पहले ही, आसान, विचार, उचित विषय, अनुवाद करना, विमर्श करना आदि। यही कारण है कि चीनी भाषा को अक्षरो या वर्णों की परिधि मे नही लाया जा सकता। विभिन्न चित्र या सकेतों से विभिन्न अर्थ प्रकट होते है। वहा उच्च सम (high level), उच्च आरोही (high rising), निम्न-अवरोही (low falling) तथा उच्च-अवरोही (high falling) चार मुख्य तान या सुर है।

कुलुई मे तान-सुर का इतना स्पष्ट और व्यापक प्रयोग तो नही, फिर भी इसके कई उदाहरण मिल जाते हैं। 'हू' की सुर यदि सम हो तो इस से अभिप्राय 'हां' से है।

यदि सुर उच्च हो हू' तो अर्थ है 'अच्छा ऐसी बात है'। सुर यदि अवरोही हो तो 'ऐसा न करो' और निम्न अवरोही हो तो 'ऐसी बात नही' अर्थ की अभिव्यक्ति आम बोलचाल मे पाई जाती है। सुर लहर प्राय सार्थक ही होती है। 'सो' शब्द यदि समसुर मे हो तो इसका अर्थ 'वह' है और उच्च-अवरोही हो तो इसका अर्थ 'सो जाओ' होता है। इसी तरह सम-सुर मे 'नी' का अर्थ 'नहीं' है और उच्च अवरोही मे 'उन्नीस' होगा। इसी तरह 'मान' शब्द को लीजिए। यदि तान निम्न अवरोही (low falling) हो तो इसका अर्थ 'आसान' होगा। इसके विपरीत तान उच्च अवरोही हो तो इस का अर्थ 'एहसान' होता है। 'पूँला' शब्द मे सम-सुर हो तो इसका अर्थ 'गठ है (घाह रा पूँला), परन्तु यदि निम्न अवरोही हो तो अर्थ घास की बनी एक ऊनी विशेष है (मेरी ता पूँला चूटी)। इसी तरह इन्ही दो सुरो मे क्रमश. 'घडिन' का अर्थ पहली स्थिति मे 'दबदू' है और दूसरी मे 'मिट्टी का बडा ढेला' है। इसी प्रकार समसुर मे 'सेऊ' का अर्थ 'सेब' है और निम्न अवरोही मे यह 'पुल' का अर्थ देता है।

बरनार्ड कार्लग्रेन के अनुसार 'चीनी भाषा मे ये ताने प्राचीन समय मे शब्द-भेद के लिए *प्रयुक्त निपातो के परिणाम स्वरूप है, जो अब प्रचलित नही रहे।'*[1] *यह बात* कुलुई के सुर-तान पर काफी सीमा तक ठीक उतरती है। "सो घौरा सा" का अर्थ है 'वह घर पर है"। यहाँ 'सा' की तान सम है। यदि 'सा' की तान मे आरोहण आ जाए यथा 'सो घौरा सा/(सा-अ)" तो वाक्य प्रश्नवाचक हो जाएगा "क्या वह घर पर है ?" इसी तरह "रोटी खाआ सा" (रोटी खाना है), परन्तु 'रोटी खाआ सा/(साअ)' (क्या रोटी खाना है ?), "सो नौठा" (वह गया) परन्तु "सो नौठा/नौठाअ" (क्या वह गया ?), "कुक्डीए डाना शोट्टू" (मुर्गी ने अण्डा दिया) परन्तु "कुक्डीए डाना शोट्/शोट्-उ" (क्या मुर्गी ने अण्डा दिया) 'रोटी खाई' (रोटी खाली) परन्तु "रोटी खाई/खाई-इ" (क्या रोटी खाली ?) आदि। कुलुई मे इस प्रकार के प्रश्नवाचक वाक्यों के लिए' क्या" का समानार्थक शब्द कोई नहीं है। प्रश्न अन्तिम क्रिया या सहायक क्रिया की तान को चढाने से ही बनता है, और यही सामान्य नियम है। 'क्या' का कोई रूप इस तरह कुलुई मे नही मिलता। हा, यदि आवश्यक ही हो तो ऐसे प्रश्न इस प्रकार किए जा सकते है—रोटी खाई कि नी (रोटी खाई या नही ?), कुकडीए डाना शोट्टू कि नी ? (मुर्गी ने अण्डा दिया या नही ?), रोटी खाआ सा कि नी (रोटी खाना है या नही ?) आदि। यह बात तिब्बती मे भी शायद उचित है—"ओमा दुग"/(दूध है), परन्तु "ओमा—दुग-ऐ" (क्या दूध है)। शब्द-भेद सम्बन्धी इस सुराघात मे यो लगता है कि क्रिया का अन्तिम स्वर प्लुत मे बदल गया है। जैसे गीत मे एक मात्रिक अन्तिम वर्ण द्विमात्रिक या त्रैमात्रिक मे साधारणत बदल जाता है, वैसे ही कुलुई मे उक्त प्रकार के प्रश्नवाचक वाक्यों मे अन्तिम वर्ण सुराघात के कारण प्लुत हो जाता है।

---

1. Sounds and Symbols in Chinese, p 29-30, *quoted by* Shau Wing Chau in his "Elementary Chinese" p xvii.

अध्याय—7

व्यंजनों की उत्पत्ति

जिस प्रकार कुलुई के विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के स्वरों से मध्य भारतीय आर्य भाषा के माध्यम से हुई है, इसी तरह कुलुई व्यंजनों की उत्पत्ति भी संस्कृत—प्राकृत—अपभ्रंश के माध्यम से स्पष्ट होती है। इस तथ्य की पुष्टि निम्नलिखित ब्यौरे से स्पष्ट हो जाएगी —

'क्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'क' से, जैसे—कोम<कर्म, काठ<काष्ठ, काती<कार्तिक, कोन<कर्ण, कोठा<कोष्ठ।

(2) संस्कृत 'क्र' से, यथा—चाक्ला<चक्र, करोध<क्रोध, किरया<क्रिया, कोस<क्रोश।

(3) संस्कृत 'कृ' से—काट<कृत्, किरपा<कृपा, करिश<कृश, कियाड़ी<कृक<कृकाटिका, कसान<कृषक।

(4) संस्कृत 'क्व' से—काढ़<प्रा० काढ<क्वाथ, कौधी<क्वचित, कौ<क्व।

(5) संस्कृत 'ष्क' और 'स्क' से—शुका<शुष्क, चौका<प्रा० चउक्क<सं० चतुष्क कोंधा<स्कन्ध, कूद<स्कुन्द।

(6) संस्कृत 'ष' से—ओक्ती<ओषधी<औषध, शुक (णा)<शुष्।

(7) संस्कृत 'र्क' से, जैसे—काकू<कर्क, कतीरा<कर्कटक, कौकड़ी<कर्कटिका, करकरा<कर्कश, ककरा<कर्कर।

(8) संस्कृत 'क्ष' से—चुकरी<चक्षु+रोग, धूक(णा)<धुक्ष, मरोक<मक्ष, मुक(णा)<मोक्ष्।

'ख्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ख' से—खार<खार, खौल<खल, खुर<खुर, खोण<सं० खन, खोपरी<सं० खर्पर, खिला (जैसे खिला खेत)<सं० खिल, खाणा<सं० खाद्।

(2) सस्कृत 'क्ष' से—खेऊ<क्षेम, चोखा<चोक्ष, राखस<राक्षस,पाख<स० पक्ष, खोड<अक्षोट, राखा<स०रक्षक, दाख<स० द्राक्षा, खीर<स०क्षीर, लाख <स० लाक्षा, आखर<अक्षर, प्रेखणा<प्रेक्षण, प्रतख<प्रत्यक्ष, बुभुक्षा> भूख, परोखा<प्रोक्ष।

(3) सस्कृत 'प' से—माख<भाषा, हिरख<ईर्ष्या, नखिद<निषिद्ध, पखड< पापण्ड, मनुख<मनुष्य।

(4) सस्कृत 'क' से—खोदला<कर्दम (कर्द्‌+युक्त), म्होखर<मकरद।

'ग्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'ग' से—गुण<गुण, गिण<गण, गुर<गुरु गरवा<गरिमन्, गोठ< गोष्ठि, गुह<गूथ।

(2) सस्कृत 'ग्र' से—गोठी<ग्रन्थि, गरोह<ग्रह, गरा<ग्राम, गराह<ग्रस।

(3) सस्कृत 'गृ' से—गरिज<गृज, गरिस्ती<गृहस्थि, गरपेशी<गृह+प्रवेश, जागदे<जागृत।

(4) सस्कृत 'क' और 'ख' से—शोग<शोक, सुगा<शुक, मोगर (मच्छ)<मकर, गीड<कदुक, सोगटा<सक्र, शागल<शृखला, शलोगी<शुण्डिका, शौगन <शकुन, मूँगर<शूकर, कागणु<कक्ण।

(5) सस्कृत 'ग्न' से—औग<अग्नि, नागा<नग्न, लौगण<लग्न, मौगन<मग्न।

(6) सस्कृत 'ग्य' से—भाग<भाग्य, जोग<योग्य।

(7) सस्कृत 'ज्ञ' से—गियान<ज्ञान, जौग<यज्ञ।

(8) सस्कृत 'र्ग' से—सौरग<स्वर्ग, गागर<गर्गर, आगल<अर्गल, मोगर (महीना)<मार्गशीर्ष।

'घ्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'घ' से—घाम<घर्म, घोण<घन, घोणा<घन, घोर<घोर, घोल< घोल्।

(2) सस्कृत 'घृ' से—घिऊ<घृत, घरिश<घृष्, घरिशणी<घृष्टि।

(3) सस्कृत 'घ्र' से—घडिन (वास)<घ्राण, शीघरा<शीघ्र, बराघ<व्याघ्र, घाणी<घ्राणिका।

(4) सस्कृत 'क' से—बराघ<वृक, काघा<कङ्कतिक (काघी भी)।

'च्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'च्' से—चौड (चोडना)<चट्, चीडी<चटिका, चाड<चण्ड, चाख <चख, चूरा<चूर्ण, चट<चट, चुट<चुट्, चौचू<चञ्च, सौच<सच, निह्चे <निश्चय, चुकरी<चक्षुरोग।

(2) सस्कृत 'त्र' से—दाच<प्रा० दात्त<दात्रम, दाची<दात्रिका, मूच<मूत्र, चुट

<त्रुट, चौश (पोई)<त्रस, चागला<त्रिशूल, पीचा<पत्र, जाच<यात्रा ।

(3) प्राकृत 'च्' से—चौकुआ<चुक्कओ ।

(4) विदेशी शब्द—चाकू, चिट्ठी, चाबी ।

(5) सस्कृत 'ज' से—युज्>जुज>जोच, लज्ज>लाच ।

'छ्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'छ' से—छौछ<छत्र ।

(2) सस्कृत क्ष्' स—छेत्र<क्षेत्र, छोण<क्षण, छोप<क्षप, छे<क्षै (छेनाग), छार (पाणी न छारना)<क्षर, छे<क्षय, छील<क्षल्य, लौछण<लक्षण, लिछा<लिक्षा, मौछी<मक्षिका, हौछी<अक्षि, कुछ<कुक्ष (कुक्षि), लौछमी <लक्ष्मी, तीछा<तीक्षण, छलाणा<क्षल् भिछा<भिक्षा, जौछणी< यक्षिणी ।

(3) सस्कृत 'त्स' से—स० उत्सरण>प्रा० उच्सरण>छनेर ।

(4) सस्कृत 'श्र' से—हौछू<अश्रु ।

(5) सस्कृत न' से—छौछ<छत्र ।

(6) सस्कृत 'श्' और 'च' के सयोग स—प्राछ<प्रायश्चित, मौछू<मश ।

'ज्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'ज' से—जुग<जग, जड<जड, जाढा<जड ।

(2) सस्कृत 'य' से—जौछणी<यक्षिणी, जौग<यज्ञ, जोराजा<यमराज, जोगी< योगी, जोगणी<योगिनी, जुध<युद्ध, जतर<यन्त्र, जौश<यश ।

(3) सस्कृत 'द्र' या 'द' से—नींज<निद्रा, जूब<दूर्वा, जौभ<दर्भ, हौज< हौलज<स० हरिद्र ।

(4) सस्कृत 'न्न' और 'त' से—आज<अन्न, दूजा<द्वितीय ।

'झ्' की उत्पत्ति

'झ्' एक अप्रधान ध्वनि है, जो प्राचीनकाल से अधिक प्रचलित नही रही है । मि० आर्थर मेकडानल्ड अपनी पुस्तक 'वैदिक ग्रामर फॉर स्टूडट्स' (पृ० 2) मे लिखते हैं कि ' ऋग्वेद मे 'झ' वाला शब्द केवल एक है, और अथर्ववेद मे तो एक भी नही है ।" अत 'झ्' की ध्वनि बहुत बाद मे ध्वनिविकार या ध्वनि-मिश्रण के कारण उत्पन्न हुई है। कुलुई मे इस ध्वनि के अधिकाश शब्द देशज है, जैसे—

झीकड=पहनने के वस्त्र, मुख्यत एक बडा पट्टू

झाऊ=उपर

झाँज्रा=ढलानदार, झाडना=इकट्ठा करना

झेलरा=जालीदार,

झीउरा=उत्सुकता

झीफ=घना घास

फिर भी कतिपय शब्दों में ध्वनि की व्युत्पत्ति का पता चलता है—

(1) सस्कृत 'ध्व' से, जैसे—उझें <ऊर्ध्व, झौशरा <ध्वमृत ।

(2) झीशा <प्रा०पच्चूस <स प्रत्यूप=प्रात काल, झीश <स० उपस ।

(3) गझोला <प्रा० झूल <स० आन्दोल का धात्वादेश=शोर।

(4) झा र <म० जाल=समूह, झाडियो या पौधो का समूह।

(5) झौडी <हिं० झुरिया ।

(6) झोखा <स० जक्ष् ।

'ट्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'ट्' से, जैसे—टाका <टङ्क, टिका <टिक्क, टेपरा <टेरक्ष, टापी < प्रा० टोपिआ, टाग <टङ्गा ।

(2) सस्कृत/प्राकृत 'ट्ट' मे यथा—हाट <स० हट्ट, टाला <अट्टाल, बुट <बुट्ट, कटोरा <प्रा० कट्टोरग, पोट <पट्ट, भाट <भट्ट ।

(3) सस्कृत 'ष्ट' से, जैसे—ईंट <इष्ट, ऊट <उष्ट्र, घरिशटा <दृष्टि, निशटा <निकृष्ट, करशटा <कष्ट ।

(4) सस्कृत 'त' से—काट <कृत्, माटा <अप० मट्टी <स० मृत्तिका, टीका < स० तिलक, बोट <वृत्त (बोट काई गोल वस्तु पैसा, धेला या पत्थर । पैसे के एक जुए मे प्रयुक्त), नटेइया <नर्तक ।

(5) सस्कृत 'र्त' से—कटारी <कर्त्तरि, काटण <कर्तन ।

(6) सस्कृत 'ल' से—लागूल >लिंगटा ।

(7) सस्कृत 'द्य' से—सट <सद्यस् (सट केर) ।

(8) सस्कृत 'ष्ठ' से—बीट <विष्ठा ।

(9) सस्कृत 'द्व' और 'द्' से—टापा <द्वीप, शोट <शद् ।

'ठ्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'ठ्' से—जैस, ठाकुर <ठक्कुर, ठार (ठाण्डी ठार) <स० ठार, पाठ < स० पाठ, कोण्ठी <कण्ठक ।

(2) सस्कृत 'ष्ठ' से—काठ <काष्ठ, काठू (अन्न) <काष्ठक, जेठा <ज्येष्ठ, गूठा <अगुष्ठ, पीठ <पृष्ठ, कोठी <कोष्ठिका, गोठ <गोष्ठि ।

(3) सस्कृत 'ष्ट' स—पीठा <पिष्टक्, मीठा <मिष्ट, मुठी <मुष्टि, पुठा <पुष्ट (पुठाएँ जोर=अधिक जोर), शोठ <पष्टि ।

(4) सस्कृत 'थ' से—ठोर <थोर।

(5) सस्कृत 'स्थ' मे—ठाऊ <स्थान, ठौग <स्थग, उठ <स्था, कटा <एकस्थिन, टाक <स्तक् ।

(6) सस्कृत 'न्थ' से—गोठ <ग्रन्थि ।

(7) संस्कृत 'स्त' से—ग्रस्त>गरेंठ।

'ड्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ड्' से—डाइण<डाक्निी, डम<डम्, डी<डी (किसे डीणा), डूमणा<डोम, डोला<डोला, डोरी<डोर, मुड<मुण्ड, पिंडा<पिण्ड।
(2) संस्कृत 'ट्' से—कोडा<कटक बोड (बोडणा)<वण्ट।
(3) संस्कृत 'द्र' से—छिडा<छिद्र, डाह्<द्राह् (to deposit, put down) डूब<द्रुड (to Sink), मुडण<मुद्रा।
(4) संस्कृत 'द', 'द्व' से—डेहली<देहली, डोड<दण्ड, डुआर<द्वार, डोई<द्वि, गीड<कन्दुक, मुड<मृद्।
(5) संस्कृत 'दृ' से—एण्डा<एतादृश, तेंडा<तादृश, केंडा<किदृश, जेंडा<यादृश।
(6) संस्कृत 'ध' से—डाह्<धा (रखना)।

'ढ्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ढ' से, जैसे—ढोग<सं० ढक, ढाल<ढाल, ढुण्ढ<ढुण्ढ (ढुण्ढ पाणी search), ढबुआ<ढेव्वुका, ढोल<ढोल, ढौक<ढौक।
(2) संस्कृत 'ध' से, यथा—वाढी<वन्ध्या।
(3) संस्कृत 'ड' से—चूढा<चूडाल, मूढ<मुण्ड, ढाब<डप, ढूम<डम्ब, पिढा<पीड।

'ण्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ण' से—गुण<गुण, तराण<त्राण, कोणी<कणिका, पुण<पुण, गिण<गण, लूण<लवण।
(2) संस्कृत 'न' से—खोण<खन्, जोण<जन, ताण<तन् (टौन्हे ताणिया डाह), पुण<पुन्, लुण<लुन्, धाणा<धाना (धाणा खाणी)।

'ड़्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ट्' से—वाड<वाट, चोड<चट्, चोडी<चटिका, झोडी<झिटी, पूडा<पुटक, कीडा<कीट, घडा<घट, घोडा<घोटक, खोड<अक्षोट, नेड<निकट, पेड<पेट (नाजा डाहणा ने पेड), कुकड<कुक्कुट, परौगडा<प्रा० प्रगट<सं० प्रकट, कौकडी<कर्कटिका, कड्आ<कटुक।
(2) संस्कृत 'ड्', 'ड़्' से—लोगड<लगुड, वडा<प्रा० बड्ड<सं० वड़, भेड<भेड़, छे ड<क्ष्वेड, बेडी<वेडा (a boat)।
(3) संस्कृत 'ष्ट' से—भेड (ना)<वेष्ट, उथडा<उत्कृष्ट।
(4) संस्कृत 'स्थ्', 'त्' से—हाडका<सं० अस्थि, मौडा<मृतक, लूड<लता,

मडदौहण्<मृत+दहक ।

(5) संस्कृत 'श' से—दाडना<दशन ।

(6) संस्कृत 'व' से—पाशड<पार्श्व, नाड<(नाडी) स्नाव ।

(7) संस्कृत 'द्र' से—ओडी<अद्रि ।

(8) संस्कृत 'ल' से—घूड<धूलि ।

(8) संस्कृत 'न' से—नडाल<ननन्दृ, चावडा<चर्मन ।

(9) संस्कृत 'क' से—भाइड<भ्रातृक, काउडा<काक ।

(10) संस्कृत 'र' से—सीगडा<सक्र, मुदडी<मुद्रिका ।

'ढ़' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ड्' से—जाढ़ा<जाड्य, चोढ़<चूडा, चोढा<चूडिक ।

(2) संस्कृत 'ष्ठ', 'ष्ट' से—दाढ<दष्ट्र, कोढ<कुष्ठ ।

(3) संस्कृत 'ठ' से—पढ<पठ् ।

(4) संस्कृत 'र्ध' से—दउढ<द्वयर्ध ।

'त्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत के 'त' से—तालू<तालु, तौछ<तक्ष, ताप (और लाप)<ताप, तूश<तुष, तुरही<तूर्य ।

(2) संस्कृत 'त्र' से—तराण<त्राण, तरेता<त्रेता, चितरा<चित्र, सूतर<सूत्र, रात<रात्रि, छेत<क्षेत्र, गोत<गोत्र ।

(3) संस्कृत 'प्त' से—सौत<सप्त, परापत<प्राप्त, सूता<सुप्त, तरिपति<तृप्ति, तौता<तप्त ।

(4) संस्कृत 'क्त' से—रौता<रक्त, मुकति<मुक्ति, भगत<भक्त, पौगत<पक्ति, मोती<मौक्तिक ।

(5) संस्कृत 'तृ' से—तार<तृ, तरीजा<तीजा<तृतीय, तरिण<तृण (तरीण जैहा सा), नाती<नप्तृ ।

(6) संस्कृत 'त्व' से—तू<त्वम्, तौछ<त्वच, तौंग<त्वग, तरातर<त्वरित ।

(7) संस्कृत 'र्त' से—वाती<वार्तिक, कात<कर्तरी, वौती<वर्तिका, मूरती<मूर्ति, वौत<वरर्तन ।

(8) संस्कृत 'ध' से—ओकती<औषधि ।

(9) संस्कृत 'द' से—भेत<भेद ।

'थ्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'थ' से—थोया<कथा, रौथ<रथ, थुरथुरी<थरथराय, थूक<थून्+कृत ।

(2) संस्कृत 'स्त' से—थौंभा<स्तम्भ, मौथा<मस्तक, हौथ<हस्त, थिपु<स्निग्ध,

(3) संस्कृत 'प' से—फाहो<पाश, चेफला<चिपट, फाट<पाट।

'ब्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ब' से—बल<बल, बोन्ह<बन्ध्, बाँही<बाहु, बिदली<विदु बिल<बिल, बेआ<बीज, बुध<बुद्धि, बोहू<बहु, बौन्द<बलिवर्द, बक्रा<बर्कर।

(2) संस्कृत 'ब्र' से—बाह्मण<ब्राह्मण, बरमचारी<ब्रह्मचर्य।

(3) संस्कृत' बृ' से—बरेस्त<बृहस्पति।

(4) संस्कृत 'व'से—बिश<विष, बांच (चिट्ठी बाचणी)<वच, बाद<वद्, बोण<वन, बौत<वर्त्मन, बौरश<वर्ष, बौल<वल, बाक<वाक (खाख बाक), बाद<वाद (बाद मौत केरदा), बाम<वाम (बाम दिमणा) बागर<वायुर, बरेस<वयस।

(5) संस्कृत 'व्य' से—बिथा<व्यथा, बियाधी<व्याधि, बपार<व्यापार, बखान<व्याख्यान, बराघ<व्याघ्र।

(6) संस्कृत 'व्र' से—बरौत<व्रत, बरात<व्रात, बौध<व्राध।

(7) संस्कृत 'वृ' से—बिरश<वृष, बराख<वृक्ष, बुक्का<वृक्क (कौकड़ी बुक्का), बादल<वृत्र, बिच्<वृश्चिक, बिथा<वृथा (कथा ढुननी की बिथा)।

(8) संस्कृत 'र्ब' या 'र्व' से—दुबला<दुर्बल, डूब<दूर्वा।

(9) संस्कृत 'र्म', 'म्र' से—निबला<निर्मल, ताबा<ताम्र, चाबड़ा<चर्मन्।

(10) सं०/आर्य भाषाओं के 'प' से—बाब<बाप, ढाब<डप्, सं० अपि>प्रा० वि>कु० बी०।

(11) संस्कृत 'भ' से—बाश (बाशणा)<भष्।

(12) संस्कृत 'म' से—बाठर<माठर (देउआरा बाठर निकता), बोहू<मह्।

'भ्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'भ' से—भिछ्या<भिक्षा, भाग<भाग, भोजण<भोजन, भगत<भक्त, भाग<भाग्य, भोन<भञ्ज्, भाट<भट्ट, भोई<भय, भाल<भल्, भाख<भाषा, भौस<भस्म, भाण्डा<भाण्ड, भूईं<भूमि, भैरू (भेइरू)<भैरव, भीत<भीति।

(2) संस्कृत 'भ्र' से—भौरम<भ्रम, भोरा<भ्रमर, भाई<भ्रातृ, भराउजी<भ्रातृ+जाया, भरौऊ<भ्रू।

(3) 'ब' अथवा 'व' के साथ 'ह' के संयोग से—भियाणू<अप० विहाणु<सं० विहान (वि+हन्), भियाणसर<विहन्+सृ, भेड़ (भेड़ना)<विहृ, भोला<बहुलक (अप० भोलअ)।

(4) संस्कृत 'भ्य' से (आदिस्वर के लोप से)—भियास<अभ्यास, भीतर<अभ्यन्तर, भियागा<अभ्यागम।

(5) संस्कृत 'र्भ' से—गोभ्मण (पशु के लिए)<प्रा० गब्भिनी<स० गर्भिणी, गुर्भण (स्त्री)<गर्भिणी, गोभ<गर्भ, जोभ (घास विशेष)<स० दर्भ ।
(6) संस्कृत 'ह्व' से—जीभ<जिह्वा ।
(7) संस्कृत 'व' के महाप्राण से—भूज<प्रा० भुस<बूप<स० बुस ।

'म्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'म' से—मन<मन, माघ<माघ, म्होखर<मकरन्द, मिश<मिश् (to be angry मिशिणा), मोंछी<मक्षिका, मोछी<मत्स्य, मिश<मश (क्रोध), मोल<मल, मोल<मल्ल, मोलेगीट<मल्लक्रीडा, मौसर<मसुर, मोणी<मणि, माया<माया, माला>माला, मुण्ड<मुण्ड, मुंद्रा<मुद्रा, मूरती<मूर्ति, मूशा<मुषक, मुसल<मुसल, मोह<मोह ।
(2) संस्कृत 'मृ' से—मौर<मृ, मौत<मृत्यु मोडा<मृतक, मिरग<मृग, मांज<मृज, मुछ (मूछण) <मृण, मुड (मुडणा)<मृद्, माटा<मृत्तिका, मिरगी<मृगी, मडदोहणू<मृत+दहक, मोयड<मृतक+स्थान ।
(3) संस्कृत 'भ' से—मोयर<अभ्यन्तर, मिन (मिनणा)<अभ्यन्ज, मढार<भण्डार, योम (योमणा)<स्तम्भ् ।
(4) संस्कृत 'म्र' से—मरोक<म्रक्ष्, आम<आम्र ।
(5) संस्कृत, 'श्म' या 'स्म' से—मूछ<प्रा० मस्सू<स० श्मश्रु, मीट (टेंडे मीटणा) <श्मील्, मुसक (मुसकणा)<स्मि, मशाण<श्मशान ।
(6) संस्कृत 'म्ल' से—मीला<अम्ल, इमली<अम्लिका, मल्हाणी<अम्लिमन ।
(7) संस्कृत 'र्म' से—कोम<कर्म, घाम<घर्म, चमार<चर्मकार ।
(8) संस्कृत 'प', 'ब' या 'व' के अनुनासिक होने पर—समाद<सवाद, ढूम<डम्ब् (ढूमणा), सोमत<सवत्, कोमणी<कम्पन ।

'च्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'च' से—चाकर<चकोर, चितरा<चित्र, चिंता<चिन्ता, चूज<चन्चु, चेटू<चेटक, चाकला<चक्रक, चोपड<चोपड, चतर<चतुर, चौल<चल्, चूरा<चूर्ण, चोर<चुर, चोखा<चोक्ष, चिकर<प्रा० चिखिल्ल ।
(2) संस्कृत 'चृ' से—चित्त<चृत (जैसे—चित्त केरना मू) ।
(3) संस्कृत 'त्य' से—सौच<सत्य, नृत्य>नौच, निश्चित>नचित ।
(4) संस्कृत 'च्य' से—चुड<च्यव (चुडना), चूतड<च्युत, चाप<च्युप् (चापणा) ।
(5) संस्कृत 'श्च' से—विचू<वृश्चिक
(6) संस्कृत 'झ' से—चिलक<झिलिलका ।

'छ्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'छ' से—छाऊ < छाया, छिद्दरा < छिद, छिड़ा < छिद्र, छुग < छुप्, छुरिका > छुरी, छेलू < छग < छेलक (both he or she-goat), छो < छद् ।
(2) संस्कृत 'क्ष' से—रीछ < ऋक्ष, काँछ < कक्ष (armpit), तौंछ (णा) < तक्ष्, छार < क्षर, छीण < क्षीण, छुरी < क्षुरिका ।
(3) संस्कृत 'च्छ' से—कौछ < कच्छ, पूछ < प्रच्छ, गुछा < गुच्छ ।
(4) संस्कृत 'त्स' से—मौछी < मत्स्य, बौछू < वत्स, गुछा < गुत्सक ।
(5) संस्कृत 'श्र' से—मूछ < श्मश्रु ।
(6) संस्कृत 'स' से—संदेश > छोदा ।
(7) संस्कृत 'झ' से—छौंबका < झम्प या झम्पा ।
(8) संस्कृत 'श्च' से—पीछे < प्रा० पच्छड < म० पश्चात् ।

'ज्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ज' से—जानू (ज्ञान्हू) < जानु, जाप < जाप, जाल < जाल जोध < जङ्घा, जोटा < जटा, जोण (या जोण) < जन, जागरा < जागरण, जातक < जातक, जीव < जीव, जीभ < जिह्वा ।
(2) संस्कृत 'य' से—जूथा < यूथ, जतन < यत्न, जौऊ (जौ) < यव, जतर < यत्र, जौदी < यदा, जाताई < यावन, दाज < दाय, जें < यदि (स० यदि < शौर० जदि < महा० जइ < कु० जें), जोई < युवनि (म० युवति < जुवति < जोति < जोई) ।
(3) संस्कृत 'द्र', 'द' से—मुजरा < मुद्रा, छिज (णा) < छिद्र, भाजी < भुजी < उद्भिद ।
(4) संस्कृत 'स' या 'स्त' से—भूज < बुसम्, हीज < ह्यस्, मीजू < मस्तिष्क ।
(5) संस्कृत 'ज्य' से—जेठा < ज्येष्ठ, जेठ < ज्यैष्ठ, जोतश < ज्योतिष ।
(6) संस्कृत 'त्स' से—जाइरू < उत्स ।
(7) संस्कृत 'द्य' से—औंज < अद्य, जोन < द्युति, जिउतीकीडा < द्युति + कीट, बीज < विद्युत, बाजा < वाद्य ।

'झ्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'झ्' से, यथा—झीडी < स० झिटी, झट् < स० झट्(झटिति), झण-झण < झणझणम्, झाक < झला, झौंड (ना) < झरत, झास < झष् ।
(2) संस्कृत 'ध्य' से—सोझ < सञ्झ < सन्ध्या, बूझ (णा) < बुध्य, समझ < सम + बुध्य, मोझें < मध्य ।

अर्ध-स्वर 'य्' और 'व्'

पहले ही लिखा जा चुका है कि 'य्' और 'व्' कुलुई मे अर्ध-स्वर हैं। दोनो श्रुतिपरक हैं। आदि 'य्' सर्वदा 'ज' मे बदलता है, केवल कुछेक शब्द हैं जो कुलुई मे 'य्' से आरम्भ होते हैं—जैसे, या 'माता', यारा प० 'यार' (मित्र), याणा 'युवक' आदि। इनमें भी ध्वनि 'इया' और 'इयार' सी है। मध्य और अन्त मे भी 'य' का 'ज' हो जाता है। बहुत कम शब्द हैं जहा 'य्' का प्रयोग मिलता है, और वहाँ भी श्रुति सहित इस का उच्चारण 'इआ' आदि हो जाता है।

'व्' तो कुलुई मे मूल व्यजन के रूप मे विद्यमान नही है। यहाँ केवल उसे श्रुति के महत्त्व के कारण दिखाया गया है। यह आदि मे सर्वदा 'ब्' मे बदलता है और मध्य और अन्त मे श्रुति मे बदल जाता है, जिसका विस्तार के साथ पहले ही उल्लेख किया गया है।

'र्' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'र' मे यथा—रौथ<रथ, रौता<रक्त, रग<रग, रस<रस, रात<रात्रि, राखस<राक्षस, राहू<राहु, राश<राशि, राणी<प्रा० राणी<स० राज्ञी, क्यारी<केदारिका, गोरा<गौर, पौरशी<परश्व।

(2) संस्कृत 'ऋ' मे—रिण<ऋण, रिशी<ऋषि, रुत<ऋतु, केर<कृ, मौर<मृ, घौर<गृह, रिह्‌क (णा)<ऋ (हिलना, जाना), रीछ<ऋक्ष।

(3) संस्कृत रेफ-युक्त व्यजनों मे स्वरभक्ति के फलस्वरूप—धरम<धर्म, करम<कर्म, दरशण<दर्शन, सौरग<स्वर्ग।

(4) संस्कृत 'द' से—बारा<प्रा० बारस<स० द्वादश, गियारा<एकादश, सतारा<सप्तदश।

(5) संस्कृत 'ड' से—बराल<बिडाल।

(6) संस्कृत 'य' से—बरेस<वयस।

(7) संस्कृत 'ल' से—पराल<पलाल।

'ल्' और 'ल॒' की उत्पत्ति

(1) संस्कृत 'ल' मे, यथा—लाख<लक्ष, लौज<लज्जा, लुण<लुन्, लोहा<लोह, काजल<कज्जल।

(2) संस्कृत 'द्र' से—भोला<भद्र, मौल<प्रा० मल्ल<मद्र (पहलवान)।

(3) संस्कृत 'ल्य' से—मूल<मूल्य, काल<कल्य।

(4) संस्कृत 'र' से—दलिदर<दरिद्र, हौलज<हरिद्रा निगल (णा)<निगर, लोधा<रुधिर।

'श्' की उत्पत्ति

(1) सम्कृत 'श' से, *यथा*—शौऊ<शत, शौरन<शरण, शुक (णा) शुष्, शूल<शूल, शिगरा<शिखर, शिल्ह<शिला, शोभ<शोभ, आशा<आशा, शूप<शूर्प, शलोहा<शलभ।
(2) सम्कृत 'श्व' से, जैसे—शाह्<श्वास, बशाह्<विश्वास, शेता<श्वेत, शूई <श्वस् (कल), पौरशो<परश्वस् (परसों), शौउरा<श्वसुर, शौशु<श्वश्रु।
(3) सस्कृत 'शृ' से—शागल<शृखला, शियाल<शृगाल, शीग<शृङ्ग, शगार <शृगार।
(4) सस्कृत 'श्र' से, यथा—शराध<श्राद्ध, बशाऊ<विश्राम, शाउण<श्रावण, शुण<श्रु, शा णी<श्रेणी।
(5) सस्कृत 'ष' से—शाढ<आषाढ, पोश<पौष, बौरश<वर्ष, रोश<रोष, दोश<दोष, रुश<रुष, शाण्ढी<षाण्ढ्य (eunuch, नपुसक—वाडी-शाढी वेटडी), तुश<तुष, जोतश<ज्योतिष।
(6) सस्कृत 'श्य' से—शाउला<श्यामल, शीण<श्येन (eagle)।
(7) सस्कृत 'श्ल' से—शिमा<श्लेष्मा।
(8) सस्कृत 'ख' से—न्हौश<नख।

'स्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'स' से—सोवर (ना)<सवृ, सजोग<सयोग, सोगडा<सकर, सौगम सगम, सग<सग, सोझ<सध्या, सिन्हिणा<सिचित, सेई<सदृश्, मौसर< मसूरिका, बरेस<वयस् (जवानी, youth)।
(2) सस्कृत 'स्व' से, जैसे—सौरग<स्वर्ग, सका<स्वक (जैसे सका भाई), सुपना स्वप्न, सभाहें<स्वभावत, सुलखणा<स्वलक्षण, सुआग<स्वाग, सुआद <स्वाद, सूना<स्वर्ण, सामी<स्वामी।
(3) सस्कृत 'सृ' से—सर (कणा)<सृ, सूज (णा)<सृज्।
(4) सस्कृत 'स्य' से—औलस<आलस्य, कासा<कास्य, हौसी<हास्य, साला< स्याल, सिउण<स्यु।
(5) सस्कृत 'श' से—सराहणा<श्लाघनम्, सोह<शपथ, सुलैं-सुलैं<शनैं शनैं, पलास<पलाश (पलासिणा), मौसक<मशक।

'ह्' की उत्पत्ति

(1) सस्कृत 'ह' से, जैसे—हौथ<हस्त, हौरन<हरिण, हौरा<हरित, हाऊ< अहम्, हिऊ<हिम, हल<हल, हाली<हलिक, हौस<हस, दाह<दाह।
(2) सस्कृत 'हृ' से—हेर (ना)<हृ (देखना), हिरदा<हृदय।
(3) सस्कृत 'ह्य' से—हीज<ह्यस् (पिछले कल), बाह्रला<बाह्य।

(4) संस्कृत 'स' से—शाह्<श्वास, वसाह्<विश्वास, ग्राह्<ग्रास ।

(5) संस्कृत 'भ' से—शलोहा<शलभ सुहाग<सोहग्ग<सौभाग्य, विहाणू<विभानु, निहाल<नि+भाल, हाडा<भाण्डम ।

(6) संस्कृत 'ख' से—मुंह<मुख, हेड़ी<अहेरी<अहेडिअ<आखेटक ।

(7) संस्कृत 'ध' से—गेहूं<गोधूम, दही<दधि माहूं<मधुक, बोन्हणा<बन्धन ।

(8) संस्कृत 'घ' से—पाहुणा<प्राघुण सराहणा<श्लाघनम् ।

(9) संस्कृत 'थ' से—गुह<गूथ, सोह<शपथ, काहणी<कथनी ।

(10) संस्कृत 'फ' से—कुहणी<कफोणि ।

(11) संस्कृत 'श्' से—निहचे<निश्चय, वीह<हि० बीस<सं० विंशति ।

(12) संस्कृत 'व' से—माण्हु<मानव, दिहाड़ा<दिवस ।

(13) संस्कृत 'क' से<घोह्दा<पकूद ।

(14) स्वरों के महाप्राण होने पर—हिरख<ईर्ष्या, होलख<अलख (madness) होंझू<अश्रु ।

अध्याय—8

अर्थ-तत्त्व

कुलुई मे शब्द-निर्माण का सामर्थ्य बडा सराहनीय है। कुलुई मे विदेशी शब्दो के आगमन पर पहले ही विचार किया गया है। यह देखा जा चुका है कि कुलुई मे न केवल सस्कृत के तत्सम्, तद्भव तथा अर्धतत्सम शब्दो का प्रभुत्व है, वरन् इसमे फारसी, अरबी, तुर्की, अग्रेज़ी आदि विदेशी भापाओ तथा पजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, भोजपुरी आदि आधुनिक भारतीय आर्य भापाओं से पर्याप्त मात्रा मे शब्दो का आगमन हुआ है जिन्हे कुलुई ने अपनी प्रकृति के अनुसार ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ इस प्रकार आत्मसात कर लिया है कि उन्हे विदेशी या अन्य भापा का कहना कठिन है। आम बोल-चाल मे कुलुई-भापी इन्हे बाहर का नही समझते। ये सभी तत्त्व कुलुई के अन्य भापाओं के शब्दो और गुणो के अपनाने मे उदार भावना को प्रकट करते हैं। इस प्रकार कुलुई मे अन्य भापाओ से शब्द उधार लेने के गुण स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। इस दृष्टि से यह ससार की अग्रेज़ी जैसी भापाओ के सामने खडी होती है, जिसमे अन्य भापाओ के शब्द अपनाने के अधिकतम गुण है, तथा इसी लिए अग्रेज़ी को उधार लेने की प्रवृत्ति (borrowing nature) वाली भापा कहा जाता है।

अन्य भापाओ के शब्दो को पचाने का गुण कुलुई का एक पक्ष है। परन्तु इसका दूसरा पक्ष इससे भी सबल है, और यह इसका मूल गुण भी है। यह दूसरा गुण इसकी रचनात्मक प्रवृत्ति है। कुलुई मे अपने प्रत्यय हैं और इन प्रत्ययो की सहायता से वह अपना अर्थ-विभेद करती है।

अर्थ-विभेद

कुलुई मे *अर्थ-विभेद का मुख्य लक्षण* ध्वन्यात्मक परिवर्तन है। सस्कृत के एक ही शब्द के विभिन्न अर्थों को भी कुलुई ने मूल शब्द की ध्वनि मे परिवर्तन करके विभिन्न अर्थों को विभिन्न रूपो से अभिव्यक्त किया है। इस तथ्य की कुछेक उदाहरणो से पुष्टि हो जायगी। कुलुई मे स० 'क्ष' कही 'छ' मे बदलता है, कही 'ख' मे, कही 'श' और कही 'छ' मे। ऐसा परिवर्तन कुलुई मे कोई अपवाद नही है। प्राकृत और अपभ्रश मे भी 'क्ष' अक्षर 'च्छ', 'क्ख' तथा 'ज्झ' मे बदलता रहा है, और पिशल जैसे विद्वानो के लिए यह समस्या रही है कि 'क्ष' को इस तरह विभिन्न रूपो मे बदलने का विधान या आदेश

क्या है ?[1] स्पष्टत: प्राकृत तथा अपभ्रंश की इस देन द्वारा कुलुई ने अर्थ-विभिन्नता में सहायता ली है। संस्कृत में 'कक्ष' के कई अर्थ हैं। इनमें से एक अर्थ 'बगल' है। कुलुई में इस अर्थ में कक्ष>कौछ में बदला है। सं० कक्ष का दूसरा अर्थ 'एक घास' है, कुलुई में इस अर्थ में 'काछू' या 'काछी' शब्द बना है। सं० कक्ष का एक अन्य अर्थ 'कटिसूत्र' है, जो कुलुई में 'काछा' बना है। एक अन्य अर्थ में सं० कक्ष का अर्थ 'स्त्री की तगडी है'। इस अर्थ में कुलुई का शब्द 'कूछ' बना है। स्पष्ट है कि कुलुई ने एक संस्कृत शब्द 'कक्ष' के विभिन्न अर्थों को ध्वनि परिवर्तन से कौछ, काछू, काछा, कूछ आदि स्वतंत्र शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया है और अर्थ स्पष्टत के साथ-साथ शब्दावली को बढ़ाया है। इसी तरह संस्कृत 'छत्र' शब्द को लीजिए। संस्कृत में इसका एक अर्थ 'कुकुरमुत्ता या खुंभी' है। इस अर्थ में सं० छत्र कुलुई में 'छोछी' रूप बना है। इसका दूसरा अर्थ 'छतरी' है जिसका कुलुई रूप 'छातरी' है। 'राजकीय अधिकार' के रूप में सं० छत्र का कुलुई शब्द 'छौछ' बना है (जैसे—देउआ री छौछ) और 'मधुमक्खी के छाता' के अर्थ में छाता। एवम्, संस्कृत 'तन्' के कई भाव हैं। 'फैलाना' के अर्थ में कुलुई रूप 'ताण' बना है, जैसे—झीकड ताण (पट्टू फैला)। 'पसारना' का भाव प्रकट करने के लिए कुलुई शब्द 'ताड' हो गया है, यथा—टागा ताड (टाँगें पसार)। और 'लम्बा करना या उठाना' के अर्थ में सं० तन् से कुलुई 'तिण' रूप बना है—झाऊ तीण (तिण) भावीए झाऊ तीण ओ-ओ (लो० गीत)।

संस्कृत की 'ऋ' ध्वनि मध्यकालीन भारतीय भाषा में ही कहीं 'इ' में बदल गई थी और कहीं 'उ' में, जैसे 'ऋण' से 'रिण' और 'ऋतु' में 'रुत'। ठीक यही अवस्था वर्तमान कुलुई की है, जैसे घृत से घिऊ, परन्तु मृत से मुआ। इस तरह संस्कृत 'सृज' के दो भिन्न अर्थों को कुलुई ने अलग अलग रूप द्वारा प्रकट किया है। सं० 'सृज्' का एक अर्थ पैदा करना या जन्म देना है। कुलुई में इस अर्थ में सं० सृज से 'सुज' (श्रुति के कारण सुज शब्द सुह भी बनता है) बनता है, जैसे—गाई सुजणा या गाई सुहणा। सं० 'सृज्' धातु दूसरे अर्थ में 'जमाव आना' के रूप में प्रयुक्त होती है, तब यह कुलुई में 'सिज' में बदल गई है, जैसे सीड़् सिजे। अत स्पष्ट है कि सं० सृज के दो अर्थों को व्यक्त करने के लिए कुलुई में दो अलग-अलग शब्द बने 'सुज' और 'सिज'। संस्कृत में अङ्गुल' के अर्थ हैं (1) अंगुली, और (2) एक अंगुली के बराबर फासला। कुलुई में दोनों के लिए अलग-अलग शब्द बन गए है—अंगुली के अर्थ में 'गूठी'[2] (अङ्गुल< अंगुलि < अंगूठी < गूठी) तथा एक अंगुली के बराबर फासले के अर्थ में 'आगल' (अङ्गुल < आगल)—जैसे एक आगल बेरला (एक अंगुल चौडा)। कुलुई में 'ल' और 'ल' अलग-अलग ध्वनियाँ हैं। इन से भी अर्थ-भेद में सहायता मिली है। कुलुई में शब्द के पूर्व-स्वर का लोप होता है। यह विस्तार में देखा गया है। इस प्रकार 'अकाल' से कुलुई शब्द 'काल' बना। दूसरी ओर 'कल्य' से भी तद्भव रूप 'काल' विकसित हुआ। परन्तु

1 Alfred C Woolner "Introduction to Prakrit"—अनु डॉ० बनारसीदास जैन प्राकृत प्रवेशिका, पृ० 28

2 कुलुई में गूठी से अभिप्राय 'अंगूठी' नहीं है। अंगूठी के लिए कुलुई शब्द मुदड़ी (सं०मुद्रिका) है।

दोनो मे मूर्धन्य 'ल' तथा वर्त्स्य 'ल' के कारण अन्तर है—अकाल से काल तथा कल्य से काल। इसी तरह हिंदी 'खाल' को कुलुई मे खोल कहते हैं और खल्यान को खोल <स० खल। अत स्पष्ट है कि इन प्रवृत्तियो द्वारा जहाँ एक ओर शब्दार्थ मे भेद हुआ है, वहाँ दूसरी ओर शब्द-निर्माण मे वृद्धि हुई है। इन उदाहरणों से कुलुई के शब्द परिवर्तन को अर्थ परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं से देखा जाना रुचिकर होगा।

(1) अर्थ-संकोच

मूल रूप मे, अर्थ-सकोच से अभिप्राय शब्दार्थ का सामान्य रूप से विशेष रूप की ओर परिवर्तन है। *अर्थ सकोच के कारण किसी शब्द का प्रयोग साधारण या विस्तृत* अर्थ से हट कर विशेष या सीमित अर्थ मे होने लगता है। उदाहरणार्थ सस्कृत 'भार' का अर्थ 'बोझ' है और वह कोई भी भारी वस्तु का वज़न हो सकता है। कोई भी बोझ भार है। परन्तु कुलुई मे भार का अर्थ केवल ऐसा बोझ होता है जिसका वज़न 16 पत्थे है (लग-भग 20 किलो, कुल्लू मे लेन देन मे पत्थे, और भार का ही हिसाब होता है)। यहा भार शब्द ने सामान्य अर्थ छोड़कर विशिष्ट अर्थ धारण किया है और इस प्रकार सकुचित अर्थ मे प्रयुक्त होता है। इसी तरह स० 'शिला' का अर्थ पत्थर है, जो किसी भी प्रकार का हो सकता है। परन्तु स० शिला से प्रसूत कुलुई शब्द शिल्ह का अर्थ केवल वह पत्थर है जो नमक पीसने के काम आता है—'शिल्ह-बौता' मे शिल्ह चौडा पत्थर है, जिस पर नमक रखा जाता है और बौता वह पत्थर है जिससे नमक घिसा जाता है। पुनश्च, सस्कृत मे 'हन्' का अर्थ 'मारना' है। स० हन् से काँगडी मे 'हण' बना है और कुलुई मे हुण। दोनो मे अर्थ एक ही है। परन्तु यहाँ सस्कृत के साधारण 'मारना' से विशिष्ट अर्थ हो गया है क्योकि काँगडी 'हण' और कुलुई 'हुण' के अर्थ केवल गाय बैल द्वारा मारना है, अन्यथा नही। सस्कृत मे 'गर्भिणी' का अर्थ 'गर्भवती' है और वह कोई भी हो सकती है जिसने गर्भ धारण किया हो। परन्तु कुलुई मे स० गर्भिणी से दो शब्द विकसित हुए हैं—गुर्भण और गौभण और दोनो ने सामान्य से हट कर विशिष्ट अर्थ धारण किए है। मानवजाति की स्थिति मे गर्भवती स्त्री को गुर्भण कहते है, और पशुओ की स्थिति मे गौभण। इसी प्रकार सस्कृत 'गर्भ' से कुलुई शब्द 'गौभ' केवल भेड के बच्चे को कहते है। स्त्री के बच्चे को 'गाभरू' कहते हैं। इसी तरह स० 'भोजन' का मूल अर्थ खाना या आहार है, अर्थात् जो कुछ भी खाने के लिए तैयार है। परन्तु कुलुई मे 'भोजण' केवल वह भोजन है जो देवता को चढाया या दिया जाता है। भोजन से ही एक कुलुई शब्द 'भोज' है जिसका अर्थ 'मिठाई' है। स्पष्ट है कि स० भोजन से कुलुई भोजण और भोज विशिष्ट अर्थ ग्रहण कर चुके है। सस्कृत का एक और शब्द 'वस्त्र' लीजिए। वह शब्द 'वस्' धातु से सम्बद्ध है जिसका अर्थ कोई भी लगाया जाने वाला कपडा है। परन्तु कुलुई मे 'वस्त्र' से 'बायरा' शब्द से *अभिप्राय* केवल 'सूती कपडा' है। सामान्य कपडो को कुलुई मे 'टाल्हे' कहते हैं।

अर्थ सकोच का सबसे बडा कारण सभ्यता का विकास है। या, दूसरे शब्दो मे, समाज के काम-धधो और रीति-रिवाज का प्रसारण है। ज्यो-ज्यो सामाजिक कार्य-

क्षेत्र बढ़ता है, सामान्य शब्द विशेष अर्थ धारण करते हैं और उनमे नये शब्दो का निर्माण होता है। संस्कृत मे 'वर्कर' किसी भी पशु के बच्चे को कहते थे, जैसे भेड का बच्चा, बकरी का बच्चा आदि। परन्तु आज 'बकरा'∠ वर्कर केवल नर-बकरे के लिए कहते हैं, मादा को बकरी, बकरी के बच्चे को छेलू, बच्चों को छेनी, 'भेड़' के बच्च को गोम, बच्ची को गोभी, जवान बकरे को बराट, भेडा को लौड़, जवान भेडा को दम कहा जाता है। भेड के जमते ही बच्चे को मीमो या मीमू (हिन्दी मेमना) कहते हैं।

अर्थ-सकोच का एक विशिष्ट उदाहरण नामकरण की स्थिति मे मिलता है। मनुष्य जब कभी किसी नई वस्तु को देखता है तो उसके मस्तिष्क मे तुरन्त उस वस्तु की कोई विशेषता या गुण समा जाती है और वह कल्पना शक्ति मे उसका नाम रख देता है। गृहीत गुण उस वस्तु का सर्वदा पूर्ण गुण नहीं होता। उसकी विभिन्न विशिष्टताओं मे से कोई एक हो सकती है, जिसने देखने या सुनने वाले को सबसे अधिक प्रभावित किया। उदाहरणार्थ जब वस्तु विशेष की ध्वनि ने सबसे अधिक प्रभावित किया हो तो ध्वनि प्रतीक सज्ञा स्थान लेगी। टम-टम करती हुई ध्वनि ने श्रोता को तुरन्त आकर्षित किया और उसने उसका झट 'टमक' (ढोल) नाम रख दिया। किसी ढोल पर दोनों हाथों से गिरती लाठी की तडातड ध्वनि से जो गण-गण शब्द सुनाई देने लगा तो उसका नाम गनारा (नगारा) रख दिया। घंटी के बीच लटकती हुई दोलक ने जब हिलते हुए टिन टिन की ध्वनि पैदा की तो उसके कानों म पडते ही उसने उसे 'ढिणमिणी' (घंटी) कह दिया। इसी तरह बादल की गर्जन की गड-गड ध्वनि को सुनकर उसे 'गडाडडा' (बादल की गरज) कह दिया। वृक्ष के तने पर चच्चु मे टुक-टुक करने वाले पक्षी का नाम 'टुटलू' (कठफोडा) रख दिया।

ध्वनि-प्रतीक की तरह ही आकृति प्रतीक नाम भी अर्थ-सकोच के उत्तम उदाहरण हैं। दुबला पतला लडका उत्पन्न हो तो जन्मते ही उसका नाम 'लान्हू' रख दिया और यदि मोटा हो तो 'थुल्हू'। लान्हे व्यक्ति कई हो सकते हैं, और मोटा-ताज़ा भी कई कुछ हो सकता है, परन्तु व्यक्ति विशेष का ऐसा नाम रखना, 'लान्हे' और 'थुल्हे' शब्द के अर्थ को सीमित करना है। इसी तरह देखने वाले ने तितली को पख फर-फराते देखा और झट उसका नाम 'फिफरी' रख दिया, और पटक-पटककर उछलते टिड्डा को 'टिट्टला' नाम दिया और लम्बे-लम्बे सींग वाले को 'शृगला' (निलचटा)। रग और आकृति के आधार पर नाम रखने की सामान्य प्रथा इसी सिद्धान्त पर प्रचलित है। गोरे रग के बच्चे का नाम 'गोरी' या शैलू होता है, काले रग वाले को कालू या गाउलू कहते हैं। गाय बैल के नाम तो प्राय उनके रग और रूप पर ही आधारित होते है, जैसे—'धोलू' (धवल रग का), कोघरू या भोरू (भूरे रग का), टिक्लू (जिसके माथ पर श्वेत निशान हो), लुम्बडी (जिसका मुह अधिक लम्बा हो), तिच्छू जिसके सीग बहुत तेज़ हो), गट्टू (जो गोल-मटोल हो) आदि।

कई बार नामकरण भावना या इच्छा प्रतीक होते हैं। भक्त तो कई होते हैं, परन्तु यदि माता-पिता की इच्छा हो तो अपने नवजात शिशु का नाम भगतू या भगतराम

रख देते है । भले ही बाद मे चोर बन जाए। परन्तु वह नाम के लिए भगतराम ही है। इसी तरह लायकराम (जो लायक हो), सगतू या सगतराम (जो अच्छी सगत मे रहे), धर्मू या धर्मसिह (जो धर्म का पालन करता हो), कर्मू या कर्मसिह (जो कर्म पर चले) आदि सभी नाम इच्छा या भावना पर आधारित हैं और नामकरण से लायक, सगत, धर्म, कर्म आदि शब्दो के अर्थ को सीमित कर दिया है। भले ही ध्वनि-प्रतीक, आकृति-प्रतीक तथा इच्छा प्रतीक शब्द व्यक्ति या वस्तु विशेष के गुण को सभी अथवा किसी विशिष्ट गुण को ही पूर्णतया प्रकट न कर सके, मानव की कल्पना ने ही धोखा खाया हो फिर भी यह स्पष्ट है कि ऐसे विशिष्ट शब्द अर्थ-विभिन्नता और शब्द-निर्माण के उत्कृष्ट नमूने है।

अर्थ-विशिष्टता का मुख्य कारण जाति या राष्ट्र विशेष के व्यापार अथवा कार्य का विकास है। आरम्भ म शब्द का एक सामान्य अर्थ रहा होगा, परन्तु ज्यो-ज्यो उस शब्द सम्बन्धी कार्य-क्षेत्र मे अधिक विस्तार होता जाता है, काय-पद्धति के विभिन्न स्वरूपो मे अर्थ भेद करना जरूरी हो जाता है, अत एक ही शब्द से विभिन्न रूप उत्पन्न होते हैं। उदाहरणत कुलुई मे भेडो की ऊन के लिए साधारण शब्द ऊन ही है। भेडो से ऊन वर्ष मे चार बार काटते है, और हर समय की ऊन लम्बाई और स्वरूप की बिना पर एक-दूसरे से किंचित भिन्न होती है, इससे नाम भिन्न-भिन्न हो गए है, जैस—ज्येष्ठ महीने मे काटी जान वाली ऊन **जठून** कहलाती है आश्विन महीने की **शरून**, मार्गशीर्ष (मगशर) महीन की **मगरून** तथा फाल्गुन महीन की **फगरून**। चूकि बकरी की ऊन भेड की ऊन स बिल्कुल भिन्न होती है वह मोटी और खुरदुरी होती है, इसलिए उसे ऊन ही नही कहा जाता, बल्कि उस **जौटा**<स० जटा कहते है। एक अन्य उदाहरण लीजिए भड-बकरी की खाल को कई काम म लाया जाता है। खाल को कुलुई मे **खाल** ही कहते है। जब इसे साफ करके हरिजन लोग पानी आदि लाने या नदी पार करने के लिए वायु डालकर प्रयोग म लाने के योग्य बनाते हैं तो उसे **खौल** कहते है। बकरे आदि की खाल की सफाई करके जब उसे आटा लाने या रखन के योग्य बनाया जाता है तो उसे **खलडी** या **खलडा** कहते हैं। बेकार पड़ी खाल को **खलिपडा** कहा जाता है, और खाल उतारने की क्रिया को **खलेडना** कहते हैं। इसी तरह कोई भी गोल वस्तु गोली कही जा सकती है, किन्तु विभिन्न गोल वस्तुओं के अर्थ-भेद के लिए भिन्न शब्द-रूप बने है —

गोली = दवाई आदि की गोली।
गोली = गोल चेहरे वाली स्त्री या महल म रहने वाली स्त्री।
गूली = मक्की के भुट्टे मे दाने उतारने के बाद अन्दर की गोल शक्ल की वस्तु जो जलाने के काम आती है।
गूली = गुदा-द्वार जो गोलाकार का होता है।
गेली = गोल आकार लक्डी का ठेला या वृक्ष के तने के गोल लम्बे टेले।
गौली = गिल्टी, विशेषत बगल मे हुई गिल्टी जो दर्द करती है।
गौली = जो घिर-फिरकर वही बात करे।
गौह्ली = गोल खाइयाँ।

इस तरह के अर्थ-सकोच के कुलुई मे अनेक उदाहरण मिलने है। सस्कृत प्रस्तर

से कुलुई शब्द पाथर बना है। छोटे-छोटे पत्थर जो दीवार तैयार करते हुए चिकनाई के बीच डाले जाते है बढाथर कहलाते है। चूल्हे मे आग को पीछे जाने मे रोकने के लिए खडे किए पत्थर को चलाथर कहा जाता है। भारी से पत्थर को जोन कहते है, और बहुत बडे पत्थर को टोल्ह (हिंदी टीला) कहा जाता है। पतले परन्तु चौडे पत्थर को पौट स० पट्ट कहते है जो स्लेट के रूप मे छत पर लगाए जाते हैं। परन्तु यदि पौट मोटा हो और छत पर लगाने के योग्य न हो और खल्यान मे लगाया जाए तो खलौठ कहते है। इसी तरह स० गुथ से कुलुई शब्द गुह बना है और इसी से दवगुह (दात की मॅल), कनगुह (कान की मॅल) आदि शब्द बने है।

इसी क्रम मे अर्थ-सकोच के उत्तम उदाहरण उन शब्दो मे मिलते हैं जहाँ अनक अर्थ-रूप एक ही शब्द से उद्भूत प्रतीत होते है। एक ही शब्द के आधार पर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थाश्रयो को अभिव्यक्त करने के लिए दूसरे शब्दो का निर्माण हो जाता है, जिन मे विशिष्ट अर्थों का समावेश रहता है। डॉ० नरेंद्र नाथ उक्खल ने सिराजी पहाडी से सम्बन्धित ऐसे शब्दो के सुन्दर उदाहरण दिए हैं।[1] एक ही शब्द-स्रोत से उससे सम्बन्धित विभिन्न अर्थो की अभिव्यक्ति के लिए नये शब्द निर्माण अर्थ-विशिष्टता के सुन्दर उदाहरण है। सस्कृत मे 'चूड' का अर्थ 'सिर के बीच मे बालो का गुच्छा' अर्थात् चोटी है। इसे कुलुई मे चोढ कहते हैं। अब, कुलुई मे सिर के बालो को अन्य बालो से भिन्न माना गया है। इसलिए सिर के बालो को 'चोढ़ा' कहते है जो स्पष्टत. स० चूड मे प्रसूत है। और, जब स्त्री सिर के बालो को सवार कर सिर पर स्तूप सा बना लेती है तो उस स्तूप को 'चूँढा' कहा जाता है। कृत्रिम बालो को या बालो के बाधने के लिए बने ऊन के जूडे को 'जूटू' कहते हैं। इस प्रकार एक सस्कृत 'चूट' शब्द से चोढ, चोढा, चूँढा, जूटू विभिन्न शब्द अर्थ- सकोच के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इस तरह के कुछ और उदाहरण देखे बनते है —

(i) सस्कृत 'लवण' से सम्बन्धित कुलुई के रूप भेदो की विभिन्नता—

लूण स० लवण, हिंदी नमक।
लूणा स० लवणित, हिं० नमकीन।
औलणा स० अलवणित, जिस मे नमक कम हो।
नलौट स० लवण पट्ट, जिस पत्थर पर भेड-बकरियो को नमक दिया जाता है।
नलोशू स० लवण-काष्ठ, काठ का बर्तन जिस मे नमक रखा जाता है—नलोशू अर्थात् लूणा रा कोश।
लुणटी नमक की छोटी डली।
कठूण 'काठी लूण', काठा नमक, काला नमक।
नलौशिणा नमक खाने की इच्छा होना।

(ii) सस्कृत नासिका से—

नाक स० नासिका, हिं० नाक।
नकसीर स० नासिका-सिरा हिं० नकसीर।

1 भाषा एव सस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित 'शोध-पत्रावली भाग 3, पृ० 3-8.

नाथण नक्सीर। यदि नाक से लगातार खून बहे और बंद न हो तो कुलुई में नक्सीर कहते हैं। यदि नाक में चोट आदि लगने से खून निकले तो नाथण है।

नक्शीर स० नासिका-शिर, नासाद्वार।

नक्चूली स० नासाग्र, नाक की नोक।

नकचूभी डुबकी।

बलाक नाक का एक आभूषण।

नकटा नाक-कटा, बेशर्म।

नौक्डना नाक से ध्वनि निकालते हुए किसी के पीछे लगना।

(iii) संस्कृत 'गौ' से उद्भूत अर्थ-रूप—

गाई स० गौ, गाय।

गोरू स० गोरूप, हिंदी 'ढगरे'।

गँआर स० गौ+आकार, गँवार।

गुआला स० गोपालक, गवाला।

गोशटू स० गौ+विष्ठा, सूखा गोबर जो जलाने के काम में लाया जाता है।

गोत्र स० गौ+मूत्र, गाय का मूत्र।

गोच स० गौमूत्र। जब गाय का मूत्र पवित्रता के काम में लाया जाए तो कुलुई में गोत्र कहते हैं और साधारण प्रयोग में गोच कहा जाता है।

गोह गौ की शक्ल का एक जानवर।

गोहर स० गौ+हर, जहाँ से गाय बैल ले जाए जाते हैं अर्थात् रास्ता, मार्ग।

गावड स० गौ+वाडव, गवार।

खुड स० गौ+हुड्, जहाँ गाय बैल इकट्ठे किए जाते हैं। गौओं का कमरा।

खुआडा 'खुड' से खुआडा, जहाँ भेड बकरियों को बंद करके रखा जाता है।

गाहण स० गौ+हन् ('हन्' जाने के अर्थ में), गौओं का नदी पार करके जाना। अब यह शब्द गौओं के अलावा सभी के नदी पार करने की क्रिया का द्योतक है।

घाण स० गौ+अन्न, गौओं को नियत समय पर दिया जाने वाला भोजन अर्थात् घास।

(iv) संस्कृत 'गूथ' से सम्बन्धित शब्द—

गुह स० गूथ, टट्टी।

गुहानरू स० गूथ+वस्त्र, छोटा कपड़ा जिससे बच्चे की टट्टी साफ की जाती है।

गुहातर स० गूथ+स्थात्र, टट्टी करने के लिए बनाया गढा।

गुह्रासड स० गूथ+वाटक, गाँव के बाहर ऐसा खुला स्थान जहाँ टट्टी की जाती है।

गुहतलू जो घडी घडी टट्टी करता है।

गहिन गूथ+गन्ध, टट्टी की बदबू।

कनगुह स० कर्ण+गूथ, कान की मैल।
ददगुह स० दन्त+गूथ, दाँत की मैल।

(v) इसी प्रकार समास द्वारा अर्थ-सकोच के उदाहरण पाणी 'पानी' शब्द मे देखे जा सकते हैं :—

पाणी पानी।
खराणी खारा+पानी, नमकीन पानी।
नकाणी 'नाक का पानी' यदि श्लेष्मा गाढा न हो तब नकाणी कहा जाता है।
चडाणी 'चोडा रा पाणी' छप्पर से गिरता बारिश का पानी।
कडाणी 'काढा रा पाणी' जूशाँदा का पानी।
शमाणी 'शीमा शमाणी श्लेष्मा के साथ पानी जो जुकाम के कारण निकलता है।

वास्तव मे ज्यों-ज्यों भाषा समृद्ध होती जाती है, त्यों-त्यों कई प्रकार से अर्थ-सकोच हो जाता है। उपसर्गों का प्रयोग इस दिशा म आम प्रचलित प्रवृत्ति है। उपसर्गों के प्रयोग स अर्थ-विभिन्नता लाई जाती है, जैस—बौत 'मार्ग' और कबौत 'बुरा मार्ग', घोण 'धन' और कघोण 'बुरा धन', शोभ 'सु-दरता' और कशोभ 'असुन्दरता' आदि। इसी तरह प्रत्ययों के प्रायोग द्वारा भी अर्थ-सकोच होता है, उदाहरणार्थ—राग (सगीत), रागी (सगीतकार), जोड (जोड), जोडी (भेडों के लिए पत्तियाँ), माल (सामान), माली (बाग का रखवाला), पेट, पेटी, भोज (मिठाई), भोजण (देवते का प्रसाद), पौज (शहतीर), पौजण (पैदावार) आदि।

(2) अर्थ विस्तार

अर्थ-परिवर्तन की दूसरी दिशा अर्थ विस्तार है। जब किसी शब्द का अर्थ सीमित क्षेत्र से निकलकर विस्तृत भाव को प्रकट करे तो वह अर्थ विस्तार का द्योतक है। कुलुई मे अर्थ विस्तार के बडे उत्कृष्ट और व्यापक रूप मिलते है। उदाहरणार्थ, नारद एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि हुए हैं। इस दृष्टि मे नारद बडे विशिष्ट अर्थ का द्योतक है। परन्तु कुलुई समाज मे इस रूप मे नारद का प्रयोग बडा सीमित है। नारद ऋषि का एक गुण यह था कि वे बडे कलह-प्रेमी और झगडा लगाने मे बडे चतुर थे। इस गुण को लेकर कुलुई समाज म नारद शब्द आम प्रयुक्त होता है, और हर किसी को नारद कहा जाता हैं जो हेरा फेरी, चुगली, और झगडा पैदा करता हो। चाहे पुरुष हो, स्त्री हो, बच्चा हो, बूढा हो इस चरित्र के मालिक को नारद कहा जाता हैं। यहाँ नारद शब्द ऋषि विशेष के सीमित अर्थ म निकल कर कलह प्रेमी, हेरा फेरी, झगडालू आदि आमभाव का द्योतक बन गया है। इसी तरह आरम्भ मे 'नरेल' केवल वह हुक्का होता था जो नारयल का बना होता था। परन्तु, आज कुलुई समाज मे हुक्का शब्द तो प्रयुक्त नहीं होता, बल्कि हर प्रकार के हुक्के का नरेल कहा जाता है, चाहे वह नारयल का बना है, काठ का बना है, मिट्टी का बना है या किसी प्रकार की धातु का बना हुआ हो। स्पष्टत नरेल शब्द सीमित अर्थ मे निकल कर विस्तृत अर्थ मे प्रयुक्त होता है। इसी तरह 'गूल' का सम्बन्ध स०

शूल शब्द से है जिसका अर्थ है तीक्ष्ण, शकु, तेज काटा, कील आदि। दर्द के अर्थ मे शूल का अर्थ है केवल ऐसी पेट दर्द जिसमे तेज कील के चुभने की तरह दर्द हो। परन्तु आज कुलुई मे शूल हर प्रकार की पेट-दर्द है, चाहे वह बदहजमी से हो, सर्दी के कारण हो, गुर्दे की बीमारी हो या कुछ और। पेट मे दर्द होनी चाहिए और वह शूल है। पुनश्च, इन्द्र और रुद्र के अश्व को वभ्रु कहते हैं। वभ्रु शिव का भी नाम है। परन्तु आज कुलुई समाज मे देवताओ के पास आम शब्द हो गया है और इसे 'लाग-जोग होणा', 'बागर वौहणा' आदि भाव के साथ प्रयुक्त किया जाता है, जब यह कहा जाता है कि "वभरू वौहण पौऊ" (वभ्रु वाहन पड गया)। गोहर शब्द का सम्बन्ध 'गौ+हर' से है, अर्थात् जहाँ से गौओ को ले जाया जाता है। परन्तु आज कुलुई समाज मे गोहर का अर्थ रास्ता है चाहे वहाँ से गायें जाती हैं या मनुष्य। उनके लिए बड़ी सडक भी गोहर ही है।

भाषा मे अर्थ-विकास के उदाहरण या गुण अधिक नही मिलते, क्योकि ज्यो ज्यो समाज सभ्यता और विकास के क्षेत्र मे आगे बढता जाता है शब्दो का अर्थ-विभेद उतना ही अधिक जरूरी हो जाता है, और सूक्ष्म भाव और वस्तु के लिए भी भिन्न अर्थाश्रय आवश्यक हो जाता है। इस तरह से अर्थ सकोच का ही भाषा मे अधिक प्रभुत्व होता है। यही कारण है कि टक्कर महोदय जैसे भाषा-वैज्ञानिक भाषा मे अर्थ-विस्तार मानते ही नही। अर्थ-विस्तार को वे अर्थादेश ही मानते हैं। परन्तु वास्तव मे अर्थ-विस्तार और अर्थादेश विभिन्न दिशाएँ है और कुलुई मे अर्थ-विस्तार के स्पष्ट उदाहरण मिलते है। जब तक किसी बोली मे साहित्यिक या लिखित रूप सामने नही आता तब तक शब्दो का अर्थ प्राय व्यापक ही रहता है। भावो की अभिव्यक्ति के लिए उनका अर्थ सीमित होता जाता है। आज 'दूध' शब्द कितने ही अर्थों को प्रकट करता है—गाय का दूध, भैंस का दूध, बकरी का दूध, भेड का दूध तो दूध है ही। फागडे वृक्ष का रस भी 'दूध' कहा जाता है। दूधली पौधे का रस भी 'दूध', माहुरा विष का रस भी दूध और छाउली पौधे का पानी भी दूध ही कहलाता है। इसी तरह 'चोढ' शब्द को लिया जा सकता है। यह बडे व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त होता है। कुलुई मे मनाल पक्षी की सुन्दर कलगी 'मनाला री चोढ' है, क्लेशा पक्षी की भी 'चोढ', मुर्गे की भी 'चोढ', सिर पर बालो की चोटी भी 'चोढ', हुतहुता री 'चोढ' आदि कितनी ही चोटियो और कलगियो के लिए 'चोढ' कहा जाता है, हालाँकि ये सभी एक-से-एक भिन्न है।

अर्थ-विस्तार का एक और मनोरजक उदाहरण उन शब्दो मे मिलता है जहाँ सामान्य अर्थाश्रयो के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त होता है। ऐसे उदाहरणो मे सादृश्यता का बहुत बडा हाथ है। पूला शब्द सस्कृत 'पूल' से सम्बन्धित है। स०√पूल् का अर्थ इकट्ठा करना, एकत्रित करना है। इसी से स० 'पूल' का अर्थ गुच्छा, बडल, गट्ठा, पूलिका है। कुलुई मे 'घाहा रा पूला', 'धाना-रा पूला', 'गेहू-रा पूला' इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है। परन्तु कुलुई मे इसका दूसरा अर्थ पैर मे लगाई जाने वाली घास की जूती भी है। चूकि यह धान के पराली घास से बनती है और इसमे 'एकत्र' की भावना भी है, इसलिए इस जूती को भी 'पूला' कहा गया है। कुलुई मे 'सोना' धातु के लिए 'सूना' कहते है। और 'सूना' शब्द बोसा, चुम्बन, चूमना के लिए भी प्रयुक्त होता है। चूकि सोना (धातु) बडा

यारा, महगा, अमूल्य होता है और चुम्बन भी ऐसा ही प्यारा, प्रिय, आनन्दमय होता है इसलिए सूना (धातु) की समरूपता से बोसा को कुलुई मे 'सूना' कहना अत्यत उचित है और अर्थ-विस्तार का सुन्दर उदाहरण है । इसी तरह, कुलुई मे ककडी, खीरा को कौकडी√स० 'कर्कटिका कहते हैं। हृदय की शक्ल भी लोगों को कर्कटी की तरह दिखाई दी, अत. हृदय को भी "कौकडी" ही कह दिया और यही शब्द प्रचलित हो गया। कुलुई म मुर्गी के बच्चे को कुकड़ < स० कुक्कुट कहते हैं। इसी की समानता से मकई के भुट्टे को भी कुक्ड़ कहा जाता है। इस तरह के कई उदाहरण देखे जा सकते हैं, जैसे—ठारा 'अठारह' तथा 'घुटने से टखने तक टाग का अगला भाग', भेड़ 'भेड-बकरी' तथा 'खोलना' 'उघेडना'; जाल 'जाल' और 'जलाना', चाकर 'चकोर' और 'नौकर-चाकर', सो 'सोना' तथा 'वह', घोडी 'घोडा से स्त्रीलिंग' और घराट के ऊपर लकडी की कोठडी सी जिसमे दाने डाल दिए जाते है, ताकि एक-एक करके गिरते रहें', काठी 'ज़ीन-काठी', 'घराट के ऊपर घोडी से नीचे चौडी-सी लकडी की तख्ती' और 'ढोल बजाने की काठी', कोठी 'बड़ा मकान', 'गांवो का समूह', तथा 'कुल्हाडे का समतल भाग' आदि ।

(3) अर्थादेश

अर्थ-परिवर्तन की मूल दिशा अर्थादेश माना जाना चाहिए। अर्थ-विस्तार मे शब्द के अर्थ का विकास होता है और अर्थ-सकोच मे शब्दों के अर्थ सीमित और विशिष्ट हो जाते हैं। परन्तु, अर्थादेश मे शब्द का अर्थ मूल भाव से बदल कर नया रूप लेता है। वास्तव मे वस्तु, स्थान या भाव का जब कोई नाम दिया जाता है, तो उस नाम मे उस वस्तु, स्थान या भाव विशेष के कई गुणों और विशेषताओं मे से कोई विशिष्ट गुण अथवा विशेषता ही अग्रसर होती है। दूसरे गुण छुप जाते हैं। धीरे-धीरे उपेक्षित गुण अधिक परिलक्षित हो जाते हैं, और पूर्व अर्थ किसी अन्य वस्तु के विशिष्ट गुण मे अधिक सम्बन्धित हो जाता है और इस तरह शब्दार्थ बदलते रहते हैं। उदाहरणार्थ, 'लाक्षा' का मूल अर्थ एक कीट था जो लाल पदार्थ पैदा करता था। धीरे-धीरे स्वय कीट भाव-विचार मे लुप्त हो गया और उस द्वारा निर्मित पदार्थ अधिक अग्रसर हो गया और आज लाख < स० लाक्षा का अर्थ लाख, मोम हो गया।

सस्कृत मे 'वाम' का अर्थ 'स्त्री के स्तन' भी है। बाया तो इस का अर्थ है ही। बायां के अर्थ मे कुलुई शब्द 'बाउआ' है। परन्तु, वाम शब्द स्त्री के स्तनो (छाती) के ऊपर दोनों तरफ लटके पट्टू के किनारो के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे—वाम टिमणा। यहा 'वाम' का अर्थ 'स्त्री-स्तन' से बदल कर 'स्तनो के ऊपर लटके पट्टू के किनारे' हो गया है। सस्कृत मे 'चेटक' का अर्थ 'दास, नौकर, उपपति या यार' है। कुलुई मे स० चेटक से 'चे ट्' बना है और चे ट् का अर्थ डाइन-स्त्री 'डाकिनी' का ऐसा अदृष्ट नौकर अथवा यार है जिसे वह मत्र द्वारा दूसरों का नुकसान करने के लिए भेजती है। सस्कृत 'विमान' की उत्पत्ति 'वि+मा' से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है विशेष रूप से मापना, पार कर जाना, अबूर करना। इसलिए 'विमान' से अभिप्राय देवताओं का रथ था जो अपने आप चलता था और सवार को वायु मे एक जगह से दूसरी जगह ले जाता था। पौराणिक

कथाओ मे इसका सम्बन्ध पूरे भवन से भी जोडा गया है जो पूरा का-पूरा वायु मे उड कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुचता था। आजकल विमान का रूप वायुयान या हवाई जहाज है। परन्तु आदिकाल के पौराणिक समय से लेकर वायुयान के आविष्कार तक मानव के मस्तिष्क से विमान का रूप लुप्त हो चुका था, हा, कल्पना बनी रही। और चूँकि इसका सम्बन्ध वायु मे उडने से है, अत कुलुई समाज ने अधिक विश्वसनीय धारणा को ले कर आन्धी या प्रखरवायु को बियाना < बिमाना < स० विमान कह दिया — बागर बियाने बूटे रडाए 'आन्धी ने वृक्ष उडा दिए'।

वास्तव मे, कुछ शब्दो के प्रधान अर्थ के साथ-साथ गौण अर्थ भी रहता है। समय की गति के साथ धीरे धीरे प्रधान अर्थ का ह्रास होने लगता है और गौण अर्थ प्रधानता ग्रहण करता है जब अर्थादेश हो जाता है। उपर्युक्त 'विमान' मे यह बात स्पष्ट है। विमान मे भवन या रथ की अवधारणा समाप्त हुई परन्तु उडान के गौण अर्थ ने 'बियाना' मे आन्धी का रूप ले लिया। सस्कृत मे 'तालु' का अर्थ मुह का ऊपर का भाग है। इसे कुलुई मे 'मेइड' कहते हैं। परन्तु कुलुई मे 'तालू' का अर्थ सिर का बाहर का भाग है। इसी तरह सस्कृत मे 'क्षण' का मुख्य अर्थ पल या घडी है। इस अर्थ मे कुलुई का समास युक्त शब्द 'घडी-पल' प्रचलित है, जैसे—घडी-पला-न पुहता 'एक क्षण मे पहुँच गया'। क्षण का अर्थ सस्कृत मे अवकाश या फुरसत भी रहा है, परन्तु यह इस का गौण अर्थ था। कुलुई मे क्षण से छोण शब्द केवल सस्कृत के गौण अर्थ 'फुरसत' के रूप मे ही प्रयुक्त होता है, पल या घडी के अर्थ मे नही। त्यौहार का अर्थ पर्व है। कुलुई मे पर्व के लिए 'साजा' कहते हैं। परन्तु साजा के दिन प्रत्येक घर से जो अनाज और भोजन भृत्यवर्ग को दिया जाता है उसे 'तिहार' कहते हैं। यहा तिहार का मूल अर्थ त्यौहार म बदल कर पर्व मे दिय जाने वाले भोजन की नियत मात्रा रह गया है। अर्थादेश कई बार दो समान विचारो मे से एक विचार के लुप्त होने से प्राय हो जाता है। स० वत्स का अर्थ बच्चा था और बछडा भी। आज कुलुई मे वत्स से विकसित शब्द 'बौछू' केवल बछडे के लिए सीमित रह गया है। सस्कृत शब्द 'मौक' का सम्बन्ध 'मूक' मे है, जिस का अर्थ गूगा है जो कुछ नहीं बोल सकता। सम्बद्धता के कारण उसको भी मौका कहा जाता रहा है, जो बिलकुल गूगा तो नही था, थथला कर बोलता हो। आज गूगे को तो कुलुई मे 'लाडा' कहते हैं और मौका शब्द केवल उसके लिए नियत रह गया है जो तोतला हो, हकलाहट कर बोलता हो।

अर्थादेश की अर्थापकर्ष और अर्थोत्कर्ष दो दिशाए हैं। कई बार मूल अर्थ का विकार हो जाता है और कई बार मूल अर्थ उत्कृष्ट भाव ग्रहण करता है। पीछे हम 'नारद' शब्द के प्रयोग के बारे मे लिख चुके हैं। कहा नारद महर्षि और कहा आजकल नारद केवल उसे समझा और कहा जाता है जो झगडा लगाने वाला, चुगलखोर और षड्यन्त्र रचाने वाला हो। इसी तरह सस्कृत मे 'नाथ' का अर्थ रक्षक, स्वामी, मालिक है। बाद मे नाथ पथी के अनुयायी भी नाथ कहलाए। परन्तु, आज नाथ केवल एक मागने वाली जाति समझी जाती है और कुलुई मे जो मागता फिरता है उसे कोसते हुए 'नाथ जेहा'

(नाय जैसा) कहा जाता है। 'पूजा' शब्द कुलुई मे भी उसी अर्थ और सम्मान मे प्रयुक्त होता है जिसमे सस्कृत मे होता है। परन्तु सस्कृत मे जहा 'पूज' धातु पूजना के अर्थ म प्रयुक्त होती है वहा कुलुई मे 'पूज़' बीमार का इलाज करने की ऐसी घृणित विधि है जिसमे पशु बलि अवश्य दी जाती है। इसी तरह 'निराकार' शब्द 'साकार' का विपरीतार्थक है और प्राय भगवान के स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। परन्तु कुलुई मे 'ह निरिकारा' तभी बोलते है, जब गाली देनी हो या किसी का तिरस्कार करना हो। इस तरह यह अर्थापकर्ष का एक उदाहरण है।

अध्याय—9

शब्द-रचना

'अर्थ-तत्व' के अधीन अर्थ-विभिन्नता पर विचार करते हुए कुलुई में शब्द-व्युत्पत्ति के बारे में उदाहरण देवे जा चुके हैं। यहा शब्द-निर्माण के सम्बन्ध में तीन शीर्षकों के अन्तर्गत विचार करना उपयुक्त रहेगा :—

(i) उपसर्ग : शब्द विशेष के आरम्भ में अक्षर या अक्षरो के सयोग से ,
(ii) प्रत्यय : शब्द के अन्त में अक्षर या अक्षरो के मेल से , और
(iii) समास : दो स्वतन्त्र शब्दों के मेल से ।

(i) उपसर्ग

कुलुई मे कुछ सस्कृत तथा कुछ विदेशी उपसर्गों का प्रचलन है, जिनका नीचे उल्लेख किया जाता है :—

अ · सस्कृत का आदि 'अ' उपसर्ग कुलुई में मूल रूप में या कहीं-कहीं ध्वनि परिवर्तन के कारण 'औ' में बदलता है, जैसे—औलणा स० अ+लवणित, जिसमे नमक कम हो, अमर, अजान < अज्ञान ।

अन · ध्वनि विकार के कारण 'अन' प्राय 'अण' में बदलता है या केवल 'न' रह जाता है—अणजाण या नजाण 'अनजान', अणपोढ या नपोढ 'अनपढ', अणबण 'अनबन', अणशुणी या नशूणी 'अनसुनी'।

अध : कुलुई में 'औध' हो जाता है—औधमुआ 'अधमरा, औधपोका 'अधपक्का', औधकाचा 'अधकच्चा'।

अव : अव > औ—औगण 'अवगुण', औतार 'अवतार', ओल्हा 'अवलक्ष'।

क, कु ; कबोत 'बुरी वौत अर्थात् रास्ता', कजात 'कुजात', कजीण 'कुजीवन', कदशा 'कुदशा', कधोण 'बुरा धन', (प्राय पशुओं के सदर्भ में) कमुंहा 'बुरे मुंह वाला', कवेला 'प्रतिकूल समय'।

दुर् : 'दुर्' कभी कभी 'दर' में बदल जाता है—दुर्बुध या दर्बुध 'बुरी बुद्धि', दुबला 'दुर्बल', दरगाही 'बुरे रास्ते पर चलने वाला', दरहाट

'बुरे दर्शन' ।

निर् : कभी 'न' रह जाता है, जैसे—निर्गुणा या नगूणा 'निर्गुण', निरिकार 'निराकार', नराश 'निराश', < नराठ 'निराष्ठ, 'अलग-थलग' ।

नि : नडीरा 'निडर', नकम्मा 'निकम्मा', नरोग 'निरोग', निधडक 'बेधडक', निउदा 'निमंत्रण', नभागा 'अभागा', निहाल 'निभाल' ।

सु : सधार (ना) 'सुधार', सकाला 'सुकाल', सजाइण 'सुजाया' ।

प्र : प्रकटा (प्रकटी बेशीरी) 'प्रकट', प्रोगडा 'प्रकटन', पियाशा 'प्रकाश', प्रचार 'प्रचार', पोजणा 'प्रजन', प्रताप, प्रतख 'प्रत्यक्ष' (जैसे—देउएँ गुण धीना प्रतख लाऊ), प्रभु, प्रशाद 'प्रसाद', प्राच्छ 'प्रायश्चित' ।

पर : पराहुणा (पाहुणा) = पर + आगत, परेखणा 'पर + ईक्षण', परेउगण = पर + अवगुण, 'निरीक्षण' ।

कम : कमजोर, कमचोर, कमकीमत ।

खुश : खुशहाल, खुशक्स्मित, खशामद 'खुशामद', खुशदिल ।

ना : नराज 'नाराज', नलाइक 'नालायक', नपेश 'न गुजरने वाला', नकारा 'नाकारा', नबालग 'नाबालिग' ।

गैर : गेइरहाज़र 'गैरहाजिर', गेइरवाद 'गैरआबाद', गेइरसरकारी ।

बद : बदनाम, बदचलन, बदकार, बदबू ।

बे : बेइमान, बेकार, बेसमझ, बेशमार, बेदखल, बेवाक, बेबस ।

ला : लाबारस, लाचार, लाजवाब ।

हर : हर-रोज, हरसाल, हरवार, हरघडी ।

(ii) प्रत्यय

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है प्रत्यय वे अक्षर हैं जो शब्दों के अन्त में जोडे जाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—(क) 'कृत्' प्रत्यय—वे हैं जो क्रिया की धातु के अन्त में जोडे जाते हैं। इस तरह जो नया शब्द बनता है उसे कृदन्त कहते हैं, (ख) तद्धित प्रत्यय—क्रिया की धातुओं के सिवाय अन्य शब्दों के साथ जोडे जाते हैं। यहां कुनुई के दोनों प्रकार के प्रत्ययों का उल्लेख किया जाता है —

+अ : यह क्रिया की धातु में जुडकर उसे संज्ञा बनाता है, जैसे—कीलणा क्रिया की धातु कील् + अ = कील 'खूटी' का अर्थ देता है। इसी तरह खेलणा से 'खेल', चोरना से 'चोर', घाणना से घाण, लागणा से 'लाग' (मूरा-न वडी लाग सा)। यह संस्कृत प्रत्यय है।

+अक्कड : यह कृत् प्रत्यय है और कर्तृवाचक का भाव देता है, यथा √पी से पीना 'पिअक्कड', √भूल् से भूलना 'भूलक्कड', √घूम् से घूमणा 'घुमक्कड' आदि। इसकी व्युत्पत्ति प्राकृत अक्क + ट > अक्कड से हुई है।

+अत् : कृत् प्रत्यय है और प्राय भाववाचक सज्ञा बनाता है, जैसे बच् धातु से 'बचत', लाग् धातु मे 'लागत', खप् धातु से 'खपत'। इसकी व्युत्पत्ति स० अन्त>अत मानी जा सकती है।

+अती : कृत् प्रत्यय है और इससे भी भाववाचक सज्ञा बनती है, यथा बुणना क्रिया की बुण् धातु से 'बुणती', गिणना क्रिया की गिण् धातु से 'गिणती', बस् मे 'बसती', भर से 'भरती' आदि। यह भी स० अन्त+इ >अती द्वारा व्युत्पन्न हुआ है।

+अण् : इस कृत् प्रत्यय से भी भाववाचक सज्ञा बनती है, जैसे—पिश् (पीसना) से 'पिशण', निड् (निडाई करना) से 'निडण', बाह् (बोना) से 'बाहण', लेम् (लेप करना) से लेमण आदि। यह सस्कृत अन् से उत्पन्न हुआ है।

+अणी, णी : यह स्त्रीलिंग कृत् प्रत्यय है और 'अण' का ही विस्तार रूप है। सोठणा (सोचना) क्रिया की सोठ् धातु से 'सोठणी', कील् स 'कीलणी', कोमणा (कापना) क्रिया की कोम् धातु से 'कोमणी'।

+आ : इसकी व्युत्पत्ति सस्कृत 'आक' से सिद्ध होती है। यह कई भावों को अभिव्यक्त करता है। कृत् प्रत्यय के रूप मे यह कर्तृवाचक का द्योतक है, जैसे—धीज़णा क्रिया की धीज़् धातु से 'धीज़ा' (निश्चय), बीज् से 'बेज़ा' (बीज)। *करणवाचक को भी अभिव्यक्त करता है*—झूलणा से 'झूला', घेरिना से 'घेरा'। इसी तरह गुरुत्व के अर्थ मे शोठी से शोठा, लोटकी मे लोटका, मौगरू से मौगरा। कई बार लघुत्व भी दिखाता है—ढबुआ, नाला, निरटा आदि।

+आई : कृत् प्रत्यय के रूप मे स्त्रीलिंग भाववाचक सज्ञा बनाता है, यथा—बुणना से 'बणाई', सीणा से 'सिआई', लिखणा से 'लखाई', चढना से 'चढाई', धोणा से 'धुआई' आदि। यह तद्धित प्रत्यय के रूप मे भी प्रचलित है—साफ मे 'सफाई', मिष्ट (मीठा) से मठाई। इसकी उत्पत्ति सस्कृत 'आपिका' से सिद्ध होती है।

+आउण : यह भी कृत् प्रत्यय के रूप मे प्रयुक्त होता है, और क्रिया के प्राय प्रेरणार्थक रूप मे जुडता है, यथा—खेलणा के प्रेरणार्थक रूप खलयाणा से 'खलयाउण', पीशणा—पशाणा से 'पशाउणा', बणना—बणाणा से 'बणाउण', पलाणा मे 'पलाउण' आदि। इसकी उत्पत्ति सस्कृत आप+उक से हुई है।

+आऊ : इस कृत् प्रत्यय से योग्यता लक्षित होती है, जैसे—बिकणा से 'बकाऊ' माल, चलणा से 'चलाऊ' माल आदि।

+आक . इस प्रत्यय मे सज्ञापद बनते हैं, जैसे—झाडणा से 'झडाक' (गिराने वाला), 'लडना' से 'लडाक' (लडाई करने वाला), शुणना मे 'सणाक' (पहल करने वाला, जैसे आपू सणाक)। इसी तरह करडा

से कड़ाक (मुश्किल), खड खड मे खडाक आदि। इसकी उत्पत्ति प्राकृत आक्क मे निश्चित होती है।

+आन् : यह कृत् प्रत्यय है जो प्राय प्रेरणार्थक क्रिया के साथ लगकर भाववाचक सज्ञा बनाता है, जैसे—ढोणा से ढुआणा प्रेरणार्थक क्रिया और 'ढुआन' भाववाचक सज्ञा। इसी तरह चीर-ना से चिराना और 'चरान', गिर-ना से गिराना और 'गरान' आदि। यह ध्वनिविकार के कारण 'आण' मे भी बदल जाता है, यथा—न्हाण(निन्हाणा से), मलाण (मिलाना से), बिछान या बछियाण (बिछाना से) आदि। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार सिद्ध होती है—स० प्ररणार्थक आपन > आवण > आण।

+आठा : यह तद्धित प्रत्यय है, और सस्कृत 'काष्ठ' से इसकी उत्पत्ति हुई है। यह सज्ञाओ मे जुडकर पुन सज्ञा या विशेषण शब्द बनाता है, जैसे 'छलीआठा' (छली+काष्ठ) मक्की का घास, 'कदराठा' (कोदरा+काष्ठ) कोदे अन्न का घास, 'सलिआठा' (सिउल+काष्ठ) सिउल या सरयारा का घास, चणिआठा (चिणी+काष्ठ) चिणी अन्न का घास आदि।

+आर : यह प्रत्यय कुलुई मे हिन्दी से आया है जो स० कार से प्रसूत हुआ है—चमार (चर्मकार), सुनार (स्वर्णकार), लुहार (लोहकार), कम्हार (कुम्भकार), शणिआर (जहा शोइण घास बहुत हो), खणिआर (जहा खनने, खोदने का काम बहुत हो) आदि।

+आल : पहाडी भाषा का यह एक प्रसिद्ध प्रत्यय है, जो स्थान-वाची या देशवाची है। कुलुई मे भी इसी भाव मे प्रयुक्त होता है, जैसे—पिति का रहने वाला 'पतिआल', जम्मू का 'जमुआल (जमवाल), लग का 'लगाल', रूपी का 'रपिआल', सारी का 'सरिआल', मण्डी का 'मण्डिआल', चम्बा का 'चम्बिआल' आदि (श्रुति के कारण ये शब्द प्राय रपियाल, मण्डियाल, चम्बयाल आदि हो जाते हैं)। कुलुई मे विभिन्न गाँव वालो को इसी प्रत्यय से अभिव्यक्त किया जाता है, जैसे रपडियाल, जण्डियाल, मढघियाल, खणियाल आदि। इसकी उत्पत्ति स० आलय से सिद्ध होती है।

+आरी : यह प्रत्यय भी हिन्दी से आया है, और सस्कृत 'कारिक' से सम्बन्धित है—पुजारी, पणिहारी, खणिआरी (खोदने वाला)।

+आव : यह प्राय आऊ मे बदलता है, जैसे—पलाऊ (पी, पीणा), शणाऊ (स० श्रु, सुणना), पडाऊ (पडाव)।

+आवट : कुलुई मे आउट मे बदलता है—थकाउट (थकावट), सजाउट (सजावट), मलाउट (मिलावट), बणाउट (बनावट)।

+आलू : यह आलड मे भी बदल जाता है। सयोग से विशेषण बनाता है,

जैसे—डर से डरालू या डरालड़ू (डरपोक), घर से घरालू या घरालड़ू (गृहातुर), झगडना से झगडालू, दयालू।

+आहडा · इस प्रत्यय से निम्नांकित शब्द सिद्ध होते हैं। यथा—चनाहडा (चुनाई करने वाला), बनाहडा या बनाहडी (बुनने वाला), कराहडा (कुल्हाडा)। इसकी उत्पत्ति स० आहन् से सिद्ध होती है।

+इया : यह प्रत्यय कुलुई में पूर्वकालिक कृदन्त है—खाइया 'खा कर के', पीइया 'पी कर के', शोटिया 'फेंक करके' आदि। यह प्रत्यय स्थानवाची भी है। गाँव वालों को प्राय इस प्रत्यय से सम्बोधित किया जाता है। जैसे—नगर गाँव का व्यक्ति 'नगरिया', बिलासपुर का 'बिलासपुरिया', जगतसुख का 'जगतसुखिया', 'मणिकरणिया' आदि। इसकी उत्पत्ति स० इक > प्रा० इअ > इआ > इया रूप में सिद्ध होती है।

+ ई यह प्रत्यय कई रूप मे प्रचलित है, जैसे (1) कृत् प्रत्यय के रूप मे क्रिया की धातु से भाववाचक संज्ञा बनाता है—झूर-ना से 'झूरी' (प्रेम), मुन-णा से 'मुनी' (भेड मुनी, ऊन कटाई), चोर-ना से 'चोरी' (चोरी), पुण-ना से 'पूणी' (ऊन की गुच्छी), आदि, ग्राह-णा से 'ग्राही' (अशदान), (2) तद्धित प्रत्यय के रूप मे कर्तृवाचक गुणवाचक संज्ञा बनाता है—ढोल से 'ढोली' (ढोल बजाने वाला), रोग से 'रोगी', सुख से 'सुखी' आदि, (3) यह स्त्रीलिंग का भी प्रत्यय है, जैसे—शोहरू से 'शोहरी' (लडकी), कुकड से 'कुकडी'(मुर्गी), बराल से 'बराली'(बिल्ली), कुत्ता से 'कुत्ती', (4) 'ई' लघुतावाची प्रत्यय भी है—बूटा से 'बूटी (छोटा वृक्ष), पाथर से 'पाथरी' (छोटा पत्थर), 'पूडी'(पुडिया), 'टापरी' (कुटिया), आदि, (5) यह स्थानवाची या देशवाची भी है, जैसे पंजाब से 'पंजाबी', बंगाल से 'बंगाली', काँगडा का 'काँगडी', खराह्‌ल का खराह्‌ली, सिराज का सराजी आदि। इसकी उत्पत्ति संस्कृत इक, इका से मानी जाती है।

+इरा . यह गुणवाचक विशेषण का प्रत्यय है, जैसे घणोइरा (घना), पतलोइरा (पतला)। यह पूर्णभूतकालिक कृदन्त का भी प्रत्यय है—खाइरा, पीइरा, शोटिरा, डाहिरा आदि।

+इला संस्कृत इलाक > इल > प्रा० इल्लआ से विभिन्न आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का 'इला' प्रत्यय व्युत्पन्न हुआ है, जिससे स्थान तथा कालवाचक विशेषण सिद्ध होते हैं। कुलुई मे यह केवल 'ल' रह गया है—आगला (अगला), पिछला, उझला (ऊपर का), मझला (मझला) आदि।

+उण, उणी · यह प्रत्यय धातु के प्रेरणार्थक रूप मे जुडकर भाववाचक संज्ञा बनाता है, यथा—मन-णा के मना-णा के प्रेरणार्थक रूप से 'मनाउणी' (मनाने की क्रिया, जैसे देऊ मनाउणी), डर-ना से डरा-ना तथा 'डराउणी', पढ-ना से पढा-ना तथा 'पढाउणी' (बुझारत), कौत-णा से कता-णा तथा 'कताउणी' (ऊन कताई की उजरत) आदि। इसकी उत्पत्ति स० आपन से हुई है।

इनका रूप 'उण' से भी समाप्त होता है—यथा उपर्युक्त क्रमश: मनाउण, डराउण, पढ़ाउण, बताउण।

+उत, उता — यह प्रत्यय विशेषण बनाता है, जैसे—पीछे से "पछौउता" (पीछे का), आगे से "धौउता" (आगे का)। इसकी उत्पत्ति सं० उक्त से इस प्रकार हुई है—उक्त > उत्त > उता।

+उदा — कृत् प्रत्यय है, जो भूतकालिक कृदन्त बनाता है। यह विशेषण का भी प्रत्यय है, जैसा—शौड़दा कौदू (सडा हुआ कद्दू), बेचुदा बौछ् (बेचा हुआ बछड़ा)। इसी तरह खाउदा, पीउदा, शोटुदा, चड़दा आदि।

+ऊ — यह कर्तृवाचक प्रत्यय है, जिसकी उत्पत्ति सं० उक से हुई है। तुआरू (इतवार को उत्पन्न हुआ), मगलू (मंगलवार का), बुधू (बुधवार का), पेट्टू (बडे पेट वाला), धनू (धन वाला), टहलू (टहलने वाला)। यह लघुता वाचक भी है, जैसे हांडा से हाडू, कुता से कुतू, बराल से बरालू आदि।

+एरा, एड़ा — यह भी कर्तृवाचक प्रत्यय है। तद्धित रूप में इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं—मसेरा (मासी का लडका), मलेरा या ममेरू (मामा का लडका), भलेरा (भूलने वाला जैसे—'भला केरिया भलेरा'), भतेरा (बहुतेरा)। कृत् प्रत्यय के रूप मे यह प्राय 'एडा' मे बदलता है—मलेडा>अम्लकृत, कचेडा (कच्चा उफरा हुआ आटा 'खमीर')।

+क, का, कू — इस प्रत्यय से लघुतावाचक और कर्तृवाचक शब्द बनते हैं, जैसे—लोटा से लघुतावाचक शब्द 'लौटक्', पौट्टू से 'पौटकू' तोप से 'तुपक' और 'तुपकू'। कई बार यह प्रत्यय अनावश्यक भी प्रतीत होता है, जैसे 'लाटा' का अर्थ 'लगडा' है और 'लाटका' भी वही अर्थ देता है। इसी तरह, 'शेट' और 'शेटका', 'शुट' और 'शुडक' (शुट वेश या शुडक वेश), मुण्ड और मुण्डका आदि। इसकी उत्पत्ति सं० कृत् मे मानी जाती है।

+करू — यह कृत् प्रत्यय है जिससे कर्तृवाचक शब्द बनते है, यथा—भाल-णा से 'भालकरू' (देखने वाला), चिह्न-णा से 'चिह्नकरू' (पहचान करने वाला), जुआडकरू (उजाड करने वाला)। इसकी उत्पत्ति सं० कर्ता से सिद्ध होती है।

+ची — इससे कर्तृवाचक सज्ञा बनती है, इसका सम्बन्ध तुर्की +च से है, जैसे—नगारा से 'नगारची' (नगारा बजाने वाला), दराव से दरावची, वाहू से 'वाहुची'।

+टा — इसकी उत्पत्ति संस्कृत 'त' से हुई है—शणाटा, गणाटा, तणेटा, झणाट, चाटा, दाटा।

+ड — इसकी उत्पत्ति सस्कृत वृत शब्द (वृ धातु) से सिद्ध होती है। वृत बाद मे वट तथा प्राकृत मे वाट मे बदला है। हिन्दी वाडी शब्द सं० वृत का ही विकसित रूप है। कुलुई के ड युक्त शब्दों मे 'वाडा' या 'घेरा' का भाव बना रहता है, जैसे—वेहड (या वेढ, घरो का समूह), वाड (वाडा), चाउड

(बरामदा), वेउड (खेत का बाहर का किनार।), खुआड (भेडो को रखने के लिए लकडी का बना घेरा), खु ड (गौशाला), कराड (बनिया), शाड (क्यारी) आदि।

डा, डी, ड़ सस्कृत वृत से व्युत्पन्न 'ड' का ही दूसरा रूप है और यह आकारसूचक प्रत्यय है। यह लघुता के लिए 'ड़', गुरुता के लिए 'डा' तथा स्त्रीलिंग के लिए 'डी' रूप मे प्रयुक्त होता है, जैसे—खोल (स० खाल) से खोलड़, खोलडा, खोलडी (आटा रखने के लिए बकरे आदि की मढाई हुई खाल), बूटा से बूटडी, बूटड़ (छोटा वृक्ष), दोद (दात) से दोदड, दोदडी, स० दिवस से दिहाडा—दिहाडी—दिहाड़। जहाँ सभी भाव व्यक्त करना इच्छित नही है, वहाँ केवल एक ही रूप प्रचलित है—हौथ से हौथड़, जोघा से जोघड़, जोत से जोतड़ आदि।

+णिया मूल रूप मे यह प्रत्यय 'इया' है जो सस्कृत प्रत्यय 'ईय' का विकसित रूप है। परन्तु यह क्रिया की धातु मे न लगने की बजाये क्रिया के मूल रूप मे 'णा' को 'णिया' मे बदल देता है, *यथा—खाणा से 'खाणिया' (खाने वाला)*, खोजणा स 'खोजणिया' (बताने वाला), 'लिखणिया' (लिखने वाला), हुण्डणिया (चलने वाला), छोटणिया (फेंकन वाला) आदि।

+ ता *यह कृत् प्रत्यय है जो सस्कृत अत् स उत्पन्न हुआ है, यथा*—जाणता, मोंगता (भिखारी), दाता, ग्राहता (ग्राहक)।

+ रू यह प्रत्यय स० रूप का सक्षिप्त प्रकार है, और लग-भग इसी भाव म शब्दा के साथ जुडता है, यथा—गोरू (गौरूप, डगरे), भौरू (भ्रमर+रूप), चाघरू (चित्र+रूप), कोघरू (कपिल +रूप), गाभरू (गर्भ+रूप)। इसी तरह जुआरू, शोहरू (सुशील+रूप, लडका), दारू आदि।

+ ला *इस प्रत्यय की उत्पत्ति स० 'ल' से मानी जाती है तथा यह विशेषणीय और* स्वार्थ प्रत्यय है। कुलुई म यह बहुत प्रचलित है जैसे—शोभ से 'शोभला' (सुन्दर), भाव स 'भावला' (इच्छुक), दूध से दुधला' (दूध जैसा), 'गोदला' (स्वर्णिम), 'भरेक्ला' (चौडा), 'खौदला' (अस्पष्ट) आदि।

+ हरा यह सस्कृत 'हार' स व्युत्पन्न हुआ है—कोहरा (एक पर्त), दोहरा (दो पर्त), त्रेहरा (तीन गुना), चौहरा (चार गुना) आदि।

उपर्युक्त प्रत्ययो के अतिरिक्त, कुलुई म विदशी प्रत्यय भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे—आना (जर्माना, तलवाना), खाना (छापाखाना, डाकखाना), खोर (नकलखोर, चुगलखोर), गर (जादूगर, कारीगिर), दार (ठाणेदार, चौकीदार, तसीलदार), बाज (धोखेबाज, मुकदमाबाज), आदि। इनके सम्बन्ध मे कोई विशेष बात नहीं है।

(iii) समास

कुलुई के समास-विधान को निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत देखा जा

सकता है :—

I संयोग-मूलक, II. व्याख्यान-मूलक, III. वर्णना-मूलक

I. संयोग-मूलक—इसमे दो या दो से अधिक पदो का सयोग होता है। इसके अन्तर्गत द्वन्द्व समास आता है, जिसमे प्राय दो पदों के बीच के समुच्चयबोधक अव्यय का लोप हो जाता है। कुलुई मे द्वन्द्व समास के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनमे से कुछेक के उदाहरण इस प्रकार देखे जा सकते हैं—

(1) रिश्ता सम्बन्धी—आमा-बापू (माँ-बाप), बाब-बेटे (बाप-बेटे), माँ-धिऊ (माता और पुत्री), बहण-भियारू (बहिन-भाई), माई-बाप (मा-बाप), शोशू-न्हूश (सास और बहू), शोशू-शौउरा (सास और स्वसुर), शोहरू-शोरनू (लडके और आश्रयी), याणेमाठे (बाल-बच्चे), याणेसियाणे (जवान और बूढे), बेटडी-मोरद (स्त्री-पुरुष), आदि।

(2) वस्त्राभूषण सम्बन्धी—चोला-टोपा (चोगा और टोपी), चोला-कलगी, सूथणू-कुरतू (पाजामा और कमीज़), कोट-पेंट, बालू-बलाक (नाक के दो आभूषण), तुनकी-तोडा (सिर पर लगाने के दो आभूषण), लोग-फुली, कोठी-कागणू (कण्ठी-कगन), सेला-चादरू आदि।

(3) भोजन सम्बन्धी—दाणापाणी (अन्न-जल), घिऊ-भोत (घी और भात), घिऊ-खिचडी (घी और खिचडी), मुराचाकटी (मुरा और चाकटी), काउणीचीणी, काठू कोदरा, खाणी पीणी (खान पान), चोकणपाणी (सब्जी और पानी), खोडाचाउली (अखरोट-चावल) आदि।

(4) पशुओं सम्बन्धी—भेडा-बोकरी (भेडें और बकरियां), गाईं-बोछू (गाये और बछडा), कुते-बराल (कुत्ते और बिल्लियां), छेलू-गोभा (बकरी और भेड के बच्चे) गधे-घोडे आदि।

(5) समानार्थक या सहचर शब्दो के सयोग के समासो के उदाहरण भी मिलते हैं, जैसे—कोम-काज (काम-कार्य), पाथर-गोटे (पत्थर-कंकर), झोडो-झोकड (झाडियां और झकाड), धुआधुआठ (धुआ-धूल), चीकरचाभड (कीचड-दलदल), गाश-पाणी (वर्षा-जल), घाह-पौचा (घास-पत्ते), कीडे मकोडे, लाजकारी (इलाज उपचार), रहराखस (भूत-राक्षस), लकड-काठ, बागर-बियाना (हवा-वायु), मेइडमाटा (मिट्टी) आदि।

(6) इसी तरह कुलुई मे विपरीतार्थक या प्रतिचर शब्दो के समास भी प्रचलित है, जैसे—रात-दिहाड (रात-दिन), सोझा-दोथी (सुबह-शाम), गूली-मुण्ड (चूतड और सिर, यथा—गूलीमुण्डारा थोग नी लागणा), ठाण्डा तौना (ठण्डा-गर्म), हिउदभरयाल (सर्दी-गर्मी), सोहर-गोहर (शहर-ग्राम) शूकसीन (सूखा-गीला), धारा-नाल (पर्वत की चोटी और नाला), उषानिशी (उषा-निशा, बचेंनी), पाप-पुन (पाप पुण्य), झाऊ-भियाऊ (ऊपर-नीचे), घोर-बोण (घर-वन), ढेक ब्रेउड (खेत के अन्दर बाहर के किनारे) आदि।

(7) अनुचर या अनुगामी शब्दों सहित समास—तुई-पोरशी (कल-परसों), हिज-फौरज (पिछले कल-परसों), पौर-पराहूर (गत क्रमश. दो वर्ष), आगली-नरिगली

(आने वाले क्रमश दो वर्ष), दिहाडी-दपोहरे (दिन-दोपहर)। इकट्ठे तीन-तीन संयोग भी प्रयुक्त होते है, जैसे—हिज़-फौरज-चौथे, शुई-पौरशी-चौथे, पौर-पराह्‌र-चनाह्‌र, आगली-नरिगली-चरिगली आदि ।

(8) कुलुई सामासिक पदो मे विकार शब्दसहित समास का बहुत रिवाज है। इत्यादि अर्थ अभिव्यक्ति के लिए ऐसे शब्दो का बडा प्रयोग मिलता है। आम बोल-चाल मे ऐसी द्विरुक्ति द्वारा प्राय बात-चीत होती है, जैसे—रोटी-राटी (रोटी आदि), टाग-टूग *(टाग आदि), आग-आग (आग आदि) । ऐसे शब्द नियमानुसार बनते हैं, और यह* नियम शब्द के प्रथम अक्षर की ध्वनि पर निर्भर करता है। यदि प्रथम अक्षर अ-आ-युक्त हो तो वह ऊ-युक्त मे बदल जाता है, जैसे—पाणी-पूणी, तार-तूर, नाक-नूक, धान-धून, प्याज-प्यूज, राग-रुग आदि। यदि प्रथम अक्षर इ-ई-युक्त हो तो वह 'आ' मे बदल जाता है—तीर-तार, खीर-खार, शिल्ह-शाल्ह, दिल-दाल, टीका-टाका आदि। प्रथम उ-ऊ-कार अक्षर भी आकार मे बदल जाता है—मूल-माल, दूत-दात, पुन-पान, लूण-लाण, पूणी-पाणी आदि। ए-ऐ भी आ-युक्त हो जाते हैं—लेर-लार (चीख-पुकार), खेल-खाल, तेल-ताल, *ये 'ऊ' मे भी बदल जाते हैं, लेर-लूर, तेल-तूल,* पेट-पूट *या* पेट-पाट, ओ-औ अक्षर आकार मे बदल जाते है—कोट-काट, कौन-कान, पौट-पाट, मौल-माल आदि। ऐसे समस्त पद का दूसरा शब्द प्राय निरर्थक होता है।

(9) अनुकार या ध्वन्यात्मक शब्द-सहित समास—ओली-पोली (जैसे ओली-पोली ओरे-पोरे जाणा ता मूंबे बी बोली, बु०), पता-सता, नोकर शोकर, हौल-बौल, होलका-ढौलका (हलका आदि), हाछा-पाछा (अच्छा आदि), अदला-बदला, टूणा-टोटका, आदि।

(10) *भिन्न-भिन्न* भाषाओ के शब्दो के समस्त पद भी कुलुई मे आम प्रचलित हैं। इनका नियम अन्यत्र लिखा जा चुका है, उदाहरणस्वरूप कुछ समास यहा देखे जा सकते है—सान-गुण (अरबी 'एहसान'+संस्कृत 'गुण'), मान-इज्जत (स० मान+अ० इज्जत), मान-धर्म (अ० ईमान+स० धर्म), लेखा रहाब (हिं० लेखा+अ० हिसाब), कागद-पतर (फा० कागज़+स० पत्र)।

II आश्रय-सूचक या व्याख्यान मूलक—ऐसे समास मे समस्त पद का प्रथम शब्द द्वितीय शब्द के अर्थ को सीमित करता है, या विशेषण रूप मे होता है। इसको मुख्यत तीन भागो मे बाटा जा सकता है—(1) द्विगु, (2) कर्मधारय तथा (3) तत्पुरुष। प्रत्येक की उदाहरण सहित नीचे व्याख्या की जाती है—

(1) द्विगु—जहा प्रथम पद सख्यावाचक विशेषण होता है, उसे द्विगु समास कहते हैं। कुलुई मे इसके कई उदाहरण मिलते हैं, जैसे—सतपोटा (सात पेटो का समूह), *सतनाजा (सात अनाजो का समूह, किसी दुख या कष्ट के निवारण के लिए* सात प्रकार के अन्न को इकट्ठा करके चौराहे पर फेंक देते हैं), नौग्रह (नौ ग्रहो का समूह), सतपुडा (सात तहो वाला), त्रकाल् (तीन कालो का समूह। सायकाल का वह समय जब प्रकाश अन्तिम चरण मे, अधेरा प्रथम चरण मे और दिन-रात का मिलन होता है), चरांगला (चार अगुली वाला, खलयान मे घास को दाने से अलग करने के लिए लकडी-विशेष।

असल मे आगे से इसके प्राय तीन शाखें होती है चार नही), दोघरा (दो घरो वाला), त्रमुइया (तीन-मंजिला), दमुहां (द्विमुखी), दोजड़ी (दो की जोडी), त्रेजड़ (तीन की जोडी), दोपहर, त्रिपुडा (देवी का नाम) आदि।

(2) कर्मधारय—जहा सामासिक शब्द का प्रथम पद प्राय विशेषण (सख्या-वाचक के अतिरिक्त) हो, उस कर्मधारय कहते है। कर्मधारय से अभिप्राय कर्म या वृत्ति धारण करने वाला है। इसमे दूसरा पद अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। यद्यपि मूल रूप म कर्मधारय का प्रथम पद विशेषण होता है, परन्तु इसके ऐसे रूप भी है जहा अन्य प्रकार के सयोग भी मिलते हैं, जैसे—

(i) विशेषण विशेष्य का सयोग—लाल-टोपी, महात्मा, लाल-पाणी, शामघन (शामघन, गाव का नाम), महादेऊ (महादेव), कालट्ट (काला पट), कचालू (कच्चा-आलू), मलाड़ (मिला-आरू, खट्टे आड़ू फल), मलेडा (मिला-पेडा, एक खास प्रकार की अम्लकृत रोटी जो खमीर डालकर बनाई जाती है।) क्चेडा (कच्चा-पेडा अर्थात् खमीर)।

(ii) विशेष्य विशेषण का सयोग—मुहनिहारा (मुह-अधेरा), दुधदागला (दाग लगा हुआ दूध), गीम औरा (भेड का अधूरा गर्भ)।

(iii) विशेषण-विशेषण का सयोग—लालपीउला (लाल-पीला) शेता चित्रा (श्वेत-चित्रित), लोमा-झोमा (लम्बा-झूमता हुआ), हौरा-पीउला (हरा पीला), खट्ट-मीठा(खट्टा मीठा), त्रसौता (तीन या सात), पद्रा-त्रीह (पद्रह-बीस), चितविता (चित्रित-वर्णित), काला शाउला (काला-सावला)।

(iv) विशष्य-विशेष्य—ठाकुर-साहब, अग्रेज-लोक (अग्रेज-लोग), अफसर-लोक (आफिसर लोग), बाबू-लोक आदि।

(3) तत्पुरुष—इस समास म सामासिक शब्द के दूसरे पद का अर्थ पहले पद के अर्थ से सर्वदा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। यहा प्रथम पद द्वितीय पद के अर्थ को सीमित करता है। तत्पुरुष समास म कर्ता और सम्बोधन कारको को छोडकर अन्य कारको मे से किसी एक कारक की विभक्ति का समावेश रहता है, और इसी आधार पर इसके निम्नलिखित भाग है—

(i) कर्मवाचक द्वितीय तत्पुरुष—जहा कर्मकारक की विभक्ति का लोप हो—माणुमार (आदमी को मारने वाला), जानमार (जीवन को मारने वाला), कठफोडा (काठ को फोडने वाला), छिड़ीचोर (लकडी चोर), मडदौहणू (मृत को जलाने वाला)।

(ii) करणवाचक तृतीय तत्पुरुष—जहा करण की विभक्ति का लोप हो—दाहदुआसी (दर्द स पीडित), रौछ बुणुआ (खड्डी स बुना हुआ), हौयक्जौगला (बिना यश का हाथ, यश से रहित हाथ), हौयेकौतुआ (हाथ स कता हुआ) आदि।

(iii) सम्प्रदानवाचक चतुर्थी तत्पुरुष—कडोठा (कुक्डोठा, कुक्कुट के लिए स्थान), गुहातरू (गूथ के लिए वस्त्र), तलोशी (तेल के लिए कोशी अर्थात् छोटा वर्तन), नलोशू (नमक के लिए कोशू अर्थात् छोटा वर्तन), वण्हागा (बुमणा अर्थात् बकमुआ के लिए धागा), देऊघरा (देवता के लिए घर)।

(iv) अपादानवाचक · पचमी तत्पुरुष—घौर-बोण (घर से बण तक), ढौगे-झौडना (ढकार से गिरना), देश-नकाला (देश से निकाला हुआ), छेते पौजुआ (खेत से पैदा हुआ)।

(v) सम्बन्धवाचक · षष्ठी तत्पुरुष—इसमे सम्बन्ध कारक की विभक्ति का लोप होता है, जैसे—छलियाठा (या सलियाठा, छली+काष्ठक, मक्की का घास), कदराठा (कोदे का घास), सनागणू (सोने का कगन), बणमाणु (बन-मानस), ठकरेढ (ठाकुर+वेढ, ठाकुरवाडी), कठकूणा (काठ के कोने वाला), घौर-मालक (घर का मालिक), गोत्र (गौ+मूत्र)।

(vi) अधिकरणवाचक सप्तमी तत्पुरुष—मुण्डासटी (सिर मे चोट), हौथा-कागणू (हाथ मे कगन), घरपेशी (घर मे प्रवेश), वणवास।

(vii) नञ् तत्पुरुष—इस समास मे निषेधात्मक उपसर्ग का समावेश होता है, जैसे—नजाण (अनजान), कदशा (बुरी दशा), औलणा (बिना नामक का), कवौत (बुरा रास्ता)।

III वर्णनामूलक या बहुव्रीहि—इस समास मे सामासिक शब्द का कोई भी पद प्रधान नही होता, और य दोनो पद इस तरह से मिलते हैं कि इन द्वारा किसी अन्य पदार्थ का बोध होना है, जैसे—"काठकुणहा" का शाब्दिक अर्थ है 'काठ के कोने वाला', परन्तु वास्तव म यह कुल्लू म घरो की एक किस्म है जिसमे प्राय लकडी अधिक लगती हैं, पत्थर-गारा कम और हर कोने पर शहतीर का जोडा होता है, पत्थर का नही। वर्णनामूलक को बहुव्रीहि भी कहा जाता है। इस समास के विग्रह मे जब अर्थ किया जाता है तो 'जो', 'जिसका', या 'जिसके' आदि का व्यवहार होता है। इसके निम्नलिखित भेद हैं —

(1) व्यधिकरण बहुव्रीहि—जब पूर्व पद विशेषण न हो तो व्यधिकरण बहु-व्रीहि समास कहलाता है, जैसे—डानकू घाह (घास विशेष, जिसके फल-पत्ते अण्डे के आकार के होते है), वण-कोकडी (जगली खीरा, ऐसी ककडी जो वन मे होती है), बौक्र शीघी (एक घास विशेष जिसके पत्ते बकरे के सीग की तरह होते हैं) वोण-जुआणे (जगली अज्वायन), मौछू घाह (ऐसा घास जिसके पत्ते मच्छर की तरह होते है), दुधलू माहुरा (ऐसा माहुरा-विष घास जिसके पत्ते मे दूध निकलता है), जौ-माला (ऐसी माला जिसके दाने जौ के दाने की तरह होते है), ढेढू-माला, चद्रहार, कन-वालू (ऐसा वालू जो कान मे लगाया जाता है।)

(2) समानाधिकरण बहुव्रीहि—जिसका पूर्व पद विशेषण और उत्तर पद विशेष्य हो, जैसे—चिकटी-कूरी (एक जडी विशेष, जिसके पत्ते चिकने होते हैं), शौठ-जलाडी (ऐसी जडी बूटी जिसकी साठ जडें होती हैं), काला माहुरा (विष की एक किसम जिसके पत्ते मे दूध की तरह सफेद नही, वरन् काला रस निकलता है, दुधलू-माहुरा के उलट), टुम्बली-मुण्डी (जडी विशेष जिसके पौधे का सिर नीचे की ओर झुका होता है), काली-आछा (ऐसा 'आछा' फल जिसका रग काला होता है), गुडला-

घाह (एक जडी विशेष जिसके पत्ते मीठे होते हैं) ।[1]

(3) व्यतिहार बहुव्रीहि—जहाँ परस्पर सापेक्षता प्रकट करने के लिए प्रयुक्त समास-युक्त पद हो उसे व्यतिहार बहुव्रीहि कहते हैं यथा—मुका-मुकी, धाका-धोकी, सट्टा-पट्टी, शडा-शडी (शीघ्र), कना-कनी आदि ।

(4) मध्य-पद लोपी बहुव्रीहि—जहाँ दोनो पदो के मध्यागत पद का लोप हो जाता है, जैसे—ट्टट्ट-बेला (ऐसा समय जब ट्टट्ट पक्षी घोंसले में जाता है, अर्थात् अन्तिम पल,) खजौया (ऐसा व्यक्ति जिसका बायाँ हाथ अधिक चलता हो), नौ-गजिया (नौ गज लम्बा अर्थात् बहुत लम्बा व्यक्ति) ।

1. उपर्युक्त ये सभी जडी-बूटियाँ हैं जो दवाई के काम आती हैं, और 'ढेली' नामक खमीर में भी पड़ती हैं जो स्थानीय सुरा बनाने के काम आती है ।

अध्याय—10

संज्ञा

कुलुई में संज्ञा शब्द हिन्दी के समान ही है, परन्तु कुलुई संज्ञा शब्दों में देखने वाली विशेषता यह है कि हिन्दी की अपेक्षा कुलुई में संस्कृत की प्रवृत्तियाँ अधिक सुरक्षित है। भारतीय आर्य भाषाओं के विकास के मध्यकाल में व्यजनात संज्ञा शब्द प्राय समाप्त हो रहे थे। परन्तु कुलुई में स्वरात और व्यजनात दोनों प्रकार के संज्ञा शब्द मिलते है। स्वरात संज्ञा शब्दों को सबल तथा व्यजनात संज्ञा शब्दों को निर्बल संज्ञा शब्द भी कहा जाता है। सबल संज्ञा शब्दों के उदाहरण इस प्रकार देखे जा सकते है —

आ-अत=दाउआ, कुत्ता, घोडा, काउडा, बूटा, शोठा, लोटा बौकरा, लेरा, मूछा, कमला, श्यामा।

ई-अत= मालो, भाई, पाणी, साथी, तेली, नेगी, रोगी, शोहरी, छोडी, बेटडी, बूटी, शोठी, बौकरी, गाई, शाई।

ऊ-अत= शोहरू, थिपू, चोलू, भालू, शौरू, दाढू, भाऊ, देऊ, लोभू, शौशू।

सबल संज्ञा शब्दों में उपर्युक्त स्वरों को छोड कर शेष स्वरों से अन्त होने वाले संज्ञा शब्द प्राय प्रचलित नही है। निर्बल संज्ञा शब्दों मे सभी व्यजनान्त रूप मिलते है—

नाक, खाख, राग, बराघ, खुड, दाच, बूछ, शौउज, शाझ, पीच, रौद्ध, नाज, बोझ, बूट, गोठ, चाण्ड, डाढ, घाण, कोछड, कोढ, रात, कोल्थ, दोद, कोध, फोन, पाप, फाफ, बाब, चाम, माम, मोर, खौल, खौल, न्हौश, बास, घाह।

कुलुई मे 'य' और 'व' अन्त वाले संज्ञा शब्द नही है। जैसे पहले लिखा गया है 'य' प्राय: इआ में बदल जाता है और 'व' सर्वदा उआ मे बदलता है।

हिन्दी और हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह कुलुई में भी संज्ञा-शब्द पाँच वर्गों मे विभाजित किए जा सकते है, यथा—

(1) व्यक्तिवाचक—जो किसी एक का बोध कराता हो—कुल्लू, नानक, सरवरी, कमला।

(2) जातिवाचक—जिस शब्द मे किसी पूरी जाति का बोध हो—कुत्ता, बराली, गाई, बौकरी, नौई, भेड आदि।

(3) समूहवाचक—जिस सज्ञा से अनेक व्यक्तियो या पदार्थों के समूह का ज्ञान होता है—छु्ड (भेडारा छु्ड), गोण (माहू रा गोण), गुछा (कुञ्जी रा गुछा), जाच, राश आदि।

(4) द्रव्यवाचक—जिससे किसी द्रव्य का ज्ञान होता है—जैसे घीऊ, सूना, रुपा, लोहा आदि।

(5) भाववाचक—जिससे किसी गुण, दशा, भाव, अथवा क्रिया का बोध होता है—निहारा (अधेरा), सुख, दुख, शोख (प्यास), भूख, दोश आदि।

कुलुई मे भाववाचक सज्ञा कई प्रत्यय लगा कर बनती है, उदाहरणार्थ—

1 कुछ क्रिया शब्दो से भाववाचक सज्ञाए उनकी धातुओ मे 'आई' लगाने से बनती हैं। ऐसे सयोग मे पूर्व मूल धातु मे परिवर्तन आता है —

क्रिया	भाववाचक सज्ञा	क्रिया	भाववाचक सज्ञा
चौकणा	चकाई	चिणना	चणाई
कौतणा	कताई	चौरना	चराई
भौरना	भराई	लिखणा	लखाई
बुणना	बणाई	ढोणा	ढुआई

स्पष्ट है कि ओ-अन वाली धातुओं को छोड कर शेष सभी स्थितियों मे धातुओं के सभी प्रकार के प्रथम स्वर 'अ' मे बदल जाते हैं।

2 कुछ क्रियाओं की स्थिति मे भाववाचक सज्ञा मूल क्रिया के 'ना' अथवा 'णा' मे से 'आ' की मात्रा हटाने से बनती है —

पीशणा	पीशण	वाहणा	वाहण
कूटणा	कूटण	निंडणा	निंडण
जौणा	जौण	लेसणा	लेसण

3 कुछ अन्य क्रियाए भी हैं जो अपने धातु रूप मे भाववाचक सज्ञाए होती हैं —

हारना	हार	खुगणा	खुग
जीतना	जीत	थूकणा	थूक
चोपडना	चोपड	हौसणा	हौस

4 आजकल कुलुई मे हिन्दी की प्रवृत्तियाँ भी आने लगी हैं, जैसे—

(क) विशेषण मे 'आई' लगा कर, जैसे—लोमा से लमाई, चौडा से चडाई, सौच से सचाई आदि।

(ख) 'हट' या 'वट' लगा कर—जैसे मलाणा से मलाउट (मिलावट), सजाणा से सजाउट (सजावट), थकना से थकाउट (थकावट), घबराणा से घबराहट, बणाणा से बणाउट, रोकणा से रकाउट।

(ग) विशेषण मे 'ई' लगाने से—चोर से चोरी, चलाक से चलाकी, कजूस से कजूसी, सरद से सरदी, गरम से गरमी।

विशेषताएं—

कुलुई के संज्ञा शब्दों की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

1. संज्ञा शब्दों के लघु रूप भी मिलते हैं। यदि संज्ञा शब्द के आकार अथवा विशेषता की लघुता अथवा न्यूनता दिखानी हो तो वक्ता प्राय संज्ञा शब्दों को ऊकारांत बना कर प्रस्तुत करता है—*जैसे घोड़ा से घोड़ू (छोटा घोड़ा), कुत्ता से कुतू (छोटा सा कुत्ता)।* इसी तरह *गधा से गधू,* कुरता से कुरतू, टुरडा से ठुरडू (पैर), बोकरा से बोकरू, गोभ से गोभू, सूथण से सूथणू (छोटा पाजामा)। कई बार यह लघु रूप ड, टू, लू लगा कर भी बनाए जाते है, जैसे बूटा से बूटड़ू (छोटा वृक्ष), होथ से होथड़ू, मुँह से मुँहड़ू, बूट से बूटड़ू कोट से कोटलू, टैंडा से टैंडलू, मेज से मेजटू, मांज़ा से मांजटू, खाखड़ू, काछटू, मूशा से मूशटू, नाक से नाकड़ू आदि।

2 ऐसा लघु रूप स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के भी बनाए जाते हैं—*टोपी से टोपू, पौटडी से पोटड़ू, वाहिली से वाहिलू, गराबी से गराबटू आदि।* परन्तु चाहे पुल्लिंग से ऐसा रूप बने अथवा स्त्रीलिंग से ऐसे शब्द सभी पुल्लिंग होते हैं।

3 भाववाचक संज्ञा प्राय एक वचन म ही प्रयुक्त होते हैं। इनके बहुवचन रूप का प्रयोग नही मिलता।

4 ई-कारांत भाववाचक संज्ञाए सभी स्त्रीलिंग होती है—कलाई की लेणी, ढुआई बड़ी औखी सा, चराई खरी नी हुई आदि।

5 *मूल क्रिया के 'आ' हटाने से बनी सभी संज्ञाए पुल्लिंग होती हैं*—पीशण नी निभू, बाहण केतरा रोहू, ज्ञीण खराब हुआ।

6 धातु रूप की संज्ञाए स्त्रीलिंग भी हो सकती है, और पुल्लिंग भी—तें हार मोनी, खुंग नी निभदी (दोनो *स्त्रीलिंग*), परन्तु थूक नी *निघलिदा, चौपड नी खाइदा* (पुल्लिंग)।

7 हिन्दी प्रवृति पर बनने वाली संज्ञाओ के लिंग हिन्दी समान ही होते हैं।

लिंग

हिन्दी की तरह कुलुई मे भी लिंग दो है—पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। सभी संज्ञा शब्द इन्ही दो लिंगो म विभक्त हैं। *संस्कृत की भान्ति नपुंसक लिंग कुलुई मे नहीं होता।* कुलुई का लिंग-ज्ञान वैयाकरणिक है। चाहे संज्ञा शब्द प्राणी हो, जैसे गाये, बैल, कुत्ता, हाथी, या अप्राणी जैसे पत्थर, वृक्ष, पहाड, नदी, अथवा चाहे मूर्त हो या अमूर्त जैसे विचार, लाभ, हानि, भाव आदि, सभी प्रकार के संज्ञा शब्द दोनो लिंगो मे से किसी एक से अवश्य संबन्धित होंगे। *यह* जरूरी नही कि हरएक पुल्लिंग शब्द का स्त्रीलिंग भी हो या *हर स्त्रीलिंग शब्द* का पुल्लिंग रूप भी हो। परन्तु यह आवश्यक है कि प्रत्येक संज्ञा शब्द या पुल्लिंग होगा या स्त्रीलिंग। और इसी आधार पर उन से सम्बन्धित क्रिया, विशेषण, सर्वनाम आदि रूप भी बदल जाएगे।

प्राणवान जीवो का लिंग-निर्धारण प्राकृतिक लिंग-भेद पर होता है। जैसे बोलद, बौकरा, कुत्ता, मरद, कुकड आदि सभी पुल्लिंग है, तथा उनकी मादा जानियाँ गाई, बौकरी, कुत्ती, वेटडी, कुकडी स्त्रीलिंग हैं। जानदार प्राणियो मे लिंग सम्बन्धी कुछ विचित्र स्थितियाँ भी हैं, जैसे गीदड, इलकण (चील), शियारी (घटारी), ईण (गिद्ध), ढरीण, मौर्दा (मछली), मौछी (मक्खी), शालो (सहल) आदि यद्यपि नर भी होते हैं और मादा भी, परन्तु ये सर्वदा स्त्रीलिंग मे ही प्रयुक्त होते हैं। इसके विपरीत काउडा (कौआ), उल्लू, बिछू, चरेडा, माहू (मधुमक्खी), रीधल (भरिंड), पणसीरा आदि जानवर हमेशा पुल्लिंग मे ही गिने जाते हैं। सम्बन्ध-सूचक सज्ञाओं मे पुल्लिंग ऊ-अन्तिम होते हैं—दादी दादू, नानी-नानू, आमा-बापू, परन्तु मामी से पुल्लिंग माम, बेबी से भाई, माउसी से काबु बनते हैं।

निर्जीव सज्ञाओं मे वस्तु के आकार के आधार पर प्राय लिंग-भेद होता है। गुरुत्व आकार की वस्तुए प्राय पुल्लिंग होती हैं, और लघुत्व आकार की स्त्रीलिंग। उदाहरणार्थ, वृक्ष बहुत बडा हो तो बूटा पुल्लिंग है। परन्तु यदि वृक्ष छोटा हो, या लम्बा हो परन्तु बारीक हो तो बूटी स्त्रीलिंग है। इसी तरह शोठा (मोटी सोठी), शोठी (बारीक सोठी), कुरता-कुरती, टोपा-टोपी, थाल-थाली, दाच-दाची, रोट-रोटी, पाथर-पाथरी, पौटू-पौटी, मांजा-मांजी, शा ण्हा-शा ण्ही। कई बार लिंग-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। ऐसा अर्थ-भेद साधारण से लेकर असामान्य तक रहता है। पाथर से पाथरी हर छोटे पत्थर का स्त्रीलिंग रूप नही है, बल्कि यह एक ऐसा छोटा पत्थर है जिस पर औजारो को घिसकर तेज़ किया जाता है। इसी तरह पौटू स्त्री की साढीनुमा एक पोशाक है, परन्तु पौटी ऐसा कपडा है जिससे अन्य कपडे कोट आदि बनाए जाते हैं। इसी तरह, 'काठ' से 'काठी' ऐसी छोटी, बारीक, गोल लकडी है जो ढोल आदि बजाने के काम आती है। यह साधारण अर्थ-भेद है, एक का सम्बन्ध दूसरे से कुछ सीमा तक नियत रहता है। परन्तु कुछ स्थितियो मे अर्थ बिलकुल भिन्न हो जाता है। 'फूल' मे स्त्रीलिंग प्रत्यय लगाने से 'फूली' छोटे आकार का फूल नही है, बल्कि फूल की सुन्दर पखुडी की नकल का एक आभूषण है जो नाक मे लगाया जाता है। इसी तरह, 'छेत' (खेत) से छेती एक ऐसी सम्पत्ति है जो किसी ने, विशेषतया पुत्री ने, खेतो से अथवा अन्य परिश्रम से प्राप्त की हो और जिस की वह एक मात्र मूल अधिकारी होती है। ऐसे ही, 'नाला से 'नाली' जुलाहे की खोखली नलिका है जिस मे वाने के धागे समेटे जाते हैं।

वृक्षो का लिंग-भेद भी उनके आकारानुसार होता है। बडे वृक्ष और ऐसे वृक्ष जो छोटे होते हुए भी घने और अधिक फैले हुए हो पुल्लिंग होते हैं—शेगल, बोन, मोहरू, तोस, केलू, चोर, रीखल, खोरशू आदि सभी पुल्लिंग हैं। इसी तरह फलदार वृक्ष आरू, सेऊ, खोड, शादा, आलमखारा आदि भी पुल्लिंग रूप मे ही प्रयुक्त होते है। इसके विपरीत लम्बे परन्तु बारीक आकार के वृक्ष स्त्रीलिंग के द्योतक होते है—काइल, रौई, दौरल, चरी, माहुन, नगाल इसी प्रकार के वृक्ष हैं जिन को स्त्रिलिंग के रूप मे गिना जाता है।

अन्न की स्थिति मे लिंग-भेद अक्षरात के आधार पर **होता है**। जिन अनाजो के नाम ई-कारात है वे स्त्रीलिंग होते हैं—छौली, काउणी,

घगेरी सभी -

स्त्रीलिंग हैं। शेष वर्णों मे अंत होने वाले अनाजो के नाम पुल्लिंग हैं। कोदरा, सरयारा, बाजरा, चाउन, धान, मोल्थ, भौरठ, माह, गेंहू, बीथू, ग्लादू, जौ, आलू, कोदू आदि पुल्लिंग शब्द हैं। यहाँ 'भोग' अपवाद है। ईकारांत न होने हुए भी भोग स्त्रीलिंग है। द्रव-पदार्थ प्राय पुल्लिंग मे ही प्रयुक्त होते हैं—पाणी, दूध, घीऊ, सौरा, तेल, हिऊँ, मूच, थूक, घोमा, होद्ध, लोहू आदि सभी पुल्लिंग शब्द हैं। परन्तु सूर, चाक्टी और चाह स्त्रीलिंग हैं—चाक्टी ईकारांत होने के कारण और सूर सस्कृत का आधार 'सुरा' होने के कारण। यद्यपि 'सुरा' से 'सूर' बदलने मे यह आकारान्त से अकारान्त शब्द बना, परन्तु लिंग के रूप मे यह सस्कृत की तरह स्त्रीलिंग ही रहा। चाह (चाय) शब्द हिन्दी से आया है, अत इसका लिंग भी हिन्दी के समान स्त्रीलिंग रहा। कुल्लू मे इसकी किस्म का पेय-पदार्थ "फँडड़ा" है जो पुल्लिंग है—"फँडड़ा पीणा सा।"धातुओं के नाम भी प्राय पुल्लिंग शब्द होते हैं—सूना, रूपा, तराँबा, पीतल, काँसा, लोहा आदि। चादी अपवादरूप मे स्त्रीलिंग है। शेष अप्राणी शब्दो के लिंग-भेद प्राय अक्षरात के आधार पर होते हैं। इस आधार पर कुलुई शेष कई भाषाओं से कम जटिल है। प्राय ईकारात शब्द स्त्रीलिंग होते हैं, और शेष शब्द पुल्लिंग—माँजा, मेज़, लोटा, क्दाल, धागा, घड़ोलू(घड़ा), विपू, भीत, पौटू, बक्से, दारठा, शरेहणा, रोद्ध घौर, दम्आज़ा, छापर आदि पुल्लिंग तथा ताकी, कोठड़ी, अलमारी, लोटकी, कराहड़ी, दाची, कुरसी, नाली आदि स्त्रीलिंग हैं।

केवल अकारांत शब्द ऐसे होते हैं जो दोनो पुल्लिंग और स्त्रीलिंग मे मिलते हैं। वहाँ प्राय वस्तु के आकार का नियमही लागू होता है। छोटीऔर लघु आकार की वस्तुए स्त्रीलिंग तथा बड़ी, मोटी, और भद्दी आकार की पुल्लिंग होती है।

भाववाचक और अमूर्त सज्ञा शब्दो की स्थिति मे लिंग ज्ञान प्राय शब्दात के आधार पर ही होता है। इ-ईकारान्त शब्द प्राय स्त्रीलिंग होते है और शेष पुल्लिंग। उदाहरणार्थ, खेऊ और जूनी दोनों का भाव कष्ट से है, परन्तु खेऊ पुल्लिंग है (बड़ा खेऊ हुआ) और जूनी स्त्रीलिंग (बड़ी जूनी हुई)। झूरी और लोभ का भी प्राय एक ही भाव है 'प्यार'। परन्तु झूरी स्त्रीलिंग है (मूँ तेरी झूरी लागी) और लोभ पुल्लिंग (मूँ तेरा लोभ लागा)। इसी तरह 'लाज' (इलाज) पुल्लिंग है और 'कारी' स्त्रीलिंग। 'शेला' पुल्लिंग है (शेला लागा) 'सरदी' स्त्रीलिंग (सरदी लागी)। परन्तु अकारान्त शब्दो की स्थिति मे यह निर्विवाद नहीं कहा जा सकता। यहाँ अकारात शब्द समान मात्रा मे पुल्लिंग और स्त्रीलिंग मे मिलते हैं। इसी तरह जो शब्द सीधे हिन्दी से आए हैं, उनका लिंग-भेद भी हिंदी समान है। इस तरह शुद्ध हिन्दी शब्दो को छोड कर शेष सभी इ-ईकारांत कुलुई भाव-वाचक अमूर्त सज्ञा शब्द स्त्रीलिंग हैं और आ, उ, ऊ, ओ आदि अत वाले शब्द पुल्लिंग। परन्तु अकारांत शब्द समान मात्रा मे स्त्रीलिंग भी हैं और पुल्लिंग भी। अत इनकी स्थिति मे लिंग ज्ञान आसान नहीं है, और न ही इस सम्बन्ध मे कड़े नियम निकाले जा सकते हैं।

प्रायः सस्कृत नपुसक लिंग शब्द कुलुई मे पुल्लिंग मे प्रयुक्त होते हैं। सुख, दुख, पुन (पुण्य), पाप, ज्ञान, वचन, वैर, सौच (सत्य), ध्यान, बल, सकट, गोत्र आदि सस्कृत नपुसक लिंग शब्द कुलुई मे पुल्लिंग रूप म बरते जाते हैं। सस्कृत से आए तद्भव शब्दो

मे भी लिंग-भेद आ गया है—सस्कृत मे 'अग्नि' पुल्लिग है, परन्तु कुलुई म इसका तद्भव रूप 'आग' स्त्रीलिंग है। इसी तरह सस्कृत पुल्लिग 'व्याधि' कुलुई तद्भव 'व्याध' स्त्रीलिंग, सस्कृत 'पाणी' (हाथ) पुल्लिग, कुलुई 'पाण' स्त्रीलिंग (दावा-न पाण नी आई), सस्कृत अहि (सर्प) पुल्लिग, कुलुई "होड़" स्त्रीलिंग आदि। या लगता है कि इस तरह के सस्कृत इकारान्त पुल्लिग शब्द ईकारान्त होकर कुलुई मे आए और स्थानीय प्रवृत्ति के कारण ईकारान्त होने पर स्त्रीलिंग बने। बाद मे ध्वनि परिवर्तन के कारण अन्तिम 'ई' स्वर लुप्त हो गया, परन्तु लिंग-भेद नही बदला और इस तरह स्त्रीलिंग ही रहे। इस बात की पुष्टि अन्य उदाहरणो से भी होती है। सस्कृत के इकारात स्त्रीलिंग शब्दो से 'इ' लुप्त हो गई है, परन्तु उनका स्त्रीलिंग अस्तित्व प्रचलित रहा। उदाहरणार्थ सस्कृत के इकारात स्त्रीलिंग शब्द बुद्धि, राशि, गति, रीति, रात्रि, जाति, पक्ति, सगति, दृष्टि, भीति, प्रीति कुलुई मे क्रमश: बुध, राश, गत, रीत, रात, जात, पगत, सगत, धृष्टा, भीत, प्रीत बने परन्तु रहे स्त्रीलिंग ही। ऐसे भी उदाहरण है, जहाँ सस्कृत मे कुलुई म आते हुए शब्दो के रूप मे फेर-बदल आ गया है, परन्तु लिंग-परिवर्तन नही हुआ—लज्जा से लोज, आशा मे आश, लता से लूड, शाला से शाल्ह, छाया म छाऊ, वायु से बागर, चचु मे चूँज शब्द बने हैं परन्तु सस्कृत की तरह सभी स्त्रीलिंग हैं।

कुलुई मे महीनो के नाम पुल्लिग हैं—चैत्र, बशाख, शाड, शाउण, भादरू आदि। इसी तरह दिनो के नाम भी पुल्लिग हैं—सुआर, मगल, बुध, ब्रेस्त, शुक्र आदि। ऋतुओ के नाम भी पुल्लिग हैं—हिऊद, भरयात, शोइर आदि। बीमारियो के नाम प्राय पुल्लिग मे हैं जैसे—जौर, फाकू, लुआलका, घेरा, लोमादुख, शोधा, दुखणा, गोड, छोअर आदि। परन्तु दाह, बाउत, ठाड, सूल, सूगअरवाद मे स्त्रीलिंग हैं। मानसिक वृत्तियो से सम्बन्धित शब्द प्राय स्त्रीलिंग हैं—शोक, मीरा, हिरख, झोग, चिता, याद, भाव, शोभ, शोख, भूख, फिक्र आदि। यौगिक शब्दो मे लिंग-भेद उनके अन्तिम शब्द अनुसार होता है, जैसे—छे ढ स्त्रीलिंग है छुड़का पुल्लिग और छे ढ उ़ड़का पुल्लिग (छे ढ-छु़डका नी हुआ), शोभ स्त्रीलिंग है, लोभ पुल्लिग, परन्तु शोभ-लोभ पुल्लिग है (शोभ-लोभएँ नी रौहू), बागर स्त्रीलिंग, बियाना पुल्लिग परन्तु बागर-बियाना पुल्लिग है, फाकू पुल्लिग, सुंग स्त्रीलिंग परन्तु सुग फाकू पुल्लिग है। विभिन्न प्रत्ययो के प्रयोग से बनी भाववाचक सज्ञाओं के लिंग भेद के बारे मे पहले ही सकेत किया जा चुका है।

कुलुई मे पुल्लिग मे स्त्रीलिंग शब्द विभिन्न प्रकार से बनते है —

1. अकारान्त पुल्लिग शब्दो मे 'ई' मात्रा जोडने स स्त्रीलिंग बनते है—बादर से बादरी, बदाल से बदालो, गौभ से गौभी, कुकड से कुकडी, काकड से काकडी, माम स मामी।

2 आकारान्त शब्दो के 'आ' को 'ई' द्वारा प्रतिस्थापित करने से स्त्रीलिंग बनते हैं—घोडा—घोडो, कुत्ता—कुत्ती, कलेशा—कलेशी, शाण्हा—शाण्ही, बेटा—बेटी, बौकरा—बौकरी, लाडा—लाडी, पाण्हा—पाण्ही, साला—साली, खापरा—खापरी।

3 ईकारान्त शब्दो म 'ई के स्थान पर 'अण' या 'अन' प्रयुक्त होता है—हेसी—हेसण, नेगी—नेगण, नाती—नातण, हाथी—हाथण, डागो—डागण, माली—

मालण, धोबी—धोबण, तेली—तेलण आदि।

इसी आधार पर कई बार अकारान्त शब्दो मे भी 'ण' या 'न' जोडने से स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं—रीछ—रीछण, गूर—गूरन, चमार—चमारन, सेठ—सेठण, बराघ—बराघण आदि।

4. ऊकारान्त शब्दो मे भी 'ऊ' को 'ई' द्वारा प्रतिस्थापित करने से स्त्रीलिंग बनते हैं—दादू—दादी, नानू—नानी, शोहरू—शोहरी, छेलू—छेली, बौछू—बौछी।

5. कुछ सम्बन्धसूचक प्राणीवाचक पुल्लिंग शब्दो के आगे 'आणी' या 'आनी' प्रत्यय लगाने से स्त्रीलिंग रूप बन जाते हैं। ऐसी स्थिति मे आरम्भिक दीर्घ स्वर भी ह्रस्व मे बदल जाता है—माश्टर—मश्टराणी, ठाकर—ठकराणी, नोकर—नकराणी पण्डत—पण्डताणी, जेठिया—जठाणी, देउर—दराणी आदि।

6 कुछ पुल्लिंग शब्दों के स्वतंत्र स्त्रीलिंग शब्द होते हैं—बापू—आमा, भाई—बेबी, मनाल—कौरडी, लौढ—भेड, शोहुरा—शोशू, राजा—राणी, मौरद—बेटडी, बौल्द—गाई, बियाहू—जोई आदि।

वचन

हिन्दी की तरह कुलुई मे भी दो वचन है—एकवचन और बहुवचन। सस्कृत की तरह द्विवचन रूप कुलुई मे नही होते। मूशा, भेड, रात आदि एकवचन है और मूशे भेडा, राती बहुवचन। परन्तु कुलुई मे वचन-ज्ञान हिन्दी से भिन्न है। सभी प्रकार के पुल्लिग सज्ञा शब्दो मे से केवल आ-अन्त वाले शब्दो के ही बहुवचन रूप बनते हैं। शेष किसी प्रकार के पुल्लिग सज्ञा शब्द का बहुवचन रूप नही बनता। जहां तक मूल प्रकार के बहुवचन का सम्बन्ध है हिन्दी मे भी यही स्थिति है। वहाँ भी कारक चिह्न रहित बहुवचन केवल आकारान्त शब्द का बनता है, जैसे लडका से लडके। शेष सभी प्रकार के पुल्लिग एकवचन शब्दो के बहुवचन रूप नही बनते—घर, कवि, हाथी, साधू, डाकू, जो के मूल बहुवचन रूप नहीं बनते। कुलुई मे भी ठीक ऐसी ही स्थिति है। यहाँ भी कारक-रहित शब्दो के (आकारान्त को छोडकर) एकवचन और बहुवचन रूप समान रहते हैं—घौर बणाऊ, घौर बणायें, हाथी आउ, हाथी आएँ; डाकू मारू, डाकू मारें आदि। तथापि, हिन्दी मे कारक-चिह्न लगने पर सभी प्रकार के पुल्लिग सज्ञा शब्दो के बहुवचन रूप बनते हैं, जैसे—हाथी ने—हाथियो ने, कवि को—कवियो को। परन्तु कुलुई मे ऐसा भेद भी प्रचलित नही है। कारक-चिह्न लगने पर भी कुलुई मे एकवचन और बहुवचन पुल्लिग शब्दो के समान रूप रहते है। एकवचन रूप और बहुवचन रूप एक जैसे होते है। केवल सदर्भ से ही पता चलता है कि अभिप्राय एकवचन से है अथवा बहुवचन से, अन्यथा वाक्य रचना से भी स्पष्ट ज्ञान नही होता कि अभिप्राय एक से सम्बन्धित है या अनेक से—'हाथी-बें देआ' का अर्थ 'हाथी को दो' भी है और 'हाथियो को दो' भी। इसी तरह 'डाकू बें ढौक्या आणा (डाकू को पकड लाओ या डाकुओ को पकड लाओ), छेता-न की सा (खेत मे क्या है या खेतो मे क्या है)। आरशू-न मुह भाला (शीशे

में मुह देखो या शीशो मे मुह देखो) आदि। स्पष्ट है कि आकारान्त पुल्लिंग शब्दों के अतिरिक्त शेष सभी प्रकार के शब्द एकवचन और बहुवचन में समान रहते हैं, चाहे उनका मूल रूप हो या तिर्यक रूप। केवल अकारान्त शब्द कारक-चिह्न लगाने से विकृत हो जाते हैं और वह विकृत रूप एकवचन और बहुवचन मे समान रहता है—जैसे 'हाथ' मे कारक-चिह्न लगने पर 'हाथा' बन जाता है और वह एकवचन और बहुवचन मे एक जैसा रहता है—'हाथा पाधे" का अर्थ 'हाथ पर' या 'हाथो पर' दोनों हो सकते हैं। शेष पुल्लिंग शब्द एकवचन और बहुवचन मे समान रहते हैं, उनमे किसी प्रकार का विकार नही आता। केवल पुल्लिंग आकारान्त शब्दो में ही बहुवचन रूप बनते हैं और वे 'आ' को 'एँ' द्वारा प्रतिस्थापित करने से बनत है, जैसे—घोडा से घोडें, थोबा—थोंबें, काउडा काउडें, बूटा—बूटें, गोठा—गोठें, दाउआ—दाउए, टँडा—टँडें आदि। आकारान्त पुल्लिंग शब्दों के ये एकवचन और बहुवचन रूप मूल रूप और तिर्यक रूप (कारक-चिह्न सहित) दोनों मे विद्यमान रहते है—बूटा चूटू (वृक्ष गिरा) बूटें चूटें (वृक्ष गिरे), घोडा वें देआ (घोडे को दा) घोडें वें देआ (घोडो को दो)।

स्त्रीलिंग शब्दों के बारे में भी कुछ ऐसी ही स्थिति है, परन्तु वहां आकारान्त की बजाय अकारान्त और ऊकारान्त शब्दो के बहुवचन बनते हैं। शेष किसी प्रकार के स्त्रीलिंग एकवचन शब्दो के बहुवचन रूप नही बनते, एकवचन और बहुवचन मे समान रहते है। लेरा, ज़रावा, शीखा, गोहरी, छेली, गाई, शौगू, आमा आदि एकवचन और बहुवचन दोनो के द्योतक हैं। इनके ये समान रूप मूल तथा तिर्यक दोनो स्थितियों मे एक जैसे रहते है और ठीक अभिप्राय समझने मे सदेह बना रहता है, केवल सदर्भ से ही उद्देश्य का पता चलता है—खुरसी चूटी (कुरसी टूट गई या कुरसियां टूट गईं), गाई वें घाह देआ (गौ अथवा गौओ को घास दो), शौगुएँ मारी लेरा (सास या सासों ने चीख/चीखें मारी/मारी), भाजो-वें पाणी देणा (सब्जी/सब्जियो को पानी देना है)। ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो के बहुवचन 'आ' जोडने से बनते है—जू से जूआ, बरू से बरूआ आदि।

कुलुई मे अकारान्त स्त्रीलिंग सज्ञा शब्दो के बहुवचन रूप दो तरह से बनते है—

(क) मूल अकारान्त शब्द मे 'आ' जोडने से, जैसे—भेड एकवचन से भेडा बहुवचन (भेड़ें), टाग—टागा, खोल—खोला (खालें), आज—आजा (आतें), लौत—लौता, छलिंग—छलिंगा (चिंगारियां), गल—गला (बातें) तार—तारा (तारें)।

(ग) मूल अकारान्त शब्द मे 'ई' जोडने मे, जैसे—रात एकवचन से राती बहुवचन (रातें), कात—काती (मोटी ऊन काटने की कैंची), जात—जाति (जातियां), काल—काली, टोल्ह—टोल्ही, शाल्ह—शाल्ही, आर—आरी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि एक ही प्रकार के शब्दो के दो तरह से बहुवचन बनते हैं, और दोनो एक-दूसरे से भिन्न हैं। लौत का बहुवचन लौता (लातें) है, तो कात का काती। लौत का बहुवचन लौती नही हो सकता और न कात का काता बहुवचन बन सकता है। प्रश्न उठता है कि अकरात स्त्रीलिंग शब्दों के कहीं 'ई' से तो कहीं 'आ'

प्रत्यय लगाने से बहुवचन बनेंगे। इसमे अक्षरान्त का नियम लागू नही होता, क्योंकि एक ही अक्षर से अन्त होने वाले भिन्न शब्द अलग-अलग रूप से बहुवचन बनाते हैं। लूड और भेड दोनो डकारान्त है, परन्तु लूड से बहुवचन लूडी और भेड से भेडा बनता है। इसी तरह आज और शाज दोनो जकारान्त हैं (दोनो को स्पष्टीकरण के लिए हलत मानने से, अन्यथा ये सब अकारात हैं) परन्तु आज से आजा और शाज से शाजी बहुवचन बनते है। यो लगता है कि इसका कारण कुछ और है, और ऐसा प्रतीत होता है कि जिन अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो का आधार सस्कृत शब्द है, उनके बहुवचन रूप 'ई' जोडने स बनते है और शेप शब्दो का बहुवचन 'आ' द्वारा बनता है। सस्कृत मे अकारान्त शब्द प्राय स्त्रीलग नही होते। वहाँ स्त्रीलिंग सज्ञा शब्द आकारान्त, इकरान्त, ईकरान्त उ—ऊकारान्त आदि होते हैं। परन्तु कुलुई मे उनके रूप स्वरलोप होकर आए है इस बात का सकेत 'लिंग' शीर्ष के अधीन पहले ही किया जा चुका है। अत सस्कृत स्त्रीलिंग शब्दो के अतिम स्वर के लोप द्वारा जो अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द कुलुई मे आए हैं उनका बहुवचन रूप ई' जोडने से बनता है। उदाहरणार्थ, सस्कृत राशि, भीति, व्याधि, कुक्षि, और रात्रि शब्दो के अन्तिम स्वर 'इ के लोप होने से कुलुई रूप क्रमश राश, भीत, व्याध, कूछ और रात बने और इनस बहुवचन राशी, भीती, व्याधी, कूछी और राती बनते हैं। इसी तरह स० शाला कु० शाल ह ब० वसे शल्हो स० लता कु० लूड ब० व० लूडी, स० छाया कु० छाऊ ब० व० छाई, स० भगिनी कु० बेहण ब० व० बेहणी आदि। इसके अतिरिक्त 'अण' या 'अन' प्रत्यय जोड कर पुल्लिंग स स्त्रीलिंग बने शब्दो के बहुवचन भी 'ई' जोडने से हो बनते है। यहाँ भी वास्तव मे हिन्दी के स्वर 'इ' के 'अ' द्वारा अर्थात् 'इन' के 'अन द्वारा प्रतिस्थापन के कारण ऐसा होता है जैसे—नगण से बहुवचन नेगणी, मालण से मालणी, वराघण से बराघणी, हेमण से हसणी आदि। शेप अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द जिनका आधार स्पष्टत सस्कृत स्त्रीलिंग शब्द नही है 'आ प्रत्यय के प्रयोग स बहुवचन बनाते है, जैसे—धार स धारा, लाल—लाला, कताव—कताबा आदि।

विभिन्न प्रकार के स्त्रीलिंग और पुल्लिंग शब्दो के मूल तथा तिर्यक रूप के बहुवचन निम्नाकित सारणी द्वारा बताए जा सकते है —

एकवचन	बहुवचन	
	मूल रूप	कारकचिह्न-सहित
अकारान्त		
पुल्लिग	(एक) होथ (चार) होथ	(चार) होथा-बें/होथा पांधें,
स्त्री०	(एक) भीत (चार) भीती	(चार) भीती-बें/पाधें,
	(एक) भेड (चार) भेडा	(चार) भेडा-बें/पाधें,
आकारान्त		
पु०	(एक) घोडा (चार) घोडे	(चार) घोडे-बें/पाधें,
स्त्री०	(एक) आमा (सेभ) आमा	(चार) आमा-बें,

ईकारान्त

पु०	(एक) नेगी (चार) नेगी	(चार) नेगी-वें/पाधें,
स्त्री०	(एक) छेली (चार) छेली	(चार) छेली-वें/पाधें,

ऊकारान्त

पु०	(एक) शोहरू (चार) शोहरू (चार) शोहरू-वें/पाधें,	
स्त्री०	(एक) शौमू (चार) शौमू	(चार) शौमू-वें,

ऊंकारान्त

स्त्री०	(एक) जू (चार) जूआ	(चार) जूआ-वें,

उपर्युक्त से प्रतीत होता है कि कुलुई में एकवचन और बहुवचन का भेद अधिक स्पष्ट नहीं है। सभी रूपों में केवल अकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिंग तथा आकारान्त पुलिंग के ही मूल बहुवचन बनते हैं। शेष एकवचन और बहुवचन में रूप समान रहते हैं। ऐसी स्थिति में वचन-भेद प्रकट करने के लिए बहुवचन प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। कुछ विशेष प्रत्यय इस प्रकार हैं —

सेभ—संस्कृत सर्व का विकृत रूप है। यह शब्द के पूर्व में लगता है, जैसे—सेभ बेटड़ी, सेभ मौरद, सेभ चाकर, सेभ देऊ आदि।

बोहू—संस्कृत बहु (हिन्दी बहुत) से व्युत्पन्न हुआ है। यह भी शब्दों के आरम्भ में प्रयुक्त होता है, जैसे—बोहू छेत, बोहू माण्हू, बोहू बादर आदि।

बहुवचन निर्माण के अतिरिक्त कुलुई में वचन सम्बन्धी कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं। कुलुई में कई ऐसी संज्ञाएं हैं जो केवल एकवचन में ही प्रयुक्त होती हैं। उनके न बहुवचन रूप बनते हैं न बहुवचन में ऐसा प्रयोग सम्भव है। उदाहरणार्थ बेजा, पीठा, माटा, गाश, शौरू, हिऊ आदि शब्द सदा एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं। सभी प्रकार की धातुएं भी केवल एक वचन में प्रयुक्त होती हैं। सूना, रूपा, तावा, कासा, लोहा आदि बहुवचन में प्रयुक्त नहीं होते। इसी तरह कोदरा, सरयारा, बाजरा, धान, बीथू, काठू आदि अन्न केवल एकवचन में प्रयुक्त होते हैं—कोदरा बाहू, सरयारा लूणू, काठ खाऊ को बहुवचन रूप में कोदरा बाहें, सरयारे लूणें, काठू खाएँ इस तरह बोले नहीं जा सकते। इसके विपरीत गेंहू, जौ, माह, मौरठ आदि आनज केवल बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं—गेहू बाहें, जौ लूणें, माह खाएँ आदि। इन्हें गेहू बाहू जो लूणू, माह खाऊ कहना अपनी हंसी उड़ाना है। इसी तरह ग्रोह, गोरू, दरशण आदि केवल बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं—एइरें ग्रोह सी खरें (इसके ग्रह अच्छे हैं), गोरू आणें चारिया (ढ़गर चराकर लाए) आदि। कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनके एकवचन में कुछ और अर्थ होते हैं, और बहुवचन में कुछ और। जैसे—'रोग' यदि बहुवचन में प्रयुक्त हो तो इसका अर्थ "राजमाह" है, यदि एकवचन में प्रयुक्त हो तो 'रग' है। इसी तरह 'पूला' का एकवचन में प्रयोग 'फसल की गाँठ" का द्योतक है और बहुवचन में इसका अर्थ "घास की विशेष जूतिया" है। भाग का बहुवचन में अर्थ 'भाग्य' तथा एकवचन में "घराट की पिसाई" है।

अध्याय—11

कारक

हिन्दी और अन्य कतिपय भारतीय आर्य भाषाओ के समान कुलुई मे भी आठ कारको का प्रयोग होता है। इन सब का आधार सस्कृत है यद्यपि सस्कृत की विभिन्न विभक्तिया अब समाप्त हो रही हैं और उनके स्थान पर स्वतन्त्र परसर्गों का प्रयोग होता है। कुलुई के विभिन्न कारक चिह्न हिन्दी से कुछ भिन्न है, जो इस प्रकार है —

कारक	विभक्तिया
कर्ता	(1) बिना प्रत्यय
	(ii) एँ
कर्म	(1) बिना प्रत्यय
	(ii) बेँ
करण	एँ, लाइया (लाई), सोगेँ
सम्प्रदान	बेँ, ताइये (ताई)
अपादान	न
सम्बन्ध	रा, रे, री, ना, ने, नी, का, के, की
अधिकरण	न, मोभ ˝ पाधेँ, परयालेँ,
सम्बोधन	एई, एउ

कर्ताकारक

कुलुई मे कर्ताकारक अप्रत्यय और सप्रत्यय दोनो प्रकार का है। मूल रूप मे कर्ताकारक का कोई प्रत्यय नही है, और न ही इसकी अभिव्यक्ति के लिए सज्ञा मे कोई विकार आता है। यह शब्दो का विभक्ति-रहित मूल रूप है। दोद चूटू, घोर फूखूआ, शोहरू सूता, नेगी रोटी खाशा लागीरा आदि वाक्यो मे दोद, घोर, शोहरू, नेगी सज्ञा शब्द अपने मूल रूप मे है। यहा कर्ता-कारक बिना प्रत्यय के है।

दूसरी स्थिति मे कुलुई कर्ताकारक की विभक्ति 'एँ' है, जो मूल रूप मे करण-कारक की विभक्ति है। यहा यह हिन्दी के 'ने' का अर्थ देता है। स्वर-अन्त (अकारान्त

और आकारान्त को छोड़कर) शब्दों में 'एँ' मूल रूप में प्रयुक्त होता है, जैसे—नेगी से नेगीएँ, शोहरी से शोहरीएँ, भाऊ से भाऊएँ, साधू से साधूएँ, जौ मे जौएँ आदि। अकारान्त और आकारान्त संज्ञाओं मे 'एँ' मात्रा मे बदल जाता है—मरद से मरदें, कुत्ता से कुतें, रीछ से रीछें। इस तरह मूल और मात्रा रूप मे 'एँ' विभक्ति इस प्रकार देखी जा सकती है—मरदें रोटी खाई (मरद ने रोटी खाई), बेटडीएँ दूध पीऊ (स्त्री ने दूध पिया), घोड़ें बोझा चौकू (घोड़े ने बोझ उठाया), शोहरूएँ पाथर शोटू (लड़के ने पत्थर फेंका) आदि।

कर्ताकारक का 'एँ' संस्कृत की इसी विभक्ति अर्थात् प्रथमा के विसर्ग ( ) का विकृत रूप है—कवि >कविस्>कविएँ। 'एँ' एकवचन और बहुवचन मे समान रहता है। कुलुई में एकवचन मे जो सप्रत्यय रूप हो वही बहुवचन मे भी रहता है। दोनो मे कोई अन्तर नही हैं। इसमे भी 'एँ' का संस्कृत विसर्ग आधार होना स्पष्ट होता है—कवय >कविएँ, सुधिय >सुधीएँ, नद्य >नदीएँ आदि।

अप्रत्यय और सप्रत्यय कर्ताकारक के प्रयोग के बारे मे कोई स्पष्ट नियम बनाना कठिन है। तथापि, इनका प्रयोग सारांश मे इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है —

(1) जब क्रिया अकर्मक हो तो वाक्य मे अप्रत्यय कर्ताकारक का प्रयोग होता है। कर्ता शब्द मे कोई विकार नही आता—शोहरू हौंसू (लड़का हँसा), कुत्ता भौंगू, शोहरी सोली, घोड़ा मुआ।

(2) जब वाक्य की क्रिया सकर्मक हो तो वर्तमान और भविष्यत् काल मे अप्रत्यय कर्ताकारक का प्रयोग होता है—चाचा कताब पौढा सा ता चाची चिठी लिखा सा, शोहरू छिडी आणलें ला शोहरी घाह काटली। यहा पौढना, लिखणा, आणना, काटणा सकर्मक क्रियाएं हे परन्तु वर्तमान और भविष्यत् काल प्रयोग होने के कारण चाचा, चाची, शोहरू, शोहरी कर्ताकारक रूप मे मूलावस्था मे रहे, उनमे विकार नही आया।

(3) यदि वाक्य मे क्रिया सकर्मक हो और प्रयोग भूतकाल या भूतकाल की किसी अवस्था का हो तो कर्ताकारक सप्रत्यय होता है, उसमे 'एँ' का प्रयोग होता है जो यहा 'ने' का पर्यायवाची है, जैसे—चाचें कताब पौढी ता चाचीएँ चिठी लिखी, शोहरूएँ छीडी आणी ता शोहरीएँ घाह काटू। यहां यह मूल रूप मे करण-कारक का लक्षण है। *प्राकृत मे आकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं के अतिरिक्त शेष पुल्लिंग और* स्त्रीलिंग संज्ञाओं के प्रथम एकवचन मे कोई विभक्ति नही होती।[1] संस्कृत मे भी इकारान्त, उकारान्त नपुंसक लिंग, आकारान्त, ईकारान्त स्त्रीलिंग एकवचन कर्ताकारक मे विभक्ति चिह्न नही लगता। परन्तु कुलुई मे कर्ता के लिंग अथवा अक्षरान्त का नियम लागू नही होता। यहा कर्ताकारक सप्रत्यय का प्रयोग क्रिया और काल के आधार पर होता है, कर्ता अथवा अक्षरान्त के आधार पर नही। 'एँ' का कर्ताकारक सप्रत्यय प्रयोग केवल सकर्मक क्रियाओं के भूतकाल और भूतकालिक सभी अवस्थाओं में ही होता है,

1. डा० कृष्णलाल हंस निमाड़ी और उसका साहित्य, पृ०188

जैसे—दादीएँ रोटी पकाई/पकाइदी/पकाइरी थी/पकाइदी होली आदि।

कर्मकारक

कर्मकारक के भी कुलुई मे दो तरह के प्रयोग मिलते है—बिना प्रत्यय के और प्रत्यय सहित। 'माश्टरें शोहरू जूटू' (अध्यापक ने लडका पीटा) मे कर्मकारक रूप 'शोहरू' बिना प्रत्यय के है, परन्तु 'माश्टरें शोहरू-वें बोलू' (अध्यापक ने लडके को कहा) वाक्य मे 'शोहरू वें' सप्रत्यय कर्मकारक का प्रयोग है।

मूल रूप म कर्मकारक बिना प्रत्यय के ही अभिव्यक्त होता है। कर्म अपने आप मे पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है—मू रोटी खाणी, तेईं ऊना कीतणी, पुलसें चोर ढोकू, शोहरूएँ चिठी लिखी आदि। कर्मकारक का प्रत्यय 'वें' प्राय निम्नलिखित स्थितियो मे प्रयुक्त होता है —

(1) *जब कर्म को निश्चित बनाया जाए तो 'वें' प्रयोग मे लाया जाता है*—लिडें घोडा-वें शौ ब्याधी (लो०), मेभी शोहरू वें मार पोई, घुगदी कुत्तो वें दोहरा दोरा (लो०) आदि।

(2) द्विकर्मक क्रियाओं मे 'वें' का प्रयोग आवश्यक है। जहा एक वाक्य मे दो कर्म हो तो गौण कर्म के साथ कर्मकारक का प्रत्यय जरूर लगता है—मैं दोस्ता वें चिठी लिखी, तेइएँ बौलदा वें पाणी धीना, ते तेई वें खरी गल दसी, आदि।

(3) बोलणा, शाधणा, देणा, मिलणा (तलाश होना), आणना (लाना) आदि कुछ रूढ क्रियाओ के प्रयोग मे कर्म के साथ 'वें' जरूर लगता है आपणी आमा वें बोल, सेभी-वें शाध, म्हारें देशावें जादी मिली, वैठें माहू-वें धूं देणा (मु०), आदि।

'वें' संस्कृत 'वल' से व्युत्पन्न हुआ है। 'वल' का अर्थ है 'साथ लगना', 'साथ आना', 'पास'। संस्कृत भाषा मे भी 'वल' कर्म और अधिकरण का द्योतक रहा है[1]। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार स्पष्ट है—स० वल > प्रा० वअ > वे > वें।

करणकारक

करणकारक की मूल विभक्ति 'एँ' है—हौछूएँ भौरुआ फाढा (लो० गी०) (आँसुओ से गोद भर गई), कोनें शुण काहूणी (कान से बात सुनो), लोहूएँ मूडीला माटा (लहू से मिट्टी गूधी जाएगी। लो० गी०) आदि। अपभ्रंश मे भी यह रूप प्रचलित था। 'एँ' संस्कृत 'एन' या 'एण' का संक्षिप्त रूप है। 'न' या 'ण' अनुस्वार मे बदल गया और बाद मे उसका लोप हो गया। कुलुई मे ऐसे लोप होने के कई उदाहरण हैं, यह पहले अध्यायो मे स्पष्ट किया जा चुका है। करणकारक की यह विभक्ति गढवाली, राजस्थानी आदि अन्य भाषाओं मे भी है, परन्तु इसकी उत्पत्ति के बारे मे भिन्न राय है। इस सम्बन्ध मे डॉ० गोविन्द चातक का कहना है कि गढवाली मे "करणकारक मे एइ विभक्ति प्रत्यय का प्रयोग मिलता है—राजस्थानी मे यह इँ (इ) और इइँ रूप म

1. Sir Monier Monier Williams : Sanskrit English Dictionary, p 927.

मिलता है। गढ़वाली और राजस्थानी के ये रूप सम्भवतः अपभ्रंश के तृतीया एकवचन के वचन-प्रत्यय एँ से तथा वैदिक एभि (>एहिं प्रा० >इहि) से निष्पन्न हुए हैं।"[1]

'एँ' करणकारक की मूल विभक्ति है जो 'से', 'द्वारा' और 'साथ' आदि का अर्थ देता है, जैसे—

(1) हेतुवाचक रूप में—शोखें आई कौकड़ी फूटी (प्यास से/के कारण हृदय फट रहा है। लो० गी०), दाहिएँ न्हौसी होइई (दर्द से/के कारण चला नहीं जाता) आदि।

(2) उपकरण के रूप में—शोठें मारू (लाठी से/द्वारा मारा), कलमें लिख (कलम से/द्वारा लिख), चाकूएँ भाजी काट (चाकू से सब्जी काट) आदि।

(3) साधन के रूप में—ढबुएँ बोणा सी सभ कोम (पैसे से सब काम बनते हैं), ओकतीएँ होणा राम (दवाई से आराम आ जाएगा), शीमें नी लूणा हुँदा (सीम में नमकीन नहीं होता। लो०)

(4) भाववाचक क्रिया के अर्थ में—भाऊएँ न्होली सोई (बच्चे से सोया नहीं जाता), ठाडें पाणीएँ नी निहाइदा (ठंडे पानी से नहाया नहीं जाता), तेईएँ न्होली उठी (उससे उठा न गया) आदि।

(5) क्रिया विशेषण वाक्य में—रीझें नी रोटी खाई, मजें-मजें केरा कोम, निहुचें वेशीता आदि।

करणकारक की 'एँ' मूल विभक्ति के अतिरिक्त, इस कारक के 'लाइया' और 'सोगें' दो अन्य प्रत्यय भी हैं। लाइया प्रत्यय छत्तीसगढ़ी में भी 'ले' के रूप में करणकारक का परसर्ग है।[2] गढ़वाली में भी यह 'लाई' के रूप में सम्प्रदान का परसर्ग है।[3] तथा विद्वानों ने इसे 'लग्ने' अथवा 'लब्धे' से व्युत्पन्न माना है—सं० लग्ने >प्रा० लग्गे>लाई >लाइया। 'लाइया' का प्रयोग मूल शब्द के असल रूप के साथ जोड़कर नहीं होता, वरन् मूल शब्द पहले ही करण की वास्तव विभक्ति में बदल जाता है और तत्पश्चात् लाइया का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ 'हौथ' मूल शब्द से करणकारक विकृत रूप 'हौथें' (हाथ से) तथा 'हौथें लाइया' (हाथ द्वारा)। इसी तरह कताब—कताबें—कताबें लाइया, मुण्ड—मुण्डें—मुण्डें लाइया आदि। करणकारक का दूसरा प्रत्यय सोगें संस्कृत शब्द 'सग' का कुलुई रूप है। सग से सोग बनना कुलुई उच्चारण की प्राकृतिक प्रवृत्ति है। वैसे कई विद्वान हिन्दी के प्रत्यय 'से' की उत्पत्ति भी 'सग' से ही मानते हैं। इसका प्रयोग सदा मूल शब्द के करणकारक के वास्तव रूप में बदल जाने पर ही नहीं होता है। अकारान्त और आकारान्त शब्द ऐंकारान्त होने के बाद 'सोगें' को साथ जोड़ते हैं—शोठा—शोठें सोगें, हौथ—होथें सोगें। अन्य शब्द मूल रूप में रहते हैं—छाई—छाई सोगें, लोहू—लोहू सोगें आदि।

उपर्युक्त से पता चलता है कि कुलुई में सप्रत्यय कर्ताकारक और करणकारक

1 डॉ० गोविन्द चातक मध्य पहाड़ी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, पृ० 101
2. डॉ० कान्तिचन्द्र जैन छत्तीसगढ़ी, हल्बी, भतरी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन, पृ० 119.
3 डॉ० गोविन्द चातक मध्य पहाड़ी का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन पृ० 102

की विभक्तियो मे समानता है। 'एँ' विभक्ति दोनो के लिए समान रूप से प्रचलित है। परन्तु ऐसा केवल कुलुई में ही अपवाद नही है। कई और भाषाओं मे भी कर्ता और करण-कारको के प्रत्यय समान हैं। तिब्बती भाषा मे तो प्राय पूर्ण रूप मे ही कर्ता कारक की अभिव्यक्ति के लिए करणकारक की विभक्ति का प्रयोग होता है। वहाँ "लडके ने फल खाया" के लिए प्राय "लडके द्वारा फल खाया गया", "वह पुस्तक पढता है" के लिए "उस द्वारा पुस्तक पढी जाती है" रूप ही अधिक प्रचलित है। कुलुई मे यद्यपि ऐसी स्थिति नही है परन्तु दोनो कर्ता और करणकारक 'एँ' द्वारा ही अभिव्यक्त होते है—"आरीएँ काट्ट" का अर्थ "आरी ने काटा" भी हो सकता है और "आरी द्वारा काटा गया" भी। वैसे हर कारक का अपना-अपना स्थान है और अर्थ मे इस तरह की द्विविधा नही होती।

सम्प्रदानकारक

सम्प्रदानकारक की विभक्ति वही है जो कर्मकारक की है। अर्थात् दोनो की एक ही विभक्ति 'बे" है। 'बें' की उत्पत्ति पहले बताई गई है। इसका सम्बन्ध इसी कारक की बहुवचन की सस्कृत विभक्ति 'भ्य' से भी जोडा जा सकता है। सस्कृत मे चतुर्थी विभक्ति अर्थात् सम्प्रदानकारक की अभिव्यक्ति भ्य जोडने से होती हैं। कुलुई मे एकवचन और बहुवचन मे कारक से पूर्व शब्दो का रूप समान रहता हैं (सिवाये आकारान्त शब्दो के), और कारक चिह्न भी एकवचन और बहुवचन के समान होते हैं। यह पहले भी लिखा जा चुका है। अत इससे भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि कुलुई सम्प्रदानकारक की विभक्ति "बे"" सस्कृत "भ्य" का ही रूप है—भ्य > भय > भैं > वहे > बैं > बें।

कुलुई मे कर्म और सम्प्रदान दोनो के लिए 'बें" प्रत्यय प्रयुक्त होना है। यह केवल कुलुई मे कोई अपवाद नही हैं। कई अन्य भाषाओ मे भी इनके समान कारक चिह्न हैं। हिन्दी मे भी प्राय दोनो को अन्तर्मिश्रित किया जाता है—'घोडे को दाना दो' या 'घोडे के लिए दाना दो', 'मैंने लडके को पुस्तक दी' या 'मैंने लडके के लिए पुस्तक दी।' परन्तु यह केवल दोनो कारको के लिए समान प्रत्यय के प्रयोग की बात है, अन्यथा कर्म और सम्प्रदान दोनो अलग अलग कारक है 'मैंने उस लडके को देखा है" के स्थान पर "मैंने उस लडके के लिए देखा है" प्रयोग नही हो सकता। कुलुई म कर्मकारक की अभिव्यक्ति बिना प्रत्यय के भी हो सकती है, जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया गया है परन्तु सम्प्रदान कारक बिना विभक्ति के अभिव्यक्त नही हो सकता। यहाँ "बें" का प्रयोग अवश्य होगा। 'सम्प्रदान' का अर्थ 'प्रदान करना' या 'देना' है और जहाँ भी कम का प्रयोग इस अर्थ म होगा वहाँ सम्प्रदानकारक होगा और वहाँ 'बें" का प्रयोग आवश्यक है—'होरी-बें ज्ञान आपू बें गोशटें" (लो०) मे बें का हर दो स्थान पर प्रयोग अनिवार्य है, क्योंकि यहाँ 'ज्ञान देना' और "गोशटें देना" का भाव प्रदान करने से है। इसके अतिरिक्त जब भी क्रिया का प्रयोग सज्ञा के रूप म होगा तो भी 'बें" का प्रयाग जरूरी है—खाणा-बें, पीणा-बें, रौहणा-बें, धोणा-बे आदि।

सम्प्रदान को कर्मकारक से स्पष्टतः अलग करने के लिए एक अन्य प्रत्यय 'ताइये' का प्रयोग होता है जो सम्प्रदान कारक का परसर्ग है। यह केवल 'के लिए' के अर्थ में प्रयुक्त होता है 'को' के अर्थ में नहीं—'तेईएँ नो करी री ताइये दरखास्त धीनी'। यहाँ ताइये के स्थान पर 'के' का प्रयोग नहीं हो सकता। ताइये या तेइये दोनों तरह की ध्वनियाँ प्रचलित है। मूल रूप मे यह हिन्दी शब्द ताईं है। डॉ० तेस्सितोरी इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'तावति' से मानते है—तावति > तामहि > तावँहि > ताअइँ > ताइ > ताँई > ताई।[1] डॉ० गोविन्द चातक इसकी व्युत्पत्ति 'प्रति' शब्द से मानते है—प्रति > प्रतई > तई > ताई[2]। ताइये सम्प्रदान की विभक्ति नही है, बल्कि सम्प्रदान की अभिव्यक्ति का परसर्ग या प्रत्यय है। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती है कि ताईये का प्रयोग संज्ञा अथवा सर्वनाम के तुरन्त बाद नही होता, बल्कि शब्द और ताइये के बीच मे सम्बन्ध कारक की स्त्रीलिंग मूलक विभक्ति 'री' का प्रयोग अवश्य होना है—दोहरू री ताइये, खाणे री ताइये, तेरी ताइये आदि।

अपादानकारक

कुलुई मे अपादानकारक की विभक्ति 'न' है—कौ-न आऊ (कहाँ से आया), मुँहा-न नी फियाड़ा निक्ता (मुँह से शब्द न निकला), बूटा-न औलू (वृक्ष से गिरा) आदि। कुलुई मे अपादान की यह 'न' विभक्ति उसे संस्कृत से प्राप्त हुई है। संस्कृत मे इकारान्त, उकारान्त नपुंसकलिंग तथा हलन्त पुल्लिंग और नपुंसक-लिंग की अपादान की विभक्ति 'न' अथवा 'ण' है। कुलुई मे विसर्ग का लोप हो गया है और 'न' रूप मे अवशेष रही है—सं० आत्मन > कु० आत्मा-न, सं० गुणिन > कु० गुणी-न, सं० कर्मणः > कु० कर्मा-न, सं० वारिण > कु० बारी-न, सं० वस्तुन कु० वस्तु-न आदि। अपादान कारक की विभक्ति के रूप मे 'न' का प्रयोग निम्नलिखित स्थितियो मे होता है :—

(1) "साधन" जहाँ से कोई वस्तु या कार्य प्राप्य हो—बोणा-न जड़ी बूटी मिला सा, धौरनी-न पाणी निक्ला सा, आदि।

(2) 'पृथक्ता" दिखाना—मो शिमला-न आऊ, हाऊ आपणी कोठी-न आऊ, 'जागा-न उठणा जाती-न बटालीणा" (लो०), आदि।

(3) "तुलना" दिखाना—मु-न मो बडा सा, पाणी-न हिऊ ठांडा हौआ सा, तौ-न ता मू खरा केरना, आदि।

(4) "समय" जब से आरम्भ हो—हीज्रा-न और गाश लागादा, पिछने मुआरा-न ओर सो बमार सा, दोयी-न सांझा ताईं, आदि।

हिन्दी आदि कुछ भाषाओ मे करण और अपादान कारक की एक ही विभक्ति होती है (जैसे हिन्दी मे 'से')। परन्तु कुलुई मे दोनों की अलग-अलग विभक्तियाँ हैं, जैसा कि पिछले उल्लेखो से स्पष्ट है।

1. तेस्सितोरी पुरानी राजस्थानी, अनु० श्री नामवरसिंह, पृ० 72.
2. डॉ० गोविन्द चातक : "मध्य पहाड़ी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन'

सम्बन्धकारक

कुलुई मे सम्बन्धकारक की तीन श्रेणियो की विभक्तियाँ प्रचलित है, अर्थात्—रा—रें—री, णा—णें—णी तथा का—कें—की । इन मे से रा—रें—री का प्रयोग सर्वाधिक है। णा—णें—णी का प्रयोग केवल निजवाचक सर्वनाम मे मिलता है—आपणा—आपणें—आपणी । हिन्दी सम्बन्ध कारक प्रत्यया का—कें—की का प्रयोग कुलुई मे केवल कालवाचक क्रियाविशेषण की स्थिति मे मिलता है जैसे—हीज का, औज का, पौरकी, प्रा र कें, एशका, सोझका पाहुणा ता सोझका गान छे के नी जादा (लो०) आदि ।

सम्बन्धकारक की उपर्युक्त विभक्तियाँ लगभग सभी आर्य भाषाओ मे कुछ थोडा-बहुत हेर-फेर के प्रचलित है, और विद्वानो ने इनकी व्युत्पत्ति विभिन्न शब्दो से मानी है । डा० चटर्जी स० कार्य शब्द से केर और 'र' की उत्पत्ति मानते हैं ।[1] डॉ० कृष्ण लाल हस 'का, के, की की उत्पत्ति मद्रक, धर्मक आदि शब्दो के उदाहरण से सस्कृत 'क' विभक्ति से ही मानते है । इसी तरह वह का, के की तथा रा, रे, री की उत्पत्ति प्राकृत के केरा, केरी प्रतियो से भी सम्भाव्य समझते है ।[2] डॉ० उदयनारायण तिवारी 'के' की उत्पत्ति सस्कृत कृत्य म मानते हैं—कृत्य>कअ>कए>कँ>के ।[3] जैसा कि ऊपर लिखा गया है, कुलुई मे मुख्यत रा, रें, री का ही सम्बन्धकारक के प्रत्यय के रूप में प्रयोग मिलता है और इनकी उत्पत्ति सस्कृत की इसी विभक्ति अर्थात् पष्ठी के विसर्ग ( ) से अधिक मान्य है । विसर्ग सधि म 'र्' मे बदल जाता है और स्वर आगम से 'र' पूर्ण बन जाता है । अत कुलुई 'रा' सस्कृत विसर्ग ( ) का रूप है—गुरो >गुरोर्+आ>गुरोरा>गुरुरा, कवे > कवेर्>कवेर्+आ> कवेरा> कविरा, धनुप > धनुपर्>धनुपर्+आ>धनुपरा आदि। 'रा' बाद मे कर्म के लिंग के अनुसार 'रें' या 'री' मे बदल जाता है—गुरुरें चेलें, गुरू री जागा आदि।

जहाँ तक प्रयोग का सम्बन्ध है, सम्बन्धकारक के प्रत्ययो का रूप कर्त्ता के अनुरूप नही वरन् कर्म के अनुसार बदलता है ।

(i) 'रा, ना या का' का प्रयोग सभी एकवचन पुंलिग कर्म से पहले होना है, परन्तु शर्त यह है कि कर्म का प्रयोग विभक्ति रहित कर्ता या कर्मकारक के रूप मे होना हो—जैसे, ए राजा रा घोडा सा, मैं दोहरू रा कोट हेरी रा, एवें सोझ का बौक्त सा आदि ।

(ii) परन्तु यदि कर्म विभक्ति सहित हो तो कर्म चाहे एकवचन भी हो तब भी 'रा-का-ना' नही लगता वरन् 'रे-के-ने' लगता है—साधु रें वटें चोरी के री, राजा रें वेढा-न औग शौची, मैं हीज कें पाहुणा वें भौत खियाऊ । इन उदाहरणो मे यद्यपि कर्म वेटा, वेढा और पाहुणा एकवचन है परन्तु इनसे पहले रें या कें का प्रयोग हुआ

---

1 डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी

2 डॉ० कृष्ण लाल हस निमाडी और उसका साहित्य, पृ० 10

3 डॉ० उदयनारायण तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ० 192.

है क्योंकि बेटा, बेहा और पाहुणा कारक-चिह्न सहित हैं। इसके अतिरिक्त रें-कें-णें का मूलत. प्रयोग सभी बहुवचन कर्म-सज्ञाओं के पहले होता है—ये कुणी रें घोडें सी, तेई रें वोहू कोट सी, पौर कें बूटें वडें-वडें हुए आदि।

(iii) री-की णी का प्रयोग सभी स्त्रीलिंग कर्मो के पहले होता है। चाहे कर्म एकवचन हो अथवा बहुवचन, चाहे विभक्ति सहित हो या विभक्ति रहित, री-की-णी का स्त्रीलिंग कर्म के पूर्व प्रयोग होना है—ए मेरी घोडी मा, ये म्हारी भेडा मी, मैं आपणी बौक्री-बें घाह धौना, हीऊ की पाहुणी औऊ नौठी, शोहरू री कताब र्हौठी आदि।

अधिकरणकारक

कुलुई मे अधिकरण के दो रूप हैं। 'में' के अर्थ मे इसकी विभक्ति 'न' है—घडोलू-न पाणी सा (घडे मे पानी है), कताब बकसा-न डाह (किताब वक्स मे रखो), टेंडा न दुआई भौरी (आँख मे दवाई डाली)। यह 'न' सस्कृत की सर्वनामीय सप्तमी विभक्ति (अधिकरण) 'स्मिन' का अवशेष है। इसकी व्युत्पत्ति इसी कारक की इकारान्त, उकारान्त सस्कृत नपुसकलिंग या हलन्त पुल्लिग के 'नि' से भी सम्भाव्य है—स० वारिणि > कु० वारी-न, स० वस्तुनि > कु० वस्तु न, स० गुरुणि > कु० गुरु-न, स० आत्मनि > कु० आत्मा-न, स० राजनि > कु० राजा-न आदि।

'पर' के अर्थ मे मूल विभक्ति तो कुलुई मे प्राप्य नहीं हैं, परन्तु इस अर्थ के कई परसर्गो का प्रयोग मिलता है जिनमे पाघें, परयालें, ऊझें, धामें आदि अधिक प्रचलित परसर्ग है—घोडा पाघें कूण बेशीरा (घोडे पर कौन बैठा है), छापरा पाघें बादर सा। इनकी 'अव्यय' अध्याय मे अधिक विस्तार से व्याख्या की गई है। 'मे' के अर्थ म भी मोंझें, हांदरें, मोयरें आदि परसर्ग प्रचलित हैं। मोंझें का सम्बन्ध स० 'मध्य' > प्राकृत मज्झे से है। हादरें हिन्दी अदर और मीयर हिन्दी भीतर स० अभ्यतर के कुलुई रूप है। सस्कृत मे अधिकरणकारक एकारान्त होता है—रामे, फले आदि। यह रूप प्राकृत मे भी सुरक्षित था। पाघें, परयालें, ऊझें आदि कुलुई शब्दो मे भी यही रूप विद्यमान है। पाघे शब्द सस्कृत 'उपात' से व्युत्पन्न हुआ है और परयालें 'उपरि' से। इनमे प्रथम स्वर का लोप हो गया है और उसी की पूर्ति के लिए बीच मे व्यजन परिवर्तन हो गया है—उपात > पात > पाघ > पाघें; उपरि + ले > परिलें > परयालें। इसी तरह ऊझें की ऊर्ध्व से व्युत्पत्ति स्पष्ट है।

सम्बोधन

सम्बोधन मे सस्कृत 'हे' के रूप कुलुई मे लिंग के आधार पर भिन्न होते हैं। पुल्लिग मे 'हे' के लिए एई (एही) और स्त्रीलिंग एऊ (एहू) रूप प्रचलित हैं। वचन के आधार पर इनमे कोई भेद नहीं आता। एकवचन और बहुवचन मे समान रूप रहते हैं। मूल शब्द मे भी सम्बोधन के लिए परिवर्तन आता है, और यह परिवर्तन वचन के आधार पर भी होता है और लिंग-भेद पर भी।

पुल्लिग शब्द सम्बोधन के लिए एक वचन मे आकारान्त हो जाते हैं और बहु-

वचन मे ओकारान्त मे बदल जाते है, जैसे—एई बादरा (एकवचन)—एई बादरो (बहुवचन), एई घोडेआ—एई घोडेओ, एई नेगीआ—एई नेगीओ, एई शोहरूआ—एई शोहरूओ आदि। स्त्रीलिंग शब्दो की स्थिति मे एकवचन मे ऍकारान्त तथा बहुवचन मे ओकारान्त हो जाते है—एऊ भेडे—एऊ मेडो, एऊ भीनीऍं—एऊ भीनीओ, एऊ शोहरीऍं—एऊ शोहरीओ, एऊ शोशूऍं—एऊ शोशूओ आदि। स्पष्ट है कि बहुवचन मे स्त्रीलिंग और पुल्लिंग मे समान रूप रहते है, परन्तु एकवचन मे दोनो के रूप भिन्न हैं।

विशेषताऍं

विभिन्न विभक्तियों का अध्ययन करने के बाद अब कारक-सम्बन्धी कुछ विशेषताओं का उल्लेख करना जरूरी होगा—

1 जैसा कि **वचन** शीर्षक के अधीन स्पष्ट किया गया है, कुलुई में आकारान्त पुल्लिंग और अकारान्त एवं ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो को छोड कर शेष सज्ञाओ के बहुवचन रूप नही बनते। बहुवचन के वही रूप होते है जो एकवचन के हों। आकारान्त पुल्लिंग शब्द बहुवचन मे ऍकारान्त बनते है—घोडा-घोडे, ऊकारान्त स्त्रीलिंग आकारान्त हो जाती हैं—जू-जू आ, सस्कृत आधारित अकारान्त स्त्रीलिंग ईकारान्त हो जाती है—राश-राशी, और अन्य आकारान्त—भेड-भेडा।

2. विभिन्न कारक-चिह्न पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के लिए समान रहते है। सस्कृत की तरह पुल्लिंग के लिए अन्य और स्त्रीलिंग के लिए कोई अन्य विभक्तियां नही होती। अर्थात् कुलुई मे लिंग-भेद के आधार पर प्रत्यय भेद नही है—घोडा-बें—घोडी-बें, शोहरूऍं—शोहरीऍं आदि।

3 इसी तरह वचन के आधार पर भी विभक्तियो अथवा प्रत्ययों मे भेद नही होता। यहाँ भी सस्कृत का वचन भेद कुलुई मे प्रचलित नही है। एकवचन और बहुवचन मे विभक्तियाँ समान रहती है—घोडाबें—घोडेबें।

4 मूल विभक्तियाँ केवल तीन है—ऍं, बें और न। इनमेसे प्रत्येक एक से अधिक कारकों के लिए प्रयुक्त होती हैं—'ऍं' कर्ताकारक और करणकारक के लिए, 'बें' कर्म और सम्प्रदान, तथा 'न' अपादान और अधिकरण के लिए। दो या अधिक कारको के विभक्ति प्रत्यय एक जैसे होना केवल कुलुई मे कोई अपवाद नही है। सस्कृत जैसी सम्पन्न भाषाओ मे भी ऐसा नियम है, और कर्म तथा सम्प्रदान के तो कई भाषाओं मे समान प्रत्यय है। वैसे सम्प्रदान कारक प्राकृत युग मे ही कई भारतीय भाषाओं मे लुप्त हो रहा था, उसका काम कर्म से ही चलाया जाता है।

5 चूँकि दो-दो कारको की समान विभक्तियाँ हैं इसलिए दोनो के स्पष्टीकरण के लिए विभिन्न परसर्गों का जन्म हुआ है। कर्ताकारक को करणकारक से विभेद करने के अभिप्राय से करणकारक के लिए लाइया और संगे परसर्गों का प्रयोग होता है। सम्प्रदान को कर्मकारक से स्पष्ट करने के लिए 'ताइये' प्रत्यय प्रयुक्त होता है। इसी तरह अपादान और अधिकरण को पृथक करने के लिए अधिकरण को मोझें, पाधें,

परयाले आदि परसर्गों से स्पष्ट किया जाता है। कहना न होगा कि कर्ता, कर्म और अपादान तो केवल अपनी मूल विभक्तियों 'एँ', 'वें' और 'न' से अभिव्यक्त होते है, तथा करण, सम्प्रदान और अधिकरण इन विभक्तियो के अतिरिक्त विभिन्न परसर्गों से भी स्पष्ट हो जाते हैं। वास्तव मे जहाँ भी उत्तरोक्त तीन में से पूर्वोक्त की अपनी कक्षा की विभक्ति से द्विविधा की सम्भवना हो तो उन्हे विभक्ति की बजाय परसर्ग से अभिव्यक्त किया जाता है।

(6) अकारान्त और आकारान्त पुल्लिग एव अकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिंग को छोडकर शेष सज्ञाओ के रूप विभक्ति अथवा परसर्ग जोडने से नही बदलते। विभक्ति लगाने से उनके रूप मे कोई विकार नही आता। यह प्रवृति हिन्दी से भिन्न है, हिन्दी मे कारक-चिह्न जोडने पर विशेषत बहुवचन मे ऐसा विकार अवश्य आता है—लडके ने—लडकों ने, हाथी पर—हाथियों पर, साधु का—साधुओं का आदि। परन्तु कुलुई में जो मूल रूप एक वचन मे है वही अविकृत रूप बहुवचन मे रहता है—नेगी रा, शोहरी वें, शोहरुएँ, शोशूएँ, बेटी-न, माण्हु री ताइये, छेली लाइया आदि मे विभिन्न विभक्तियो के जोडने पर भी नेगी, शोहरी, शोहरु, शोशू, बटी, माण्हु, छेली शब्दों के रूप मे कोई परिवर्तन नही है, और इन सब का अर्थ एकवचन में भी हो सकता है और बहुवचन में भी—नेगी रा का मतलब 'एक नगी' का भी हो सकता है और नेगियों का भी, बेटी-न का अर्थ 'एक बेटी से' तथा 'बेटियो से' दोनो अर्थ निकलते हैं।

(7) अकारान्त और आकारान्त पुल्लिग शब्दो मे विभक्ति या परसर्ग लगने से विकार आता है। अकारान्त पुल्लिग आकारान्त मे बदल जाता है, और एकवचन तथा बहुवचन मे समान रहता है। उदाहरणार्थ होथ (हाथ) मे जब विभक्ति लगेगी तो होथा हो जाएगा और 'होथा-न' का अर्थ 'हाथ में' भी हो सकता है और 'हाथों में' भी। इसी तरह मुड से मुडा पाघें (सिर पर, सिरो पर), नाक से नाका-न (नाक मे, नाकों मे), छापर से छापरा पाघें (छत पर, छतो पर—कुलुई मे छापर पुल्लिग है), काठा पाघें मणयाठ (मु०) आदि। इस सम्बन्ध मे डा० ग्रियर्सन का कथन कि "व्यजनात (अर्थात् अकारान्त) पुल्लिग सज्ञा शब्दो का तिर्यक रूप 'ए' या 'आ' हो जाता है" ठीक नही है। व्यजनात पुल्लिग शब्द कभी तिर्यक में एकारान्त नही बनते बल्कि सर्वदा आकारान्त हो जाते हैं। हा, अलबत्ता यह प्रवृति आकारान्त शब्दों मे अवश्य देखी जाती है। आकारान्त पुल्लिग सज्ञा शब्द एकारान्त मे बदलते हुए भी दिखाई देते हैं और आकारान्त में भी। यहा भी डा० ग्रियर्सन का निष्कर्ष ठीक नहीं कि "आकारान्त पुल्लिग सदा एकारान्त हो जाते हैं।" वास्तव मे यहां दोनो रूप प्रचलित हैं—घोडा वें या घोडे वें, बूटा पाघें या बूटे पाघें, बेटा रा या बेटे रा आदि। आम बोल चाल मे दोनो रूप बिना भेद के प्रचलित हैं। वक्ता की अपनी इच्छा है इसे आकारान्त ही रखे या एकारान्त में बदल दे। रवानगी पर अधिक निर्भर है। हमारा अपना विचार है कि यहा वचन का आधार काफी हद तक नियमित है। एक वचन में आकारान्त पुल्लिग शब्द आकारान्त हो रहते है, परन्तु बहुवचन मे एकारान्त बन जाते हैं। यथा—घोडा पाघें (घोडे पर) परन्तु घोडे पाघें (घोडों पर), बूटा रा (वृक्ष का) बूटे रा (वृक्षो का) [illegible]

गूण (लो०) आदि ।

(8) अकारान्त स्त्रीलिंग के बारे मे पहले ही लिखा जा चुका है कि किस तरह अकारान्त स्त्रीलिंग सज्ञा शब्द दो तरह से बहुवचन बनाते हैं। (देखिए *वचन अध्याय* के अधीन)। वही नियम विभक्ति या परसर्ग मे पूर्व अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के विकार पर भी लागू होता है। डा० ग्रियर्सन ने 'बेहण' शब्द लेकर लिखा है कि "व्यजनान्त (अकारान्त) स्त्रीलिंग सज्ञाए 'ई' जोडकर अपना तिर्यक रूप बनाती हैं, जैसे बेहणी।" सम्भवत उनके ध्यान मे भेड, लीत, जोघ, आज, कताब, टाग, आदि अनेक अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द न आए होंगे जिनके तिर्यक रूप भेडी, लीती, आजी, कताबी आदि नही बनते बल्कि भेडा, लीता, आजा, कताबा, टागा आदि बनते है। यहा भी यही कहना होगा कि सस्कृत के अन्तिम स्वर के लोप होने से बने अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द या इसी रूप के अन्य स्त्रीलिंग शब्दो के तिर्यक रूप 'ई' जोडने स बनते हैं—जैसे भीत से भीती पाघें, राश से राशी-न, रात से राती मोझें आदि, तथा दूसरी तरह के अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द 'आ' मे बदल जाते हैं। ऊकारान्त स्त्रीलिंग सज्ञा शब्दो का तिर्यक रूप आकारान्त होता है—ज से जूआ-न, बरू से बरूआ आदि। यहा भी स्त्रीलिंग विकृत सज्ञा शब्द एकवचन और बहुवचन के समान रहते हैं—आपणी बेहणी-बें दे (अपनी बहिन को या बहिनो को दो), भेडावें पाणी पिया (भेड को या भेडो को पानी पिलाओ) आदि।

(9) ऊपर 6 से 8 तक सज्ञाओ के जिन विकृत अथवा तिर्यक रूपो का वर्णन किया गया है वे कर्ता और करण की समान विभक्ति 'ऍ' के अतिरिक्त है। अर्थात् जब कर्ताकारक मे 'ने' का तथा करणकारक मे 'से' का अर्थ हो तो उपर्युक्त नियम लागू नही होते। इन दो स्थितियो मे तो हर प्रकार का सज्ञा शब्द सर्वदा ऍकारान्त म बदल जाएगा। चाहे शब्द किसी रूप का हो, स्त्रीलिंग हो या पुल्लिग, एकवचन हो या बहुवचन, वह जरूर ऍकारान्त बनकर ही करताकारक के 'न' और कारणकरक के 'से' का अर्थ देगा। यहा यह नही कहा जा सकता कि नेगी, शोहरी, शोहरू, शौगू आदि शब्द विभक्ति लगाने से वैसे ही रहते है। ये अवश्य ऍकारान्त हो जाएगे—नेगीऍ (नेगी ने/से), शोहरीऍ (लडकी ने/से), शोहरूऍ (लडके ने/से) आदि। परन्तु वचन के आधार पर ये दोनो वचनो का अर्थ देंगे—'भेडे' का अर्थ 'भेड ने' या 'भेडो ने' दोनो हो सकता है।

(10) हिन्दी मे प्राय हम देखते है कि शब्द का जो तिर्यक रूप (oblique form) कर्ताकारक के 'ने' अर्थ (Nominative agentive) के लिए बनता है वे शेष सभी कारको के लिए समान रहता है, जैसे लडके ने, लडके को, लडके से, लडकियो ने, लडकियो को, लडकियो के लिए आदि। परन्तु कुलुई मे ऐसा नियम नही है। 'ने' के लिए कुलुई मे हर शब्द ऍकारान्त बन जाता है, परन्तु अन्य कारको के लिए यह रूप नही रहता। उदाहरणार्थ, नेगीऍ (नेगी ने) परन्तु नेगी-बें (नेगी को), नेगी री ताइयें (नेगी के लिए), बेहणीऍ (बहिन ने) परन्तु बेहणी बें (बहिन को), बेहणी-न (बहिन मे) आदि।

अब विभिन्न अक्षरो द्वारा अन्त होने वाले पुल्लिग और स्त्रीलिंग सज्ञा शब्दो के सभी कारको के रूप प्रदर्शित करना न भवश्यक होगा

अकारान्त पुंल्लिग 'बौल्द' (बैल) — अकारान्त स्त्रीलिंग 'भेड'

कारक	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	(i) बौल्द (ii) बौल्दें	(i) बौल्द (ii) बौल्दें	(i) भेड (ii) भेडें	(i) भेडा (ii) भेडें
कर्म	बौल्दा-वें	बौल्दा-वें	भेडा-वें	भेडा-वें
करण	बौल्दें, (बौल्दा सोंगें, लाइया)	बौल्दें, (बौल्दा मोंगें, लाइया)	भेडें, (भेडा सोंगें, लाइया)	भेडें, (भेडा सोंगें, लाइया
सम्प्रदान	बौल्दा-वें (बौल्दा री ताइये)	बौल्दा-वें (बौल्दा री ताईये)	भेडा-वें (भेडा री ताइये)	भेडा-वें (भेडा री ताइये)
अपादान	बौल्दा-न	बौल्दा-न	भेडा-न	भेडा-न,
सम्बन्ध	बौल्दा रा-रे-री	बौल्दा रा-रे री	भेडा रा-रे-री	भेडा रा-रे-री
अधिकरण	(i) बौल्दा-न, (मोंझें) (ii) बौल्दा पाघें	(i) बौल्दा-न, (मोझें) (ii) बौल्दा पाघें	(i) भेडा-न, (मोंझें) (ii) भेडा पाघे	भेडा-न (मोंझें) भेडा पाघें
सम्बोधन	एई बौल्दा	एई बौल्दो	एऊ भेडें	एऊ भेडो

आकारान्त पुंल्लिग 'घोडा' — बेहण (बहिन)

कारक	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	(i) घोडा (ii) घोडें	(i) घोडे (ii) घोडें	(i) बेहण (ii) बेहणीएँ	(i) बेहणी (ii) बेहणीएँ
कर्म	घोडा-वें	घोडे-वें	बेहणी-वें	बेहणी-वें
करण	घोडें, (घोडा सोगें,लाइया)	घोडें, (घोडे सोंगें,लाइया)	बेहणीएँ, (बेहणी सोंगें)	बेहणीएँ, (बेहणी सोंगें)
सम्प्र०	घोडा-वें, (घोडा री ताइये)	घोडे-वें, (घोडे री ताइये)	बेहणी-वें, (बेहणी री ताइये)	बेहणी वें, (बेहणी री ताइये)
अपा०	घोडा-न	घोडे-न	बेहणी-न	बेहणी-न
सम्ब०	घोडा रा-रे-री	घोडे रा रे-री	बेहणी रा रे-री	बेहणी रा रे-री
अधि०	घोडा-न (पाघें)	घोडे-न (पाघें)	बेहणी-न (मोंझें)	बेहणी-न (मोंझें)
सम्बो०	एई घोडेआ	एई घोडेओ	एऊ बेहणीएँ	एऊ बेहणीओ

ईकारान्त पुंल्लिग 'नेगी' — ऊकारान्त पुंल्लिग 'शोहरू' (लडका)

कारक	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	(i) नेगी (ii) नगीएँ	(i) नेगी (ii) नेगीएँ	(i) शोहरू (ii) शोहरूएँ	(i) शोहरू (ii) शोहरूएँ

कर्म	नेगी-वॅ	नेगी-वें	शोहरू-वॅ	शोहरू-वॅ
करण	नगीएँ (नगी सागे)	नेगीएँ (नेगी सोगे)	शोहरुएँ, (शोहरू सोगे)	शोहरूएँ, (शोहरूसागे)
सम्प्र०	नेगी-बॅ (नेगी री ताइय)	नेगी वॅ, (नगी री ताइये)	शोहरू वॅ (शोहरू री ताइये)	शोहरू-वें, (शोहरू री ताइये)
अपा०	नेगी-न	नेगी न	शोहरू न	शोहरू न
सम्ब०	नेगी रा र री	नेगी रा र री	शोहरू रा रे री	शोहरू रा रे री
अधि०	नेगी-न (पाधॅ)	नेगी-न (पाधे)	शोहरू न (पाधॅ)	शोहरू न (पाधे)
सम्बो०	एई नेगीआ	एई नेगीओ	एई शोहरूआ	एई शोहरूओ

आकारान्त स्त्रीलिंग
'आमा'

ईकारान्त स्त्रीलिंग
शोहरी' (लडकी)

कर्त्ता	(i) आमा (ii) आमॅ	(i) आमा (ii) आमें	(i) शोहरी (ii) शोहरीए	(i) शोहरी (ii) शोहरीएँ
कर्म	आमा-वॅ	आमा-वॅ	शोहरी वॅ	शोहरी-वॅ
करण	आमें	आमॅ	शोहरीए	शोहरीए
सम्प्र०	आमा-वॅ	आमा बॅ	शोहरी वॅ	शोहरी-वॅ
अपा०	आमा न	आमा न	शोहरी न	शोहरी-न
सम्ब०	आमा रा रे री	आमा रा रे री	शोहरी रा रे री	शोहरी रा रे री
अधि०	आमा न	आमा-न	शोहरी-न	शाहरी न
सम्बो०	एऊ आमें	एऊ आमेओ	एऊ शोहरीए	एऊ शोहरीओ

ऊकारान्त स्त्रीलिंग
शौशू (सास)

ऊकारान्त स्त्रीलिंग
जू' (जू)

कर्त्ता	(i) शौशू (ii) शौशूएँ	(i) शौशू (ii) शौशूएँ	(i) जू (ii) जूएँ	(i) जूआ (ii) जूएँ
कर्म	शौशू वें	शौशू-वें	जूआ बें	जूआ वॅ
करण	शौशूएँ	शौशूएँ	जूएँ	जूएँ
सम्प्र०	शौशू बॅ	शौशू बॅ	जूआ-वॅ	जूआ वॅ
अपा०	शौशू-न	शौशू-न	जूआ-न	जूआ-न
सम्ब०	शौशू रा रे री	शौशू रा रे री	जूआ रा रे री	जूआ रा रे री
अधि०	शौशू-न	शौशू न	जूआ न	जूआ-न
सम्बो०	एऊ शौशूएँ	एऊ शौशूओ	एऊ जूएँ	एऊ जूओ

अध्याय—12

सर्वनाम

सज्ञा को 'नाम' भी कहते है और जो शब्द सब नामो के लिए प्रयुक्त होते है उन्हें सर्वनाम कहते है। इस प्रकार सर्वनाम सज्ञा का प्रतिनिधित्व करते है। कुलुई मे भी हिन्दी की तरह छ प्रकार के सर्वनाम हैं

1 पुरुषवाचक—हाऊ तू, सो, आदि	2 निजवाचक—आपु
3 निश्चयवाचक—ए, सो	4 अनिश्चयवाचक—किछ, कोई
5 सम्बन्धवाचक—जो	6 प्रश्नवाचक—कुण, की

कुलुई के ये सभी सर्वनाम सस्कृत से आए है। केवल उच्चारण म परिवर्तन आया है, जो इस लम्बी अवधि मे स्वाभाविक है। कुलुई सर्वनामो म एक मुख्य विशेषता यह है कि यहा अन्यपुरुष तथा निश्चयवाचक सर्वनाम के स्त्रीलिंग और पुल्लिग दोनो रूप मिलते है। कुलुई मे यह नियम हिन्दी से बिलकुल भिन्न है। हिन्दी मे अन्य पुरुष मे पुल्लिग और स्त्रीलिग रूप अलग-अलग नही हैं। एक ही रूप से दोनो लिंगो की अभिव्यक्ति हो जाती है—'उसने खाना खाया' स अभिप्राय 'उस (पुरुष) ने खाना खाया' भी हो सकता है और 'उस (स्त्री) ने खाना खाया' भी। परन्तु कुलुई मे दोनो के लिए अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं—'तेइऐं खाणा खाऊ' (पुल्लिग) परन्तु 'तेसे खाणा खाऊ' (स्त्रीलिग)। अन्यपुरुष मे पुल्लिग और स्त्रीलिग के अलग अलग रूप होना पहाड़ी भाषा की विशेषता है।[1] इस दिशा मे कुलुई सस्कृत के अनुरूप है, हिन्दी के नही।

1 पुरुषवाचक

पुरुषवाचक सर्वनाम के पुन तीन रूप हैं—(१) उत्तमपुरुष, (2) मध्यमपुरुष तथा अन्यपुरुष।

उत्तमपुरुष

कुलुई मे उत्तमपुरुष का मूल शब्द 'हाऊ' है। परन्तु 'हाऊ' के लिए 'मैं' और

1. देखिए शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश, द्वारा प्रकाशित 'शोध पत्रावली में (1) श्रीरामदयाल नीरज सिरमौरी पृ० 62-63 (2) श्री नन्देशकुमार चमियाली, पृ० 21 22, चुराही, पृ० 25, भटियाला पृ० 27, (3) श्री मनशाराम शर्मा अहम कहलूरी पृ० 51, (4) श्री भीमदत्त काने बघाटी पृ० 85.

'मू' दो रूप और भी हैं। 'मू' शब्द 'हाऊ' का विकारी रूप है। कर्ताकारक कर्तृ रूप मे सर्वदा 'हाऊ' का प्रयोग होता है। हाऊ सा (मैं हूँ), हाऊ खाणा खाआसा (मैं खाना खाता हूँ), हाऊ निहाइया सा (मैं नहाता हू)। परन्तु सप्रत्यय कर्ताकारक रूप मे 'हाऊ' और 'मैं' दोनों प्रयुक्त होते है। अकर्मक क्रिया की स्थिति मे 'हाऊ' तथा सकर्मक क्रिया की स्थिति मे मैं'—हाउ सूता (मैं सोया), हाऊ बैठा (मैं बैठा), परन्तु मैं छीडी काटी (मैंने लकडी काटी), मैं कीडा मारू (मैंने साप मारा)। परन्तु भविष्यत् काल मे चाह सकर्मक क्रिया हो या अकर्मक, दोनो स्थिति मे मू शब्द हो प्रयोग म आता है। मू काल सहरा-बें जाणा (मैं कल शहर को जाऊगा), मू सोणा (मैं सोऊगा), मू रौशी चोडनी (मैं रस्सी तोडूँगा)। कर्मकारक मे विभक्ति रहित प्रयोग के लिए हमेशा हाऊ प्रयुक्त होता है। इस प्रकार कर्ता, कर्म और करणकारकों को छोडकर (जिनकी स्थिति ऊपर बताई गई है) तथा सम्बन्ध के अतिरिक्त शेप सभी कारको मे 'मू' ही उत्तम पुरुष का एक वचन का रूप है। सम्बन्धकारक मे कुलुई का उत्तमपुरुष मे एकवचन ठीक हिन्दी की तरह मेरा, मेरे और मेरी है, इसमें कोई भी अन्तर नही

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हाऊ, मू, मैं	आसें
कर्म	मू-बें, हाऊ	आसाबें, आसें
करण	मैं, हाऊ, मू (सोगें)	आसें, आसा (सोगें)
सम्प्रदान	मू-बें	आसाबें
अपादान	मू-न	आसा-न
सम्बन्ध	मेरा, मेरे, मेरी	आसारा, रे, री
अधिकरण	मू न (पाधे)	आसा-न (पाधें)

उत्तमपुरुष एकवचन मे हाऊ स्पष्टत सस्कृत अहम् का विकसित रूप है, जो अपभ्रश 'हाऊ' से कुलुई मे आया है। 'हाऊ' शब्द थोडा-बहुत उच्चारण भेद के साथ पहाडी भाषा की सभी उप भाषाओ मे प्रचलित है। गढवाली और निमाडी मे भी यह शब्द है। कुलुई मे हिन्दी की भान्ति 'मुझ-मुझे, हम हम आदि रूपो का प्रयोग नही होता बल्कि 'हाऊ' के तिर्यक रूप 'मूँ' तथा 'आसा' म कारक चिह्न सज्ञा शब्दो की भान्ति प्रयुक्त होते हैं।

'मू' सस्कृत 'माम्' का दूसरा रूप है—स० माम् > मा > मों > मूँ। 'आ' कुलुई मे 'ओ' म बदल जाता है और अन्तिम 'ओं' का 'ऊ' मे विकार हो जाता है। बगला मुई, मु, आसामी मुँ, राजस्थानी मूँ, गढवाली मु, उडिया मु और निमाडी 'म' से इसका रूप साम्य है। 'मैं' का उच्चारण ठीक हिन्दी 'मैं' जैसा नही है, बल्कि 'मय' सा है जो सस्कृत के 'मया' के अधिक निकट है और प्राकृत मई, अपभ्र श 'मि' द्वारा निष्पन्न हुआ है।

बहुवचन आसें मे सस्कृत असमद् के रूप सुरक्षित हैं। मूल रूप मे इसका आधार वैदिक 'अस्मे' है—अस्मे > अस्मे > आसे। सस्कृत अस्मभ्यम् के लिए आसाबें, अस्मात् के लिए आसा-न, अस्माकम् के लिए आसारा शब्दो मे सस्कृत रूप विद्यमान है। यहा यह

स्पष्ट करना जरूरी होगा कि 'आसारा' आदि शब्दो मे 'आ' अग्र विवृत स्वर अ: है जो हिन्दी अ मे अधिक तथा आ से कम है। उपर्युक्त आसा शब्द न असा है न ठीक आसा, बल्कि दोनो के बीच का उच्चारण है। इस तरह अस्मद के विभिन्न विभक्तियो के कारक रूप ठीक सस्कृत के निकट है। सम्बन्ध कारक बहुवचन मे 'आसा रा-रे-री' स्थान पर हिन्दी 'हमारा-रे-री' का भी कुछ ध्वनि परिवर्तन के साथ 'म्हारा-रे-री' के रूप म प्रयोग मिलता है। आसा रा-रे-री और 'म्हारा-रे-री' का प्रयोग समान रूप से प्रचलित है और एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं, कोई भेद नही है। अन्य किसी विभक्ति मे 'म्ह' का प्रयोग नही मिलता, केवल 'आसा' शब्द ही प्रचलित है।

मध्यमपुरुष

कुलुई मे पुरुषवाचक मध्यमपुरुष एकवचन तू और बहुवचन तुसें है। इसके कारको सम्बन्धी रूप इस प्रकार है —

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	तू, तें, तौ	तुमें
कर्म	तौ-वें, तू	तुसा-वें, तुमें
करण	तें, तौ (सॉगें)	तुसें, तुसा (सोग)
सम्प्रदान	तौवें	तुसावें
अपादान	तौ-न	तुसा-न
सम्बन्ध	तेरा, रे, री	तुसारा, रे, री
अधिकरण	तौ-न (पाधें)	तुसा-न (पाधें)

तू हिन्दी तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाओ मे मामूली ध्वनिपरिवर्तन के साथ विद्यमान है। विद्वानो ने इसकी व्युत्पत्ति सस्कृत 'त्वम्' से मानी है। 'तौ' तू का विकारी रूप है। इसकी उत्पत्ति सस्कृत त्वाम से मान्य है—त्वाम>त्वाअ>तौ। इसी के साथ अन्य परसर्गों या प्रत्ययों का प्रयोग होता है—तौ-वे, तौ-न, तौ-पाधे, तौ-सॉगे, तौ बाभी आदि। कर्ताकारक मे 'ने' के अर्थ के लिए कुलुई विभक्ति 'एँ' एव करण की इसी विभक्ति 'एँ' के सयोग से 'तू' का तिर्यक रूप 'तें' बना है। इसका प्रयोग भी इन्ही दो कारकों की अभिव्यक्ति अर्थात् 'ने' और 'से' के लिए होता है—तें रोटी खाई (तूने रोटी खाई), तें न्होली केरी (तुझसे न किया जा सका)। ध्वनि-परिवर्तन से इसका 'तैं' रूप भी प्रचलित है। व्रज, अवधि, भोजपुरी, छत्तीसगढी भाषाओ मे भी तैं प्रचलित है और डा० भालचन्द्र राव तैलग इसकी उत्पत्ति त्वया+एन से मानते हैं।[1] एन करणकारक की विभक्ति है और अनुस्वार की मूल स्रोत है। सम्बन्धकारक एकवचन मे ठीक हिन्दी की तरह तेरा, तेरे, तेरी रूप प्रचलित हैं।

बहुवचन मे 'तू' से 'तुसें' का रूपान्तरण 'हाऊ' से 'आसे' के अनुकूल हुआ है। तुसें का रूप सस्कृत के 'युष्य' से मान्य है। सस्कृत के 'युष्य' का 'यु' प्राकृत मे ही 'तु'

1 डा० भालचन्द्र राव तैलग छत्तीसगढ़ी, हलबी भतरी बोलियां का भाषावैज्ञानिक अध्ययन

मे बदल चुका था और 'प्' का 'स' होना बड़ा स्वाभाविक है—म० युष्य>तुष्य>तुस्य >तुसे॑। इसे प्राय 'तुसै' उच्चरित होते भी सुना जाता है। सम्बन्धकारक मे जिस प्रकार 'आसारा-रे-री' के स्थान पर "म्हारा-रे-री" समरूप से पर्याप्त प्रचलित है, वैसे 'तुसारा-रे-री' के स्थान पर 'तुम्हारा-रे-री का प्रयोग तो प्रचलित नही है, परन्तु ऊझी वादी मे 'तुहरा, तुहरे, तुहरी' रूप अवश्य प्रचलित है। वहाँ तुसारा-रे-री की बजाय तुहरा-रे-री का प्रयोग है, जो हिन्दी के प्रभाव के कारण है। हिन्दी 'तुम्हारे' मे से 'म्' का लोप हो गया है और 'हकार' मृदु हो गया है। तुसारा की व्युत्पत्ति युष्म+कार से मानी जानी चाहिए।

अन्यपुरुष

कुलुई का तृतीय पुरुष पुम्पवाचक सर्वनाम सो' तथा बहुवचन 'ते' है। उत्तम पुरुष हाऊ और मध्यमपुरुष तू के रूप सब कारकों मे पुल्लिग और स्त्रीलिग के समान रहते है। परन्तु अन्य पुरुष मे 'सो' (वह) के रूप एक वचन मे लिंग-भेद अनुसार बदल जाते हैं बहुवचन समान रहते हैं। यह नीचे लिखी रूपावली से स्पष्ट हो जाता है —

सो (वह, पुल्लिग)

कर्ता	सो, तेईएँ	ते, तिउआ, तिन्हे
कर्म	तेईवें, सो	तिन्हाबें, ते
करण	तेईएँ, तेई (सोगें)	तिन्हे, तिन्हा (सोगें)
सम्प्रदान	तेईवें	तिन्हा वें
अपादान	तेई-न	तिन्हा-न
सम्बन्ध	तेईरा, रे री	तिन्हारा, रे, री
अधिकरण	तेई-न, तेई (पाधें)	तिन्हा-न, तिन्हा (पाधें)

'सो' शब्द संस्कृत का स. और प्राकृत सो है। कुलुई मे 'अ या विसर्ग [ ] को ओं मे बदलने की प्रवृत्ति है। बहुवचन 'ते' ठीक संस्कृत का तत्सम 'ते' शब्द है, इसमे किसी प्रकार का विकार नही आया है। सो से तेई विकारी रूप है और शेष कारकों मे इसी से रूपान्तरण हुआ है, बहुवचन मे 'ते' से 'तिन्हा' विकारी रूप है और इसीके साथ विभिन्न विभक्ति चिह्न लगे हैं।

उत्तमपुरुष तथा मध्यमपुरुष की अपेक्षा अन्यपुरुष का रूपान्तरण अधिक सरल और युक्तिसंगत है। उत्तम और मध्यम मे चार-चार रूप हुए हैं —हाऊ, मैं, मूँ तथा सम्बन्ध के लिए मेरा, इसी तरह तू, तै, तो और सम्बन्ध के लिए तेरा। अन्य पुरुष मे एकवचन सो से तिर्यक रूप तेई बना और यह सभी कारकों, परसर्गों या प्रत्ययों के लिए एक रूप मे प्रचलित रहा—तेई-वें, तेई-न, तेईरा, तेई सोगें, तेई पाधें, तेई साद्या आदि। इसी तरह बहुवचन मे ते से तिन्हा तिर्यक रूप बिना विकार के प्रचलित होता है—तिन्हा-वें, तिन्हा-न, तिन्हारा, तिन्हा पाधें आदि। तेई की उत्पत्ति करणकारक तेन से मानी जानी चाहिए—तेन>तेहि>तेई। तिन्हा (अथवा तिनहा) रूप कई

भाषाओं मे मिलता है। पुरानी हिन्दी में निश्चयवाचक सर्वनाम 'जो'''सो' के लिए 'जौन'''तौन' का प्रयोग मिलता है, और तौन का तिर्यक रूप एकवचन और बहुवचन मे तिसने—तिन्हो ने, तिसको—तिनको चलता था। विद्वानो ने तिनहा (तिन्हा) की व्युत्पत्ति बहुवचन प्रत्यय अन् <संस्कृत आनाम् से स्वीकार की है।[1]

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, अन्यपुरुष एकवचन 'सो' के रूप लिंग भेद अनुसार बदल जाते हैं। बहुवचन में रूप समान रहते हैं—तिन्हावें, तिन्हारा आदि दोनों लिंगो के लिए समान रूप से प्रयुक्त होते है, परन्तु एकवचन मे स्त्रीलिंग के रूप भिन्न है, जो इस प्रकार हैं—

सो (वह, स्त्रीलिंग)

कर्ता	सो, तेसें	सम्प्रदान	तेसावें
कर्म	तेसावें, सो	अपादान	तेसा-न
करण	तेसें, तेसा (सोगे)	सम्बन्ध	तेसारा, रे, री
अधिकरण	तेसा-न, तैसा (पाधें)		

यहाँ सस्कृत के रूप सुरक्षित हैं। तस्यै के लिए तेसावें, तस्मान् के लिए तेसा-न, तस्याम् के लिए तेसा-न मे सस्कृत के साथ निकट समानता परिलक्षित होती है। सा का रूप नपुंसक लिंग मे नही होता, परन्तु वस्तु के लिंग भेद के अनुसार उपर्युक्त रूप से सो के विभिन्न रूप सभी अन्यपुरुष सर्वनामो के लिए प्रयुक्त होते है।

उपर्युक्त विवरणो से स्पष्ट है कि कर्ताकारक विभक्ति रहित रूप 'सो' दोनो लिंगो के लिए समान है—सो नौठा (वह गया), सो नौठी (वह गई)। इसी प्रकार बहुवचन भी हिन्दी की तरह दोनो लिंगो के रूप समान हैं—ते नौठें (वे गए), ते नौठी (वे गई), तिन्हारा घौर को सा (उनका घर कहा है—दोनों लिंगों के लिए)। परन्तु एक वचन मे पुंलिंग मे 'सो' का विकारी रूप 'तेईं' बना और स्त्रीलिंग मे 'तेस'। अकारान्त होने के नाते 'तेस' मे पुन विकार 'तेसा' या 'तेसें' हो जाता है—तेईएँ बोलू 'उस (लडके) ने कहा', तेसें बोलू 'उस (लडकी) ने कहा', तेई मौरदा री टोपी आण (उस मरद की टोपी ले आ) तेसा बेटडी रा थीपू आण (उस स्त्री का दुपट्टा ले आ) आदि।

2 निजवाचक सर्वनाम

कुलुई मे अपने-आप के लिए 'आपु' शब्द का प्रयोग होता है, इसीलिए 'आपु' शब्द निजवाचक सर्वनाम कहलाता है, क्योकि 'आपु' मे निजत्व का बोध होता है। हिन्दी, ब्रज, बुन्देली, निमाडी आदि भाषाओं मे निजवाचक के रूप मे 'आप' का प्रयोग होता है। कुलुई 'आपु' की उत्पत्ति सस्कृत 'आत्मन्' से हुई है। सस्कृत आत्मन् के लिए प्राकृत मे अप्प तथा अत्त रूप प्रचलित थे। इनमे से अप्प आगे प्रचलित रहा और इसी से 'आप' का निष्पादन हुआ। अत कुलुई 'आपु' भी सस्कृत 'आत्मन्'>प्राकृत 'अप्प'

1 डा० भालचन्द्र राव तैलग छत्तीसगढ़ी, हलबी, भतरी बोलियों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन, पृ० 130

से व्युत्पन्न हुआ है। सयुक्त रूप मे प्राकृत 'अप्प' उसी रूप मे भी सुरक्षित रहा है, जैसे—'अप्प-आपणा कोम केरा' मे अप्प विद्यमान है। सम्बन्धकारक मे अन्तिम उ-मात्रा का लोप हो जाता है तथा आपणा रूप प्रचलित है। केवल इसी शब्द में सम्बन्ध कारक के चिह्न णा-णे-णी प्रयुक्त होते है, अन्यथा रा-रे-री का ही प्रयोग होता है। प्राकृत मे भी अप्प का षष्ठी रूप 'अपणा' था।

कुलुई 'आपु' शब्द हिन्दी मे प्रयुक्त 'तू' या 'तुम' के लिए आदरसूचक शब्द 'आप' नही है, और न ही इस रूप मे इसका प्रयोग मिलता है। आदर के लिए कुलुई मे प्राय 'तू' के बहुवचन 'तुसे' के रूप प्रयुक्त होते है, और 'तुसे' शब्द आदर, मान, नम्रता के लिए एकवचन रूप मे आम प्रयुक्त होता है। 'आपु' का मूल प्रयोग 'स्वय' जैसा है, यद्यपि इसका प्रयोग-क्षेत्र स्वय तक सीमित नही है। 'आपु' के एकवचन और बहुवचन मे समान रूप रहते हैं, दोनों के लिए भिन्न रूप नही होत, तथा सभी विभक्तियो मे इसका प्रयोग होता है—जैसे, कर्त्ता-विभक्ति रहित 'आपु', विभक्ति सहित 'आपुएँ' (आपुएँ ता मौर, लो० क०), कर्म 'आपु-वें' गोराटें होरी वें गुरुज्ञान, (लो०), करण 'आपुएँ', सम्प्रदान 'आपु-बें', अपादान 'आपु-न' सम्बन्ध 'आपणा-णे-णी', अधिकरण 'आपु-न, आपु पांधे' आदि।

निजवाचक आपु सभी पुरुषवाचक सर्वनामो के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे—मू आपु जाणा, तू आपु जा, तेई आपु एणा आदि। [वास्तव मे 'आपु' से पहले तीनो पुरुष वाचक सर्वनामो मे सी किसी एक का आना जरूरी है। 'आपुएँ लिख' आदि प्रयोग मे भी मध्यम पुरुष गुप्त रूप मे विद्यमान है अर्थात् 'तू आपु लिख'।

3. निश्चयवाचक सर्वनाम

कुलुई मे निश्चयवाचक सर्वनाम दो हैं—'ए' और 'सो'। परन्तु दोनो मे निकट-वर्ती और दूरवर्ती का भेद नही है जैसा कि प्राय अन्य भाषाओ मे होता है। इन दोनो मे भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष का है। जो प्रत्यक्ष हो वह 'ए' (यह) है जो परोक्ष हो वह 'सो' (वह)। दूर और निकट का प्रभाव 'ए' द्वारा ही दिखाया जाता है। दूरवर्ती भाव के लिए 'ए' के साथ अन्य शब्द आते हैं, जैसे—पारला ए (पार का यह अर्थात वह), ए की सा (यह क्या है), पारला ए की सा (वह क्या है)। दूरवर्ती के लिए यहा 'सो' का प्रयोग नही किया जा सकता, क्योंकि 'सो' तथा उसके विकारी रूपो का प्रयोग भूतकालिक अव-स्थाओं मे ही होता है। इससे 'सो' के परोक्ष होने का भाव स्पष्ट होता है, दूरवर्ती का नही। कुलुई मे जब तक परोक्ष की भावना न हो, 'सो की सा' कहना अशुद्ध है। इससे "वह क्या है" का भाव प्रकट नही किया जा सकता, क्योंकि 'सो' के परोक्ष होने के कारण 'सो की थी' कहना ही उचित है। दूरवर्ती के लिए कोई दूसरा सर्वनामी शब्द भी नही है। यदि 'सो' के विकारी रूपो का वर्तमान या भविष्यत मे प्रयोग हो तो भी उनसे परोक्ष-भाव का ही प्रकटन होगा, दूरवर्ती का नही—तेई पाथरा कुण चौकला (उस पत्थर को कौन उठाएगा) वाक्य मे 'पत्थर' सामने नही है, न निकट सामने, न दूर सामने, बल्कि कही छुपा हुआ है। एक बार एक कुल्लू के बच्चे को अंग्रेज़ी वाक्यो 'व्हट इज़ दिस'

और 'व्हट इज़ देट' का अर्थ समझाना कठिन हो गया। उसे हिन्दी का ज्ञान नहीं था। सीधे अंग्रेजी माध्यम से पढाई शुरू थी। उसे 'पारला ए की सा' द्वारा 'पारला' अलग शब्द लगाकर ही सतुप्ट कराना पडा।

प्रत्यक्ष निश्चयवाचक सर्वनाम का मूल विभक्ति रहित रूप 'ए' है जो एकवचन मे है, बहुवचन मे इसका रूप 'ये' हो जाता है। विभक्ति-रहित अवस्था मे पुल्लिग और स्त्रीलिंग मे कोई भेद नही है—ए मौरद सा (यह मरद है), ए बटडी सा (यह स्त्री है)। परन्तु विकारी रूप मे वचन के आधार पर भी और लिंग-भेद पर भी दोनो म अन्तर है। लिंग के भेद पर ऐसे रूप द्वारा हिन्दी से भिन्नता परिलक्षित होती है। पुल्लिग मे 'ए' के विभक्ति रूप इस प्रकार होंगे—

'ए' (यह, पुल्लिग)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	ए, एईएँ	ये, इउआ, इन्हें
कर्म	एईवें, ए	इन्हा वें, ये
करण	एईएँ, एई सोंगें	इन्हें, इन्हा सोंगें
सम्प्रदान	एई-वें	इन्हा-वें
अपादान	एई-न	इन्हा न
सम्बन्ध	एईरा-रे-री	इन्हारा-रे री
अधिकरण	एई-न, एई पाधें	इन्हा-न, इन्हा पाधें

'ए' की उत्पत्ति सस्कृत 'एतद्' से हुई है। 'द्' का लोप हो गया है। 'त' पहले श्रुति मे बदल गया है (कुलुई मे 'त' की श्रुति मे बदलने की प्रवृति है जैसे सेतु से सेऊ)। यही श्रुति 'ए' के विकारी रूप मे 'एई' मे बदल गई है। बाद मे मूल रूप मे श्रुति का भी लोप हो गया है—एतद् >एतअ>एई>ए। प्राकृत मे भी 'यह' के लिए एअ शब्द प्रचलित था, जो अपभ्रंश मे एह मे बदल गया। अन्तिम अक्षर के लोप द्वारा यह शब्द कुलुई मे 'ए' रूप मे पहुचा है। बहुवचन मे 'इन्हा' के रूप 'सो' पुरुषवाचक के बहुवचन 'तिन्हा' के अनुकूल हुए है। कर्ताकारक मे बहुवचन 'ये' का दूसरा रूप 'इउआ' सस्कृत के शब्द 'इमा' का विकृत आकार है। कुलुई मे 'म' प्राय 'उँ' या 'ऊ' मे बदल जाता है, जैसे 'हिम' से 'हिऊ' तथा स्वर के निकट बाद का दूसरा स्वर मात्रा से पूर्ण अक्षर मे बदल गया है—इमा >इउआ। चूकि कुलुई मे 'ए' (यह) के बहुवचन रूप पुल्लिग और स्त्रीलिंग मे समान रहते हैं, और केवल एकवचन मे अन्तर आता है, इसलिए सस्कृत स्त्रीलिंग बहुवचन 'इमा' से 'इउआ' बनना अधिक अस्वाभाविक नहीं है। 'ए' के स्त्रीलिंग रूप इस प्रकार है —

'ए' (यह, स्त्रीलिंग)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	ए, एसें	ये, इउआ, इन्हें

कर्म	एसावें, ए	इन्हावें, ये
करण	एसें, एसा (सोगें)	इन्हें, इन्हा (सोगें)
सम्प्रदान	एसावें	इन्हावें
अपादन	एसा-न	इन्हा-न
सम्बन्ध	एसारा, रे, री	ईन्हारा, रे, री
अधिकरण	एसा-न, एसा (पाधे)	इन्हा-न, इन्हा (पाधे)

स्पष्ट है कि 'ए' के बहुवचन के लिए पुल्लिग और स्त्रीलिग रूप समान हैं, परन्तु एकवचन मे विभिन्नता है। 'एई' पुल्लिग के स्थान पर 'एस' स्त्रीलिग मे 'ए' का विकारी रूप है, तथा सस्कृत अस्यै के लिए एसावें, अस्या के लिए एसारा, अस्याम् के लिए एसा-न रूपो म इनका सस्कृत से सीधा सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

उपर्युक्त एई (पुल्लिग) और एसा (स्त्रीलिग) के अतिरिक्त कुल्लू के कुछ भागो मे 'ए' का एक अन्य विकारी रूप भी प्रचलित है—'उई', जो प्राय निर्जीव वस्तुओ के लिए प्रयुक्त होता है, और दोनो स्त्रीलिग और पुल्लिग के लिए समान रूप से प्रचलित है—'उई री ताइग सी तीर्थ तुहार' (लो० गी०), उई-न की डाहुदा (इसमे क्या रखा है)। 'उई' को सस्कृत नपुसक लिंग 'अदस्' का रूप मानना चाहिए जो इसके बहुवचन 'अमूनि' से व्युत्पत्त हुआ है। कुलुई मे 'म' का अनुस्वार मे बदलना बडी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उई शब्द मे सभी कारकचिह्न और परसर्ग आदि जुड जाते हैं—उईएँ, उई बें, उई-न, उई पाधें आदि।

परोक्ष निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए कुलुई शब्द 'सो' है। यह अन्यपुरुष पुरुषवाचक सर्वनाम भी है, और वही इस पर व्याख्या की जा चुकी है।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

अनिश्चयवाचक सर्वनाम के लिए कुलुई मे 'कोई' और किछ' का प्रयोग होता है, परन्तु इनमे केवल कोई के सब कारको मे रूपान्तरण होता है, किछ का नही। किछ का प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता हैं। यह सस्कृत शब्द 'किंचित्' है, जो प्राकृत 'किंचो' से 'किछ' बना है। किछ के साथ 'की' का बहुत प्रयोग होता है। यहा की' चीज या वस्तु के भाव मे प्रयुक्त होना है। एइएँ किछ की शोटू (इसने कुछ फंका या कोई चीज फंकी) ' मेरी मुठीन किछ की सा (मेरी मुट्ठी मे कोई चीज या कुछ है)। 'कोई' की कारक रचना केवल एकवचन मे होती है। विभिन्न कारको मे इसमे किसी प्रकार का विकार नही आता, 'कोई' के साथ विभिन्न विभक्ति प्रत्यय लगते हैं। कोई का प्रयोग कुलुई में हिन्दी 'किसी' के लिए भी होता है—कोईवें हेरी दसदा (किसी को मत बताना), कोईएँ ता बोलू होला (किसी ने तो कहा होगा), कोईरा बुरा नी केरना (किसी का बुरा नही करना चाहिए)। कोई के साथ जो और सेभ विशेपण प्राय प्रयोग मे आते हैं, जैसे—जो कोई (या सेभ कोई) आदराफेट (भाव हर कोई या सब कोई अन्दर आते हैं)। हिन्दी मे 'कोई' के साथ जब विभक्ति प्रत्यय लगते है तो यह 'किसी' मे बदल जाता है। परन्तु कुलुई मे इस तरह का परिवर्तन नही आता। शब्द मूल रूप मे रहता है और

इसमें कारक जुड़ जाते हैं :—

कर्ता	(i) कोई
	(ii) कोईएँ
कर्म	कोई-वें
करण	कोईएँ, कोई सोगें
सम्प्रदान	कोई-वें, कोई री ताइएँ,
अपादान	कोई-न
सम्बन्ध	कोईरा-रे-री
अधिकरण	कोई-न, कोई पाधें ।

'कोई' में लिंग या वचन के आधार पर कोई अन्तर नहीं आता। 'कोई' की उत्पत्ति संस्कृत कोऽपि में स्पष्ट है। इसका प्राकृत रूप 'कोवि' था। 'कोई' का प्रयोग प्रायः जीव-प्राणियों के लिए होता है, और 'किछ' निर्जीव वस्तुओं के लिए। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, मूल रूप में 'किछ' का प्रयोग प्रायः विशेषण की तरह होता है। इसमें कोई विभक्ति प्रत्यय या परसर्ग नहीं जोड़ा जा सकता। "किछ-वें, किछ-न, किछ-पाधें" ऐसे रूप कुलुई में सम्भाव्य नहीं हैं। परन्तु यदि 'किछ' के साथ 'की' जोड़ दिया जाए तो फिर 'किछकी' रूप में सभी प्रकार के प्रत्यय या परसर्ग आदि जोड़े जा सकते हैं और निर्जीव वस्तुओं के भाव में अभिव्यक्ति हो जाती है—किछकीएँ (किसी चीज ने अथवा द्वार), किछकी-न (किसी चीज में), किछकी-वें (किसी चीज के लिए), किछकी पाधें, किछकी री ताइये आदि।

5. सम्बन्धवाचक सर्वनाम

मूल रूप में सम्बन्धवाचक सर्वनाम का वास्तविक शब्द 'जो' है, यद्यपि यह 'जुण' और 'जौस' रूप में भी प्रचलित है। 'जो' का सीधा सम्बन्ध संस्कृत 'य' से है। 'श्रुति' शीर्ष के अधीन पहले ही उदाहरण सहित यह स्पष्ट किया जा चुका है कि कुलुई में 'य' अक्षर 'ज' में बदल जाता है। विशेषत आरम्भिक 'य' अवश्य ही 'ज' में बदल जाता है। और फिर व्यंजन ध्वनि के अन्तर्गत यह भी निर्दिष्ट किया जा चुका है कि कुलुई में तालव्य 'ज' वर्त्स्य 'ज' में बदल जाता है, तथा विसर्ग ( ) का 'ओ' में बदलना बड़ा स्वाभाविक है। अतः सं० य > ज > जो > जो होना स्पष्ट है। 'जो' में लिंग के आधार पर कोई भेद नहीं आता—जो शोहरू एला बशाई (जो लड़का आएगा, बिठा देना), जो शोहरी एली बशाई। इसी तरह वचन के आधार पर भी अन्तर नहीं आता—जो घोड़े शोतें थी, जो घोड़ा शोता थी आदि।

'जो' शब्द विशेषण की तरह प्रयुक्त होता है। इसके साथ विभक्ति प्रत्यय या परसर्ग नहीं जुड़ सकते। जो वें, जो पाधें, जो सेंई आदि प्रयोग सम्भव नहीं है। परन्तु 'जो' का दूसरा रूप 'जुण' है, जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत य + पुन में सम्भाव्य है—सं० य + पुन > जोपुन > जपुण > जउण > जुण > जुण। 'जुण' का सप्रत्यय तिर्यक रूप 'जुणी' हो जाता है। केवल कर्ताकारक में अस्तित्व सूचक रूप में 'जुण'

'जुणा' भी बन जाता है—जुण हीज एज़ीरा थी (जो कल आया था) परन्तु जुणा हीज़ एज़ीरें थी (जो कल आए थे)। इस बहुवचन जुणा का रूपान्तरण नहीं होता। न 'जुण' में कोई लिंग भेद आता है, बल्कि दोनों वचनों और दोनों लिंगों में एक ही रूप प्रचलित है, जो इस प्रकार है :—

कर्ता	जुण, जुणीएँ, जो
कर्म	जुणीवें, जुण
करण	जुणीएँ (सोगें)
सम्प्रदान	जुणीवें
अपादान	जुणी-न
सम्बन्ध	जुणीरा-रे-री
अधिकरण	जुणी-न (पाधें)

'जो' का एक तीसरा रूप ज़ोस भी प्रचलित है जो 'जौसा' में विकृत हो जाता है—जौसारा बियाह तेइवें औधला बौडा (लो०)(जिसका विवाह हो उसे आधा भल्ला), ज़ोस कौसी वें मौत शादादा (जिस किसी को मत बुलाओ)। 'ज़ौस' शब्द कर्ताकारक रूप में प्रयुक्त नहीं होता, न सप्रत्यय रूप में न अप्रत्यय रूप में। अतः स्पष्ट है कि ज़ोस का सम्बन्ध संस्कृत यस्य रूप से है—स० यस्य > जस्य > जस > ज़ोस। उपर्युक्त जो, जुण और ज़ोस तीनों शब्दों के प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करना ज़रूरी होगा—

(1) जैसा कि ऊपर लिखा गया है 'जो' शब्द केवल कर्ताकारक अप्रत्यय रूप में प्रयुक्त होता है, अन्यथा नहीं। ठीक इसके विपरीत 'ज़ोस' का कर्ताकारक में प्रयोग नहीं होता, अन्य में होता है और 'जुण' का प्रयोग सभी रूपों में होता है।

(2) कर्ताकारक में जहाँ 'जो' और 'जुण' का प्रयोग होता है, दोनों एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं—'जो बोलला' या 'जुण बोलला', 'जो माण्हु' या 'जुण माण्हु' आदि।

(3) अन्य कारकों में 'जुण' और 'ज़ोस' एक-दूसरे का स्थान ले सकते हैं—जुणी-वें या ज़ौसा-वें, 'जुणी सोगें' या ज़ौसा सोगें, जुणी (या ज़ौसा) पाधें आदि।

(4) जो के साथ प्रायः सो का संयोग होता है—जो बोलला सोएँ दरआज़ा खोलला (लो०), जो खाणा सो देणा मू, जो हारला सो रोला बी आदि।

(5) अप्रत्यय कर्ताकारक में जो'''सो के स्थान पर कभी-कभी जुण'''सो भी प्रयुक्त होता है। 'जुण हीज एज़ीरा थी सो नौठा'। परन्तु यदि ऐसी तुलना के वाक्यों में जुण का बहुवचन जुणा का प्रयोग हो तो 'सो' नहीं आता बल्कि अन्य पुरुष का सम्बन्धित रूप प्रयुक्त होता है—जुणा हीज़ एज़ीरें थी, ते न्हौठे। जुणीएँ गुआऊ तेईएँ बणाऊ, जुणी खेटडीएँ रोटी बणाई तेने खाई आदि।

(6) संयुक्त रूप में 'जो' के साथ अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'किछ' का प्रयोग होता है—जो किछ मौत बौकदा (जो कुछ न बक)। जीव-प्राणी की स्थिति में 'किछ' की जगह 'काई' का प्रयोग होता है—जो-कोई आदरे मीथर, जो-कोई मौत शाददा आदि।

(7) जुण के साथ ऐसा संयुक्त प्रयोग नहीं होता। परन्तु ज़ोस के साथ कौस

का प्रयोग होता है—जौस कौसी संगें मौन हुडदा, जौस कौसी लेइया आऊ आदि।

6 प्रश्नवाचक सर्वनाम

कुलुई मे प्रश्नवाचक सर्वनाम दो है—'कुण' और 'की'। कुण का प्रयोग प्राय सजीव प्राणियों के लिए होता है और की निर्जीव वस्तुओं के लिए, जैसे—तुसारी घीरे कुण आहुदा (आपके घर कौन आया है)। परन्तु, कोठडी-न की सा (कोठडी मे क्या है)। इस दृष्टि से 'कुण' अनिश्चयवाचक 'कोई' और 'की' अनिश्चयवाचक 'किछ' के समानानुकूल हैं।

'कुण' की व्युत्पत्ति भी 'य + पुन = जुण' की भांति 'क + पुन = कुण' के रूप हुई है। जुण मे ध्वनि परिवर्तन के कारण अधिक भेद लक्षित होता है, परन्तु क पुन से कुण मे इतना अन्तर दिखाई नही देता। अपभ्रंश मे इस का रूप कवण या—स० क + पुन > क + उण > कवण > कुण। विभक्ति प्रत्यय लगने पर कुण शब्द कुणी म विकृत हो जाता है जिस प्रकार जुण शब्द जुणी मे हुआ है। यह सस्कृत की षष्ठी विभक्ति कस्मिन् के प्रभावाधीन है। लिंग के आधार पर कुण या इसके विकृत रूप कुणी मे कोई अन्तर नही आता, जैसे—कुण आऊ (कौन आया), कुण आई (कौन आई)), कुणी छोहरु बें धीना, कुणी छोहरी दें धीना आदि। परन्तु वचन के आधार पर अप्रत्यय कर्ताकारक अस्तित्व सूचक मे 'कुण' एकवचन' कुणा' बहुवचन मे बदल जाता है—बाहरें कुण सा (बाहर कौन है), बाहरें कुणा सी (बाहर कौन हैं)। इसके विपरीत अन्य कारकों मे प्रत्यय लगने पर वचन के आधार पर कोई भेद नही आता। कुण का विकृत रूप कुणी दोनो वचनों मे समान रूप से प्रचलित है। कुणी मे सभी प्रत्यय या परसर्ग जुड जाते हैं—कुणीएँ, कुणीबें, कुणी-न, कुणी पाधें आदि।

जुण के जौस रूप की तरह ही 'कुण' का एक दूसरा रूप 'कौस' भी है, जो सस्कृत 'कस्य' से विकसित हुआ है। कौस शब्द कर्ताकारक अप्रत्यय रूप मे प्रयुक्त नहीं होता। इसका प्रयोग केवल अन्य कारकों मे होता है जब यह कारक प्रत्यय लगने म पहले कौसा मे बदल जाता है—वोट कौसा-बें देणा (वोट किसको दोगे), तौ कौसा-न जीतणा (तू ने किस मे जीतना है), ए बौल्द कौसा रा सा (यह बैल किस का है) आदि। ऐसे प्रयोग मे 'कुणी' और 'कौसा' एक दूसरे का स्थान ले सकते है—कौसा-बें देणा या कुणी-बें देणा, कौसा-न या कुणी-न जीतणा, कौसा-रा या कुणी-रा सा आदि।

निर्जीवमूलक प्रश्नवाचक सर्वनाम 'की' सस्कृत शब्द 'किम्' का सक्षिप्त रूप है। अपभ्रंश मे इसके लिए 'कीआ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अन्तिम स्वर लोप के कारण कुलुई 'की' की व्युत्पत्ति स्वीकार्य है। मूल रूप मे 'की' का रूप कर्ताकारक अस्तित्व सूचक मे इसी प्रकार रहता है और लिंग अथवा वचन के आधार पर कोई अन्तर नही आता—ए की सा (यह क्या है), ये की सी (ये क्या हैं?) 'की' पूर्णत: केवल निर्जीव वस्तुओं के लिए ही प्रयुक्त नही होता। तिरस्कार, अपमान या अभिमान प्रदर्शन करने के लिए सजीव प्राणियों के लिए भी 'की' का प्रयोग होता है—जैसे, तू की सा, 'तू आपु-बें की बूझा मा, तौ की केरना आदि। हिन्दी मे 'क्या' की कारक रचना

होती। परन्तु कुलुई मे 'की' का प्रयोग अन्य कारको मे भी होता है। तव यह 'कीजो' मे बदल जाता है, और इसी रूप मे सभी कारक प्रत्यय या परसर्ग इसमे जुड जाते है—कीजोएँ काटणा (किस चीज या काहे से काटें), कीजो-वें डाहणा (काहे को रखें), कीजो-न डाहणा (काहे मे रखें) आदि। इस प्रकार प्रश्नवाचक दोनों सर्वनामो 'कुण' और 'की' की कारक-रचना निम्न प्रकार होगी जो लिंग या वचन के आधार पर किसी प्रकार परिवर्तित नही होगी —

कारक	कुण (कौन)	की (क्या)
कर्त्ता	कुण, कुणीएँ	की, कीजीएँ
कर्म	कुण, कुणी-वें	की, कीजोवें
करण	कुणीएँ, कुणी सोगें	कीजोएँ, कीजो सोगे
सम्प्रदान	कुणी-वें, कुणी री ताइय	कीजो-वें, कीजो री ताइये
अपादान	कुणी न	कीजी न
सम्बन्ध	कुणी रा-रे-री	कीजोरा-रे-री
अधिकरण	*कुणी-न (पाधें)*	*कीजो-न (पाधें)*

उपर्युक्त छ प्रकार के सर्वनामो के अतिरिक्त कुलुई मे कुछ अन्य सर्वनाम भी प्रचलित हैं। समूहवाचक सर्वनाम के रूप मे स्थानीय सर्वनाम 'सेभ' सस्कृत कर्त्ताकारक बहुवचन रूप 'सर्वे' से निष्पन्न हुआ है। यह बहुवचन रूप मे ही प्रयुक्त होता है। कारक-प्रत्यय लगने पर यह 'सेभी' मे बदल जाता है—सेभीएँ, सेभीवें, सेभी-न सेभी-सोगें आदि। इसी तरह 'होर' शब्द भी सर्वनाम के रूप मे प्रयुक्त होता है। इसकी व्युत्पत्ति सस्कृत 'इतर' से माननी चाहिए। जब कारक प्रत्यय लगते है तो यह *'होरी' मे बदल जाता है—होरीएँ (अन्य ने), होरीवे (अन्य को), होरी सोगे (अन्य* के साथ) आदि। अप्रत्यय कर्त्ताकारक मे यह एकवचन मे 'होर' तथा बहुवचन मे 'होरा' हो जाता है।

कभी-कभी कुलुई मे दो दो सर्वनाम सयुक्त रूप मे प्रयुक्त होते है, जैसे—

होर-कुण . होर कुण सा (और कौन है)
सेभ-कोई सेभ कोई मूगदें (सब कोई माँगते हैं)
सेभ-किछ : सेभ-किछ मन्हेरू (सब कुछ समाप्त किया)
जो-किछ जो किछ ढणू (जो-कुछ कहा)
जो-कोई : जो-कोई शादें (जो-कोई बुला लिए)
जौस-कौम जौस-कौसी मौत शाददा (जिस किसी को मत बुलाओ)

इसी क्रम मे पुरुषवाचक सर्वनामो का प्राय सयोग होता है—आसें-तुसें, आसें-सेभ, तुसें सेभ, ते-सेभ, आसें-आपु, तुसे-आपु, हाऊ-तू, आदि।

यहाँ कुछ विशेष सार्वनामिक विशेषणो का उल्लेख करना असगत न होगा, क्योकि इनका सर्वनामीय प्रयोग बडा व्यापक है। **एतरा, केतरा, जेतरा, तेतरा** तथा **एण्डा, केण्डा, जेण्डा, तेण्डा** दो श्रेणी के सार्वनामिक विशेषण इस सम्बन्ध मे विशेष उल्लेखनीय हैं। मूल रूप मे इनका आधार तो मूल सर्वनाम शब्द हैं, परन्तु प्रयोग प्राय

विशेषण रूप मे ही होना है। इनमे 'रा-वाले' शब्द परिमाणवाचक तथा 'डा-वाले' शब्द प्रकार वाचक हैं।

एतरा, केतरा, जेतरा, तेतरा सर्वनाम "रा' प्रत्यय के सयोग स सम्पन्न हुए हैं। इनकी व्युत्पत्ति सस्कृत इयान् से सम्भव है। अपभ्रश मे इसका रूप एतुलो था। कुमुई मे 'ल' को 'र' मे वदलने की प्रवृत्ति है।

एडा, कॅडा, जॅडा, तॅडा शब्दो पर अपभ्रश प्रत्यय बड्ड का प्रभाव है। मूल रूप मे ये एडा<स० एतादृश, कॅडा<स० कीदृश, जॅडा<स० यादृश, तॅडा<स० तादृश से सम्बन्धित हैं। 'दृश' से 'श' का लोप होने से 'दृ' सयोग से 'ड' मे बदल गया है।

सर्वनाम के रूप मे इनका प्रयोग मुख्यत यौगिक स्थिति मे होना है। नियमानुसार विशेषण के रूप मे इनका प्रयोग सज्ञा से पहले होता है—एण्डा माण्हु (ऐसा आदमी) केनरें शोहरू (कितने लडके)। परन्तु सार्वनामिक प्रयोग मे इन प्रत्येक के साथ दूसरा सर्वनाम प्रयुक्त होता है—जैस, 'एडें एईबें नी मू कोट देणा (इस जैसे को मैं कोट नही दूंगा)। इस वाक्य मे एडा सर्वनाम एईबें से पहले आया है, और हम देख चुके हैं कि एईबें निश्चयवाचक सर्वनाम 'ए' का कर्मकारक रूप है। इसी तरह 'तॅडें तेईरें नी मू रौहणा' (उस जैसे के मैं नही रहूँगी) वाक्य मे 'तॅडें' सर्वनाम तेईरें के पहले आया है और तेईरें निश्चयवाचक सर्वनाम 'सो' का सम्बन्धकारक रूप है। इन सर्वनामीय विशेषणो के सार्वनामिक सयोग के अन्य रूप इस तरह है—

एतरें इउआ कौन्न आए (इतने ये कहाँ से आए)
केतरें-शोहू/थोडें
जेतरें थी तेतरें आण,
जेत-केतरें, जॅडें-कॅडें,
एडें ए/इउआ/ति/तिउआ

इस तरह के अन्य प्रयोग भी प्रचलित हैं। देवताओ के प्रति आभार प्रकट करते हुए उसके उपासक प्राय कहते हैं—"तुसें सी तेएँ तॅडे" (आप हैं उस जैसे ही अर्थात् वैसी ही विशेषताओ वाले)। इस प्रकार सार्वनामिक विशेषणों के सर्वनाम के साथ सयुक्त प्रयोग से उनके मूल सर्वनाम रूप परिलक्षित होते हैं।

अध्याय—13

विशेषरा

प्रय ग की दृष्टि से कुलुई विशेषण शब्द हिन्दी के समान हैं। इनका प्रयोग विशेष्य और विधेय दोनो प्रकार का मिलता है। अपन विशेष्य शब्दों से पूर्व आकर ये अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हैं—काली गाई, लाल कुक्ड, हौरे छेत, लॅगडा बौल्द आदि प्रयोग मे काली, लाल, हौरे, लॅगडा विशेषण अपने विशेष्य शब्दों गाई, कुक्ड, छेत, बौल्द से पूर्व आकर उनके गुण प्रदर्शित करते हैं। परन्तु कई बार सज्ञा शब्दो के बाद आ कर विशेषण शब्द अपने विशेष्य और क्रिया पद के बीच सम्बन्ध जोडते हैं—ए गाई कालो सा, सो कुक्ड लाल थी, छेत हौरे लागा थी, ए बौल्द लॅगडा सा। इन वाक्यो मे विशेषण शब्दों का प्रयोग विधेय के रूप मे है।

रूप की दृष्टि से कुछ विशेषण शब्द अपने विशेष्य के अनुसार लिंग भेद प्रदर्शित करते हैं—जैसे, कालो घोडी, काला घोडा, काले घोडे मे विशेषण शब्द काला सज्ञा शब्द 'घोडा' के लिंग तथा वचन के अनुसार बदल गया है। यहाँ विशेषण का रूपान्तरण सज्ञा के अनुसार होता है। यहाँ कुलुई विशेषणो का प्रयोग हिन्दी के निकट है पजाबी के निकट नही है। पजाबी मे बहुवचन स्त्रीलिंग के साथ भी विशेषण का रूप बदलता है, जैसे कालीया घोडीया, चगीया कुडीया। ऐसा प्रयोग कुलुई मे सम्भाव्य नही है। यहाँ विशेषण शब्द का लिंग रूप हिन्दी की तरह एकवचन मे ही रहता है—कालो भेड, तथा कालो भेडा, लाल कुकडी (एकवचन और बहुवचन मे समान रूप)। इसी तरह पजाबी मे पुल्लिग के सप्रत्यय बहुवचन मे विशेषण के रूप सज्ञा के अनुसार बदल जाते हैं—जैसे, कालेया घोडेया नू, चगेया मुण्डेया दा कम आदि। ऐसा प्रयोग भी कुलुई मे प्रचलित नही है। वास्तव मे, पहले लिखा जा चुका है कि कुलुई के अधिकत सज्ञा शब्दो के एकवचन और बहुवचन रूप समान रहते हैं ('लिंग' और 'वचन' के अधीन देखें।) चूकि सज्ञा मूल शब्द वचन के आधार पर सप्रत्यय और अप्रत्यय रूप मे मुख्यत समान रहते हैं, इसलिए विशेषण शब्दों का समान रूप मे रहना भी स्वाभाविक है। परन्तु जहा बहुवचन मे सज्ञा के रूप बदल भी जाते है, वहाँ भी विशेषण शब्द मे उसके अनुरूप परिवर्तन नही आता। जैसे—काले इन्हा घोडे कॅ देआ, काके इन्हा शोहरू कॅ बशाआ आदि। कुलुई विशेषण पदो की अन्य विशेषताएँ निम्नलिखित विस्तृत विवरण म देखी जा सकती है।

कुलुई मे भी चार प्रकार के विशेषण होते हैं —

1 गुणवाचक
2 सख्यावाचक
3 परिमाणवाचक
4 सार्वनामिक विशेषण

1 गुणवाचक विशेषण

ये विशेषण सज्ञा या सर्वनामो की विशेषता या गुण दिखाते हैं। ये छ प्रकार के होते हैं —

(1) कालवाचक विशेषण काल या समय दर्शित करते हैं, जैसे—पिछला दिहाडा, आगली रात, पुराणा जमाना, नुआ चाला मे पिछला, पुराणा, नुआ शब्द काल या समय को सूचित करते हैं, तथा कालवाचक कहलाते हैं। कुलुई मे बहुत से कालवाचक विशेषण 'का' प्रत्यय लगाने से बनते हैं। सज्ञा शब्दो मे 'का' जोडने से कालवाचक विशेषण बनते हैं, जिनका कालवाचक क्रिया विशेषण के रूप मे भी प्रयोग होता है—जैसे, दिहाड (दिन)—दिहाडका (दैनिक), बौरश (वर्ष)—बौरशाका (वार्षिक)। इसी तरह हीजका, दोनका, सोझका आदि। 'का' प्रत्यय की उत्पत्ति सस्कृत 'काल' से हुई है। "श्रुति" के अन्तर्गत लिखा जा चुका है कि कुलुई मे ल श्रुति म बदल जाता है। श्रुति के लघु हो जाने से उसका लोप हो जाता है। यथा, सस्कृत काल>काल>कअ>का।

(2) स्थानवाचक विशेषण स्थान का बोध कराते हैं—बाहरला ओवरा, हादरला दरआजा, सौहरला समान आदि म बाहरला, हादरला, सौहरला शब्द स्थानवाचक विशेषण हैं क्योकि ये स्थान विशेष के द्योतक है। स्थानवाचक विशेषण का प्रत्यय 'ला' है, जो सस्कृत 'लग्' का विकसित रूप है। बहुत से स्थान-वाचक विशेषण 'ला' जोडने से ही बनते है—जैसे, बाहर से बाहरला, अन्दर से अन्दरला या हादरला, ऊभें मे ऊभला (ऊपर का), बुन्ह से बुन्हला (नीचे का), हेठला (नीचे का) आदि।

(3) आकार वाचक विशेषण जिनसे आकार का ज्ञान होता है, जैसे—घरोटली टोपी, लोमचा मुह, चूचरा नाक। इनमे घरोटली, लोमचा, चूचरा शब्द क्रमश टोपी, मुह और नाक के आकार को बताते हैं अत ये आकारवाचक हैं। सोगडा, बेरला, उथडा, निशटा, चकूणा, तकूणा आदि इसी श्रेणी के विशेषण हैं।

(4) वर्णवाचक विशेषण वे हैं जो रग के द्योतक हो, जैसे—लाल कोट, दोती भेड, चिठी ऊन, हौरी बूटी, काला चोला आदि यौगिक शब्दो मे पूर्वोक्त शब्द उत्तरोक्त शब्दो के वर्णों का उल्लेख करते हैं अत वर्णवाचक विशेषण हैं।

(5) दशावाचक विशेषण जो दशा या स्थिति बताए, जैसे—गरीब शोहरू, सेठ माण्हु, सीना टौल्हा, शुका माटो आदि मे गरीब, सेठ, सीना, शुका स्थिति विशेष का बोध कराते हैं।

(6) गुणवाचक विशेषण ऐसे विशेषण हैं जो सज्ञा या सर्वनाम के गुण व्यक्त करें, जैसे—खरा माण्हु, सौची काया, बुरी बेटडी आदि।

2. संख्यावाचक विशेषण

सख्यावाचक विशेषण वे विशेषण हैं जो सज्ञा या सर्वनामो की साख्यिक स्थिति या मात्रा का बोध कराते हैं। इन विशेषणो को मुख्यत· दो श्रेणियो मे बाटा जा सकता है ·—

(1) निश्चित संख्यावाचक तथा

(2)अनिश्चित सख्यावाचक

(1) निश्चित सख्यावाचक विशेषण निश्चित सख्या के द्योतक होते हैं। कुलुई मे निश्चित सख्यावाचक विशेषण हिन्दी के समान ही है। मूल रूप मे कुलुई मे केवल बीस तक की सख्या प्रचलित है। सभी सख्यावाचक शब्द सस्कृत से प्राकृत और अप-भ्रश द्वारा कुलुई मे पहुँचे है। इस लम्बी अवधि के प्रयोग मे इनमे ध्वन्यात्मक परिवर्तन आया है। परिवर्तन मूलत वही हैं जिनका स्वर तथा व्यजन ध्वनियो मे विस्तार से उल्लेख किया गया है। अत ध्वनियो के परिवर्तन के कारण या प्रवृति की पुनरावृति मे न जाते हुए, केवल उनके रूप नीचे दिये जाते हैं —

सस्कृत	प्राकृत	कुलुई
एक	एक्क	एक
द्वि	दुवे, दुए	दूई
त्रि	तिण्णि	त्राई
चत्वारि	चत्तारि	चार
पञ्च	पच	पोज
षट्	छह्	छौह
सप्त	सत्त	सौत
अष्ट	अट्ठ	औठ
नव	णओ	नौ या नौऊ
दश	दह	दस या दौस

शेष निश्चित सख्यावाचक अक हिन्दी के समान हैं, सिवाये इसके कि अको का अन्तिम 'ह्' कोमल होकर 'आ' मे बदल गया है तथा अठारह, उन्नीस तथा बीस में प्रथम दो अक्षरो के पूर्व स्वरो का लोप हो गया है तथा कुलुई ध्वनि प्रवृति के अनुसार अन्तिम 'स' अघोष 'ह्' मे बदल गया है, तथा इनका रूप क्रमश इस प्रकार हैं—ठारा, नीह, बीह। बीस के बाद गिनती 'बीह' शब्द 'बीहा' मे बदल जाता है—बीहा एक, बीहा-दूई, बीहा-त्राई आदि। यहाँ 'आ' स्वर का जोड सयोजक समुच्चयबोधक का द्योतक है, क्योकि यह "और" का अर्थ देता है, जैसे—बीहा एक (बीस और एक), बीहा-दूई (बीस और दो) आदि। अगले दशक शब्द इस प्रकार है—

सस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	कुलुई
त्रिशत्	तीसा	तीस	तीह
चत्वारिंशत्	चत्तालीसा	चालीस	चाली

पचाशत्	पण्णासा	पच्चास	पजाह
षष्टि	सट्ठि	साठ	शौठ/शठ
सप्तति	सत्तरि	सत्तर	सौतर/सतर
अशीति	आसीइ	अस्सी	औशी/असी
नवति	नउए	नव्वे	नौबे/नबे
शत	सअ	सौ	शौउ

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि अन्तिम सस्कृत 'श' प्राकृत मे 'स' मे बदला, जो हिन्दी मे सुरक्षित है परन्तु कुलुई मे 'ह' अघोष मे परिवर्तित हो गया है। कुलुई मे तीह, पजाह, सतर और नबे पर गिनती नही बदलती। आम बोल चाल मे ये शब्द आ गए हैं, अन्यथा बीहा-दस, बीहा-ग्यारा ही चलता है। सयोजक समुच्चयबोधक का द्योतक 'आ' हर बीस के बाद की गिनती म जुड जाता है, यथा—चालीआ-एक, शौठीआ-एक, औशीआ-एक आदि।

अपूर्णांक गणनावाचक मे केवल आधे तक का हिसाब लक्षित होता है—औधा <प्रा० अद्धअ<स० अर्द्धक, देउड<प्रा० डिअड्ढ<स० द्विअर्द्धक, ढाई<प्रा० अड्ढइअ<स० अर्द्धतृतीय। 'ढाई' के बाद हर आध के लिए 'साढे' शब्द प्रयुक्त होता है—साढे त्राई, साढे चार, साढे पोज आदि। गणनावाचक सख्याए वचन या लिंग के आधार पर किसी तरह नही बदलती, वरन् समान रहती है—एक रोटी, चार रोटी, देउड सेर, बारा सेर आदि।

(ख) क्रमवाचक निश्चित सख्याए तीन प्रकार मे बनती है—(i) 'एक' के क्रमवाचक रूप कुलुई मे दो तरह के प्रचलित है, एक हिन्दी का अनुरूप है पइला<हिन्दी पहला, और दूसरा सस्कृत का, पथमका<सस्कृत प्रथम, (ii) दो गिनती से चार गिनती तक क्रमवाचक सख्याएँ 'जा' प्रत्यय लगाने से बनती हैं, परन्तु साथ ही मूल गणनावाचक रूपो मे कुछ अन्तर भी आता है, यथा

गणनावाचक रूप	क्रमवाचक रूप
दूई	दूजा
त्राई	त्रीजा
चार	चौथा

(iii) इससे आगे की सख्याओं का क्रमवाचक रूप हिन्दी के समान 'वा' प्रत्यय लगाने से बनता है, जैसे पोज से पोजुवा, सौत से सौतुवा, दस से दसुवा, सोला से सोलुवा आदि। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जहा हिन्दी मे 'वा' प्रत्यय मूल सख्या शब्द मे जुड जाता है, वहा कुलुई मे 'वा' के जुडने से मूल शब्द उकारान्त बन जाता है—औठ>औठु>औठुवा, बीह>बीहु>बीहुवा आदि। 'वा' का उच्चारण 'उआ' ही समझना चाहिए। क्रमवाचक निश्चित सख्याए लिंग के आधार पर रूप बदलती हैं—दूजा शोहरू परन्तु दूजी शोहरी, चौथा दिहाडा परन्तु चौथी रात आदि।

(ग) आवृत्तिवाचक सख्याए गणनावाचक सख्याओं मे 'गुणा'<स० गुण प्रत्यय जोडनेसे निर्मित होती हैं। परन्तु एक से चार तक सख्याओं के मूल रूप मे 'गुणा'

से पहले कुछ परिवर्तन आता है—एक से एकणा, दूई से दुगणा, त्राई से त्रिगणा, चार से चौगणा। स्पष्ट है कि मूल शब्द मे परिवर्तन होने पर 'गुणा' भी केवल 'गणा' रह जाता है—दूई—दूईगुणा—दुगुणा—दुगणा आदि। पांच और पाच मे अगली सख्याओं मे कोई परिवर्तन नही आता। मूल गणनावाचक रूप मे 'गुणा' जुड जाता है—पोज़ से पोज-गुणा, सौत से सौत-गुणा आदि।

चार तक सख्याओ के आवृतिवाचक रूप अन्य प्रकार के भी प्रचलित हैं। इसका प्रत्यय 'हरा' है, जिसकी उत्पत्ति सस्कृत 'कार' से हुई है—कार>आर>हार>हरा। 'हरा' के सयोग से पहले गणनावाचक मूल सख्या के रूप मे अन्तर आता है, जैसे—एक मे कोहरा, दूई से दोहरा, त्राई से त्रेहरा तथा चार मे चौहरा। इससे आगे की सख्याओ म यह रूप नही चलता। यहा भी यह रूप लिंग के अनुसार बदलता है—कोहरा धागा, कोहरी बुणती, दोहरा पौट्ठ, दोहरी फूड आदि।

(घ) समुदायवाचक निश्चित सख्याए प्राय गणनावाचक सख्या रूप मे 'एँ' के सयोग से बनती हैं, जैसे गणनावाचक सख्या 'ग्यारा' मे समुदायवाचक रूप 'एँ' जोडने से 'ग्याराएँ' (सभी ग्यारह), तथा 'औठ' से 'औठें' (आठो) निर्मित होते हैं। 'एक' के दो प्रकार के समुदायवाचक रूप प्रचलित हैं—एकें तथा केल्हा (अकेला)। समुदायवाचक रूप 'जिण सस्कृत 'जन्' प्रत्यय लगाने से भी बनते हैं—दूई जिण, सौत जिण, दस जिण आदि। कई बार समुदायवाचक मे सख्या की पुनरावृति भी हो जाती है। एक सख्या को दो बार प्रयुक्त किया जाता है। पहला रूप गणनावाचक मूल सख्या मे रहता है जिसमें सम्बन्धकारक का बहुवचन प्रत्यय 'रे' या 'री' जुडता है तथा दूसरा रूप समुदायवाचक होता है, जैसे 'पाचो' के लिए 'पोज़रे पोज़ें', 'सात' के लिए 'सौत रे सौतें', "चार री चारें छोहरी खडी उठी" (चारो लडकिया खडी हो गई), 'दौस री दौसें भेडा मुई' (दसो भेडें मर गई) आदि।

(2) अनिश्चित सख्यावाचक—कुलुई मे अनिश्चय का भाव मुख्यत मूल गणनावाचक सख्या के आगे 'एक' जोडने से व्यक्त किया जाता है, जैसे दूई से दूई-एक, त्राई से त्राई-एक, चार से चारेक। यहा 'एक' हिन्दी में प्रयुक्त 'लगभग' शब्द का समानार्थक है—*दस-एक माणु थी तौखें* (वहा लगभग दस आदमी थे), चार-एक कतावा आणी (लग-भग चार पुस्तकें ले आता) आदि। दो सख्याओ को साथ-साथ बोलने से भी अनिश्चितत प्रकट की जाती है, जैसे—दस-ग्यारा बूटे काटे, छौह-सौत छेत नीडे, पोज़ छौह कतावा पौढी। यह सब रूप अनिश्चित भाव को प्रकट करते हैं।

उपर्युक्त के अतिरिक्त कुलुई मे कुछ अनिश्चित शब्दो का प्रयोग भी इस प्रयोजन के लिए किया जाता है। सेभ, किछ, कोई, बोहू सारे, केतरे, थोडे आदि शब्द इस तरह के हैं—सेभ लोका, किछ सेऊ, बोहू भेडा, सारे छेत, केतरे छोहरू आदि प्रयोग आम प्रचलित हैं। इनमे कोई का प्रयोग सर्वाधिक होता है—कोई बीह दिहाडे हुए होले (*लगभग बीस दिन बीत गए होंगे*)। इसके साथ पूर्वोक्त 'एक' का प्रयोग भी हो जाता है—कोई दस एक दाच आणे होले (लगभग दस दराट लाए होंगे)। जब किछ कोई, बोहू आदि शब्द अकेले प्रयुक्त हो तो ये अनिश्चियवाचक आदि विशेषण होते है—कोई

नी थी औथी (कोई न था), बोहू पी तौले (वहा बहुत थे); परन्तु जब ये किसी सख्या से पहले आते है तो अनिश्चित सख्यावाचक विशेषण होते हैं—कोई दस भडा, बोहू माण्हु, किछ लोका आदि।

3 परिमाणवाचक विशेषण

कुलुई मे माप, तोल और मात्रा प्रदर्शित करने वाले कतिपय परिमाणवाचक विशेषण शब्द प्रचलित हैं, जो हिन्दी मे सामान्यत प्रचलित नही है। माप मे सबस छोटी लम्बाई-चौडाई के लिए सूत शब्द प्रयुक्त होता हैं—"एक सूत रे तलने चोरे।" 'सूत' सस्कृत शब्द 'सूत्र' का विकसित रूप है। सूत से ऊपर आगल माप की मात्रा है। यह सस्कृत शब्द 'अगुल' है। चार अगुलियो तक इसी से मापा जाता है। इससे चौडी या लम्बी वस्तु पूरी हथेली से मापी जाती है, जिसे पेंदल कहते हैं—"एक पेंदल (या पेंइदल) चौर सा पोट्टरा" (पट्टू की चौडाई एक पेंदल है)। पेंदल की व्युत्पत्ति सस्कृत 'करतल' से हुई है—स० करतल > पअतल > पेंतल > पेंदल > पेंइदल। इससे अगला माप गरेंठ है। इसकी लम्बाई अगूठे के सिरे से तर्जनी के सिरे तक का भाग है—"गरेंठ एक शोहरू ता चांडा बुण" (गरेंठ भर लडका अभिमान कितना)। गरेंठ शब्द की उत्पत्ति सस्कृत 'ग्रस्त' से माननी चाहिए। कुलुई म 'स्त' प्राय 'थ' या 'ठ' में बदल जाता है, जैसा कि 'ध्वनि' अध्याय से स्पष्ट है—ग्रस्त > ग्रथ > ग्रठ > ग्र ठ > गरेंठ। गरेंठ मे ऊपर माप का पैमाना बेंथ है। इसका अन्तर अगूठे के सिरे से लेकर कनिष्ठिका के सिरे तक की लम्बाई है। बेंथ शब्द सस्कृत 'वितस्ति' का कुलुई रूप है। 'श्रुति' के अधीन बताया जा चुका है कि कुलुई मे पूर्व 'व' अक्षर 'ब' मे बदल जाता है (जैसे वर>बौर), 'स्त' प्राय 'थ' मे बदल जाता है (हस्त>होथ)। सस्कृत वितस्ति का अर्थ ही कुलुई बेंथ या उर्दू अथवा फारसी बालिश्त है। इस तरह स० वितस्ति> वितत्ति > बिअथ > बेरथ > बेंथ। मापके लिए बेंथ का प्रयोग सर्वाधिक होता है। "बेंथ एक छोकरू मुण्डा पाघे टोकरू" (बु०)। सब से लम्बा माप होथ > स० हस्त है जिसका अन्तर कफोणि से लेकर मध्यमा के सिरे तक का फासला है। इससे भी अधिक लम्बाई मापनी हो तो कदम द्वारा मापा जाता है। एक कदम को लाच कहते हैं जो सस्कृत शब्द 'लञ्ज' का विकसित रूप है।

मात्रा और तोल से सम्बन्धित भी कई स्थानीय शब्द प्रचलित हैं। 'एक मुठी नाज़' से अभिप्राय 'मूठी भर अन्न' से है। 'मुठी' सस्कृत 'मुष्टि' है। यदि अन्न बद मुठी मे न होकर खुली मुठी मे हो तो 'एक पौरस नाज़' कहा जाता है। इसका सम्बन्ध सस्कृत शब्द 'प्रसृ' से है—प्रसृ > परस > पौरस। पौरस से अधिक मात्रा नोला है। दोनों खुले हाथों को साथ साथ रखकर कदरे गोल करने से जो अन्न या पानी आदि भर जाए उसे 'एक नोला नाज़' या 'एक नोला पाणी' कहा जाता है। नोला शब्द सस्कृत 'अञ्जलि' से व्युत्पन्न है। यद्यपि यास्क द्वारा प्रतिपादित नियमानुसार 'अञ्जलि' से आदि स्वर 'अ' का लोप हो गया है, तथा आदि वर्ण के लुप्त होने से उसकी पूर्ति के लिए शब्द के मध्य मे विकार आ जाता है, तथा अन्तिम स्वर 'इ' से 'आ' मे बदल गया है—

अञ्जलि>नजलि>नोलि>नोला।

अन्नादि तोलने के लिए नोले से अगली मात्रा पौथा है। यह लकड़ी (आजकल धातु का भी) के बने गोलाकार बरतन 'बसाजू' में जितना अधिकतम अनाज सिरे से भी ऊपर स्तूपाकार मे भर जाए, वह मात्रा होती है। 'पौथा' शब्द सस्कृत 'पस्त्य' से व्युत्पन्न है—स० पस्त्य>पथ>पथा>पौथा। पस्त्य का अर्थ विक्रयणी अर्थात स्टॉल होता है। लगता है कि प्राचीनकाल मे सामान बेचने के लिए बाजार की दुकान 'पस्त्य' पर जो बरतन माप-तोल के लिए प्रयुक्त होता था वही आम प्रयोग मे 'पौथा' कहलाया। इसकी मात्रा का वज़न लगभग सोलह छटाँक होता है। साहित्यिक भाषा मे भी इसका प्रयोग होता है—'खाणा पौथा लाणा चौथा" (लो०)।

सोलह पौथे का एक भार होता है। 'भार' शब्द सस्कृत 'भारम्' है। सोलह पौथे का वज़न एक आदमी का पूरा बोझ होता है। बीस पौथे की मात्रा लाख (स० लक्ष) कहलाती है—'भार नी चौकणा लाख चौक्णा" (लो०)। तीस भार का एक खार होता है। यह सस्कृत शब्द 'खार' है। सस्कृत साहित्य मे इसका वज़न 16 या 18 द्रोण के बराबर अनाज का माप है। इसका प्रयोग साहित्यिक भाषा मे भी होता है—'खार खाई काउणी, लौड खाऊ मिढा, कोथी उठिया ढलकी लिढा" (लो०)।

परिमाण वाचक विशेषण के रूप मे आजकल हिन्दी शब्द इच, फुट, गज़, मीटर, छटाँक, सर, किलो, मन आदि का प्रयोग भी होता है, जिनकी व्याख्या की आवश्यकता नही है। परिमाणवाचक विशेषण के निश्चित और अनिश्चित दो उपभेद हैं—एक मुठी बेजा, एक पौरस दाणे, दस हाथ लोमा पौट्ठ एक पैंदल दहलीज ये सभी निश्चित परिमाण का बोध कराते हैं। इसके विपरीत औधला पौथा नाज, धाउडा नोला पाणी, बोहू भार छौली आदि म औधला (आधा), धाउडा (अधूरा), बोहू(बहुत) शब्द अनिश्चित परिमाण के द्योतक हैं। अनिश्चितवाचक मे अधिक प्रचलित शब्द 'केतरेएँ' (कितने ही) है—केतरेएँ पौथे नाज धोना, केतरेएँ बेंथ बेरला पौट्ठ में केतरेएँ से अभिप्राय 'कितने ही' अर्थात् 'बहुत' है।

4 सार्वनामिक विशेषण

इन विशेषणो के बारे मे सर्वनाम-सम्बन्धी अध्याय म कुछ परिचय दिया गया है। यहाँ कुछ विस्तार से उल्लेख करना अनुचित न होगा। यह लिखा जा चुका है कि ए (यह), सो (वह), जो या जुण (जो), तथा कुण (कौन) मूल रूप मे सर्वनाम है। जब इनका प्रयोग स्वतन्त्र रूप से होता है तो ये सर्वनाम होते हैं, जैसे सो नौठा (वह गया), ए एभएँ आऊ (यह अभी आया), सौहरा बें कुण चौलिरा (शहर कौन जा रहा है), जुण भी होला साथ आणी (जो भी होगा उसे साथ लाना)। इन वाक्यो में सो, ए, कुण तथा जुण शब्द स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त हुए है, अत ये सर्वनाम है। परन्तु जब ये किसी सज्ञा के साथ आए या सज्ञा शब्द को निर्दिष्ट करें तो ये विशेषण होते हैं। विशेषण के रूप म उपर्युक्त वाक्यो का प्रयोग क्रमश इस प्रकार होगा—सो शोहरू नौठ, (वह बालक गया), ए शोहरू एभएँ आऊ, सौहरा बें कुण शोहरू चौलिरा, जुण शोहरू भी

होला साथ आणी। इन वाक्यो मे सो, ए, कुण तथा जुण शब्द 'शोहरू' सज्ञा शब्द से पहले आए हैं, अन यहा ये विशेषण या सार्वनामिक विशेषण हैं। इसे निर्देशक विशेषण भी कहते हैं।

कुलुई मे सार्वनामिक विशेषण वस्तुत पाच प्रकार के प्रचलित हैं। प्रथम प्रकार के मूल सर्वनामीय विशेषण हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। इन्हें साधित सार्वनामिक विशेषण भी कहा जाता है।

दूसरी प्रकार के सार्वनामिक विशेषण सख्यावाचक है। एती, केती, खेती तथा तेती ये चार सख्यावाचक हैं क्योकि ये सख्या की अभिव्यक्ति करते है, जैसे केती मेऊ खाए (कितने सेव खाए), जेति सेऊ थी तेतीए खाए (जितने सेव थे उतने ही खाए)। इन सब विशेषणो का आधार सस्कृत है, जैसे—केती <स० कति (कितने), एती >स० यति (इतने), तेती <स० तति (उतने), और इसी आधार पर जेती (जितने)।

तीसरी प्रकार के सार्वनामिक विशेषण परिमाणवाचक है, जैसे एतरा, केतरा, जेतरा तथा तेतरा। ये विशेषण किसी वस्तु की मात्रा बताते हैं, और 'मात्रा' शब्द के सयोग से ही इन शब्दो की व्युत्पत्ति हुई है—स० एतत्मात्रा >एतत्रा >एतरा, स० यत्+मात्रा >जत्मात्रा >जेतरा (उतनी मात्रा) आदि। एतत्मात्रा >एतरा के सदृश्य से शब्दो की व्युत्पत्ति सम्भव है।

चौथी श्रेणी के सार्वनामिक विशेषण प्रकारवाचक है, जैसे —एण्डा, केण्डा, जेण्डा तथा तेण्डा। ये रूप या प्रकार प्रदर्शित करते हैं—एण्डा माण्हु मैं कदी नी हेरू (ऐसा आदमी मैंने कभी नही देखा), जेण्डा बाब तेण्डा बेटा (जैसा बाप वैसे बेटा) आदि। इनकी व्युत्पति सस्कृत एतादृश >एण्डा, तादृश >तेण्डा, कीदृश >केण्डा, यादृश >अन्य जादृश >जेण्डा मे मान लेनी चाहिए।

पाचवी श्रेणी के सार्वनामिक विशेषण आकारवाचक हैं। ये आकार या वस्तु के बडे या छोटे होने का भाव प्रकट करते हैं—कौड़ू केवडा सा (वह् कितना बडा या छोटा है)। इस श्रेणी के विशेषणो की उत्पत्ति उपर्युक्त चार मूल ए, के, जे, ते अक्षरो मे 'वडा' प्रत्यय जोडने से हुई है, यथा—एवडा (इतना बडा), केवडा (कितना बडा), जेवडा (जितना बडा) तथा तेवडा (उतना बडा)। 'वडा' शब्द स्वय सस्कृत 'वृद्धि' से व्युत्पन्न हुआ है। वैसे इन पर अपभ्रश प्रत्यय 'वड' के प्रभाव की भी सम्भावना है।

उपर्युक्त विवरण से पाच प्रकार के सार्वनामिक विशेषण यद्यपि विभिन्न श्रेणियो के लगते हैं, परन्तु ध्यान से देखा जाये तो इन सबके आधार म वही चार मूल सार्वनामिक विशेषण हैं, केवल विभिन्न प्रत्ययो द्वारा इन की पृथकता सिद्ध हो जाती है। यह बात निम्नलिखित ब्यौरे म स्पष्ट हो जाएगी :

मूलसार्वनामिक वाचक	सख्या वाचक	परिमाण वाचक	प्रकार वाचक	आकार वाचक
ए (यह)	एती	एतरा	एण्डा	एवडा
सो (वह)	तेती	तेतरा	तेण्डा	तेवडा
जुण (जो)	जेती	जेतरा	जेण्डा	जेवडा

कुण (कौन) केती केतरा केण्डा केंउडा

इस प्रकार एक ही मूल शब्द से पाच तरह के विशेषण बनना कुलुई की बहुत बडी विशेषता है। किसी विशिष्ट बात को बताने के लिए किसी और फालतू विशेषण ढूढने की आवश्यकता नही पडती—ए कताब सा मूंआगे (यह किताब मेरे पास है),एती कताबा सी मू आगे (इस कदर पुस्तकें हैं मेरे पास), एतरी किताबा सी मू आगे (इतनी ज्यादा पुस्तकें हैं मेरे पास), एण्डी कताब सी मू आगे (ऐसी कताब है मेरे पास), एवडी कताब सा मू आगे (इतनी बडी किताब है मेरे पास) आदि प्रयोगों मे हिन्दी की तरह 'इस कदर', 'इतनी ज्यादा' 'इतनी बडी' दो-दो विशेषण शब्दो की जरूरत नही पडती।

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य सर्वनामो का भी विशेषण के रूप मे प्रयोग होता है, जैसे —कोई माण्हु वोहू बेटडो, सेभ लोका, कुणी शोहरुए, जुणी मोरदे आदि। परन्तु इनके बारे मे कोई विशेष बात उल्लेखनीय नही है। जब ये स्वतन्त्र रूप स प्रयुक्त होते हैं तो सर्वनाम होते है, परन्तु जब किसी सज्ञा के साथ आते हैं तो विशेषण कहलात हैं। तिब्बती जैसी कुछ भाषाओ म विशेषणो मे कारक प्रत्यय दोहर लगते हैं, अर्थात जो कारक प्रत्यय सज्ञा म लगना होना है, वह विशेषण म भी जुड जाता है, जैसे—उसको लडके को अर्थात उस लडके को, जिसकी लडकी की अर्थात जिस लडकी की। ऐसा प्रयोग कुलुई म नही है।

विशेषणो का रूपान्तरण

प्रयोग की दृष्टि से कुलुई विशेषण दो श्रेणियो के अन्तर्गत आते है। (1)परिवर्तनीय, तथा (2) अपरिवर्तनीय। अपरिवर्तनीय विशेषण वे है जो हर प्रकार के सज्ञा-शब्द के पूर्व तथा हर स्थिति म समान रहते है। उनमे कभी कोई रूप-परिवर्तन नही होता, जैसे लाल भेड, लाल भेडा, लाल लौढ, तेज घोडा, तेज घोडी, तेज घोडे। इन प्रयोगो मे यद्यपि सज्ञा शब्दो म लिंग तथा वचन के आधार पर परिवर्तन आया है, जैसे भेड, भेडा, लौढ तथा घोडा, घोडी, घाडे परन्तु उनके साथ प्रयुक्त विशेषण शब्दो म कोई भेद नही आया, व सबके साथ समान रूप स 'लाल' और 'तेज ही रहे है। इनके विपरीत कुछ विशेषण शब्द ऐसे होत है जो उन द्वारा लक्षित सज्ञा शब्दो के लिंग-वचन के अनुसार बदलते है, जैसे—काली भेड, काला लौढ, शेता घोडा, शेते घोडे आदि।

प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि केवल एक प्रकार के विशेषण ही परिवर्तनीय है, और शेष सभी परिवतनशील नही है। केवल आकारान्त विशेषण ही रूपान्तरित होते है। चाहे वे गुणवाचक है अथवा सख्यावाचक, परिमाणवाचक या सार्वनामिक, यदि वे आकारान्त हों तो उनके रूप सज्ञा शब्द के लिंग वचन भेद के अनुसार बदल जाते हैं, और यह परिवर्तन इस प्रकार है

(1) एक वचन पुल्लिंग शब्द का 'आ' बहुवचन पुल्लिग के लिए 'ए' म बदल जाता है, जैसे काला घोडा—काले घोडे, दूजा शोहरू— दूजे शोहरू, एक पौथा नाज़—दस पौथे नाज़, एण्डा कुत्ता—एण्डे कुत्ते आदि।

उपर्युक्त से यह भी स्पष्ट है कि आकारान्त विशेषण द्वारा लक्षित पुल्लिग सज्ञा

शब्द चाहे बहुवचन के लिए बदले या न बदले परन्तु वह विशेषण ज़रूर बदलेगा। ऊपर घोड़ा और कुत्ता आकारान्त होने के कारण घोड़े और कुत्ते में परिवर्तित हुए, परन्तु शोहरू और नाज में ऐसा परिवर्तन नहीं आया, परन्तु आकारान्त विशेषण सबके साथ बदलते रहे—दूजा शोहरू, दूजे शोहरू, एक पौथा नाज, दस पौथे नाज।

(2) आकारान्त विशेषण का 'आ' स्त्रीलिंग एक वचन के लिए 'ई' में बदल जाता है और बहुवचन के लिए भी वही रूप रहता है, जैसे—बाका बेटा (सुन्दर पुत्र), बाकी बेटी (सुन्दर पुत्री), लोमा दरुआज़ा, लोमी भीत, लोमी भीती, शेता लोढ, शेती भेड, शेती भेडा आदि।

स्पष्ट है कि ईकारान्त में बदला विशेषण दोनों एकवचन और बहुवचन के लिए समान रहा है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। चाहे स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द के रूप में वचन के आधार पर परिवर्तन आ भी जाए, जैसे भेड (एक वचन) में भेडा (बहुवचन), भीत (एक वचन) से भीती (बहुवचन), परन्तु ईकारान्त में परिवर्तित विशेषण दोनों के लिए समान रहता है।

(3) आकारान्त विशेषण पुल्लिंग तिर्यक रूप (या कारक प्रत्यय प्रयोगों) में एक वचन के लिए 'एकारान्त' में बदल जाता है और बहुवचन के लिए वैसा ही रहता है, जैसे 'काले कुत्तारी काली लिंगट' (काले कुत्ते की काली दुम) तथा 'काले कुत्ते री काली लिङ्गटी' (काले कुत्तो की काली दुमें), 'उथडे बूटा-न बोहू फौल' (ऊंचे वृक्ष पर बहुत फल) तथा 'उथडे बूटे-न बोहू फौल' (ऊंचे वृक्षों पर बहुत फल)। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'काला' और 'उथडा' विशेषण एकवचन तिर्यक रूप 'कुत्तारी' और 'बूटा-न' के लिए काले और उथडे में बदल गए और जब 'कुत्ता' और 'बूटा' बहुवचन रूप में 'कुत्ते' और 'बूटे' में बदले तो भी विशेषण अपने पूर्व रूपान्तरित दशा में ही रहे।

(4) स्त्रीलिंग शब्दों की स्थिति में आकारान्त विशेषण ईकारान्त में बदलते हैं, और तिर्यक अथवा सप्रत्यय प्रयोग में भी इसी प्रकार रहते हैं। शेती भड, शेती भेडा, शेती भेडा-रें। वास्तव में स्त्रीलिंग शब्द के साथ आकारान्त विशेषण ईकारान्त में बदल जाते हैं, और फिर बहुवचन में भी उसी रूप में रहते हैं, तथा सप्रत्यय प्रयोग में भी उसी रूप को धारण किए रहते हैं।

विशेषणों की तुलनात्मक श्रेणियां

तुलना की दृष्टि से कुलुई विशेषण हिन्दी के समान हैं, संस्कृत या अंग्रेजी की तरह नहीं हैं। जब दो या अधिक वस्तुओं की तुलना की जाती है तो विशेषण की तीन श्रेणियां होती हैं—

(1) मूलावस्था (2) उत्तरावस्था (3) उत्तमावस्था

सभी विशेषण अपने सामान्य रूप में मूलावस्था में होते हैं, किसी के साथ तुलना नहीं होती। जैसे कमला बाकी शोहरी सा, मेरी बनाव होछी सा। उत्तरावस्था में दो व्यक्तियों या वस्तुओं में तुलना होती है, जैसे–विमला कमला-न बाकी सा, तेरी बतान मेरी-..

बताबा-न होछी सा। उत्तमावस्था मे किसी व्यक्ति या वस्तु को अन्य सबसे उत्तम या अधम दिखाया जाता है—*बिमला सेभी-न बाकी सा, मेरी कताब सेभी-न होछी सा।* सस्कृत मे उत्तरावस्था तथा उत्तमावस्था को दिखाने के लिए मूलावस्था मे 'तर' और 'तम' लगाया जाता है—निकट-निकटतर-निकटतम। कुलुई मे इस तरह के रूप नही बनते। यहा किसी व्यक्ति या वस्तु के गुण-अवगुण की न्यूनता या अधिकता दिखाने के लिए विभिन्न प्रत्ययो का सहारा लिया जाता है।

समानता को दिखाने के लिए सेंई और ढेंई दो प्रत्ययों का प्रयोग होता है। सेंई शब्द सस्कृत साम्य से व्युत्पन्न है। यह समानता या साम्यता या एकरूपता दिखाने के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे—*तौएँ सेंई बाकी सा ए छोहरी* (यह लडकी तेरे समान सुन्दर है)। कमलाएँ सेंई बिमला सा (कमला के समान ही बिमला है)। ढेंई सस्कृत शब्द 'दृशम्' का विकृत रूप है। यह बराबरी दिखाने के लिए प्रयुक्त होता है—तौ ढेंई कुणी होणा (तेरे बराबर कौन है)।

उत्तरावस्था मे एक को दूसरे की तुलना मे अच्छा या बुरा, गुरू या लघु दिखाने के लिए अपादानकारक के प्रत्यय 'न' का प्रयोग होता है। जिस व्यक्ति या वस्तु से दूसरे को अच्छा या बुरा दिखाना हो उसके साथ 'न' प्रत्यय जोडा जाता है, जैसे—*सुन्दरा-न मोती शोमला सा (सुन्दर से मोती अच्छा है), ट्रैंका-न अलमारी मेहगी थी (ट्रक से* अलमारी मेहगी थी)। 'न' के बाद 'ता' (तो) का भी प्राय प्रयोग होता है—'तौ-न ता ए बाकी सा,' 'मेरी कताबा-न ता तेरी कताब बडी सा' आदि। अपेक्षित विशेषण शब्द से पहले **थोड़ा, जादा, कम, बोहू** आदि शब्दो का प्रयोग करके भी तुलना के भाव को व्यक्त किया जाता है—ए बूटी तेसा बूटी न जादा लोमी सा (यह वृक्ष उस वृक्ष से अधिक लम्बा है), मेरा भरोट्ट तेरे भरोट्ट-न थोडा हौलका सा (मेरा भार तेरे भार से कम हलका है।) आदि।

उत्तमावस्था मे किसी व्यक्ति या वस्तु को अन्य सबसे अच्छा या बुरा आदि दिखाने के लिए 'सेभी-न' का प्रयोग होता है। जैसे, तू सेभी-न बाका, ए जोत सेभी-न उयडा, ए भरोट्ट सेभी-न गरवा (यह बोझ सबसे भारी)। यहा भी थोडा, जादा, कम, बडा, बोहू शब्दो का प्रयोग साथ-साथ होता है—ए कताब सेभी न जादा मेहगी, मोती सेभी छोहरू-न जादा तकडा सा आदि। उत्तमावस्था की एक और रीति भी है। इसमे एक विशेषण (अथवा सज्ञा) को तीन बार इकट्ठे क्रम मे बोला जाता है, जैसे राजा-राजा रा राजा (राजाओ के राजे का राजा)। ए सा **घोरी घोरी रा घोरी** (यह धोखेबाज़ो के धोखेबाज का धोखेबाज है), सो ता **पापी पापी रा पापी** सा (*वह तो पापियो के पापी का* पापी है)। इस प्रयोग मे उत्तमावस्था की पराकाष्टा दिखाई जाती है—'चोरा चोरा रा चोर' (चोरो के चोर का चोर अर्थात् सबसे बडा चोर)।

विशेषण शब्दों का निर्माण

कुछ शब्द अपने आप मे विशेषण होते है, जैसे—खरा, बुरा, लाल, पीउला, माठा, बडा आदि। परन्तु कुछ विशेषण शब्द ऐसे होते हैं जो दूसरे सज्ञा, सर्वनाम तथा

क्रिया आदि शब्दों से बनते हैं। कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं—

1. संज्ञा शब्द के अन्त में 'ई' जोडने से विशेषण बनता है—

संज्ञा	विशेषण	संज्ञा	विशेषण
सुख	सुखी	दुख	दुखी
लोभ	लोभी	लालच	लालची
शकीन	शकीनी	करोध	करोधी
स्हाब	स्हाबी	शराब	शराबी
दोंद	दोंदी	भेत	भेती

2 कुछ संज्ञा शब्द 'ला' प्रत्यय जोडने से विशेषण बनाते है। 'ला' या ला' प्रत्यय 'वाला' शब्द का संक्षिप्त रूप है—

संज्ञा	विशेषण	संज्ञा	विशेषण
शोभ	शोभला	भाव	भावला
मादा	मदयाला	घूपा	धपयाला
पाथर	पथराला	ऊन	नुआला
पाणी	पणियाला		

3 'आ' जोडने से भी विशेषण बनते हैं—

लूण	लूणा	काठ	काठा
पिपली	पिपला	ठाड	ठाडा
सौच	सौचा	झूठ	झूठा
जूठ	जूठा	अलूण	औलणा

4 काल या समय द्योतक संज्ञा शब्दों में 'का' प्रत्यय जोडने से विशेषण शब्द बनते हैं—

पौर	पौरका	प्राह्‌र	प्राह्‌रका
दोत	दोतका	सोझ	सोझका
रात	रातका	एद्यु	एद्यका
दिहाड	दिहाडका	हीज	हीजका

5 क्रिया शब्दों में 'उदा' प्रत्यय लगाकर विशेषण बनते हैं। 'उदा' की व्युत्पत्ति संस्कृत 'इन' प्रत्यय से हुई है। यह 'उदा' प्रत्यय क्रिया की धातु रूप में लगता है—

खाणा	खाउदा	पीणा	पीउदा
भालणा	भालुदा	घोटणा	घोटुदा
डाहणा	डाहुदा	शाधणा	शाधुदा

अध्याय—14

क्रिया-पद

अन्य भारतीय आर्य भाषाओ की तरह ही कुलुई की क्रियाए भी अधिकत संस्कृत से आई है। भाषा विकास के इस लम्बे समय मे संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश से उत्तराधिकार मे प्राप्त इनके मूल रूपो मे काफी अन्तर आया है। विभिन्न परिस्थितियो मे से गुजरते हुए इनके वास्तविक रूप मे ऐसा परिवर्तन आना स्वाभाविक है। परन्तु कुलुई मे ऐसा परिवर्तन स्पष्टत सरलता की ओर रहा है। परिवर्तन की इस लम्बी अवधि मे भी कुलुई मे अनेक ऐसी क्रियाए विद्यमान हैं, जो संस्कृत के मूल रूप को धारण किए हुए हैं और उनमे किसी प्रकार का अन्तर नही आया है—न शब्दो के रूप मे न उनके अर्थों मे। उदाहरणत कीत, मल, डी, दुह धूप, तार ऐसी धातुए हैं जो मूल रूप मे मूल अर्थ मे प्रयुक्त होती है। ऐसी भी अनेक क्रियाए हैं जो निर्माण मे मूल संस्कृत रूप धारण किए हुए हैं परन्तु अर्थ मे कुछ मिलता जुलता अन्तर आ गया है। उदाहरण के रूप मे संस्कृत मे 'ढौक' का अर्थ 'पहुचना', 'निकट जाना' है, परन्तु कुलुई मे इसका अर्थ 'पकडना' हो गया है। इसी तरह संस्कृत 'तुर' (दौडना, आगे बढना) कुलुई मे 'घुस जाना' के अर्थ मे सीमित हो गया है। ऐसी तो असंख्य क्रियाए है जिनमे सामान्य ध्वनि परिवर्तन आ गया है, परन्तु मूल अर्थों मे या उन से मिलते-जुलते अर्थों मे विद्यमान हैं। परन्तु कुलुई क्रियाओ के सम्बन्ध मे सबसे महत्त्वपूर्ण बात ऐसी क्रियाओं का प्रयोग है, जो हिन्दी आदि कुछ अन्य आर्य भाषाओ मे क्रियाओं के रूप मे प्रचलित नही हैं। अर्थात् जहा हिन्दी मे संज्ञक-प्रयुक्त क्रियाए (Nominal Compounds) होती हैं, वहा कुलुई मे मूल क्रियाए विद्यमान है। जैसे, कुलुई<स्वादणा स० स्वद् हिन्दी स्वाद लेना, कुलुई क्रोधिणा<स० क्रुध, हिन्दी क्रोधित होना, हिरखिणा<स ईर्ष्य्, ईर्षा करना, शोंविणा<स० तृष् प्यासा होना, मोहणा<स० मुह्, मोह मे पडना, लुण्<स० लुन्, फसल काटना, लौजिणा<स लज्ज् लज्जित होना, पेशणा<स० विश, प्रवेश करना, सुजणा या सुह्णा स० सू पैदा करना। इन क्रियाओ पर आगे चलकर विस्तार से विचार किया जाएगा। यहा केवल उदाहरण के रूप मे कुछेक को प्रस्तुत किया गया है।

धातु—

एक अन्य बात मे भी कुलुई भाषा सस्कृत की धातु सम्बन्धी एक विशेषता के कुछ उदाहरण छपाए हुए है। विद्वानो का कहना है कि संस्कृत मे धातु व्याकरणाचार्यों के हाथो मे एक अनुज्ञापन है, जिससे विभिन्न प्रकार के शब्द बनाए तथा श्रेणीबद्ध किए जाते हैं, और एक ही धातु के लग-भग सात सौ दो शब्द रूप (1 धातु × 3 वचन × 3 पुरुष × 13 लकार × 6 कृदन्त) बनाए जाते हैं, परन्तु धातु का मूल रूप मे प्रायोगिक अर्थ कुछ नही होता।[1] इस लम्बी अवधि मे सस्कृत के सरलीकरण की ओर प्रवृत्ति का एक मुख्य परिणाम यह हुआ है कि आधुनिक आर्यभाषाओ मे सामान्यत क्रियाओ की धातुए आज्ञार्थ का रूप धारण कर गई हैं, और मूल धातुए इसी रूप मे प्रयुक्त होने लगी है—खा, पी, पहन, जा, लिख, पढ आदि। कुलुई की धातुए भी मुख्यत आज्ञार्थ रूप मे प्रयुक्त होती हैं। परन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ कुलुई धातु के सस्कृत धातु की तरह मूल रूप मे कोई अर्थ नही, केवल कालादि प्रत्ययो को लगाने से ही, इनके सार्थक रूप बनते है। इस दृष्टि से कोई नही कह सकता कि कुलुई के 'ए', 'हो', 'गो', 'खो' भी क्रियाए हो, परन्तु जब 'ए' से एला, एणा शब्द प्रयोग मे आते है तो लगता है कि 'ए' एक धातु है जिस का अर्थ 'आना' है, और जब एणा से भूतकालिक रूप 'आऊ' बना तो इस धारणा की पुष्टि हो जाती है। इसी तरह 'हो', 'गो', 'खो' भी मूल रूप म कही प्रयोग मे नही आते, परन्तु जब होणा, होला, की गोऊ, की गोणा, खोऊ, खोला आदि शब्द प्रयोग मे मिलते हैं तो इनके धातु होने मे सदेह नहीं रहता।

सस्कृत की धातुए मुख्यत एकाक्षरी है—चाहे वे केवल एक ही स्वर की हों जैसे 'इ' जाना, पहुचना, पाना आदि, 'ऋ' उठना, जाना, या एक व्यजन और एक स्वर की हो 'भू', 'नी', 'पा', 'या', या स्वर पश्चात् व्यजन की हो 'अज्' 'अच्, 'इश्' अथवा स्वर के सयोग से एक से अधिक व्यजन, जैसे—'तुल्', 'नग्, 'पिव्' आदि। इस दृष्टि से कुलुई धातुए पूर्णत सस्कृत का अनुकरण नही करती। इसमे एकाक्षरी धातुए अवश्य है परन्तु आधुनिक विभिन्न प्रकार की भाषाओ के रेल-पेल के कारण इसमे ऐसी धातुओ की बहुलता है जो एकाक्षरी न हो कर अनेकाक्षरी हैं—जैसे,

(1) एकाक्षरी—ए-एणा (आना) खा-खाणा, पा पाणा (डालना) जा-जाणा, टो-टोणा (गिरती चीज को ग्रहण करना), ढो ढोणा (उठाकर ले जाना), दे-देणा, ने-नेणा (ले जाना), छो (छन लगाना), सो-सोणा, धो धोणा, जी-जीणा, ले (खरीदना) आदि।

दो अक्षरी—शोट (फैंक देना) पेश (प्रवेश करना), भाल (देखना), चोड (तोडना), मूच (मूत्रना), कोस (बीच मे डालना), झौड (गिरना), झास (भुनना), छौश (मालिश करना), खेद (ढांकना), गोट (रोकना) धाच (पालना), ढाव (इकट्ठा करना), ढेम (मारना), तोछ (काटना), शाध (बुलाना) आदि।

---

1 John Beames A Comparative Grammar of the Modern Aryan Languages, Vol III, pp 2—5

घिचड (छीलना), बिधक (बिदकना), बिसर (भूलना), भौडक (बुड्बुडाना)।
तीन-अक्षरी—धियाग (ध्यान लगाना, निशाना लगाना), थौरक (थर-थराना), बियाँज (अलग करना), परेख (परीक्षा करना), सोबर (बीमारी से ठीक होना), निहाल (प्रतीक्षा कर), सुआल (उतार) आदि।

कुलुई मे प्राय: मूल धातु मे 'णा' प्रत्यय जोडने से क्रिया का सामान्य रूप बनता है जैसे—स्वाद से स्वादणा, मोह् से मोहणा, बूद से बूदणा, सिज से सिजणा, परेख से परेखणा आदि। परन्तु यदि धातु र, ड, ढ, ल मे अन्त होनी हो तो 'णा' प्रत्यय 'ना' मे बदल जाता है, जैसे-भौर से भौरना, मोर से मोरना, चोड से चोडना, लौड से लौडना, पौढ से पौढना आदि। इसी तरह यदि धातु णकारान्त हों, तो भी 'णा' प्रत्यय 'ना' म बदल जाता है। परन्तु यहाँ एक अन्य परिवर्तन भी होता है। मूल धातु का अन्तिम 'ण' भी 'न' मे बदल जाता है, और धातु का मूल 'न' हलन्त हो जाता है, जैसे—बुण<स० बुन धातु से बन्ना, खोण<स० खन् से खोन्ना, पुण<स० पुन् से पुन्ना, लुण<स० लुन् बुन्ना आदि। कुलुई क्रियाओं का अध्ययन करते हुए अनेक धातुए ऐसी देखने मे आती हैं जो मस्कृत के मूल रूप को सुरक्षित रखे हुए है, या उनमे मामूली परिवर्तन आया है। सिद्ध और साधित दोनों प्रकार की असख्या धातुए कुलुई म सम्कृत से आई हैं। यहाँ केवल कुछेक उदाहरण दिए जाते है।

1. सिद्ध धातुएँ

(1) ये मूल धातुएँ होती हैं किसी अन्य शब्द पर आधारित नही होती—

अवस>ओस, ओसणा।
उपम>उसर, उसरना।
कट्>काट, काटणा।
कड्>कोढ, कोढना।
कील्>कील, कीलणा।
कूर्द्>कूद, कूदणा।
कृत्>कौत, कौतणा।
कृत्>काट, काटणा।
कृप्>करिश, करिशणा।
कुट्ट्>कूट, कूटणा।
क्षुद्>क्षुद, क्षुदणा।
खन्>खोण, खोन्ना।
गण्>गिण, गिन्ना।
गल्>गौल, गौलना।
ग्रह्>ग्राह, ग्राहणा

उत्कम्>उकल, उकलना।
कम्प्>कोम, कोमणा।
कल्प्, करिप, करिपणा।
खाद्>खा, खाणा।
कृ>केर, केरना।
क्षल्>छला, छलाणा।
खिद>खेद खेदणा।
क्षु>खुग, खुगणा।
क्षप्>खोप, खोपणा।
क्षोद्>शोट, शोटणा।
क्षर>खार, खारना,
गल्>औल, औलना।
गृज्>गरिज, गरिजणा।
ग्रन्य्>गुन्ह, गुहणा।
ग्रन्थ्>गोठ, गोठणा।

घृष्>घुश, घुशण।
चर्>चोर, चोरना।
चूष्>चूश, चूशणा।
चूर्>चोर, चोरना।
छिद्>छिज, छिजणा।
जन्>जोण, जोन्ना।
जप्>जाप, जापणा।
जागृ>जाग, जागणा।
ज्ञा>जाण, जान्ना।
जि>जित>जीत, जीतणा।
जीव्>जी, जीणा।
झट्>झौट, झौटणा।
टीक्>पटिक, पटिकणा।
टक्>टाक, टाकणा।
टिप्>टिप, टिपणा।
डप्>डाव>ढाव, ढावणा।
डम्>डमका, डमकाणा।
डम्ब्>डूम>ढूम, ढूमणा।
डी>डी, डीणा
ढौक्>ढौक, ढौकणा।
तक्ष्>तौछ, तौछणा।
तन्>ताण, तान्ना।
तार्>तार, तारना।
तुर्>तुर, तुरना।
तुल्>तोल, तोलणा।
त्रुट>चुट, चुटणा।
दण्ड्>डण्ड, डण्डणा।
दल्>दौल, दौलना।
दर्श्>दस, दसणा।-
दुह्>दुह, दुहणा।
धार्>धार, धारना।
धूप्>धूप, धूपणा, (धूनी देना)
नश्>नौश, नौशणा (न्हौशणा)।
पच्>पौक, पौकणा।
पा>पा, पाणा।
पिष्>पिश, पिशणा।

चल्>चौल, चौलणा।
चिह्न>चिह्न, चिह्नणा।
च्यव>चूड, चूडना।
छद्>छो, छोणा।
चट्>चूट, चूटणा।
चष्>चाख, चाखणा।
तृ>तौर, तौरना।
तड्>तौट, तौटणा।
तन्>ताड, ताडना।
तन्>तिण, तिणना>तिन्ना।
दश-दशति>दाढ, दाढना।
दा>दे, देणा।
दह्>दाग, दागणा।
धुक्ष्>धुक, धुकणा (औग धुक्दी)।
धा>डाह, डाह्णा।
नी>ने, नेणा।
नृत्>प्रा० नच्च>नौच, नौचणा।
निगृ>निगल, निगलना।
पा 'पिबति'>पी, पीणा
पृच्छ्>प्रा० पुच्छ>पुछ, पुछणा।

पुन्>पुण, पुन्ना
पूज्>पूज्र, पूज्रणा
फन्>फौल, फौलना
फन्>फाल, फालना
वन्ध्>बोन्ह, बोन्हणा
भण्ड्>भाड, भांडणा
भन्ज्>भोन, भोनणा
भल्>भाल, भालना
भाप्>भाश, भाशणा
मन्>मोन, मोनणा
मृ>मौर, मौरना
मृज्>माज्र, माज्रणा,
युज्>जुड, जुडणा
रिप्>रि्हश, रि्हशणा
रुच>रुच, रुचणा
रुप्>रुश, रुशणा
रजनम्>रौज, रौज्रणा
लघ्>लाघ, लाघणा
लज्ज्>लौज्रि, लौजिणा
लिप्>लेप, लेपणा
लुन्>लुण, लुन्ना
वस्>बौस, बौसणा
वाश्>बाश, वाशणा
वास्>बासि, बासिणा
वाह्>बाह, बाहणा
विकाश्>पियाश, पियाशिणा,
विज्>बिज, बिज्रणा
विज्>विझ, विझणा
शद्>शोट, शोटणा
शिङ्घ्>शिघ, शिघणा
स्थग्>ठोग, ठोगणा
स्थग्>ठाक, ठाकणा
स्फुट>फुट, फुटणा
सू>सुह, मुहणा (बकरी सुहणा)
सन्ज>शौच, शौचणा
स्पद>फौडक, फौडकणा

पद्>पौद, पौदणा
पृ>पेर, पेरना
पृच्>पियार, पियारना (पीठा सुगे लूण पियार)
मन्>मोन्न, मोन्नणा,
भृज्>भुज्र, भुज्रणा
भष्>वाश, वाशणा
मृ>प्रा० मर>मौर, मौरना
मुन्च>मुक, मुकणा
मृद्>मठेल, मठेलना
मृद्>मुड, मुडणा
या>जा, जाणा
रोप्>रोप, रोपणा
मक्ष्>मुछ, मुछणा
मिश्>मिशि, मिशिणा
मुण्ड्>मुड, मुडणा (कुचलना)
वच्>वाच, वाचणा
वद्>वाट, वाटणा
वण्ट>बोंड, वोडणा
वह्>बौह, बौहणा (मौल बौहणा)
वुध>बुझ बुझणा प्रा० वुज्झई
विद्ध>विन्ह, विन्हणा
श्रु>शुण, शुणना
स्थम्भ्>थम्भ>थोम, थोमणा
सृ>सौरक, शौरकणा
सिव्>सिह्, सिहणा
हम्>हौस, हौमणा

हन>हुण, हुण्ना सृज्>सूज, सूजणा

शुप्>शुक, शुक्णा हल्>हौल, हौलना

(2) उपर्युक्त संस्कृत साधारण धातुओं के अतिरिक्त, कुलुई में अनेक उपसर्ग संयुक्त धातुएँ संस्कृत से आई हैं, उदाहरणार्थ—

उत+जट्>उजड,>उजडना,

निर्+कस्>निर्कस>निक्स, निक्षणा (आगे सरकना)

निर्+क्षर>निक्खर>निखर, निखरना (मैल साफ होना)

नि+भाल्>प्रा० निहालेई>निहाल, निहालणा (प्रतीक्षा करना)

नि+वृ=निवृत्त>निभ, निभ्णा (समाप्त होना)

प्र+विष्ट>पइट्ठई>पइठ>पेठ>पेश, पेशणा (प्रवेश करना, घसना)

प्र+जन्>प्रजन्>पौज़णा (पैदा होना)

उप+विश्>बैठ>बेश, बेशणा (बैठना)

सम्+हल्>सम्हाल, सम्हालना (सभालना)

उत्+पद्यते>प्रा० उप्पज्जइ>उपज>पौज, पौज़णा (पैदा होना)

उत्+मृ>उस्मृ>ओस, ओसणा (उतरना)

परि+ईक्ष्>परीक्ष>परेख, परेखणा (जाच करना)

नि+वह्>प्रा० निवह्>न, नेणा (लेजाना)

प्र+आप् 'प्राप्नोति'>परा, पराणा (पाना, तलाश करना)

प्र+आप् 'प्राप्नोति'>पा, पाणा (डालना 'क्तौ पाणा')

अव+क्षर=अवखर>उखर, उखरना (साफ होना)

उत्+कृ>उडक, उडक्णा (उछलना और कूदना)

उत्+कल्=उत्कल>उक्कल>उक्ल, उक्लना (चढना)

उत्+स्था>उठ, उठणा (उठना)

अव+दृ>औदृ>ओदर, ओदरना (फटना, खराब होना)

प्रति+ई>प्रती>पतिया, पतियाणा (चुप कराना, विश्वास दिलाना)

परि+धा>प्रा० पहिरइ>पौहर, पौहरना (पहरा करना)

वि+क्रू>प्रा० वेच्चइ>वेच, वेचणा (बेचना)

परि+वेशय>परोश>परोस, परोसणा (परोसना)

वि+लम्ब्+आगत>वलागणा (देरी कराना)

वि+स्मृ>विसृ>विसर, विसरना (भूल जाना)

स्खल्+गम्>खिसक, खिसकणा (खिसक जाना)

उत्+घट्>उघाड>गुहाड, गुहाडना (खोलना)

उत्+चल>उक्चल>उक्ल, उक्लणा (चढना)

वि+विध्य>विझणा (बिदकना)

वि+श्रामय>विशाइणा (विश्राम होना)

उत्+स्फुर>उप्फर>उफरना (पट्टहर उफरे)

निर्+सृ>निसृ>नसार, नसारना (डालना)
अवि+अञ्ज्>बियाज, बियाजणा (अलग करना)

(3) साधारण तथा उपसर्ग-सयुक्त धातुओ के अतिरिक्त सस्कृत की कतिपय णिजन्त धातुएँ भी कुलुई मे आई हैं जो प्रेरणार्थक रूप और भाव को खो कर सिद्ध धातुओ के रूप मे प्रचलित हैं—

स्नापयति>निहाइणा (नहाना)
प्राप्यति>परेणा (पूरा करना)
साधयति>साधणा (सहन करना)
ज्वालयति>जालणा (जलाना)
तारयति>तारना (पार करना)
निष्कासयति>नकासणा (निकाल कर ले जाना)
स्थापयति>थापणा (स्थापित करना, थापना)
स्थगयति>ठाकणा (रोकना)
आनयति>आण, आणना (ले आना)
हारयति>ऱ्हा, ऱ्हाणा (खोना, गुम करना)
क्षरयति>छार, छारना (पानी से निकालना)
उद्घाटयति>घुहाड>गुहाड, गुहाडना (खोलना)
उत्खाटयति>उखाट>खुहाड>खुआड्ना (डाने खुआडे, उखाडना)
साधयति>शाध, शाधणा (बुलाना)
वर्धयति>बौध, बौधणा (बटना)
उद्भवयति>उभर, उभरना (देवते के चेले के पास देवता आना)

(4) ऊपर कुछेक उन कुलुई धातुओ का विवरण दिया गया है जो सस्कृत से तद्भव रूप मे प्राकृत और अपभ्रश से होती हुई आई हैं। इनके अतिरिक्त कुलुई मे प्रमुखता उन धातुओं की है जिनकी सस्कृत से व्युत्पत्ति सदिग्ध है, और जिन्हे देशी कहा जा सकता है । ऐसी अधिक धातुओ का यहा उल्लेख करना आवश्यक नही है। कुछेक को उदाहरण के रूप मे, सक्षिप्त सूची नीचे प्रस्तुत की जाती है —

आइरना पट्टी आदि बुनने के लिए ताने को सजोना।
आटणा किसी गिरते पानी आदि को बरतन मे लेना।
उकलणा , चढना।
उघडना सच्चाई बताना, कसूर मानना।
उचडना उखडना।
ओगणा एहसान जताना।
ओपणा अनुकूल या अच्छा लगना।
ओपडना : किसी बर्तन मे पूरा आना।
औलणा गिरना।
कासणा बीच मे डालना। कलोतणा लत्य-पत्थ करना।

कोरना छेद करना।

खेदणा हांकना। खूवणा चुभना।

खेटणा उखाडना। खोजणा बताना।

गोझिणा गुम होना, छुप जाना।

गोटणा रोकना। घरोसणा धकेलना।

गोमणा पसन्द करना। गाबणा दबाना, ढक देना।

घुघणा भौंकना। चेथणा कुचलना।

घौडना पीटना, मारना (जान से नहीं)।

घौडिना लडना, मार पिटाई करना।

घाणना पशु को घास आदि डालना।

चाडणा निशाने पर मारना, लेना।

चौखिणा पकाये भोजन का सड जाना। छिपणा गर्म होना, तपना।

चौखिणा उठाया जाना। चिटणा मक्खी आदि द्वारा काटना।

चुआडना छीलना।

छेकणा पूरा करना, कर्ज उतारना।

छोपणा पानी का सूख जाना।

छोणा छत लगाना। छडाकणा दूर पटक देना।

चूडना बूंद बूंद गिरना।

छाटणा पछाडना।

छनेरना खाली करना। जिकणा दबाना।

छिजिणा गुस्से होना।

छोराणा मालिश करना। झडिगिणा ठोकर लगकर गिरना।

छोलणा मथना। झूटणा पीना।

जौकणा पीटना, मारना। टिमणा छेद करके किसी चीज को लगाना।

जाझणा अलग करना (विशेषत लडते हुओं को)

झौडना गिरना।

झासणा भुनना। झोलणा धक्का देना।

झौठिणा झगडना।

टुराणा साफ करना। टालणा चुनना।

टोहणा पौधे लगाना, रोपना।

टाकरना निशाना लगाना।

टोक्णा काटना।

ठिमक्णा to overtake, पकडना।

ठाक्णा रोकना।

ठुरना दौडना।
ठेरना कातन के बाद दो धागो का वटना।
ठेरिना दो बैला का लडने के लिए तैयार होना।
ठुडकणा खाली करना, झाडना।
डाफणा धोखा देना।
ढाबणा इकट्ठा करना।
ढुणना बात करना।
ढिसणा मारना, पीटना।
ढोकणा पकडना।
ढोसणा बहाना।
ढोणा उठाकर ले जाना।
ढावणा इकट्ठा करना।
ढुकणा आरम्भ करना व्यस्त होना।
ढेमणा मारना (जान से नही) पीटना।
तोपणा तलाश करना। तुनकणा वजन जाचना।
तौछणा (कुल्हाड आदि से) काटना छीलना।
तौल्हणा हिलना।
थोगणा हाथ से टोहना।
थोसणा हथयाणा खीचकर तोडना।
थुसणा टूटना (विशपत कपडा का टूटना)
थिचडणा छीलना।
थाक्‍ना ऊन काटने से पहले भेड के शरीर पर ऊन की सफाई करना।
थापरना to catch हाथ मे पकडना।
थाटणा वृक्ष के नरम पत्ते काटणा।
थेचणा गीला करना।
दुआजणा अलग करना।
दरेडना उखाडना, गिराना।
दाचणा तजवीज करना, सोचना।
धाचणा पालना।
धियागणा निशाना बाधना।
निलगीणा (न गीला रहना) मुरझाना।
निडणा निडाई करना।
नियाटणा बदिश करना।
परहेलणा बोझा उठाने म सहायता के लिए पीछे से हलका धक्का देना।
नशाणा भगा देना।
निखडना कमजोर होना, घिस जाना।

परीशणा—परूशणा बीच म से खीच कर निकालना ।
पनारहीणा हक्का-बक्का रह जाना ।
पेचणा उखाडना प० पुटणा ।
पाहरना कँघी करना ।
पतरोलणा मिश्रित करना ।
फडाकणा छाज म डालकर दाने साफ करना ।
फीटणा नष्ट होना ।
फियाडना समझना ।
बूदणा किसी छेद को बद करना ।
बाकणा मुह खोलना ।
बझेलणा जगाना ।
भेडना अलग करना ।
भीकणा जलना ।
भिडिना भिडना ।
भाशणा देवते को कोई भेंट करने की प्रतिज्ञा करना ।
मघोलणा हाथ लगा-लगाकर खराब करना ।
मिनणा मालिश करना ।
मुनणा भेडो की ऊन उतारना ।
राटणा कसम खाना ।
रिडकणा व्यर्थ घूमना ।
रिह्नणा पकाना ।
लिघ्रणा बध्य करना ।
लेसणा लीपना ।
लाघणा अवूर करना ।
लेमकणा चाटना ।
लोक्णा सिर पर फेरकर फेंक देना ।
ल्होसणा जबरदस्ती छीनना, उखाडना ।
ल्हुनणा भुलसना ।
शीगणा गीला करना ।
शुगणा साफ करना झाडू देना ।
शोतणा फसना ।
शाकणा वृक्ष के तने की पूरे घेरे से छाल उतारना ताकि वह सूख जाए ।
शेलणा बुझाणा ।
सिक्णा जाना ।
सिन्णा आग म पकना ।
सोठणा सोचना ।

सारना : साफ करना।
सोवरना बीमारी से स्वस्थ होना।
हेरना : देखना।
हेवाणा चूल्हे पर चढ़ाना।
हिराणा बुझना।
होगणा टट्टी करना।

यहाँ उन क्रियाओं को प्रस्तुत करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, जो हिंदी की सिद्ध धातुएं हैं, और जो उन्हीं या लगभग उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होती हैं। इनमें केवल सामान्य ध्वन्यात्मक परिवर्तन आया है, जैसे—उबलणा, खाणा, पीणा, सोणा, उठणा, धोणा, जाणा, देणा, रोणा, खाणा, खेलणा, घौनिणा (घिसना), चुमणा (चूमना), चोरना, छोडना (छोड़ना) छीकणा, झूलणा, डूबणा, ढोणा, तोरना (तैरना), थूकणा, दसणा, दुखणा, दुहणा, निकलणा, फेरना, पूछणा, बिकणा, भेजणा, मारना, मौरना, मिलणा, लेटणा, लूटणा, लोडना (लड़ना), सीखणा, सिहणा (सीना), हारना, होटणा (हटना) आदि।

इसी तरह कुछ क्रियाएं पंजाबी में मिलती है, जैसे—गोटणा पं० सुटणा, वाटणा पं० वटणा (रस्सी वटना), दसणा पं० दसणा, खरोलणा पं० फरालणा, न्होशणा> न्हठणा पं० नठणा, भालणा पं० भालना।

2. साधित धातुएं

(1) प्रेरणार्थक

साधित धातुओं में प्रथम स्थान प्रेरणार्थक अथवा सकर्मक धातुओं का है। हिन्दी में कुछेक धातुओं को छोड़कर अन्य धातुओं की दो-दो प्रकार की प्रेरणार्थक धातुएं बनती हैं, जिनका पहला रूप बहुधा सकर्मक क्रिया के अर्थ में ही आता है और दूसरे रूप से यथार्थ प्रेरणा समझी जाती है, जैसे गिरना से गिराना प्रथम तथा गिरवाना द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाएँ हैं। इसी तरह पढ़ना—पढाना—पढवाना, करना—कराना—करवाना आदि। कुलुई में दो दो प्रेरणार्थक क्रियाएँ नहीं बनतीं। केवल एक प्रेरणार्थक क्रिया बनती है जो सकर्मक होती है। हिन्दी की दूसरी प्रेरणार्थक क्रिया 'वा' वाला रूप कुलुई में प्रचलित नहीं है। केवल प्रथम रूप ही विद्यमान है, जो निम्न प्रकार से बनता है —

(क) मूल रूप से प्रेरणार्थक धातु मूल अकर्मक धातु में 'आ' जोड़ने से बनती है, जैसे —

मूल धातु	मूल क्रिया	प्रेर०धातु	प्रेर०क्रिया
घट	घटणा	घटा	घटाणा
वध	बधणा	वधा	बधाणा

चल	चलणा	चला	चलाणा
बदल	बदलना	बदला	बदलाणा
खिसक	खिसकणा	खिसका	खिसकाणा

ईकारान्त मूलधातुओं में 'आ' श्रुति के कारण 'या' हो जाता है, जैसे 'पी' से 'पिआ'>पिया, 'जी' से जिआ>ज्रिया। वस्तुत 'आ'-युक्त प्रेरणार्थक धातु सकर्मक धातु है। 'आ' प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत की णिजन्त धातुओं के प्रत्यय 'आय' (जैसे 'मारयति', 'कारयति' मे) से इस प्रकार मानी जा सकती है, यथा आय> आव>आ। प्रेरणार्थक रूप बनाने से पूर्व एकाक्षरीय दीर्घ स्वर ह्रस्व मे बदल जाता है —

ढो	ढोणा	ढुआ	ढुआणा
सो	सोणा	सुआ	सुआणा
धो	धोणा	धुआ	धुआणा
पी	पीणा	पिआ>पिया	पियाणा
खा	खाणा	खिआ>खिया	खियाणा
जी	जीणा	जिआ>ज्रिया	ज्रियाणा
दे	देणा	दिआ>दिया	दियाणा
बोण	बोणना	बणा	बणाणा
बेश	बेशणा	बशा	बशाणा
लेट	लेटणा	लटा	लटाणा
केर	केरना	करा	कराणा
गौल	गौलणा	गला	गलाणा
कौढ	कौढना	कढा	कढाणा
न्हौश	न्हौशणा	नशा	नशाणा
पौक	पौकणा	पका	पकाणा
लांघ	लाघणा	लगा	लघाणा
शौच	शौचणा	शचा	शचाणा
ढौल	ढौलणा	ढला	ढलाणा
शाध	शाधणा	शधा	शधाणा
तौल्ह	तौल्हणा	तल्हा	तल्हाणा

(ख) संस्कृत का प्रेरणार्थक प्रत्यय—'आप' प्राकृत मे -ए- मे परिणत हुआ था। प्राकृत का यह प्रत्यय कुलुई मे भी पहुचा है। कुलुई की कुछ अकर्मक धातुओं का प्रेरणार्थक रूप 'ए' के संयोग से बनता है, जैसे

डूब	डूबणा	डबे	डबेणा
छिप	छिपणा	छपे	छपेणा
भीज	भीजणा	भजे	भजेणा
झुक	झुकणा	झके	झकेणा

सिट	सिटणा	सटे	सटेणा
दुस	दुसणा	दसे	दसेणा
जाड	जोडना	जडे	जडेना

(ग) कुछ धातुओं की स्थिति में प्राकृत '-ए-' सकर्मक के लिए '-एर-' में बदल गया है —

निभ	निभणा	नभेर	नभेरना
सौग	सौगणा	सगेर	सगेरना
छूट	छूटणा	छटेर	छटेरना
बिझ	बिझणा	बझेर	बझेरना
सोध	सोधणा	सधेर	सधेरना

किन धातुओं में '-ए-' और किन में '-एर-' लगता है, यह स्पष्ट नहीं होता। केवल लोक-प्रयोग ही एक मात्र नियम लगता है, क्योंकि कुछ धातुओं के दानों प्रकार के प्रेरणार्थक रूप समान रूप से प्रचलित हैं, जैसे 'घट' से 'घटाणा' भी और 'घटेरना' भी। इसी तरह 'बधणा' से 'बधाणा' तथा बधेरना', 'सोधणा' से 'सधाणा' तथा 'सधेरना' आदि।

(घ) जो अकर्मक धातुएं 'र' अथवा 'स' से अन्त होती हों और उनसे पहले ह्रस्व स्वर हो तो पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है —

निसर	निसरना	नसेर	नसेरना
सोवर	सोवरना	सवेर	सवेरना
निसर	निसरना	नसार	नसारना
मर	मरना	मार	मारना
निकस	निकसणा	नकास	नकासणा

(ङ) स्वर या 'ह' से आरम्भ होने वाली धातुओं में पूर्व स्वर अथवा 'ह' लुप्त हो जाता है—

उकल	उकलना	कुआल	कुआलना
ओस	ओसणा	सुआल	सुआलना
उठ	उठणा	ठुआल	ठुआलना
उडक	उडकणा	डका	डकाणा
उघड	उघडना	घडेर	घडेरना
ओल	ओलना	रेल	रेलना
हेर	हेरना	रिहा	रिहाणा
हिश	हिशणा	शेल	शेलणा
हौग	हौगणा	गिहा	गिहाणा

(2) नाम धातुएं

परन्तु साधित धातुओं में मुख्य स्थान नामधातुओं का है। कुलुई में यह एक

महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यहाँ सज्ञा तथा विशेषण शब्दो से बड़ी सुगमता से क्रियाएँ बनती है, और आम बोलचाल मे बडे व्यापक रूप से प्रयोग म आती है। सज्ञा, विशेषण, तथा क्रिया-विशेषण पदो से मूलत केवल एक मात्र प्रत्यय के प्रयोग से नाम धातुएँ बनती है, तथा यह प्रत्यय '-इ-' है, जैसे—सज्ञा शब्द 'रात' से नामधातु 'राति' तथा क्रियारूप 'रातिणा' (रात हो जाना), माटा (मिट्टी) से माटिणा (मिट्टी बन जाना), इसी तरह विशेषण शब्द 'ढीला' से नामधातु 'ढीलि' तथा क्रिया रूप 'ढीलिणा' (ढीला हो जाना), क्रियाविशेषण शब्द 'पीछे' से नाम धातु 'पीछि' तथा क्रियारूप 'पीछिणा' (पीछे हो जाना या रह जाना) आदि। ऐसी नामधातुओ के कुछ और उदाहरण प्रस्तुत करना उचित होगा —

शब्द	नाम धातु—साधित क्रिया
(क) सज्ञापदो से—	
पियाशा 'प्रकाश'	पियाशिणा 'प्रकाश होना'
दाह 'दर्द'	दाहिणा 'बीमार होना'
क्रोध	क्रोधिणा 'क्रोध करना'
जौर 'ज्वर'	जौरिना 'ज्वर आना'
मिश 'गुस्सा'	मिशिणा 'गुस्स होना'
वशाऊ 'विश्राम'	वशाइणा 'विश्राम होना'
मढार 'भण्डार'	मढारिना 'देवते का मन्दिर म वापिस जाना'
निहारा 'अधकार'	निहारिना 'अधेरा होना'
शर्म	शर्मिणा 'शर्मा जाना'
शेला 'सर्दी'	शेलिणा 'सर्दी लगना'
झोख 'चिन्ता'	झोखिणा 'चिन्ता होना'
भूख	भूखिणा 'भूख लगना'
शोख 'प्यास'	शोखिणा 'प्यास लगना'
(ख) विशेषण शब्दो से—	
बिशका 'खाली'	बिशकिणा 'खाली होना'
पीढा 'तग'	पीढिणा 'तग होना'
निघा 'गर्म'	निघिणा 'गर्म होना'
बीभा 'निर्मल'	बीभिणा 'आकाश का साफ होना'
टाण्डा 'ठण्डा'	ठाण्डिणा 'ठण्डा होना'
पूरा	पूरिना 'पूरा होना'
खापर 'बूढ़ा'	खापरिना 'बूढ़ा हो जाना'
सियाणा बूढ़ा'	सियाणिना 'बूढ़ा हो जाना'
याणा 'बच्चा'	याणिना 'बचपन आना'
रोड 'विधवा'	रोडिणा 'विधवा हो जाना'

(ग) क्रिया-विशेषण से

आगे	आगरिना 'आगे निकल जाना'
पीछे	पीछिणा 'पीछे रह जाना'
थाले 'तले'	थालगिणा 'नीचे बैठ जाना'
हादर 'अदर'	हादरिना 'अदर हो जाना'
भेटी 'निकट'	भेटिणा 'निकट आना'
झीश 'प्रात काल'	झीशिणा 'प्रात होना'
त्रकाल 'त्रिकाल'	त्रकालिना 'सायकाल होना'

नाम धातुओ के सकर्मक रूप भी पूर्व नियमानुसार बनते हैं, जैसे बिशक्णा 'खाली होना' से बिशकेरना 'खाली करना', ढीलिणा 'ढीला होना' से ढलेरना 'ढीला करना', मिशिणा 'गुस्से होना' से मिशेरना 'गुस्सा दिलाना', ठाण्डिणा 'ठण्डा होना से ठण्डेरना ठण्डा करना', पीछिणा 'पीछे रहना' से पछेरना 'पीछे कर देना' आदि।

(घ) उपर्युक्त '-इ'-युक्त नाम धातुओं के अतिरिक्त कुछ मूलत सज्ञा शब्द ही उसी रूप मे धातु के रूप मे प्रयुक्त होते हैं, जैसे—चोपड 'मक्खन' से चोपड-ना 'मक्खन लगाना (रोटी आदि मे)', छौंदण 'मक्खन' से छौंद-णा 'मालिश करना', सोढ 'रिश्वत' से सोढना 'रिश्वत देना', बौर 'वर' से बौर ना 'वर नियत करना', पौहर 'पहरा' से पौहर-ना 'पहरा देना', गोठ 'स० ग्रन्थि' स गोठ णा 'गाठना', मूच स० 'मूत्र' मे मूच-णा 'पेशाव करना', स० वाट से बाड णा 'बाड लगाना'।

(3) अनुकरणात्मक धातुए—

कुलुई की साधित धातुओ मे अगला स्थान अनुकरणात्मक धातुओ का है। इनकी व्युत्पत्ति या तो एक ही ध्वनि के द्वित्व मे हुई है या पुनरुक्ति द्वारा हुई है। कुछेक प्रसिद्ध अनुकरणात्मक क्रियाओ के रूप इस प्रकार हैं—तडफडाइणा 'तडपना', लडफडाइना 'व्याकुल होना', थरथराइणा 'थर थर करना', फडफडाइणा 'फड फड करना', फडकणा 'फड फड करना', गिडकणा 'गिडगिडाना', हिंगशिणा 'हिचकी भरना', ठणकाणा 'ठनकाना', किलकिलाइणा 'व्याकुल होना', खिणकणा 'लुडक जाना', घरिंजणा 'गर्जन करना' आदि।

अकर्मक और सकर्मक

समस्त क्रियाए मूलत दो भागो मे विभक्त हैं—अकर्मक और सकर्मक। सिद्ध धातुए प्रमुखत अकर्मक होती हैं, जैसे डीणा, छिजणा, जीणा, झोडना आदि। परन्तु सभी सिद्ध धातुए अकर्मक नही हैं, कतिपय सकर्मक भी है। सज्ञा, विशेषण तथा क्रिया-विशेषण से बनी सभी नाम-धातुए प्राय अकर्मक हैं। इनमें से बहुत कम सकर्मक है, यद्यपि इन मूल नामधातुओ मे सकर्मक रूप भी बनते हैं।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है सिद्ध अकर्मक धातुओं से कई प्रकार से सकर्मक धातुए बनती हैं—(क) सिद्ध धातु में 'आ' प्रत्यय जोडने मे—'घट' से 'घटा',

'वन' से वना, 'वदल' मे 'वदला', 'सो' से 'सुआ', पी' से 'पिआ' आदि, (ख) 'ए' के सयोग मे 'छिप' मे 'छपे', 'भौक' मे 'भके', 'जोड' से 'जडे' आदि, (ग) 'एर' के जोडने से 'निभ' से 'निभेर', 'शौग' से 'शगेर'। नामधातुओ से सकर्मक रूप प्राय '—एर—' के सयोग से ही वनते हैं।

वाच्य

कुलुई मे कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य तीनो के रूप मिलते है। परन्तु वाच्य के नियम हिन्दी से भिन्न हैं। हिन्दी मे कर्मवाच्य रूप वनाते समय मूल क्रिया अपने भूतकालिक कृदन्त मे रहती है और उसके साथ 'जाना' क्रिया के विभिन्न रूपो का प्रयोग होना है। परन्तु कुलुई मे कर्मवाच्य रूप के लिए 'जाना' जैसी सहायक क्रिया की आवश्यकता नही होती। यहा हर क्रिया का अपना ही कर्मवाच्य रूप वनता है। कुलुई मे क्रियाओ के कर्मवाच्य रूप मूल धातु मे 'इ' प्रत्यय जोड़ने से वनते है, अर्थात 'इ' का सयोग मूल धातु के अन्त मे तथा साधारण क्रिया के 'ना' प्रत्यय के पहले होता है। जैसे—'पी' धातु का कर्तृवाच्य रूप 'पीणा' है, तथा पी' मे 'इ' के सयोग से 'पीइणा' कर्मवाच्य रूप वनता है 'पीया जाना'। इसी तरह 'जीणा' से 'जीइणा' (जीया जाना), 'खाणा' से 'खाइणा' (खाया जाना) आदि। कुछ अन्य रूप देना उचित होगा—

मूल धातु	कर्तृवाच्य रूप	कर्मवाच्य धातु	क्रिया
सो	सोणा	सोई	सोइणा
दे	देणा	देई	देइणा
काट	काटणा	काटि	काटिणा
शोट	शोटणा	शोटि	शोटिणा
मार	मारना	मारि	मारिना
छौग	छौशणा	छौगि	छौशिणा
शौग	शौगणा	शौगि	शौगिणा

कर्मवाच्य का यह '—इ—' युक्त रूप सभी स्थिति मे अपरिवर्तित रहता है। लिंग और वचन के लिए इसमे परिवर्तन नही आता।

कुलुई का यह कर्मवाच्य रूप 'इ' सस्कृत के अनुरूप है। सस्कृत मे धातु मे 'य' जोडने से कर्मवाच्य का रूप वनाया जाता था, जैसे—नियते, दीयते आदि। प्राकृत मे यह 'य' > इय—इय्य > ईअ मे वदला। अपभ्रश मे इसका रूप इज्ज > इज—ईज > ईजा > इअ मे परिवर्तित हुआ, और 'इअ' मे 'अ' के लोप से कुलुई 'इ' प्रत्यय की उत्पत्ति मानी जा सकती है।

हिन्दी मे कर्तृवाच्य रूप अकर्मक और सकर्मक दोनो प्रकार की क्रियाओं मे वनता है, परन्तु कर्मवाच्य रूप प्राय सकर्मक क्रिया से ही वनता है। कुलुई इस दृष्टि से हिन्दी से भिन्न है। यहा सकर्मक और अकर्मक दोनो क्रियाओ से कर्मवाच्य रूप वनता है। इस दृष्टि से कुलुई हिन्दी के भाववाच्य रूप के समरूप है। कुलुई मे अकर्मक क्रिया-

से कर्मवाच्य रूप इस प्रकार देखे जा सकते है 'होणा' से 'होइणा' (हुआ जाना), 'सोणा' से सोइणा (सोया जाना), जाणा से 'जाइणा' (जाया जाना)। इस प्रकार आधुनिक आर्यभाषाओं और विशेषत हिन्दी मे भूतकालिक कृदन्तीय रूप म 'जा' सहायक क्रिया के मेल स कर्मवाच्य रूप बनाने की जो प्रथा विद्यमान है, वह कुलुई म नही है। हिन्दी के वाक्यो 'मुझ से काम किया जाता है', 'उसम चिट्ठी नही लिखी जाती' तथा 'उससे सोया नही जाएगा', के कुलुई म क्रमश रूप इस प्रकार बनेंगे—'मेरे कोम केरिया सा', 'तेइरे चिट्ठी नी लिखिदी तथा 'तेईर नी सोइणा'। स्पष्ट है कि कुलुई मे 'जा' धातु या 'जाना' सहायक क्रिया का कर्मवाच्य के लिए प्रयोग नही होता। हिन्दी म कर्मवाच्य रूप बनाने के लिए प्राय सकर्मक धातु के भूतकालिक कृदन्त के आगे 'जाना' क्रिया के सब कालो और अर्थों म रूप जोडे जाते है, परन्तु कुलुई मे मूल क्रिया मे ही काल अर्थ और लिंग भेद स रूप बदलते है—हि० *खाया जाता है* > *कु० खाइया सा, धोई जाती है* > *कु० धोइया सा, पढे जात है* > कु० पौढिया सी, लिखा जाएगा > कु० लिखिला, काटे जाएगे > कु० काटिले आदि।

कुलुई मे कर्मवाच्य का प्रयोग बहुत मिलता है, परन्तु य प्रयोग प्राय भविष्यत् काल के लिए या निषेधात्मक वाक्य के लिए ही अधिक प्रचलित है, जैसे—

हिन्दी	कुलुई
1 उसे किताब दी जाएगी।	तेईब कताब देइली।
2 दूध के साथ भात खाया जाएगा।	दूधा सोग भौत खाइला।
3 रोटी भी न खाई गई।	रोटी भी नी खाउई।
4 धूप में बैठा नही जाता।	धूपा न नी बेशिदा।
5 बोझ उठाया नही जाता।	बोझा नी चौखिदा।

भूतकालिक स्थिति मे 'इ' प्रत्यय 'उ' मे बदलता है, जैसे पी से पीउआ पिया गया', उठ से उठुआ 'उठा गया', शोट स शोटुआ 'फेंका गया आदि।

कुलुई मे 'सकना क्रिया नहीं है और न ही इसका कोई और पर्यायवाची शब्द है। अत इसका भाव हमेशा *कर्मवाच्य रूप से व्यक्त किया जाता है तू यह काम नहीं* कर सकता' का भाव कुलुई मे 'तेरे ए कोम न केरिदा' से प्रकट होगा अर्थात 'तेरे स यह काम नही किया जाता।' इस दृष्टि मे कुलुई कर्मवाच्य-प्रधान बोली है—'वह पढ नहीं *सकता*' > कु० तेईरे नी पौढिदा। ऐसी स्थिति मे विशेषतया नकारात्मक वाक्य कर्मवाच्य ही होता है—तेरे नी जीइदा 'तेरे से नही जीया जाता', तईरे नी जीतिदा 'उससे नहीं जीता जाता' अर्थात 'वह जीत नही सकता', छोहरू रे नी नौचिदा 'लडके से नाचा नहीं जाता अर्थात 'लडका नाच नही सकता।' यद्यपि कुलुई म मैं नही लाऊगा' का मूल रूप 'मू नी आणना' है, परन्तु वाक्य का ऐसा रूप प्रचलित नही है। इसकी अपेक्षा 'मेरे नी आणिदा' अधिक लोक-प्रिय वाक्य है अर्थात 'मुझस नही लाया जाना।' अकर्मक क्रिया की स्थिति म भी कर्तृवाच्य की अपेक्षा कर्मवाच्य रूप अधिक प्रचलित है - राती नी सोइदा 'रात को सोया नही जाता (अर्थात रात को सो नही सकता), मुह री दाहिए नी हौसिदा 'मुह की दर्द से (के कारण) हसा नही जाता—हस नही सकता'। मूलत कुलुई

में यह स्थिति हिन्दी के भाववाच्य के अनुरूप है, परन्तु यहा 'जा' का प्रयोग नही होता है।

ऊपर 'साधित धातु' के अन्तर्गत यह लिखा जा चुका है कि कुलुई में एक मूल धातु की केवल एक ही प्रेरणार्थक क्रिया बनती है। हिन्दी की तरह दो नही बनती। परन्तु प्रत्येक मूल धातु तथा उसके प्रेरणार्थक रूप से अलग-अलग कर्मवाच्य रूप बनते हैं। निम्न सूची से इसका स्पष्टीकरण हो जाएगा—

मूल क्रिया	कर्म वाच्य रूप	प्रेरणार्थक क्रिया	कर्मवाच्य रूप
पीणा	पीइणा	पियाणा	पियाइणा
	(पिया जाना)	(पिलाना)	(पिलाया जाना)
जीणा	जीइणा	जियाणा	जियाइणा
	(जिया जाना)	(जीवित करना)	(जीवित किया जाना)
धोणा	धोइणा	धुआणा	धुआइणा
	(धोया जाना)	(धुलाना)	(धुलाया जाना)
सोणा	सोइणा	सुआणा	सुआइणा
	(सोया जाना)	(सुलाना)	(सुलाया जाना)
देणा	देइणा	दिआणा	दिआइणा
	(दिया जाना)	(दिलाना)	(दिलाया जाना)
बधणा	बधिणा	बधेरना	बधेरिना
	(बढ जाना)	(बढाना)	(बढाया जाना)
घटणा	घटिणा	घटेरना	घटेरिना
	(घट जाना)	(घटाना)	(घटाया जाना)
छूटणा	छूटिणा	छटेरना	छटेरिना
	(छूट जाना)	(छोडना)	(छोड देना)
डूबणा	डूबिणा	डबेणा	डबेइणा
	(डूब जाना)	(डबोना)	(डबोया जाना)
शुणना	शुणिना	शणिआणा	शणिआइणा
	(सुना जाना)	(सुनाना)	(सुनाया जाना)

कर्मवाच्य के रूप में प्राय कर्ता के सामर्थ्य होने या न होने का भाव प्रकट होता है। कर्ता के साथ सम्बन्धकारक का बहुवचन प्रत्यय 'रे' के बाद क्रिया का प्रयोग होता है—माण्हु रे नी केरिदा (आदमी से नहीं किया जाता)।

धातुरूपावली

सज्ञा, सर्वनाम और विशेषण की तरह धातुए भी वाक्य में प्रयुक्त होने पर अपना रूप बदलती है। ऐसा परिवर्तन प्राय लिंग, वचन, पुरुष, काल, वाच्य तथा प्रकार के आधार पर होता है। कुलुई धातुओं के रूप-भेद के लिए इन्हें चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है :—

1. श-कारान्त धातुएं
2. इकारान्त, प्रमुखत इकारान्त नाम धातुएं
3 अन्य सभी धातुएं, और
4 कुछ अपवाद ।

मूल रूप में सभी धातुओं (उपर्युक्त 3) के रूप एक ही प्रकार से निष्पन्न होते है, और वह प्रकार धातु में 'ऊ' जोड़ने से बनता है। जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में ही लिखा गया है धातु में 'णा' अथवा 'ना' जोड़ने से क्रिया का सामान्य रूप बनता है—खा से खाणा, पी से पीणा, मर से मरना आदि। धातु में मूल परिवर्तन 'ऊ' के जोड़ने से इसका भूतकालिक रूप बनता है, जैसे उठ से उठू (उठा), खा से खाऊ (खाया), पी से पीऊ (पिया), जी से जीऊ (जिया), ले से लेऊ (लिया), ने से नेऊ (ले गया), धो से धोऊ (धोया), ढो से ढोऊ (ढोया) आदि।

शकारान्त धातुओं की स्थिति में यह नियम सर्वत्र एक रूप से प्रचलित नहीं है। जहा 'पीश' से 'पीशू' (पीसा) रूप बनता है, वहा 'बेश' और 'पेश' 'बेशू' और 'पेशू' न होकर 'बेठा' (बैठा) और 'पेठा' (घुस गया) रूप बनते है। इस प्रकार शकारान्त धातुओं का परिवर्तन अकर्मक और सकर्मक होने पर निर्भर है। जो धातुएं सकर्मक हों उनका रूप अन्य धातुओं की तरह 'ऊ' के संयोग से बदलता है, और जो धातुएं अकर्मक हों उनकी स्थिति में 'श' प्राय 'ठा' द्वारा प्रतिस्थापित होता है—

	धातु	भूतकाल
(क) सकर्मक	पीश	पीशू (पीसा)
	चूश	चूशू (चूसा)
	घुश	घुशू (घिसा)
	टुश	टुशू (साफ किया)
	हेश	हेशू (चूल्हे पर चढ़ाया)
(ख) अकर्मक	बाश	बाठा (पशु या पक्षी बोला)
	बेश	बेठा (बैठा)
	न्हौश	न्हौठा (गया)
	रुश	रुठा (रूठा)
	पेश	पेठा (घुस गया)
	हिश	हिठा (बुझा)
	रिह्‌श	रिह्‌ठा (गुम हुआ)

जहा तक इकारान्त धातुओं का सम्बन्ध है, जिनमें प्रमुखत नाम धातुएं हैं, रूप-भेद कुछ अलग होता है। इन धातुओं का 'इ' प्राय 'उ' में बदलता है और फिर 'आ' का संयोग होता है। अर्थात इकारान्त धातुओं का 'इ' 'उआ' में बदल जाता है, जैसे—राति (ना) से रातुआ 'रात हो गई', निहारि (ना) से निहारुआ 'अन्धेरा हुआ', निहाइ (णा) से निहाउआ 'नहाया', गोभि (णा) से गोभुआ 'छिप गया', भूखि (णा) से भुखुआ 'भूख लगी', लौजि (णा) से लौजुआ 'शर्माया' आदि।

उपर्युक्त नियमों के कुछ अपवाद भी हैं। कुछ धातुएं ऐसी हैं जिनके रूप अपने अलग ढंग से निष्पन्न होते हैं। ये धातुएं हैं—दे (णा), सो (णा), मर (ना), जा (णा), हो (णा), एज (णा) तथा ओस (णा)। इनका रूप परिवर्तन क्रमशः इस प्रकार होता है —दे > **धीना** दिया', सो > **सुता** 'सोया', मर > मुँआ 'मरा', जा > **न्हौठा** 'गया' (जो मूल रूप में 'न्हौश' का भूतकालिक रूप है), हो > हुआ 'हुआ', एज > आऊ 'आया' तथा ओस से ओथा उतरा।

इन रूपों में लिंग, वचन तथा काल आदि के भेद आगे प्रकट हो जाएंगे।

कृदन्त (Participles)

जब धातु क्रिया की बजाय किसी अन्य अर्थ में प्रयुक्त होती है, तो उसे कृदन्तीय रूप कहा जाता है। कुलुई में धातुओं के कृदन्तीय रूप का बहुत प्रयोग होता है। ऐसे प्रयोग में धातु कई बार संज्ञा, विशेषण या क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त होती है। इनका विवरण नीचे प्रस्तुत है—

1. क्रियार्थक संज्ञा (Verbal Noun)

कुलुई में क्रियार्थक संज्ञा का बहुत प्रयोग होता है। धातु में 'णा' या 'ना' जोड़ने से क्रिया का जो सामान्य रूप बनता है, उसका मूल रूप में प्रयोग संज्ञा के समान ही होता है—मू **भौचना** खरा नी लागदा, 'मुझे नाचना अच्छा नहीं लगता'। यहां 'नाचना' क्रिया संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुई है अर्थात 'मुझे नाच अच्छा नहीं लगता।' इसी तरह तेईंवे **पौढना** नी एदा 'उसे पढना (पढाई) नहीं आता', खाणा नी रुचदा 'खाना (भोजन) पसन्द नहीं होता' आदि। इस दशा में क्रियार्थक संज्ञा पुल्लिंग के रूप में प्रयुक्त होती है और जब विभक्ति-प्रत्यय लगते हैं तो 'णा'-'ना' प्रायः 'णे'-'ने' में बदलते हैं—लौड़ने रा कोम नी औथी 'लड़ने (लड़ाई) का काम नहीं है', सोठणे मोंझे दिहाड़ा काढ्ढू 'सोचने (सोच) में ही दिन काटा'। क्रिया का यह रूप सामान्य भविष्य में प्रयुक्त होता है—मू जाणा 'मैं जाऊंगा'।

2 कर्तृवाचक संज्ञा (Agentive Noun)

जब धातु में '-णू या नू आला' जोड़ा जाए तो वह कर्तृवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है। लिखणू आला कुण थी 'लिखने वाला (लेखक) कौन था', चोरनू आला बे किछ नी मिलू 'चोरने वाले (चोर) को कुछ न मिला' आदि। वाक्य में प्रयोग होने पर 'आला' शब्द आकारान्त संज्ञा की तरह लिंग, वचन के अनुसार बदलता है, और तब इसका प्रयोग विशेषण के रूप में होता है—घाह काटणू आला मौरद, घाह काटणू आली बेटड़ी, घाह काटणू आले लोक आदि।

3. वर्तमानकालिक कृदन्त (Present Participle)

धातु में 'दा' जोड़ने से वर्तमानकालिक कृदन्त बनता है, अर्थात् **सोठणा क्रिया**

की **सोठ** धातु है और **सोठदा** इसका वर्तमानकालिक कृदन्त। इसी तरह बोल से बोलदा, उठ से उठदा, ढुण से ढुणदा। यह रूप मुख्यत विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होता है, और यह लिंग तथा वचन के अनुसार आकारान्त विशेषण की तरह वाक्य मे बदलता है, जैसे—**हुँडदा** शोहरू (चलता लडका), **हुँडदी** शोहरी (चलती लडकी/लडकिया), **हुँडदे** लोका (चलते लोग)। स्वरान्त धातुओ की स्थिति मे '-दा' से पूर्व अनुनासक आता है, जैसे—खा से खादा, पी से पींदा, दे से देंदा, धो से धोंदा आदि। वर्तमानकालिक कृदन्तीय रूप कई अन्य अवस्थाओ मे भी प्रयुक्त होता है। सामान्य सकेतार्थ काल का भाव इसी द्वारा प्रकट होता है, जैसे—हाऊ **सोंदा** ता तमाशा नी **हेरदा** 'मैं सोता तो तमाशा न देखता।' इसके अतिरिक्त जहा सयुक्त क्रियाओ का प्रयोग हो रहा हो तो पूर्व क्रिया का रूप वर्तमानकालिक कृदन्तीय हो जाता है, यथा—सो गला **ढुणदा** बेठा 'वह बातें करने बैठा', हाऊ मना-न सोठदा लागा 'मैं दिल मे सोचने लगा।' लिंग और वचन के आधार पर '-दा' प्रत्यय '-दी' तथा '-दे' म बदलता है।

4. भूतकालिक कृदन्त (Past (Partiple)

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, कुलुई मे भूतकालिक कृदन्त प्राय धातु मे 'ऊ' जोडने से बनता है, जैसे—खा (णा) से खाऊ 'खाया', शुण (ना) से शुणू 'सुना', हेर (ना) से हेरू आदि। अकर्मक श कारान्त धातुओ की स्थिति मे 'श' प्राय 'ठा' मे बदलता है, इकारान्त धातुओ की स्थिति मे 'इ' स्वर 'उआ' मे परिणत होता है, कुछ अपवाद है। यह पहले लिखा जा चुका है। पुल्लिग बहुवचन मे भूतकालिक कृदन्त 'ए' मे और स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन 'ई' म बदलता है।

भूतकालिक कृदन्त से सामान्य भूत, पूर्ण भूत, आसन्न भूत, सन्दिग्ध भूत, पूर्ण सकेतार्थक कालो की रचना होती है।

5. पुराघटित कृदन्त (Perfect Participle)

कुलुई मे पुराघटित कृदन्त के रूप दो तरह से बनते हैं, और दोनो समान रूप मे प्रचलित हैं।

(क) प्रथमत मूल धातु मे 'इरा' प्रत्यय जोडने से पुराघटित कृदन्त बनता है, यथा चुटिरा किरडा 'टूटा (हुआ) किलटा।' इकारान्त धातुओ की स्थिति म '-इरा' जोडने से पूर्व धातु का अन्तिम 'इ स्वर 'उ' मे बदल जाता है—'गोझि'-ना से 'गोझु-इरा।' यह विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होता है और आकारान्त विशेषण की तरह ही बदलता है—**चुटिरा** किरडा, **चुटिरी** पूला, चुटिरे टौल्हे, **बाहिरा** छेत 'बोया (हुआ) खेत,' बाहिरी क्यारी 'बोयी (हुई) क्यारी,' 'बाहिरे छेत 'बोये (हुए) खेत' आदि। वस्तुत रा-रे-री सम्बन्धकारक के प्रत्यय हैं, और सम्बन्धकारक प्रत्ययो से विशेषण बनना पहाडी की सभी बोलियो की विशेषता है। असल म इनको कर्मवाच्य के रूप माना जाना चाहिए, यथा—धोइरा कोट 'धोया गया कोट', पोढिरी कताब 'पढी गई किताब' आदि। स्पष्टत 'इरा प्रत्यय की उत्पत्ति सस्कृत के '-इत' मे सम्बन्धकारक

के सयोग से हुई है, यथा लिखित (पुस्तक) > लिखिअ + री > लिखिरी (पुस्तक) आदि।

(ख) पुराघटित कृदन्त का दूसरा रूप '-उदा' (हुदा) के सयोग से बनता है। '-उदा' प्रत्यय लिंग-वचन के अनुसार बदलता है। जैसे लिखुदा कागद 'लिखा (हुआ) कागज', लिखिदी कताब 'लिखी (हुई) किताब', लिखेदे पत्र 'लिखे (हुए) पत्र'। वस्तुत 'उदा' प्रत्यय 'हुदा' शब्द है जो हिन्दी 'हुआ' का कुलुई रूप है—सोठुदा > सोठुहुदा > सोया हुआ, बाहुदा < बाहु हुदा < बोया हुआ, पोढ़ुदा < पोढ़ हुदा 'पढ़ा हुआ' आदि।

6 पूर्वकालिक कृदन्त (Conjunctive Participle)

कुलुई मे पूर्वकालिक कृदन्त मूल धातु मे '-इया' प्रत्यय जोडने मे बनता है, जैसे 'खाणा' क्रिया की 'खा' धातु से पूर्वकालिक कृदन्त 'खाइया' (खा कर)। इसी तरह लिख-(ना) से लिखिया 'लिखकर', शुण (ना) से शुणिया 'सुनकर', ढ्रौड (ना) से ढ्रौडिया 'गिरकर', पी (णा) से पीइया 'पीकर'। इकारान्त धातुओं की स्थिति मे '-इया' प्रत्यय के सयोग से पूर्व मूल धातु का अन्तिम 'इ' स्वर 'उ' मे बदल जाता है, जैसे—गोझि (णा) से गोझुइया 'छिप करके', निहाइ (णा) से निहाउइया 'नहाकर', लौजि (णा) स लौजुइया 'लज्जित होकर' आदि।

इस 'इया' प्रत्यय की उत्पत्ति सस्कृत के पूर्वकालिक कृदन्त के प्रत्यय 'क्त्वा' से हुई है। सस्कृत मे धातुओ मे 'क्त्व' जोडने से पूर्वकालिक कृदन्त के रूप बनते हैं, जैसे 'भू' से 'भूत्व', 'गम' से 'गत्व' आदि। परन्तु यदि धातुओ के पहले उपसर्ग आदि हो तो क्त्वा' का ल्यप्' हो जाता है। 'क्त्व' का केवल 'त्व' और ल्यप्' का केवल 'या' रहता है, यथा—'भू' से 'भूत्व परन्तु 'अनुभू से 'अनुभूय', 'नी' से नीत्व' और विनी' से 'विनीय' आदि। कुलुई मे मूल 'क्त्व' रूप न रह कर उपसर्गीय 'ल्यप्' का 'य' प्रत्यय प्रचलित हुआ है। डॉ० उदयनारायण तिवारी इसकी उत्पत्ति यू मानते हैं—प्राचीन भारतीय आर्य भाषा दृश्य > म० भा० आ० देक्खिअ > आ० भा० आ० देखि[1]। इस प्रकार इससे कुलुई रूप 'देखिया बना।

7. मध्यकालिक कृदन्त (Transitional Participle)

कार्य की निरन्तरता का भाव प्रकट करने के लिए वर्तमानकालिक कृदन्त के पुल्लिग-बहुवचन के रूप का द्वित्व किया जाता है, यथा लिखदे लिखदे, बेशदे-बेशदे, उठदे-उठदे आदि। स्वरान्त धातुओ की स्थिति म यहा भी '-दे' प्रत्यय से पूर्व अनुनासिक प्रयुक्त होता है, जैस जा से जांदे जांदे (जाते-जाते), पी से पींदे पींदे, खांदे खांदे (खाते-खाते), निहाइंदे निहाइंदे (नहाते-नहाते), देंदे-देंदे (देते देते) आदि।

कालरचना

कुलुई मे विभिन्न कालो की अभिव्यक्ति मुख्यत दो तरह मे की जाती है—

1. डॉ० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ० 491.

(क) कुछ काल मूल क्रियाओ के रूपो से स्पष्ट होते हैं, (ख) शेष काल सहायक क्रिया के सहयोग से अभिव्यक्त होते हैं। उत्तरोक्त कालो मे मूलत. केवल एक क्रिया अर्थात् 'होणा' का सहायक-क्रिया के रूप मे प्रयोग होता है, परन्तु विभिन्न स्थितियो मे इसका रूप बदलता है। अत पहले इस पर ही विचार करना अधिक उचित होगा।

मूल रूप मे 'होणा' शब्द सामान्य भविष्य को प्रकट करता है, जैसे निहारा होणा 'अधेरा होगा', 'पाणी ठाण्डा होणा 'पानी ठण्डा होगा' आदि।

सामान्य वर्तमान मे 'हो' धातु 'सा' मे बदलता है। 'हो' सस्कृत √भ् धातु का हिन्दी रूप 'हो (ना)' ही है—भव्>भो>हो। परन्तु 'सा' सस्कृत के √अस् रूप से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका बहुवचन रूप 'सी' है, अत —स० अस्ति>अस्सि>सी (कुलुई म आदि स्वर का लोप होता है, जैसाकि पहले ही 'स्वर ध्वनि' म स्पष्ट किया गया है)। 'सा' शब्द मे केवल वचन के आधार पर ही परिवर्तन आता है, लिंग के आधार पर कोई परिवर्तन नही आता, जैसे—शोहरू सा 'लडका है', शोहरी सा 'लडकी है', परन्तु कुत्ते/भेडा सी 'कुत्ते/भेडें हैं।' इस प्रकार सामान्य वर्तमान के रूप इस प्रकार होंगे—

	एकवचन	बहुवचन
'मैं हू' आदि—1	हाऊँ सा	आसे सी
2	तू सा	तुसे सी
3	सो सा	त सी

प्रश्नवाचक वाक्य मे भी यही रूप रहते हैं, यथा—कुण सा 'कौन है ?' कुणा सी 'कौन हैं ?' परन्तु निषेधात्मक अथवा नकारात्मक भाव मे 'सा' और 'सी' रूप नही रहते। तब रूप 'नाथी' बनता है, जो स्थान-भेद के अनुसार 'नी आथी' 'नो औथी' या 'नाथी' मे प्रयुक्त होता है। 'नाथी' की उत्पत्ति सस्कृत 'नास्ति' से स्पष्ट है, यथा—नास्ति>नात्थि>नाथी। इसमे न लिंग के और न ही वचन के आधार पर कोई विकार आता है, जैसे—

'मैं नही हू' आदि—

1 हाऊ नी औथी	आसे नी औथी
2. तू नी औथी	तुसे नी औथी
3. सो नी औथी	ते नी औथी

भूतकाल मे इसका रूप 'थी' बनता है। इसकी उत्पत्ति सस्कृत 'स्थित' से जानी जा सकती है—स्थित>स्थिद>थिअ>थी। 'थी' मे लिंग या वचन के आधार पर किसी तरह का विकार नही आता। सभी स्थिति मे समान रूप से अपरिवर्तित रहता है, जैसे—हाऊ थी, आसे थी, तू थी, तुसे थी, सो थी, ते थी।

सम्भाव्य म रूप 'होआ' बन जाता है। 'होआ' शब्द दोनो लिंग और वचन के आधार पर बदलता है। बहुवचन पुल्लिंग मे 'होए' तथा स्त्रीलिंग एकवचन और बहुवचन मे 'होई'।

अब सभी काल रचनाओ का नीचे क्रम मे विवरण दिया जाता है।

1. वर्तमान आज्ञार्थ

क्रिया के शुद्ध धातु रूप से अभिव्यक्त होने वाला कुलुई काल वर्तमान आज्ञार्थ है। इसकी रचना मे न धातु मे कोई विकार आता है, न किसी सहायक क्रिया की आवश्यकता होती है। परन्तु इसके रूप कुलुई मे केवल मध्यम पुरुष में ही मिलते हैं, जैसे— तू चल, तू लिख, तू पढ आदि। उत्तम पुरुष म इससे आज्ञा का भाव नही होता, बल्कि केवल अनुमति अपेक्षित होती है, या इच्छा अभिव्यक्त होती है, जैसे हाऊ चलनू 'मैं चलू' हाउ पढनूँ 'मैं पढू' आदि। इसका भाव है कि 'मैं चलन/पढन की अनुमति चाहता हू' या 'मैं चलना/पढना चाहता हू'। अन्य पुरुष मे इससे आज्ञा और अनुमति दोनों प्रकट होते हैं, परन्तु इसका भाव पूर्ण वर्तमान न रहकर भविष्यत् की ओर झुकना है जैसे 'सो पढला का अर्थ प्राय 'वह पढेगा' अधिक है 'वह पढे' कम। इस तरह पूर्ण रूप इस प्रकार होते है —

'मैं उठू' आदि—

एकवचन	बहुवचन
हाऊ उठनू	आसें उठाम
तू उठ	तुसें उठा
सो उठला	ते उठन

इन रूपों म से मध्यमपुरुष एकवचन तथा उत्तमपुरुष बहुवचन के रूप सस्कृत के अनुरूप हैं। सस्कृत म भी इनके रूप क्रमश पठ (तू पढ) तथा पठाम (हम पढ़ें) होते हैं।

2 सामान्य वर्तमान

मूल धातु म 'आ' जोडन से कुलुई का 'सामान्य वर्तमान' बनता है, परन्तु साथ ही सहायक क्रिया 'हो' का सामान्य वर्तमान रूप 'सा' का भी सयोग होता है, जैसे 'चल' धातु मे 'आ' जोडने से 'चला' म 'सा के सयोग से 'चला सा' का अर्थ है 'चलता है'। इसी तरह 'सोठा सा' (सोचता है), 'पढा सा' (पढता है)। लिंग के आधार पर इसम कोई परिवर्तन नही आता, जैस—छोहरू लिखा सा 'लडका लिखता है' और छोहरी लिखा सा 'लडकी लिखती है'। परन्तु, वचन के आधार पर बहुवचन म 'सा' के स्थान पर 'सी' बनता है —

पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग

'मैं उठता हू आदि...

एकवचन	बहुवचन
हाऊ उठा सा	आमें उठा सी
तू उठा सा	तुमें उठा सी
सो उठा सा	त उठा सी

आजकल के लेखकों को आकारान्त धातुओ की स्थिति मे इस काल की अभिव्यक्ति मे भूल रहती है। वे 'खाआ सा' को प्राय 'खा सा' लिखते हैं, या कुछ लेखक किंचित आगे निकलकर प्राय 'खाऽ सा' लिख देते हैं। स्पष्टत ये दोनो रूप गलत हैं: ऊपर लिखा गया है कि सामान्य वर्तमान का प्रत्यय 'आ' है, जिसकी उत्पत्ति प्राचीन भारतीय भाषा से इस प्रकार सम्भव है—स० चलति>प्रा० चलदि>अप० चलइ>कु० चला। चूंकि खाना, जाना, बनाना, सिखाना आदि क्रियाओ के धातु क्रमश खा, जा, बना, सिखा हैं अत 'आ' जोडने से इनके सामान्य वर्तमान रूप क्रमश खाआ सा, जाआ सा, बणाआ सा, सखाआ सा होने चाहिए। यदि उक्त 'बणाआ सा' को 'बणा सा' लिखा जाए (बनाऽ तो कोई रूप नही हो सकता) तो इसका अर्थ होगा 'बणाता है' न कि 'बनाता है'।

सकर्मक क्रिया कर्तृ वाच्य मे भी यही रूप बनते हैं। कोई परिवर्तन नही आता—सो कताब पढा सा 'वह किताब पढता है', ते कताब पढा सी 'वे किताब पढते है' आदि।

3 अपूर्ण भूत

सामान्य वर्तमान मे मूल क्रिया का जो रूप रहता है, अपूर्ण भूत मे भी वही रूप रहता है, केवल सहायक क्रिया का भूतकालिक रूप इसके साथ जुडता है। अर्थात मूल धातु मे 'आ' जोडकर तथा फिर 'थी' के सयोग से अपूर्ण भूत की रचना होती है, जैसे—'पढ धातु से 'पढा थी' (पढता था), 'सो' धातु से 'सोआ थी' (सोता था), पी' धातु से 'पीआ थी' (पीता था, परन्तु श्रुति के कारण पिया थी)। यह रूप सभी लिंग, वचन तथा पुरुष मे समान रहता है। किसी तरह का इसमे परिवर्तन नही आता—

पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग, एकवचन तथा बहुवचन

'मैं उठता था' आदि—

हाऊ (आसें) उठा थी
तू (तुसें) उठा थी
सो (ते) उठा थी

सकर्मक क्रिया कर्तृ वाच्य रूप भी इसी तरह समान रहते हैं—शोहरू कताब पढा थी (लडका/लडके किताब पढता/पढते थे), शोहरी किताब पढा थी (लडकी/लडकियाँ *किताब पढती थी/थी*)।

4 सदिग्ध वर्तमान

सदिग्ध वर्तमान मे मूल क्रिया का ठीक वही रूप रहता है, जो सामान्य वर्तमान काल का है, परन्तु सदेह की अभिव्यक्ति सहायक क्रिया के बदले रूप से होती है। उसमे सहायक क्रिया 'सा' की बजाय 'होला' प्रयुक्त होता है। 'होला' के रूप लिंग और वचन दोनो आधार पर बदलते है, यथा-खाआ होला 'खाता होगा', खाआ होली 'खाती

होगी', खाआ होले 'खाते होंगे' । सभी पुरुषो मे पूर्ण रूप इस प्रकार बनेंगे —

पुल्लिग

'मैं उठता हूगा' आदि—

एकवचन	बहुवचन
हाऊ उठा होला	आसें उठा होलें
तू उठा होला	तुसें उठा होलें
सो उठा होला	ते उठा होलें

स्त्रीलिंग

हाऊ उठा होली	आसें उठा होली
तू उठा होली	तुसें उठा होली
सो उठा होली	ते (तिउआ) उठा होली

इस काल मे सकर्मक क्रिया कर्तृ वाच्य रूप भी इसी प्रकार बनते हैं। कर्म स्त्री-लिंग हो या पुल्लिग मूल तथा सहायक क्रियाए कर्म के आधार पर नही बदलती, प्रत्युत कर्ता के लिगवचन के आधार पर ही केवल सहायक क्रिया के रूप मे परिवर्तन आता है, यथा—घोडा घाह खाआ होला 'घोडा घास खाता होगा', घोडी घाह खाआ होली 'घोडी घास खाती होगी', घोड़ें घाह खाआ होलें 'घोडे घास खाते होंगे' । स्पष्ट है कि हिन्दी मे कर्ता के लिंग-वचन के आधार पर मूल क्रिया भी वैसे ही बदलती है, जैसे सहायक क्रिया। परन्तु कुलुई म केवल सहायक क्रिया के रूप ही बदलते हैं, मूल क्रिया समान रहती है।

5 अपूर्ण संकेतार्थ

अपूर्ण सकेतार्थ मे मूल क्रिया सामान्य वर्तमान स्थिति मे रहती है, परन्तु सहायक क्रिया का रूप 'हुदा' (होता) बनता है। 'हुदा' का रूप लिंग और वचन के आधार पर बदलता है —

पुल्लिग

'मैं उठता होता' आदि—

एकवचन	बहुवचन
हाऊ उठा हुदा	आसें उठा हुदें
तू उठा हुदा	तुसें उठा हुदें
सो उठा हुदा	ते उठा हुदे

स्त्रीलिंग

हाऊ उठा हुदी	आसें उठा

तू उठा हुंदी	तुमें उठा हुंदी
सो उठा हुंदी	ते उठा हुंदी

'हुंदा' की व्युत्पत्ति संस्कृत 'भवन्त्' से स्पष्ट है—सं० भवन्त्>भवन्दो>होन्दो>हुंदा।

6. सामान्य भूत

कुलुई में सामान्य भूत पुल्लिंग, एकवचन धातु में 'ऊ' जोड़ने से अभिव्यक्त होता है। पुल्लिंग बहुवचन में 'ऊ'>एँ में बदलता है। स्त्रीलिंग, एकवचन में 'ऊ'>ई में बदलता है, और बहुवचन में भी यही रूप रहता है, *अर्थात् स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन* में समान रूप रहते हैं —

'मैं उठा' आदि—

एकवचन पु०/स्त्री	बहुवचन पु०/स्त्री
हाऊ उठू/उठी	आसें उठें/उठी
तू उठू/उठी	तुसें उठें/उठी
सो उठू/उठी	ते उठें /उठी

सकर्मक कर्तृवाच्य में क्रिया कर्ता के लिंग-वचन के भेद पर नहीं बदलती। कर्ता किसी लिंग या वचन में हो क्रिया के सामान्य रूप पर अन्तर नहीं आता, जैसे—मैं/ते/तेइएँ/आसें/तुसें/तिन्हें लिखू। परन्तु सामान्य भूत में क्रिया कर्म के लिंग तथा वचन के आधार पर बदलती है, जैसे—मैं/आसें फौल खाऊ (मैं/हमने फल खाया), मैं/आसें रोटी खाई (मैं/हमने रोटी खाई), मैं/आसें बूटे काटें (मैं/हमने वृक्ष काटे) आदि।

7 आसन्न भूत

सामान्य भूत के रूपों के आगे सहायक क्रिया 'सा' के संयोग से आसन्न भूत बनता है। बहुवचन में 'सा' का बहुवचन रूप 'सी' का प्रयोग होता है :—

एकवचन पु०/स्त्री	बहुवचन पु०/स्त्री
हाऊ उठू सा/ उठी सा	आसें उठें सी/उठी सी
तू उठू सा/उठी सा	तुसें उठें सी/उठी सी
सो उठू सा/उठी सा	ते उठें सी/तिउआ उठी सी

सामान्य भूत की तरह ही आसन्न भूत में भी कर्तृवाच्य स्थिति में क्रिया और सहायक क्रिया कर्ता के लिंग वचन के अनुसार नहीं, प्रत्युत कर्म के लिंग वचन भेद के अनुसार परिवर्तित होती हैं—मैं/आसें/तें/तुसें/तेईए/तिन्हें **भौत खाऊ** सा, मैं/आसें/तें/तुमें/तेईएँ/तिन्हें **रोटी खाई** सा, मैं/आसें/तें/तुमें/तेईएँ/तिन्हें बूटें काटें सी।

8 पूर्ण भूत

सामान्य भूत के वाक्य में 'थी' जोड़ने से पूर्ण भूत की अभिव्यक्ति होती है। सकर्मक तथा अकर्मक क्रिया के सामान्य भूत में लिंग और वचन के आधार पर जो रूप

बनते हैं, उनमें 'हो (ना)' सहायक क्रिया के भूतकालिक रूप 'थी' के संयोग से ही पूर्ण-भूत बनता है। 'थी' का रूप लिंग और वचन के आधार पर नहीं बदलता, हिन्दी की तरह थे या था जैसा परिवर्तन नहीं आता—

एकवचन पु०/स्त्री०	बहुवचन पु०/स्त्री०
हाऊ उठू थी/उठी थी	आसें उठें थी/उठी थी
तू उठू थी/उठी थी	तुमें उठें थी/उठी थी
सो उठू थी/उठी थी	ते उठें थी/तिउआ उठी थी

9. संदिग्ध भूत

कुलुई के संदिग्ध भूत की अभिव्यक्ति 'होला' सहायक क्रिया के संयोग से होती है। 'होला' सहायक क्रिया पुल्लिंग बहुवचन में 'होलें' तथा स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन में 'होली' में बदलती है . .

एक वचन पु०/स्त्री०	बहुवचन पु०/स्त्री०
हाऊ उठू होला/उठी होली	आसें उठें होलें/उठी होली
तू उठू होला/उठी होली	तुसें उठें होलें/उठी होली
सो उठू होला/उठी होली	ते उठें होलें/तिउआ उठी होली

सकर्मक क्रिया कर्तृवाच्य रूप में मूल क्रिया और सहायक क्रिया 'होली' के रूप कर्म के लिंग और वचन के अनुसार बदलते हैं —

कर्म पुल्लिंग, एकवचन	कर्म स्त्रीलिंग, एकवचन
मैं/आसें भौत खाऊ होला	मैं/आसें रोटी खाई होली
तें/तुसें भौत खाऊ होला	तें/तुसें रोटी खाई होली
तेइएँ/तिन्हें भौत खाऊ होला	तेईएँ/तिन्हें रोटी खाई होली
कर्म पुल्लिंग, बहुवचन	**कर्म स्त्रीलिंग बहुवचन**
मैं/आसें छेत निडें होलें	मैं/आसें शाडी निडी होली
तें/तुसें छेत निडें होलें	तें/तुसें शाडी निडी होली
तेईए/तिन्हें छेत निडें होलें	तेईए/तिन्हें शाडी निडी होली

10. पूर्ण संकेतार्थ

सामान्य भूत के मूल क्रिया के रूपों के साथ सहायक क्रिया 'होना' के परिवर्तित रूप 'हुंदा' के संयोग से पूर्ण संकेतार्थ की रचना होती है—

पुल्लिंग		स्त्रीलिंग
एकवचन	बहुवचन	एक/बहुवचन (समान)
हाऊ उठू हुँदा	आसें उठें हुँदें	हाऊ/आसें उठी हुँदी
तू उठू हुंदा	तुसें उठें हुँदें	तू/तुसें उठी हुँदी
सो उठू हुँदा	ते उठें हुँदे	सो/तिउआ उठी हुंदी

सकर्मक क्रिया कर्तृवाच्य में मूल क्रिया और सहायक क्रिया कर्ता के लिंग-

वचन के अनुसार नही, बल्कि कर्म के लिंग तथा वचन के अनुसार बदलती हैं, जैसे—मैं/आसे̃/तैं/तुसे̃/तिईएँ/तिन्हें मौत खाऊ हुदा, मैं/आसे̃/तैं/तुसे̃/तिईएँ/तिन्हें रोटी खाई हुँदी, मैं/आसे̃/तैं/तुसे̃/तिईएँ/तिन्हें छेत निडे̃ हुँदे̃।

11. सामान्य संकेतार्थ

सामान्य सकेतार्थ धातु मे 'दा' जोडने से प्रकट होता है, जैसे—पूछ से पूछदा, छोट से छोटदा आदि। परन्तु यदि धातु स्वरान्त हो तो मूल धातु और 'दा' के बीच अनुस्वार आ जाता है, यथा—खा से खादा, पी से पीदा, सो से सोदा। लिंग और वचन के आधार पर 'दा' मे परिवर्तन आता है, पुल्लिग बहुवचन मे 'दे̃' तथा स्त्रीलिंग एक वचन तथा बहुवचन मे 'दी'—

पुल्लिग		स्त्रीलिंग
एकवचन	बहुवचन	एकवचन/बहुवचन (समान)
हाऊ उठदा	आसे̃ उठदे	हाऊ/आसे̃ उठदी
तू उठदा	तुसे̃ उठदे̃	तू/तुसे̃ उठदी
सो उठदा	ते उठदे̃	सो/तिउआ उठदी

सकर्मक कर्तृवाच्य मे भी 'दा' मे परिवर्तन कर्ता के अनुसार ही आता है, कर्म के अनुसार नही, यथा—कुत्ता मास खादा, कुत्ती मास खाँदी, कुत्ते मास खादे̃, कुत्ता रोटी खादा, कुत्ती रोटी खादी आदि।

12 सम्भाव्य भविष्य

मूल धातु मे 'ला' जोडने से सम्भाव्य भविष्य की अभिव्यक्ति होती है। वचन और लिंग के आधार पर 'ला' प्रत्यय मे परिवर्तन आता है। इसमे सम्भाव्य रहता है—सो घौराबे̃ जाला 'वह घर को जाए'। अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं मे 'ला' एक ही नियम से बदलता है—

	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
एक वचन	बहुवचन	एक/बहुवचन
हाऊ उठला	आसे̃ उठले̃	हाऊ/आसे̃ उठली
तू उठला	तुसे̃ उठले̃	तू/तुसे̃ उठली
सो उठला	ते उठले̃	सो/तिउआ उठली

13. सामान्य भविष्य

कुलुई में सामान्य भविष्यत् हिन्दी के अनुरूप नही है। इस मे गा, गे, गी का प्रयोग नही मिलता, और न ही कोई और प्रत्यय है। 'ना' या 'णा' युक्त धातु का सामान्य-क्रिया रूप ही सामान्य भविष्यत् प्रकट करता है, जिसका हिन्दी मे ऐसे से भाव प्रकट होता है, जैसे 'शहर जाना है', 'पानी पीना है', 'कपडे धोने हैं' आदि। वास्तव मे आदिम भारोपीय भाषा मे भविष्यत् नही था, और भविष्य की रचना वर्तमान काल की

तरह ही रहती थी। कुलुई में भी मूल क्रिया ही इस काल के भाव को व्यक्त करनी है।

इस सम्बन्ध में एक विशेषता यह है कि सामान्य भविष्यत् में कर्ता अपने अविकारी रूप में प्रयुक्त नहीं होता, अर्थात् 'हाऊ उठणा' या 'तू उठणा' ऐसा प्रयोग नहीं होता। इस में कर्ता सर्वदा अपने विकारी रूप में रहता है, जैसे 'मूँ उठणा' (मैं ने उठना है), 'तौ उठणा' (तू ने उठना है), 'तेई उठणा' (उसने उठना है)। वास्तव में यह कर्म-वाच्य रूप है और करणकारक का प्रयोग होता है, जैसे मूँ उठणा 'मुझ द्वारा उठा जाएगा', तिन्हा उठणा 'उन द्वारा उठा जाएगा।' यही कारण है कि 'णा' या 'ना' का रूप कर्म के लिंग वचन के आधार पर बदलता है, कर्ता के लिंग-वचन अनुसार नहीं :—

कर्म पुल्लिंग एक वचन	कर्म पुल्लिंग बहुवचन
मूँ/आसा बूटा काटणा	मूँ/आसा बूटे काटणे
तौ/तुसा बूटा काटणा	तौ/तुसा बूटे काटणे
तेई/तिन्हाँ बूटा काटणा	तेई/तिन्हाँ बूटे काटणे

कर्म स्त्रीलिंग एक-बहुवचन समान

मूँ/आसा बूटी काटणी
तौ/तुसा बूटी काटणी
तेई/तिन्हा बूटी काटणी

स्पष्ट है कि जहाँ हिन्दी में 'मैं बूटा (वृक्ष) काटूंगा', 'हम वृक्ष काटेंगे' रूप चलते हैं वहाँ कुलुई में 'मूँ बूटा काटणा', 'आसा बूटा काटणा' सामान्य भविष्य प्रकट करते हैं, अर्थात् 'मैं/हम ने वृक्ष काटना है' या 'मुझ/हमारे द्वारा वृक्ष काटा जाएगा।'

पुराघटित कृदन्त (Perfect Participle) से काल रचना

पहले लिखा जा चुका है, कि कुलुई में भूतकालिक कृदन्त (Past Participle) के अतिरिक्त पुराघटित कृदन्त भी प्रचलित है। ऊपर भूतकालिक कृदन्त से पाँच कालों की रचना का उल्लेख किया गया है —

(1) सामान्य भूत—सो उठू 'वह उठा'
(2) आसन्न भूत—सो उठूसा 'वह उठा है'
(3) पूर्ण भूत—सो उठू थी 'वह उठा था'
(4) संदिग्ध भूत—सो उठू होला 'वह उठा होगा'
(5) पूर्ण संकेतार्थ—सो उठू हुन्दा 'वह उठा होता'

परन्तु यदि सच पूछा जाए तो इनमें से सामान्य भूत को छोड़ कर शेष चार का प्रयोग उस कदर आम प्रचलित नहीं है। इनका प्रयोग अवश्य है, परन्तु इनके साथ किञ्चित अनिश्चितता, संदिग्धता या इच्छा-अनिच्छा का भाव सर्वदा विद्यमान रहता है, जैसे 'सो उठू सा' का भाव यूँ लगता है कि 'वह उठा तो है। इसी तरह 'हाऊ उठू थी' में यह संदिग्धता सी है कि 'मैं उठा था परन्तु—।' वस्तुत भूतकालिक कृदन्त का सामान्य प्रयोग तो जरूर है, परन्तु आम बोल-चाल में वाक्य अपने-आप में पूर्ण

होगा आगे पीछे का सम्पर्क अवश्य रहता है।

अत उपर्युक्त पांच कालो की अभिव्यक्ति मूलत पुराघटित कृदन्त से होती है। आम बोल-चाल में पुराघटित कृदन्तीय प्रयोग इतना अधिक है, कि भूतकालिक कृदन्तीय रूप प्राय दबा सा रहता है। पहले लिखा जा चुका है कि पुराघटित कृदन्त के दो प्रत्यय हैं— 'इरा' और 'उदा'। कहीं-कहीं उदा में अनुस्वार भी रहता है, जैसे 'उंदा'। यद्यपि इन का प्रयोग समान रूप से प्रचलित है, फिर भी 'इरा' वाला रूप (जैसे उठिरा, लिखिरा, शुणिरा) लगवादी म अधिक प्रचलित है, और शेष स्थानो ऊझी, रूपी आदि म 'उदा' युक्त रूप (उठुदा, लिखुदा, शुणुदा) का प्रचलन है। वैसे 'इरा' में हिन्दी 'जाना' के भूतकालिक रूप 'गया' और 'उदा' मे 'होना' के भूतकालिक रूप 'हुआ' का भाव समाविष्ट है, यथा—खाइरा 'खाया (गया) है', पीइरा 'पिया (गया) है, तथा खाउदा 'खाया हुआ', पीउदा 'पिया हुआ' आदि।

इस प्रकार पुराघटित कृदन्त से उन सभी कालो की रचना होती है,' जो भूतकालिक कृदन्त से बनते हैं, जैसे—

(1) सामान्य भूत—'मैं उठा' आदि—

हाऊ उठिरा (उठुदा)	आसें उठिरें (उठेदें)
तू उठिरा (उठुदा)	तुसें उठिरें (उठेदें)
सो उठिरा (उठुदा)	ते उठिरें (उठेदें)

(2) आसन्न भूत—'मैं उठा हूँ' आदि

हाऊ उठिरा (उठुदा) सा	आसें उठिरें (उठेदें) सी
तू उठिरा (उठुदा) सा	तुसें उठिरें (उठेदें) सी
सो उठिरा (उठुदा) सा	ते उठिरें (उठेदें) सी

(3) पूर्ण भूत—'मैं उठा था' आदि—

हाऊ उठिरा (उठुदा) थी	आसें उठिरें (उठेदें) थी
तू उठिरा (उठुदा) थी	तुसें उठिरें (उठेदें) थी
सो उठिरा (उठुदा) थी	ते उठिरें (उठेदें) थी

(4) संदिग्ध भूत—'मैं उठा हूगा' आदि—

हाऊ उठिरा (उठुदा) होला	आसें उठिरें (उठेदें) होलें
तू उठिरा (उठुदा) होला	तुसें उठिरें (उठेदें) होलें
सो उठिरा (उठुदा) होला	ते उठिरें (उठेदें) होलें

(5) पूर्ण संकेतार्थ—'मैं उठा होता' आदि—

हाऊ उठिरा (उठुदा) हुदा	आसें उठिरे (उठेदें) हुदें
तू उठिरा (उठुदा) हुदा	तुसें उठिरे (उठेदें) हुदें
सो उठिरा (उठुदा) हुदा	ते उठिरे (उठेदें) हुदें

अध्याय—15

अव्यय

जैसा कि पहले लिखा गया है कुलुई म विभक्ति प्रत्ययो का प्राय ह्रास हो रहा है। स्पष्टतया केवल बॅं, एँ और न विभक्ति प्रत्यय प्रचलित हैं। विभि न विभक्तियो का अर्थ पूर्ण करने के लिए अव्ययो से काम लिया जाता है। अन्य भारतीय आर्य भाषाओ की तरह ही कुलुई में भी सज्ञा पदो, सर्वनामो तथा विशेषणो म अव्यय बने हैं। इन मे अधिकाश अव्यय सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश स उत्तराधिकार म आए हैं। इनका सामान्य परिचय नीचे दिया जाता है —

स्थानवाचक क्रियाविशेषण (Adverb of place)

कुलुई म निम्नलिखित स्थानवाचक अव्यय विशेष रूप स प्रचलित है —

ओखें (यहा), तोखें (वहा), कोखें (कहाँ), जोखें (जहाँ), जोखें कोखें (जहाँ-कहीं) इसे (इधर) तिसें (उधर), किसें (किधर) जिसें (जिधर) ओरिएँ (इस ओर), पोरिएँ (उस ओर), ओरें-पारें (आस-पास), आगें या आगिएँ (आगे), पीछें या पीछिएँ (पीछे) सारान (सर्वत्र), थालें (तले) हेठें (नीचे) बुहें (नीचे), परयालें (ऊपर) ऊझें (ऊपर), पाघें (उपर) घामें (सामने), हादरें (अदर), मोझें (बीच), (भीतर), मीथरें बाहरें या बाहरिएँ (बाहर), नेड (निकट), भेटी (निकट), दूर (दूर), उआर (अवार), पार (पार), धीरें (तरफ), इसें धीरें, तिसें धीरें, किसें धीरें, पीछिएँ धीरें, चारी धीरें आदि।

ओखें, तोखें, कोखें आदि रूप स्पष्टतया अत्र, तत्र, कुत्र आदि सस्कृत रूपों से बने हैं, और कक्ष के योग से निष्पन्न हुए प्रतीत होते हैं—जैसे एतत्कक्षम् से ओखें। इनके साथ साथ कुलुई मे इन के प्राकृत रूप भी प्रचलित हैं, जैसे—प्रा० एतहे से एथें, तेतह से तेथें, केतहे से केथें। कोखें के लिए एक अन्य शब्द 'कों' भी है, जो सस्कृत शब्द कुत्र > प्राकृत कुतअ > अपभ्रश कउ का विकसित रूप है। तोखें, ओखें आदि का ऐसा रूप प्रचलित नही है। 'इसें और तिसें तथा ओरिएँ और पोरिएँ क्रमश एक दूसरे के पर्यायवाची हैं, परन्तु जहाँ ओरिएँ-पोरिएँ सयुक्त अव्यय प्रचलित हैं, इसें-तिसें एस अव्यय नहीं हैं, जैसे—'ओरिएँ पोरिएँ भाल' (इधर-उधर देख) के स्थान पर इसें-तिसें भाल' प्रयोग मे नहीं आता। ओरें-पोरें इन के सक्षेप रूप हैं। इस

रूप के शब्द 'किस ओर' और जिस ओर' के लिए प्रचलित नहीं है। जिसें-किसें संयुक्त अव्यय जहाँ-कहीं के अर्थ मे होता है। इस अर्थ मे यह जोवें-कोवें संयुक्त अव्यय का पर्यायवाची है—जिसें-किसें (या जोते-कोते) मत बेशदा (जहाँ कहीं न बैठ)। निकट के लिए 'नेड' और 'भेटी' दो शब्द हैं। इस अर्थ मे ये एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं। नेड (या भेटी) ऍंह एज (जरा निकट आ)। नेड जाइया (या भेटी जाइया) शुण (निकट जा कर सुन)। परन्तु दोनो मे कुछ अन्तर भी है। नेड दूर का विपरीतार्थक शब्द है, भेटी नही है, जैसे—तेरा घौर नेड सा की दूर (तेरा घर नजदीक है या दूर) यहाँ तेरा घौर भेटी सा की दूर कहना ठीक नही।

कुलुई मे नीचे के लिए हेठें, थालें, बुन्हें तीन शब्द हैं। इन मे थालें स्थिति वाचक है और 'बुन्हें' दिशावाचक। दोनो एक दूसरे का स्थान नही ले सकते—'बुन्हें-बें जा की बजाए 'थालें बें जा' कहना अधिक उचित न होगा। थालें हिन्दी शब्द तले का पर्यायवाची है। 'हेठें' अन्य दोनो का स्थान ले सकता है।" बुन्हें बें जा" के लिए "हेठें बें जा" कहना ठीक है। इसी तरह 'पैंनसल कतावा हेठें सा' की जगह 'पैंनसल कतावा थालें सा कहना भी उचित है। इसी प्रकार ऊपर के लिए भी तीन शब्द हैं—ऊझें, परयालें, पाधें। 'ऊझें' दिशावाचक है और 'परयालें' स्थितिवाचक। ऊझें शब्द बुन्हें का तथा परयालें शब्द थालें का विपरीतार्थक है। परन्तु पाधें शब्द हेठें का शुद्ध विपरीतार्थक शब्द नही, क्योकि जहाँ हेठें दोनो थालें और बुन्हें के लिए प्रयुक्त हो सकता है, पाधें शब्द ऊझें और परयालें के लिए समान रूप से प्रयुक्त नही हो सकता। "ऊझें बें जा" के लिए "परयालें बें जा" कहना ठीक न होगा। कुल्लू के कुछ भागो मे ऊपर के लिए धामें शब्द भी है। यह सस्कृत धामन' शब्द है, जो मूल अर्थ छोड कर सकेत रूप मे सज्ञामूलक अव्यय रहा है।

कालवाचक क्रियाविशेषण (Adverb of Time)

निम्नलिखित कालवाचक अव्यय विशेष रूप से व्यवहृत होते है—

औज (आज), हीज (पिछला कल), फरज (गुजरा परसो), शुई (अगला कल), पौरशी (आनेवाला परसो) एशू (इस वर्ष), पौर (पिछला वर्ष), पराह्‌र (पिछले से पिछला वर्ष), चनाह्‌र (गुजरा चौथा वर्ष), आगली (अगला वर्ष), नृगली (अगले से अगला वर्ष), चरिगली (आनेवाला चौथा वर्ष), दोथी (प्रात), झीश (सवेरा), सोझ (साय), त्रकाल स० त्रिकाल (शाम), दिहाडा>दिवस (दिन), रात-दिहाड (रात-दिन), सोझा-दोथी (सुवह शाम), नुहारी (कल्यवर्ती), कलार (मध्याह्न-भोजन), बतौहरी (बाद-दोपहर या साय का भोजन), बियाली (रात का भोजन), भयाणसर (भोर से पहले), भुर (भोर), एबें (अब), तेबें (तब), केबें (कब), जेबें (जब), जेबे ब केबें (जब कभी), हाजी (अभी तक)।

हीज की व्युत्पत्ति सस्कृत ह्य (ह्यस) से हुई है, शुई सस्कृत श्व (श्वस), तथा पौरशी सस्कृत परश्व (परश्वस्) से निष्पन्न हुए हैं। कालवाचक इन सभी शब्दों का आधार सस्कृत है, जैसे पौर सस्कृत 'परुत्', पराह्‌र सस्कृत 'परारि', एशू सस्कृत एषम् से

बने हैं। कुलुई मे दिनो की स्थिति मे दो दिन पिछले तथा आने वाले दो दिन और वर्षों की स्थिति में चार चार तक के अलग-अलग नाम प्रचलित हैं। इनके साथ सम्बन्ध कारक के विभक्ति प्रत्यय सर्वदा 'का, के, की' प्रयुक्त होते हैं। वास्तव मे सम्बन्ध कारक की विभक्ति रा, रे, री ही हैं, केवल कालवाचक संज्ञा मूलक शब्दो के साथ का, के, की का प्रयोग होता है जैसे—औजका, होजका, फरजका, एशका, पोरका, पराह्का, दोयका, मोझका आदि। परन्तु जब यही शब्द इकारान्त या आकारान्त रूप मे प्रयुक्त हो तो साधारण रा, रे, री प्रत्यय ही लगते हैं—दोयका परन्तु दोयीरा (सुबह का), कलारका परन्तु कलारीरा, बियालका परन्तु बियाली रा, दिहाडका परन्तु दिहाडीरा, झीशका परन्तु झीशारा आदि। कलार का सम्बन्ध स० कल्याहार से है, परन्तु होता है यह दोपहर का खाना। कल्याहार अर्थात् प्रभात के भोजन को 'नुहारी' कहते हैं।

सर्वनाम सम्बन्धी अव्यय अब, जब, कब आदि कुलुई मे अनेक पर्यायो के साथ मिलते हैं। एबें, तेबें, केबें, जेबें आदि रूपों मे स्पष्टत 'बेला' शब्द का सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त इन का दूसरा रूप एबरे, तेबरें केबरें आदि शब्दो मे भी मिलता है। यहाँ इन का 'वार' से सम्बन्ध है। वार वाले रूप कालवाचक अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं। दोयी और झीश का सम्बन्ध ठीक वही है जो सुबह और सवेरे का है—दोयी उठी झीशा (सुबह सवेरे उठना)। सोझ सस्कृत सध्या का विकसित रूप है और श्काल से भाव विकाल से है, परन्तु इसका प्रयोग सध्या के लिए ही सीमित है—सोझा श्काले आऊ-हुदा (शाम को सध्या समय आया हूँ)।

परिमाणवाचक क्रिया विशेषण (Adverb of Quantity)

बोहू (बहुत), जादा (ज्यादा), रज (काफी), बडा (बडा), गरका (भारी), हौलका (हल्का), निरा (निरा), खूब (खूब), निपट (बिलकुल), थोडा, धिख (जरा सा), नाऊजेंआ (नाम मात्र), बख (बिलकुल), एतरा (इतना), तेतरा (उतना), जेतरा (जितना), केतरा (कितना), टिपु (बूंद), टिपु टिपु (बूंद-बूंद), धिख-धिख (जरा-जरा), जैंआ (जैसा, मात्र, सा)।

बोहू, जादा, रज और बडा शब्द हिन्दी शब्द बहुत, ज्यादा, काफी और बडा के ठीक पर्यायवाची हैं, कोई अन्तर नही। गरका शब्द सस्कृत गरिमा का विकृत रूप है। निरा, निपट और बख अधिकता-बोधक है परन्तु एक दूसरे का स्थान नहीं ले सकते। बख केवल विशेषणो के साथ प्रयोग मे आता है—बख बाका (बिलकुल अच्छा), बख थूला (बिलकुल मोटा), बख बुरा, बख पतला, बख-बाकला। निपट और निरा सज्ञाओ के पहले भी प्रयुक्त होते हैं। धिख (जरा सा) सज्ञाजात परिमाणवाचक अव्यय है। इसकी व्युत्पत्ति स० दृकम् मे हुई है। धिख के साथ अनिवार्य रूप स जेंआ का प्रयोग होता है। जेंआ के बिना धिख अपना पूरा अर्थ प्रकट नहीं करता जैसे—धिख जेंआ दे (थोडा सा दे), धिख जेंआ दूध पीऊ (जरा सा दूध पिया)। जेंआ सज्ञा और विशेषण के साथ जैसा, मात्र, सा, केवल आदि अर्थों मे आता है—काला जेंआ घोडा, राखस जेंआ कोखरा (राक्षस जैसा कही का), नाऊ जेंआ पीठा धीना (नाम-मात्र आ...

दिया) । एतरा, तेतरा, जेतरा, केतरा के लिए एति, तेति, जेति, केति आदि रूप भी प्रयोग मे लाए जाते हैं। उत्तरोक्त शब्द प्राकृत एतिया, केतिया आदि से निष्पन्न हुए है।

रीतिवाचक क्रिया विशेषण (Adverb of Manner)

कुलुई मे रीतिवाचक क्रिया-विशेषणो की सख्या बहुत है। इन्हे इस प्रकार गिना जा सकता है :—

प्रकार—एडा (ऐसा), तेंडा (तैसा), कैंडा (कैसा), जेंडा (जैसा), जेंडा-कैंडा (जैसा तैसा), बुझना (मानो), सूले (धीरे), सूले-सूले (धीरे-धीरे), सिमा-न (अचानक) मजे (सहज, होले), मजे-मजे (होले-होले), जाति (साक्षात, स्पष्टत), आपु (स्वय), आपुऐ (स्वत , अपने-आप), आपु न (आपस मे, परस्पर), सडा सड (धडा-धड), कडा कड (तडा तड), ठीक ठाक, हौथा-हौथ (हाथो-हाथो), जेंडा-रा तडा (जैसे का तैसा, ज्यो का त्यो), सट-पट (झट-पट)।

(2) निश्चय—जरूरे (जरूर), सौचिये (सचमुच), सही, असल-न (दर-असल)।

(3) अनिश्चय—केवकी (कदाचित), आईचे (शायद)।

(4) स्वीकृति—हा, ठीक, सौच, ओऊ, हौअ ।

(5) निषेध—न, मौत (मत), नाईं, नी।

सम्बन्ध-बोधक (Postposition)

ताइये (लिये, वास्ते), ढेंई (समान), सेंई (सदृश), बाफी (बगैर), ताईं (तक), सोगे (सहित), लाइया (साथ), बौफी (बिना) आगे (पास), आगे-आगे, पहले, सामन, पीछे (पीछे), पीछे (कारण), खातिर, भीरी (बाद), सुणे (समेत), पौथम (पहले) धीरे (ओर), दौलत (वदौलत), चाडे (सिवा)।

उपर्युक्त सम्बन्धसूचक अव्ययो के अतिरिक्त कुलुई मे हिन्दी और उर्दू के बहुत से सम्बन्ध-सूचक प्रयोग मे मिलते हैं, जैसे—बराबर, पहले, सामने, बाहर, दूर-पार, बदले उल्टा आदि। परन्तु इनका स्थानीय बोली मे विशेष महत्त्व नही। उपर्युक्त अव्यय बहुत प्रचलित हैं, और इनके प्रयोगो के बारे मे स्पष्टीकरण बडा उपयुक्त होगा :—

तांइये

ताइये या तेंइये मूल रूप मे हिन्दी शब्द ताई या उर्दू शब्द वास्ते का समानार्थक है और प्रयोग भी ठीक इसी प्रकार है, परन्तु जहाँ वास्ते का पुल्लिग रूप है, ताइये का स्त्रीलिग रूप है क्योकि अपने से पूर्व सम्बन्ध कारक का केवल री प्रत्यय जोडता है, रा और रे नही । जैसे—शोहरू री ताइये डाहु हुदा सा (लडके के वास्ते रखा हुआ है)। यह अविकारी शब्द है। लिग, वचन, काल के भेद पर बदलता नही, समान रहता है।

हेतुवाचक सम्बन्ध बोधक के रूप मे ताइये 'कारण' या 'खातिर' के अर्थो मे भी प्रयोग मे आता है—तेरी ताइये मू जान भी देणी (तेरी खातर मैं जान भी दे दूंगा)।

सोगें

इस के विभिन्न उच्चारण हैं—सूगें, सगे, सुघें, सौंघ । मूल रूप में ये संस्कृत शब्द सग के विकृत रूप हैं, और संज्ञा के रूप में इसी तरह प्रयोग में आते हैं। बुरा रा सोंग छोड (बुरे का सग छोड) । अव्यय के रूप में सोगे के सूगें, सगें, सुघें, सौंघं रूप बने हैं, और सहित या साथ के पर्यायवाची हैं। यह करणकारक का द्योतक है—सोठें सोगें मार (सौठी से मार), मू सोगें मत डुणीदा (मेरे साथ या मुझसे न बोलो) ।

लाइया

विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। हेतुवाचक रूप में इसका अर्थ कारण या मारे है—भूखे लाइया प्राण निकले (भूख के मारे या कारण प्राण निकले) । साधनवाचक होने पर यह द्वारा या सहारे का पर्यायवाची है—होथें लाइया शोट (हाथ द्वारा या के सहारे फेंक), नाजा लाइया ता जीणा (अन्न के सहारे या द्वारा ही तो जीना है) ।

मूल रूप में यह करणकारक का द्योतक है और विभक्ति रहित सम्बन्ध सूचक है। मोटे तौर पर लाइया और सोगें दोनो करणकारक के प्रतीक है परन्तु लाइया इसके अधिक निकट है और करणकारक को कर्मकारक स स्पष्ट करने के लिए लाइया का अवश्य प्रयोग होता है—'टेंडें भाल' का अर्थ 'आखो को देख' या 'आखो से देख' दोनों बिलकुल ठीक हैं, परन्तु अधिक स्पष्टता लाने के लिए करणकारक की स्थिति में लाइया शब्द का प्रयोग होता है—टेंडें लाइया भाल (आखों से देख) ।

ढेंई और सेंई

ढेंई का अर्थ समान, बराबर, तुल्य हैं। तौ ढेंई कुणी होणा (तेरे बराबर या समान कौन हो सकता है) । यह विभक्ति रहित सम्बन्ध सूचक है। सेंई का अर्थ साम्य, जैसा, तरह है, जैसे—जाचा-न तौ सेंई माण्हु थी एक (मेले में तेरे जैसा या सदृश आदमी था एक) ।

बीणी और बाझी

व्यतिरेक-वाचक से सम्बन्धित बीणी और बाझी दो प्रसिद्ध सम्बन्धसूचक हैं। बीणी शब्द बिना का विकृत शब्द है और बाझी (बगैर) के निकट है। भाव की दृष्टि से दोनो समानार्थक है, परन्तु प्रयोग दोनो का भिन्न है। एक ही भाव प्रकट करते हुए भी वाक्य रचना भिन्न है। बीणी शब्द संज्ञा, सर्वनाम अथवा कृदंत अव्यय के पहले प्रयोग म आता है और बाझी उनके बाद । गाशा बाझी साला फुकुई (वर्षा के बिना फसलें जल गई) के स्थान पर 'गाशा बीणी' कहना ठीक नहीं। बीणी गाशें साला फुकुई शुद्ध प्रचलित वाक्य है। इसी तरह कमोइया बाझी नी हुदा, या बीणी कमोइया नी हुन्दा (कमाए बिना कुछ नहीं होता), अक्ला बाझी जीणा कठन सा, या बीणी अक्ले जीणा कठन सा (अकल बिना जीना कठिन है) ।

इसके अतिरिक्त बीणी शब्द चाहे के अर्थ मे भी प्रयोग मे आता है। परन्तु भाझी इस प्रकार प्रयुक्त नही हो सकता—तौ पीछें बीणी जान बी देणी—(तेरे कारण चाहे जान भी दूँगा)।

आगें

आगें शब्द अर्थ के अनुसार कभी कालवाचक और कभी स्थानवाचक होता है। कालवाचक की स्थिति मे इसका 'एँ' स्वर कुछ लम्बा हो जाता है—तू-ता आगेएँ पूह-चीरा (तू तो पहले ही पहुचा है), दुई घटे आगेएँ नौठा (दो घटे पहले ही चला गया)। स्थानवाचक मे स्वर बदलता नही। मरद आगें थी, बेटडी पीछें (मर्द आगे था स्त्री पीछे)। समीप, पास, निकट के लिए आगें शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु आगें का सबसे अधिक प्रचलित प्रयोग पास के अर्थ मे है—तेईं आगें की सा (उसके पास क्या है ?

पीछें और भीरी

पीछें शब्द कई अर्थों मे प्रयोग मे आता है। कालवाचक मे ठीक हिन्दी शब्द पीछे का समानार्थक है, और इस अर्थ मे यह भीरी (बाद) का पर्यायवाची है—हाऊँ आगें पुहता सो पीछें (भीरी) 'मैं पहले पहुँचा और वह पीछे (बाद मे)'। आगे-न रोटी खाई पीछें न (या भीरी) पाणी पीऊ 'पहले रोटी खाई पीछे से (या बाद मे) पानी पीया'। स्थानवाचक के रूप मे भी यह हिन्दी पीछे का ही समानार्थक है—घौरा पीछें दाड सा (घर के पीछे क्यारी है)। हेतुवाचक म पीछें का अर्थ करण या खातिर है—तेसा पीछें तर एण्डा हुआ (उसके कारण तो ऐसा हुआ), शोहरू पीछें ता बाबा बें एणा पोऊ (लडके की खातिर तो बाप को आना पडा)। कारण या खातिर के अर्थ मे पीछे शब्द ताँइये का पर्याय वाची है, परन्तु प्रयोग मे कुछ अन्तर है। पीछें विभक्ति रहित सम्बन्ध बोधक है और ताँइये विभक्ति सहित—तौ पीछें ता नुहार-बार खोएँ परन्तु तेरी ताइये ता नुहार-बार खोएँ (तेरे कारण तो शक्ल सूरत खो दी)।

चाड़ें

व्यतिरेकवाचक सम्बन्धसूचक है। यह उर्दू शब्द सिवा का पर्यायवाची है, और हिन्दी शब्द अतिरिक्त का भी अर्थ देता है। खेलणा-न चाडें होर कोम नी औथी (खेलने के सिवा और कोई काम नही है)। निषेधवाचक वाक्य में इसका अर्थ 'छोड़कर' या 'बिना' होता है, जैसे—तेईं-न चाडें होर कोई बी नी थी औथी (उसके सिवा या उसको छोड और कोई भी न था)।

उपर्युक्त शेष सम्बन्ध-बोधक अव्ययों का प्रयोग हिन्दी के समान है और विशेष व्याख्या की आवश्यकता नही।

समुच्चयबोधक (Conjunctions)

कुलुई मे कुछ प्रचलित समुच्चयबोधक अव्यय इस प्रकार है :—

ता (और), ता (तो), जे ँ (स० यदि>प्रा० जदी>महा० जई>कु० जें), जेता (यदि), क्विे ँ-जे ँ (क्योकि), तेबे ँ (इस लिए), किबे ँ (क्यो), की (या), किता (या तो), पर (परन्तु), तेबे ँ-बी (तोभी, तथापि), किता......किता (या तो......या तो), बीणी (चाहे), बीणी...बीणी (चाहे...चाहे), न......न, नी......नी (न......न), की......की (क्या......क्या), नी......ता (नही तो) (जे ँ......ता) (यदि...तो), भा (अथवा), केला नो......बी (न केवल......बल्कि), बुझणा (मानो), बी (भी)।

कुलुई मे सयोजक समुच्चयबोधक अव्यय के केवल दो रूप मिलते हैं—'ता' तथा 'बी'। ता शब्द 'और' तथा 'तो' दोनो के लिए प्रयुक्त होता है जैसे रामू ता तारू दूऐँ थी (रामू और तारू दोनो थे), गीता लाई ता नौचे ँ (गीत गाए और नाचे)। गादा एला ता वाहला (वारिश आएगी तो हल जोतेगा)। बी का प्रयोग मुख्यत 'बी......बी' के रूप मे होता है, यथा—ढबुऐ बी लोडी टोल्हें बी (पैसे भी चाहिए, कपडे भी), मूड बी पालू टाँगा बी बजाई (सिर भी तोडा और टाँगे भी तोडी)।

विभाजक समुच्चयबोधक मे 'की', 'किता', किता...किता, बीणी...बीणी, की......की, न......न, नी......नी, 'नीता' का प्रयोग मिलता है—भीण लोडी की भाऊ (बहिन चाहिए या भाई अर्थात् बहिन प्राप्ति की इच्छा है या भाई), फौल खाणे की पेड गिन्ने (फल खाने या पेड गिनने)। 'किता' का प्रयोग अकेले भी होता है तथा 'किता......किता' सयुक्त रूप मे भी। 'रोटी पका किता छैना बे जा', या 'किता रोटी पका किता छैना बेंजा' (रोटी पका या खेल को जा, या तो रोटी पका या तो खेत को जा)। ऐसा ही प्रयोग बीणी (चाहे) का भी है। बीणी हौथ लोडी चूट्ट, रौसी बैली नी छौडनी (चाहे हाथ टूट जाए रस्सी नही छोडूँगा)। बीणी ढबुऐँ दे, बीणी नाज दे (चाहे पैसे दे, चाहे अन्न दे)। की......की प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं। परन्तु समुच्चयबोधक के समान उपयोग मे आता है। ये दो या अधिक शब्दो का विभाग बता कर उनका इकट्ठा उल्लेख करते हैं—की मरद की बेटडी, सेभ नौचदे लागे हुदे थी (क्या पुरुष क्या स्त्री सब नाच रहे थे)। न......न, नी......नी दोहरे क्रियाविशेषण समुच्चय-बोधक के रूप मे प्रयोग मे आते हैं, जैसे—न शूला देनी न घीऊ खाणा (न प्रसव वेदना उठाऊँगी न घी खाऊँगी। लो०), न शाहुरा घालिदा न घौर बसाइदा (न ससुराल का कष्ट सहन कर सकती, न घर बसा सकती है)। ऐसे वाक्यो में न......न के स्थान पर नी......नी का भी प्रयोग होता है। यह बात करने वाले की इच्छा पर निर्भर है। 'नी—ता' भी सयुक्त क्रियाविशेषण है जो समुच्चयबोधक के रूप मे प्रयुक्त होता है। खिल-खिलीऐँ बचू, नी ता मुड फुट्ट थी (जरा जरा बच गया, नही तो सिर फट गया था)।

विरोधदर्शक समुच्चयबोधक मे उर्दू के लेकिन और मगर का कुछ-कुछ प्रयोग मिलता है, परन्तु इनमे स्थानिकता नही झलकती। वास्तव मे इस श्रेणी का समुच्चय-

बोधक केवल 'पर' है, जो सस्कृत और हिन्दी 'पर' है।

किवे॑-जे॑ (क्योंकि) और तेवे॑ (इस लिए) कारणवाचक है। इनका विशेष प्रयोग उर्दू के प्रयोग 'चूंकि''''''इस लिए' के समान होता है। 'किवे॑-जे॑ सो घौरा नी थी औथी, तेवे॑ हाऊ छे॑के आऊं' (चूंकि वह घर पर न था, इस लिए मैं शीघ्र आ गया।)

सकेतवाचक समुच्चयबोधक के रूप में जे, जे॑ता, जे॑''''''ता, केला नी'''''' बी, शब्द प्रचलित हैं। जे॑ शब्द हिन्दी का जो है, जिसे शिष्ट भाषा में यदि का स्थान प्राप्त है। जे॑ का ही दूसरा रूप जेता है, पूर्वोक्त साधारण शब्द है उत्तरोक्त मे स्वरमाधुर्य है। परन्तु प्रयोग इनका सयुक्त रूप में ही होता है, अलग नहीं—जे॑ राम हुआ ता दुआई-वे॑ हेरी एदा (यदि आराम हुआ तो दवाई के लिए न आना), जे॑ता माण्हु वणला ता खादा-पीदा रौहला, नी-ता अपणा रस्ता ढौक्ला (यदि आदमी बनेगा तो खाता पीता रहेगा, अन्यथा अपना रास्ता पकड़ेगा)। केला-नी'''बी' का प्रयोग हिन्दी के रूप न केवल''' '''अपितु' के समान है—तेइरा शोहरू काणा केलानी टोऊणा बी सा (उसका लड़का न केवल अन्धा अपितु बहरा भी है)।

विस्मयादिबोधक (Interjections)

कुलुई मे किसी व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए लिंगभेद के अनुसार अव्यय हैं—पुरुष के लिए 'एई' और स्त्री के लिए 'एऊ' आम प्रचलित सकेत हैं। एई हिन्दी रे और एऊ हिन्दी अरी के पर्यायवाची है। पति-पत्नी अपने को कवल इन्हीं शब्दों से सम्बोधित करते है—एई, हीज तू की वे॑ थी नौठादा (अरे! तू कल कहाँ गया था)। एऊ, बोलीरा शुनना की नी? (अरी,बोल के सुनती है या नहीं)। पशुओ के पुकारने के लिए भिन्न भिन्न सम्बोधन हैं कुत्ते के लिए 'चो-चो', *बैल गाय के लिए 'ओश', भेड़ के लिए होई'*, बकरी के लिए 'आछ', मुर्गी के लिए 'कुड-कुड', भेड़ और बकरी के लिए दो अलग सम्बोधन क्रमश 'हाँ' और 'छा' भी है। आम बोल चाल मे पुरुष के लिए 'डै' और स्त्री के लिए 'ऐ' अधिक प्रयोग मे आते हैं, परन्तु अन्य सम्बोधनो की तरह ये आरम्भ मे नही अन्त मे बोले जाते हैं—तुसे-री धीरे कुन थी डै (तुम्हारे यहाँ कौन था अरे) तेर नाकारी फुली को सा ऐ (तेरे नाक का आभूषण विशेष कहाँ है, अरी)।

हर्ष के लिए ओ, हा और हा कदे, तथा शोक के लिए 'हो', 'आयो', 'हो देउआ' बिस्मयादिबोधक प्रचलित हैं। 'आयो' हिन्दी हाय का पर्यायवाची है। अधिक थकावट या *दुख प्रकट करने के लिए इसके साथ 'देया' का भी प्रयोग होता है—आयो देया,* बख थौकू (हाय, बहुत थक गया)। अनुमोदन के लिए ठीक, अछा हाँ,हाँ—हाँ, तथा तिरस्कार के लिए छि, हे राम। बिस्मयादिबोधक के प्रयोग द्वारा मनोविकार सूचित किए जाते हैं।

सन्दर्भ-ग्रंथ

अपभ्रंश भाषा का अध्ययन—डॉ० श्रीवास्तव ।

कश्मीरी भाषा और साहित्य—डॉ० शिबन कृष्ण रैणा ।

कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत एक तुलनात्मक अध्ययन—श्री जवाहरलाल हण्डू ।

कालिदास का भारत—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ।

काव्यधारा—भाग एक और दो—भाषा एवं संस्कृति प्रकरण विभाग, हिमाचल प्रदेश ।

किन्नर देश—श्री राहुल सांकृत्यायन ।

कुमाऊँ—श्री राहुल सांकृत्यायन ।

कुमाऊँ का लोक साहित्य—डॉ० त्रिलोचन पाण्डे ।

कुलूत देश की कहानी—श्री लालचन्द प्रार्थी ।

कुलुई लोक साहित्य—डॉ० पद्मचन्द्र काश्यप ।

खड़ी बोली का लोक साहित्य—डॉ० सत्या गुप्त ।

गढ़वाली लोक गीत—डॉ० गोविन्द चातक ।

गढ़वाली लोक गाथाएँ—डॉ० गोविन्द चातक ।

ग्रामीण हिन्दी—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ।

चंगेर फुलांरी—भाषा एवं संस्कृति प्रकरण विभाग, हिमाचल प्रदेश ।

छत्तीसगढ़ी, हलबी, भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन—डॉ० भीलचन्द्र राव तैलंग ।

डिंगल साहित्य—डॉ० गोवर्धन शर्मा ।

डोगरी भाषा और व्याकरण—श्री बन्सीलाल गुप्ता ।

दिहात सुधार संगीत—कंवर टेढीसिंह विद्यार्थी तथा श्री नेसूराम ।

निमाड़ी और उसका साहित्य—डॉ० कृष्णलाल हंस ।

पहाड़ी चित्रकला—श्री किशोरीलाल वैद्य ।

पाणिनी-कालीन भारत—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ।

पुरानी राजस्थानी—मि० तेस्सीतोरी, अनुवादक डॉ० नामवरसिंह ।

पुरानी हिन्दी—श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ।

प्राकृत और उसका साहित्य—डॉ० हरदेव बाहरी ।

प्राकृत प्रबोध—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।
प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—मि० पिशल, अनुवादक डॉ० हेमचन्द्र जोशी।
प्रेंखण (पहाड़ी एकांकी संग्रह)—भाषा एवं संस्कृति प्रकरण विभाग, हिमाचल प्रदेश
बरासा रे फुल्ल (पहाड़ी कहानी संग्रह)—भाषा एवं संस्कृति प्रकरण विभाग, हिमाचल प्रदेश।
ब्रजभाषा—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा।
भारत का भाषा सर्वेक्षण—खण्ड I, भाग I डॉ० ग्रियर्सन, अनुवादक डॉ० उदयनारायण तिवारी।
भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी।
भारत में आर्य और अनार्य—डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी।
भारतीय प्राचीन लिपिमाला—पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा।
भाषा—मि० ब्लूमफील्ड, अनुवादक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद।
भाषा का इतिहास—श्री भगवद्दत्त।
भाषा एवं हिन्दी भाषा—डॉ० सतीश कुमार रोहरा।
भाषा और समाज—डॉ० रामविलास शर्मा।
भाषा विज्ञान—एफ० मैक्समूलर, अनुवादक डॉ० उदयनारायण तिवारी।
भाषा विज्ञान—डॉ० श्यामसुन्दर दास।
भाषा विज्ञान—डॉ० भोलानाथ तिवारी।
भाषा विज्ञान कोष—डॉ० भोलानाथ तिवारी।
भोजपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० उदयनारायण तिवारी।
भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
भोजपुरी लोक गाथा—डॉ० सत्यव्रत सिन्हा।
मगही व्याकरण कोष—डॉ० सम्पत्ति अर्याणी।
मध्य पहाड़ी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० गोविन्द चातक।
मार्कण्डेय पुराण—एक अध्ययन : आचार्य बदरीनाथ शुक्ल।
मार्कण्डेय पुराण—पाजिटर।
मार्कण्डेय पुराण—एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल।
मीरां की भाषा—डॉ० शशि प्रभा।
रहनुमा-ए-कुल्लू—श्री सर्वजीत गौड़।
राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया।
राजतरंगिणी—कल्हण।
लोक साहित्य विज्ञान—डॉ० सत्येन्द्र।
शब्दानुशासन—श्री हेमचन्द्र।
शब्दान्तर—डॉ० निशान्तकेतु।
शब्दों का अध्ययन—डॉ० भोलानाथ तिवारी।
शोध पत्रावली (तीन भाग)—भाषा एवं संस्कृति प्रकरण विभाग, हिमाचल प्रदेश।

सम्भोट व्याकरण—श्री के० अंग्रूप लाहुली ।
हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप—डॉ० हरदेव बाहरी ।
हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डॉ० नामवरसिंह ।
हिन्दी धातु संग्रह—मि० हार्नले ।
हिन्दी ध्वनिकी और ध्वनिमी—डॉ० रमेशचन्द्र महरोत्रा ।
हिन्दी भाषा का इतिहास—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ।
हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डॉ० उदयनारायण तिवारी ।
हिन्दी-मराठी शब्दकोष—महाराष्ट्र राष्ट्र-भाषा, भाषा पुणे ।
हिन्दी व्याकरण—श्री कामता प्रसाद गुरु ।
हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, द्वितीय भाग—सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
हिमाचल प्रदेश : क्षेत्र तथा भाषा—डॉ० वाई० एस० परमार ।
हिमाचली लोक गाथाएँ—लोक सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश, सम्पादक तथा अनुवाद श्री रामदयाल नीरज ।
हिमालयन फोकलोर—ओकले तथा गैरोला, अनुवादक सरस्वती सरन कैफ ।
अप्रकाशित
किन्नर लोक साहित्य—डॉ० वंशीधर शर्मा
कुलुई लोक साहित्य—डॉ० पद्मचन्द्र काश्यप ।

पत्र-पत्रिकाएं

किन्नर-कैलाश—राजकीय महाविद्यालय, रामपुर बुशहर ।
जन-साहित्य—भाषा विभाग, पंजाब/हरियाणा ।
देवधरा—राजकीय महाविद्यालय, कुल्लू ।
धौलाधार—राजकीय प्रशिक्षण कालेज, धर्मशाला ।
परम्परा—राजस्थानी लोक साहित्य, जोधपुर ।
पंजाबी दुनिया—भाषा विभाग, पंजाब ।
भागसू—राजकीय महाविद्यालय, धर्मशाला ।
भाषा—केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार दिल्ली ।
मरु-भारती—शोध विभाग, बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट, पिलानी ।
विपाशा—राजकीय महाविद्यालय, मण्डी ।
व्यास—राजकीय महाविद्यालय, बिलासपुर ।
शिराजा
श्यामल सुधा—राजकीय नेहरू संस्कृत महाविद्यालय, शिमला ।
सप्त सिन्धु (हिन्दी)—भाषा विभाग, पंजाब/हरियाणा
सप्त सिन्धु ([illegible] विभाग, पंजाब ।

सोमसी—हिमाचल कला, सस्कृति एव भाषा अकादमी, शिमला।
हमीर—राजकीय महाविद्यालय, हमीरपुर।
हिम-प्रस्थ—लोक सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश।
हिम-भारती—भाषा एव सस्कृति प्रकरण विभाग, हिमाचल प्रदेश।
हिमलोक—राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय, सोलन।

ENGLISH BOOKS

1 A Comparative Grammar of the Modern Aryan Languages —John Beames
2 A Comparative And Etymological Dictionary of the Nepali Languages —Ralph Lilly Turner
3 A Glossory of the Tribes and Castes of Punjab and N W F Province, —H A Rose
4 Annals and Antiquities of Rajasthan —Col Todd
5 An Easy way to Hindi and Hindi Grammar —Molu Ram Thakur
6 Archaeological Survey of India Vol V and XIV —Elexander Cunningham
7 Assessment Report of Kulu, 1891
8 A Trip Through Kulu and Lahaul to the Chumurari Lake in Ladak —Captain Alexander Cunningham
9 Consonantal Changes in Indic and Romance Languages —C S Rayall
10 *Chamba Gazetteer*
11 Chinese Accounts of India—Travels of Hiouen Thsang Vol II —Samuel Beal
12 Chiefs and Families of Note in the Punjab, Vol I, 1909 —Sir Lepel H Griffin and Col Charles Francies Massy
13 Descriptive Linguistics —H A Gleason, Jr
14 Elementary Chinese —Shau Wing Chau
15 Etymologies of Yask —Dr Siddheshwar Varma
16 Evolution of Oudhi —Dr Babu Ram Saxena
17 Foreign Elements in the Hindu Population—Indian Antiquary XL —D R Bhandarkar
18 Glory That Was Gujar Des —K M. Munshi
19 Hinduism in The Himalayas —H A Rose
20 Himachal Pradesh Area And Language —Dr Y S Parmar
21 Himachal—Nature's Peaceful Paradise —Dr S S Shashi

22 Himalaya —Herbert Tichy
23 Historical Linguistics —Winfred P Lehmann
24 History of Punjab Hill States —J Hutchison and Vogel
25 Indian Philosophy —Dr S Radhakrishnan
26 Indian Hill Life F St J Gore
27 Indian Palaeography —O Buhler
28 Indo Aryan and Hindi —Dr Suniti Kumar Chatterji
29 Introduction to Prakrit—Alfred C Woolner—Translation by Dr Banarsi Das Jain
30 Karkhandari Dialect of Delhi Urdu —Gopi Chand Narang
31 Kulu and Lahul—Lieut Col C O Bruce
32 Kulu—Its Dussehra And Its Gods —Prof Chandravarkar
33 Kulu—The End of the Habitable Words —Penelope Chetwode
34 Light And Shades of Hill Life in the Afghan and Hindu Highlands of the Punjab —F St J Gore
35 Languages of the Northern Himalayas —Rev T Craham Bailey
36 Linguistic Survey of India Vol I, Part I Vol IX, Part I, Vol IX, Part IV —Dr G A. Grierson
37 Nepali Language—Its History and Development. —Dr Dayanand Srivastava
38 Origin And Development of Bengali Language. —Dr Suniti Kumar Chatterji
39 Pali Literature and Language. —Wilhelm Geiger
40 Punjab Castes —Sir Denzil Ibbeston
41 Races of Northern India —W Crooke
42 Punjab Boundary Commission Report
43 The Himalayan Districts of Kooloo, Lahoul And Spiti —A F P Harcourt
44 The Kulu Dialects of Hindi —A H Diack
45 The Palaeography of Brahmi Script in North India —Dr Thakur Prasad Verma
46 The Races of Mankind —Prof M Nestrukh
47 The Sience of Language —F Maxmular
48 Transactions the of Linguistic Circles of Delhi. Edited by A Chandrasekhar
49 Shahpur Kangri Glossory. —J Wilson

सोमसी—हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला।
हमीर—राजकीय महाविद्यालय, हमीरपुर।
हिम-प्रस्थ—लोक सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश।
हिम भारती—भाषा एवं संस्कृति प्रकरण विभाग, हिमाचल प्रदेश।
हिमलोक—राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय, सोलन।

ENGLISH BOOKS

1 A Comparative Grammar of the Modern Aryan Languages —John Beames
2 A Comparative And Etymological Dictionary of the Nepali Languages —Ralph Lilly Turner
3 A Glossory of the Tribes and Castes of Punjab and N W F Province, —H A Rose
4 Annals and Antiquities of Rajasthan —Col Todd
5 An Easy way to Hindi and Hindi Grammar —Molu Ram Thakur
6 Archaeological Survey of India Vol V and XIV —Elexander Cunningham
7 Assessment Report of Kulu, 1891
8 A Trip Through Kulu and Lahaul to the Chumurari Lake in Ladak —Captain Alexander Cunningham
9 *Consonantal Changes in Indic and Romance Languages* —C S Rayall
10 Chamba Gazetteer
11 Chinese Accounts of India—Travels of Hiouen Thsang Vol II —Samuel Beal
12 Chiefs and Families of Note in the Punjab Vol I, 1909 —Sir Lepel H Griffin and Col Charles Francies Massy
13 Descriptive Linguistics —H A Gleason Jr
14 Elementary Chinese —Shau Wing Chau
15 Etymologies of Yask —Dr Siddheshwar Varma
16 Evolution of Oudhi —Dr Babu Ram Saxena
17 Foreign Elements in the Hindu Population—Indian Antiquary XL —D R Bhandarkar
18 Glory That Was Gujar Des —K M. Munshi
19 Hinduism in The Himalayas —H A Rose
20 Himachal Pradesh Area And Language —Dr Y S Parmar
21 Himachal—Nature's Peaceful Paradise —Dr S S Shashi

22 Himalaya —Herbert Tichy
23 Historical Linguistics —Winfred P Lehmann
24 History of Punjab Hill States —J Hutchison and Vogel
25 Indian Philosophy —Dr S Radhakrishnan
26 Indian Hill Life F St J Gore
27 Indian Palaeography —O Buhler
28 Indo-Aryan and Hindi —Dr Suniti Kumar Chatterji
29 Introduction to Prakrit—Alfred C Woolner—Translation by Dr Banarsi Das Jain
30 Karkhandari Dialect of Delhi Urdu —Gopi Chand Narang
31 Kulu and Lahul—Lieut Col C O Bruce
32 Kulu—Its Dussehra And Its Gods —Prof Chandravarkar
33 Kulu—The End of the Habitable Words —Penelope Chetwode
34 Light And Shades of Hill Life in the Afghan and Hindu Highlands of the Punjab —F. St J Gore
35 Languages of the Northern Himalayas —Rev T Craham Bailey
36 Linguistic Survey of India Vol I, Part I, Vol IX, Part I, Vol IX, Part IV —Dr. G A Grierson
37 Nepali Language—Its History and Development. —Dr Dayanand Srivastava
38 Origin And Development of Bengali Language. —Dr Suniti Kumar Chatterji
39 Pali Literature and Language. —Wilhelm Geiger
40 Punjab Castes —Sir Denzil Ibbeston
41 Races of Northern India —W Crooke
42 Punjab Boundary Commission Report
43 The Himalayan Districts of Kooloo, Lahoul And Spiti —A F P Harcourt
44 The Kulu Dialects of Hindi —A H Diack
45 The Palaeography of Brahmi Script in North India —Dr Thakur Prasad Verma
46 The Races of Mankind —Prof M Nestrukh
47 The Sience of Language —F Maxmular
48 Transactions the of Linguistic Circles of Delhi. Edited by A Chandrasekhar
49 Shahpur Kangri Glossory. —J Wilson

शब्दानुक्रमणिका

संकेत-सूची

अ० = अपभ्रंश
अर० = अरबी
ए० व० = एकवचन
क० = कहलूरी
का० = कांगड़ी
कि० कि० = किराती-किन्नौरी
कु० = कुलुई
गा० = गादी
चं० = चम्बयाली
चु० = चुराही
डो० = डोगरी
तुल० = तुलना कीजिए
दे० = देखिए
नपुं० = नपुंसकलिंग
प० = पहाड़ी
पं० = पंजाबी
पुं० = पुल्लिंग
प्रा० = प्राकृत
फा० = फारसी
ब० व० = बहुवचन
बा० = बाहरी पहा०
बा० सि० = बाहरी सिराजी
बि० = बिलासपुरी
(बु०) = बुझारत
भ० = भद्रवाही
भी० = भीतरी पहाड़ी
भी० सि० = भीतरी सिराजी
म० = महासुई
म० = मण्डियाली
(मु०) = मुहावरा
ले० = लेखक
(लो०) = लोकोक्ति
(लो० क०) = लोककथा
(लो० गी०) = लोकगीत
शौ० = शौरसेनी
सं० = संस्कृत
सि० = सिरमौरी
स्त्री० = स्त्रीलिंग
हिं० = हिंदी
> = ...से प्रसूत हुआ...
< = ...उद्भूत हुआ है...से